

श्रीम्

श्री हिन्दी जैन-साहित्य उत्कृष्ट-ग्रन्थमाला पुष्प १

नमः श्री पार्श्वनाथाय

कल्काल संघत श्री हेमचन्द्राचार्य विरचित

त्रिगुणी शतिका पुस्तक चरित्र वा

प्रथम पद्य

श्री आदिनाथ चरित्र



हिन्दीभाषानुवादक—

जैनाचार्य श्रीयुग्जयश्रीरत्नरत्नी महाराज के शिष्य

मुनिराज श्री प्रतापमुनिजी

प्रकाशक—

जैन मन्थ मेवक मण्डन व प० शाशीनाथ जैन बालकसेनाला

न० ७, मोरसलीगली इन्दौर सिटी

प्रथमपत्र २५००

[मूल्य ४) रुपया ।

प्राग्वचन

न प्राथम्ये जो ज्ञानका अक्षय मण्डार मरा पडा है,

 जै उसके चार विभाग किये गये हैं—द्रव्यानुयोग

 कथानुयोग, गणितानुयोग और चरणकरणानुयोग ।

 द्रव्यानुयोग फिलासफी अर्थात् दर्शनको कहते हैं । इससे वस्तुओं

 के स्वरूपका ज्ञान प्राप्त होता है । जीव सम्य धी विचार, पद्द्रय

 सम्यधी विचार, कम सम्यधी विचार—साराश यह, कि सभी

 वस्तुओंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशका तात्त्विक बोध इसमें

 मरा हुआ है । यह अनुयोग बड़ा ही कठिन है और बड़े बड़े

 आचार्योंने इसे सरल करनेकी भी बड़ी चेष्टा की है । इस अनु

 योगमें अतीन्द्रिय विषयोंका भी समावेश हो जाता है, इसलिये

 इसके रहस्य समझनेमें कठिनाई का होना स्वभाविक ही है ।

 इसके बाद ही कथानुयोगका नम्यर आता है । इस ज्ञाननिधिमें

 महात्मा पुरुषोंके जीवनचरित्र और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली

 शिक्षाएँ भरी हैं । तीसरे अनुयोगमें गणितका विषय है । इसमें

 गणित और ज्योतिषके सारे विषय भरे हैं । चौथे अनुयोगमें

 चरण सत्तरी और करण सत्तरीका वर्णन और तत्सम्यधी

विधियाँ ही हुई हैं। इन चारों अनुयोगों पर बहुतसे सूत्रों और प्रार्थनोंकी रचना हुई है। इनमेंसे बहुतेरे तो मष्ट हो चुके हैं। तो भी अभीतक बहुत से जैन ग्रन्थ मौजूद हैं जिनमें किसीमें तो एक और किसी किसीमें एकसे अधिक अनुयोगोंका विवेचन किया गया है।

वर्तमान ग्रन्थ चरितानुयोगका है। इस तरहके प्रार्थनोंसे साधारण व्यक्तियोंसे लेकर विद्वान् तक एक समान लाभ उठा सकते हैं। सय मनुष्योंका बुद्धिबल एकसां काम नहीं कर सकता। गास करके द्रव्यानुयोगके गहन विषयोंको तो सर्वसाधारण मली भाँति समझ भी नहीं पाते इसके विपरीत कथा कहानियोंमें सयका जी लगता है। बड़े बड़े पण्डितोंसे लेकर गधई-गायके रहनेवाले अनपढ़ किसान तक कथा कहानी कहते, सुनते और पढ़ते हैं। प्रायः देखा जाता है, कि कोई धार्मिक या राजनीतिक व्याख्यान सुनकर घर लौटने पर उसकी कुछ बातें मुश्किलसे ही याद रहती हैं, लेकिन वहींसे कोई कथा सुनकर आगे, तो रातको इस पाँच आदमियोंको तुम स्वयं उसकी आवृत्ति करके सुना सकते हो। मनुष्य स्वभावका परिचय रखनेवाले शास्त्रकारोंने यही देखकर इससे लाभ उठानेका तरीका निकाला और कथाके छलसे धर्म, ज्ञान, व्यवहार, नीति, चारित्र्य समस्त ही जीवनको उत्तम बनानेवाले नियमोंको मनुष्य समाजमें प्रचारित करना आरम्भ किया। बड़े बड़े महात्माओं और महापुरुषोंने कित्तु ढंगसे जीवन व्यतीत कर ससारमें सय तरहके सुख पाये, किन्तु

गुणोंका अवलम्बन करनेसे उनका जीवन आदर्श बन गया यही सब बातें बनलाकर मनुष्यके चरित्रकी उन्नति करनेका प्रयास किया गया। इसी चेष्टाके परिणाम स्वरूप कथा शास्त्र और इतिहासोंकी सृष्टि हुई। इन शास्त्रीय कथाओंमें समी तरफके गहन विषयोंको सरलताके साथ सर्वसाधारणमें प्रचलित करनेकी चेष्टा की गयी। सुन्दर माहित्यमें ऐसे अनन्य गद्य पद्यमय ग्रन्थ हैं। प्राचीनमें भी बहुतसे ऐसे ग्रन्थ बने। इस कथानुयोग द्वारा मनुष्य समाजका यथा उपकार हुआ है और भागे भी होता रहेगा।

कलिकाल सयज्ञ थी हेमचन्द्राचार्य जैन धर्मके एक बड़े भारी आचार्य हो गये हैं। उन्होंने ही कुमारपाल राजाको धर्मोपदेश देकर जैनी बनाया था और समस्त देशमें जन धर्मकी विजयपताका फहराये थी। उनके नामसे जैन धर्मावलम्बी-मात्र भली भाँति परिचित हैं। इन्हीं आचार्य महोदयने राजा कुमारपालके अनुरोधसे त्रिपट्टिशका पुरुष चरित्र नामका एक बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ, लोककल्याणके निमित्त लिख डाला। जिस ग्रन्थके रचयिता कलिकाल सर्वज्ञकी पदवी धारण करनेवाले थी हेमचन्द्राचार्य हैं और जो राजा कुमारपाल जैसे श्रेष्ठ आदित राजाके घोषण निमित्त लिखा गया हो, उसकी उत्तमता, काव्य-चमत्कार और विषयकी उपयोगिताके सम्बन्धमें मला कितने सन्देश हो सकता है ?

आचार्य हेमचन्द्रने इस ग्रन्थमें इतने चरित्रोंका इस छुबोसे समावेश किया है, उनके लिखनेका ढंग ऐसा रोचक और प्रभावोत्पादक है, कि पाठकों और धोतारोंकी उनकी युद्धिकी विशा

लता, घर्णनकी शक्ति और प्रतिभाको अलौकिकता देखकर आश्चर्यमं द्रुय जाना पड़ता है। आचार्यने इस ग्रन्थको दस भागोंमें बाँटा है। प्रत्येक भाग पर्व कहलाता है। इन पर्वोंमें आचार्यने जैन सिद्धांतके सारे रहस्योंको कूट कूटकर भर दिया है। मित्र भिन्न प्रभुओंकी बेशर्मा में नयका स्वरूप, क्षेत्र समास, जीव विचार, कर्मस्वरूप, आत्माके अस्तित्व, बारह मायना, संसारसे वैराग्य, जीवनकी चञ्चलता और बौध तथा ज्ञानके सभी छोटे-बड़े विषयोंका इस सरलता और मनोरञ्जकताके साथ इसमें समावेश किया गया है, कि कथानुयोगकी महत्ता और प्रभावोत्पादकता स्पष्टही प्रिदित हो जाती है। इन सब बातोंको पढ़ सुनकर पाठकों और श्रोताओंके मनपर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उनकी वर्त्तमान बुद्धि जागृत हो जाती है। इस ग्रन्थकी बड़े बड़े पाश्चात्य विद्वानोंने भी प्रशंसा की है। यह सन् १२५० में अर्थात् आजसे प्रायः आठसौ वर्ष पहले लिखा गया था।

वर्त्तमान ग्रन्थ उसी 'त्रिपट्टि शलाका पुरुष चरित्र' नामक महाकाव्यके प्रथम पर्वका अनुवाद है। इसमें ६ सर्ग हैं। पहले सर्गमें श्री ऋषभदेवके प्रथमके १२ भावोंका घर्णन है, जिसमें धर्मघोष सूरिकी बेशर्मा काल करके देखने लायक है। महाबल राजाकी सभामें मंत्रियोंका धार्मिक सवाद भी ऊँच गौरवे साथ पढ़नेकी चीज है। अंतमें मुनियोंकी उपाजित लक्षियों तथा २० स्थानोंका वर्णन भी पाठ करने योग्य है।

दूसरे सर्गमें कुलधारोत्पत्ति और श्री ऋषभदेव भगवान्के

अमसे लेकर क्षीप्ता लेनेकी इच्छा उत्पन्न होनेतक की कथा लिखी है । प्रारम्भमें कुलुकर विमलचाहनेके पूर्वमथकी—सागरचन्द्रकी—कथा पढ़ने योग्य है । इसमें दुष्टोंको दुष्टता और सतीके सतीत्व और दृढताका अच्छा चित्र अङ्कित किया गया है । देव देवियोंके द्वारा किये हुए प्रभुके जन्मोत्सव और प्रभु तथा सुनन्दाके रूपका वर्णन बड़े विस्तारके साथ किया गया है । देवताओंने भगवान्के विवाहका जो महोत्सव किया था, उसका और वसन्त ऋतुका जो खासा वर्णन इसमें किया गया है, यह कथिके गौरवका सच्चा चित्र है ।

तीसरे सर्गमें प्रभुके क्षीप्ता महोत्सव, कैवल्य ज्ञान और देशनाका समावेश किया गया है । चौथेमें भरतचक्रीके दिग्ब्रजयका वर्णन है । यह कथा बड़ी ही मनोरञ्जक है । पाचवें सर्गमें बाहु बलिके साथ विमलकी कथा है । इसी प्रसङ्गमें सुयेगका दौत्य भी दर्शनीय है । उस जमानेके युद्धोंका इसमें खासा चित्र अङ्कित किया गया है । छठे सर्ग में भगवान्के कैवली हो जाने पर विहार करनेका वर्णन है । भगवान् तथा भरतचक्रीके निर्वाण तककी कथा इसमें लिखी गयी है । इसमें अष्टापद और शत्रुञ्जय तथा अष्टपदके ऊपर भरतचक्रीके धनाये हुए सिंह निषदा प्रसादका वर्णन खास कर पढ़ने योग्य है ।

प्रत्येक सर्गमें जहाँ जहाँ इन्द्र तथा भरतचक्री आदिने प्रभुकी स्तुति की है, यह ध्यान देकर पढ़ने योग्य है, क्योंकि उसमें बहुत सी बातें बतलायी गयी हैं ।

आज हम पाठकोंके सामने इस महोपकारी ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद उपस्थित करते हुए आशा करते हैं कि हमारा यह उद्योग उनकी सहायता, उदारता और दयाका भाजन हो सकेगा। अद्यतक हिन्दी भाषामें इस ग्रन्थका कोई अनुवाद नहीं था, इस लिये लोग बड़े ही लालायित थे। इस कार्यमें हमें बहुत सा धर्म और धन्य उठाना पड़ा है। आशा है, कि इस ग्रन्थ को अपना कर हमें इसके अन्वय पत्रोंको प्रकाशित करनेके लिये उत्साहित करेंगे।

इस पुस्तक में दृष्टि दोष से और अशुद्धियों परम दोषोंका रह जाना सम्य है, अतएव मैं आप लोगोंसे इसके लिये क्षमा याचना पूर्वक इसकी शुद्धियोंको सुधार कर पढ़ने के लिये प्रार्थना करता हूँ।

ता० २५ जनवरी १९२४
 "नरसिंह प्रेस"
 २०१ इन्दियन रोड,
 कलकत्ता।

}

आपका—

काशीनाथ जैन।

॥ महम् ॥

भूमिका.

प्रिय महानुभावो !

इस ग्रन्थ विषयमें कुछभी लिखनकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि प्राग्बचनम ग्रन्थ सम्बन्धी उल्लेख प कार्शानाथजी जैन (मनत्रर-नरमित् प्रेम कक्ता) ने किया है तदपि मने प्रति वृत्त कुछ लोगोंका आग्रह होनेमें मने ग्रन्थकताके विषयमें कुछ लिखना उचित समझता हूँ ।

प्रस्तुत हम ग्रन्थके कार्शानाथजी श्रीहेमचन्द्राचार्य महाशय हैं । आपका जन्म ग्यारहवीं शताब्दिमें हुआ है । आपके पिताका नाम चण्डेव और माताका नाम पार्वती थी । आपने लघुयस्कमेंही मसारका त्याग कर श्रीमान् देवचन्द्रमूर्ति ऋजुके पास दीक्षा ग्रहण-धारण की थी । और आपने योंही समयमें साधु धर्मके योग्य धार्मिक क्रियाय निरतली । आप निरन्तर धार्मिक ब्रह्म आगे वत् ते य वैम ही आपका ज्ञानबल भी विशेष लामोके विनका चमत्कार कराने वाला था । तन् पश्चात् आपकी बुद्धिकी चातुर्यता और कृपालनाका दम्ब आपको गुरुमहाराजने एव सधममस्तने सोऽह वर्षकी लघु उन्नमनी आचार्य पदमें विभूषित किया । ओर विद्वद् मन्त्रमेंभी आपका कलिकाल सर्वेका उपाधिसे अर्जित किये । आपकी बुद्धि जैसी पटनपाटनमें थी वैसेही आपकी प्रयत्नत्व शक्तिभी थी । और आपने न्याय व्याकरण काव्य अलंकार पञ्चांग वष स्तुति आदि अनेक चमत्कारिक जन साहित्य लिखा है । उसमेंसे आप महानुभावोको ज्ञानके लिये कुछ ग्रन्थोंका उल्लेख देना उचित समझता हूँ ।

१ यह त्रिपठी शलाका पुरुष चरित्र परमाहत जीवदया प्रतिपादक कुमारपा राजाकी नाम विभूषितने लिखा है । जिसमें २४ सर्गकर ११ चरित्रवर्ती

नव वासुदेव, नवप्रति वासुदेव नव बरुदेव आदि ६३ श्लोका पुरुषोक्ते चरित्र दिये हैं। इसीका पहिला पत्र श्री आदिनाथ चरित्र आप महाभारतके चामन हिन्दी भाषानुवाद रखा जाता है। इस ग्रन्थमें आचार्यश्रीने काव्यकी मधुरता, सुन्दरताका पुरा स्थाल दिया है। और साहित्यके दापसे पुरा बचाव किया है।

२ परिशिष्टपर्व—(काव्य ग्रन्थ)

इसमें महावीरस्वामीकी पटपरपरानुगत जम्बूस्वामीसे लेकर दशपूर्वधर श्रीमान् वज्रस्वामी तक महान् स्थविरोके चरित्रोका उल्लेख दिया है। इसका दुसर नाम स्थविरावली भी है।

३ द्वाधयमहाकाव्य—(सस्कृत)

यह ग्रन्थ काव्यका होनपरभी इसमें विशेषता यह है कि एक तरफसे आचार्यश्रीका बनाया हुआ सिद्धहेम व्याकरणके सूत्रोंसे सिद्धरुपास्थानको बतानमें आये हैं। और दूसरी तरफसे उमी श्लोकोंमें सुन्दरता मधुरता और अल्कारोंसे परिपूर्ण चौतुक्य वशके इतिहासका वर्णन दिया है।

द्वाधयमहाकाव्य (प्राकृत) यह काव्यभी आपकाही बनाया हुआ है। इसमें कुमारपाल राजाका वृत्तान्त दिया है। इस काव्यक आठ सग हैं। मागधी शौरसेनी चुलिका पेशाची पेशाचिकी अपभ्रंश ये छहो भाषाके प्रयोग भी इसमें सिद्ध है मव्याकरणके सूत्रोंको प्रयोगसे सिद्ध किये ह।

सिद्धहेमचन्द्र व्याकरण—

इसके आठ अध्याय है। पहिलेके सात अध्यायमें सस्कृत व्याकरणका नियम है। और आठहवें अध्यायमें मागधी शौरसेनी, चुलिका पेशाची पेशाचिकी, और अपभ्रंश ये भाषाओंके समस्त स्वरूप बताया है।

यह व्याकरण प्रख्यात गुजरातके नरपति सिद्धराज जयसिंहकी विज्ञप्तीको स्विकारकर अपना और राजाके नाममें सिद्ध हेमचन्द्र व्याकरणकी रचना की है।

और इस व्याकरण पन्थकेको अन्य व्याकरणकी तरह वार्तिक टीपणी आदि रचनेकी आवश्यकता नहीं रहती है। तथा इस व्याकरणके पर आचार्य भीने अग्यागृह्याकी मुगमताक लिये मध्यमवर्णन-तथा लघुवर्णन य दो स्वरोंन टीकायभी आपने लिखी है। और आचार्य महाराजजीने-स्वये महागव्यास नामकी विष्णु टीका नव हजार श्लोक प्रमाणम लिख है।

धातुपारायण—

इसमें भी व्याकरणमें बताये हुए धातुभोका उल्लेख किया है।

आचार्य भीकी व्याकरणकी तुलना करनेके लिये अन्य व्याकरणकी तुलना करनेके लिये अन्य व्याकरणाने तो कुछ ही व्याकरण लिया है परन्तु आचार्यभीने ता स्वयही टीका टीपन वार्तिककोका समावेश हो जाय वसा सांगान्या व्याकरण लिखा है।

और—व्याकरणक विषयमें एक प्राचिन पठितका यह कथन है कि—

भ्रात ? मंहृणु पाणिनिप्रल्पिनं कान्त्रकन्याहृया ।

मा कार्थी षट्शुयाकगयनयच धुद्रण—चात्रण किम् ।

य कण्ठाभरणादिभिषट्ठयल्यारमानमर्थरपि ।

श्रूयन्ते यदि सायदधमधुरा धीहमचद्रोक्नय ॥ १ ॥

हे बंधु ? जहांतक हमचन्द्राचार्यक अर्थ माधुशब्दाने बतनाका अर्थन करेनेमें आवे वहांतक पाणिनि व्याकरणके प्रतापको बंध रग शिव शर्मकृत कृत प्रव्याकरणकी सही हूइ कथाका व्यर्थ समझ, शाकटायनके बटु वृषभोका

उच्चार मतकरो अति तुच्छ चन्द्रगोमि नामक यौद्धाचार्यकृत चान्द्रव्याकरणामे भी आमाको बौन कलेशित कर ।

और भी इस व्याकरणके विषयमें एक कविने आचार्य श्रीका बुद्धिकी स्तुति करनेके लिये योग्य एक अभावसे ध्येय्य रूपमें प्रकाशित करन सक्षिप्तमें कहते हैं—

किं स्तुम शब्दपाथोचेहेमचन्द्रयतेर्मनिम् ? ।

एकेनाऽपि हि येनेदकृत शब्दानुशासनम् ॥ १ ॥

व्याकरणे सम्बन्धमें सम्पूर्ण पाण्डित्यताको प्राप्त करना पूरापरका ह्याक रचना एक मात्रके गौरवकी भी अन्कानेपाली विचारशक्तिकी जाण्डिम रखनी । कोइमा बात रहना न पाव तैस कुल नियमांको योग्य स्थानपर रखन बगरी थाइ अन्तराकी जनानेकी असाधारण बुद्धिबलमें सता रखनी द्रव्यादिक अनेक दुष्ट मुक्केलीओके कारण व्याकरणका स्वतन्त्र और सम्पूर्ण रचनका इतना गहन ह कि सामान्य मनुष्यकी और बुद्धिमान अकेकेकी ता बातही छांदा । जा कि पाणिनि कार्यायन ओर पत्रभली जैसे प्रोड विद्वान् गिने नात थे तो भी एकही व्याकरणको चाहिए बग सम्पूर्ण रूपमें रखनकी समथ नर्नी हुए है । तो अकेल दिना भवायनाम सिद्ध हेमचन्द्र जैसे नीलकुल निदोष स्वतन्त्र और सम्पूर्ण रूपमें रख हुए व्याकरणको बनाया । शब्दाक समूहरूप श्री हेमचन्द्र मुनिकी बुद्धिकी प्रशामा क्या कर ? अन्तर हेमचन्द्राचार्यकी अगाध बुद्धिकी प्रशामा करनेके लिये हमारे पास पुरत शब्दीका धाना है

अभिधान चिन्नामणि—

यह काव्यका प्रथम सवत्र प्रसिद्ध है। इतकपर आपके बनाये हुए व्याकरणक सूत्रासे शब्दीकी व्युत्पत्ति विग्रह आदि प्रमाण बतानेवाली सुवाच गीतामी आपनेही लिखी है।

अनेकार्थ समग्रह। इसमें एक एक शब्दक कितने कितने पर्याय शब्द होत ह व मा दिये है। और प्रारम्भके एकही ग्रेक लक्ष्यमें लेनेसे कोईभी अभीष्ट शब्द बिना परिश्रममें नीकाल सकते हैं। अर्थात्—इसमें अन्य काशाका तरह अनुक्रमणिकाकी अपेक्षा नहीं रहती है। तथा अनेकार्थक रसाधर कौमुदी यह नामकी टीकाभी आपकीही लिखी हुई है।

लिङ्गानुदासन—

इसमें लिङ्गाका परिपूर्ण ज्ञान हानेका बताया है। और मस्कृतमें कामी एसा शब्द रहने न पाया हाकि जिनका निश्चयदपसे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये निराशा होना पड़े।

निषदु परिशिष्ट, दशी नाममात्र, इन सबका उपर भी सुविचक विस्तृत टीकाये रचि है।

षाब्दानुदासन (अकार प्रथ)

इस ग्रन्थकी रचना सुन्दरतासे अती पद्धतिमें मूत्ररूपम करनमें आदि है। शब्दीका विविध प्रकारका सामर्थ्य नव रसाका स्वरूप काव्यके समस्त गुणदाय विविध प्रकारक अलंकार और साहित्य सत्रर्था समस्त उल्लेख उनक निर्दोष लक्षणोक प्रतिपादन के साथ स्वातुर्यतापूर्वक समावेश करनेमें आय है। और इसके पर प्रथकर्तान स्वयही अलंकार चुडामणि नामकी गीता और विशेष नामका विवरण भी साथ दीया है। इसी ग्रन्थकी रचनाने आचार्यश्रीका साहित्य सममें भी विनादु पाणिन्यता प्रणत हानी है।

निवेदन

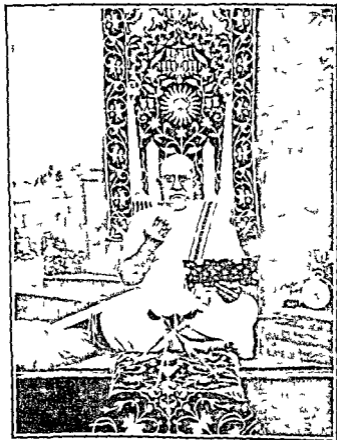
श्रीमान् पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय परमोपकारी जैन
शिष्य ज्योतिष विद्या महोदधि-जनाचाप श्री श्री श्री
१००८ जयसूरीश्वरजी महागजर्जाम हमार नम्र निवेदन
यह है कि आपने हमारी हिन्दी जैन साहित्य उत्कृष्ट
ग्रन्थमालामें अपने उपदेश द्वारा जो सहायता दि है ।
इस लिये यह मण्डल आपका सहर्ष उपकार मानता है ।
और श्री आपसे यही निवेदन है कि आप निरन्तर हमारी
ग्रन्थमालाको अपने पवित्र उपदेशद्वारा सहायता दिलान
रहेंगे जिसे हम लोक साहित्य सेवामें तत्पर रहेंगे ।

आपका,

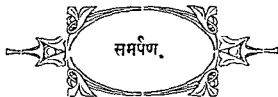
श्री-जैन-स्वयं सेवक मण्डल

न० ९ मोरमलीकी गली-इंदौर (मालवा)

(मध्यभारत)



जैनाचार्य जयसूरीश्वरजी महाराज ।



समर्पण.

जन शिल्प ज्योतिष विद्या महोदधि

श्रीमान जैनाचार्य-श्रीजयसूरीश्वरजी-महाराज

पूज्य गुरुवर्य ?

आपने अपना ज्ञानशक्तिमय चरित्र बलम जनक
मया मात्राका समारम्भ उद्धार किया है ।

और आपन हमको भी ज्ञानरत्न चरित्र

उसमें निरकर समारम्भ कटकम उद्धार

किया है पूज्यवर्य ? इसीम यह ग्रन्थ

रत्न आपका सन्नाम सादर

समर्पित है

आपका,

प्रतापमुनि



साहित्याचार्य
प श्रीवर शास्त्राजी
अध्यापक मसूतमहाविद्यालय
इंदौर-मालवा



बन्धु मांगीत जन सभाय मन्थापक तथा उम्गाही प्रमुख धी
रव इत्यं प्रमथन्द रायचन्द बन्धु ।



सकलार्हवप्रतिष्ठानमधिष्ठान शिव श्रिय ।
 भूर्भुवः स्वस्त्रयशानमार्हन्त्य प्रणिदध्महे ॥१॥

सारे तीर्थदुरोंकी प्रतिष्ठा—महिमाके कारण, मोक्षके भाषार, स्वर्ग, मृत्य और पाताल—इन तीनों लोकों के स्वामी "अरिहन्त पद" का हम ध्यान करने हैं ।

सुपामा—जो "अरिहन्त-पद" नामस्व तीर्थदुरों की प्रतिष्ठा का कारण है जो अरिहन्त मोक्ष वा परमपद का आश्रय है, जो स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल लोक—इन तीनों लोकों का स्वामी है, हम उसी अरिहन्त-पद का ध्यान करते हैं ; अर्थात् हम अतन्त्र ज्ञानादिक अण्डकमी विभूति और समकथारख आदि बाहरी विभूति का ध्यान करते हैं ।

नामाकृतिद्रव्यभावे , पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।

क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नहर्त समुपास्महे ॥२॥

समस्त लोकों और सब कालों में, अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—इन चार निक्षेपों के द्वारा, संसार के प्राणियों को पवित्र करने वाले तीर्थद्वारों की उपासना हम अच्छी तरह से करते हैं ।

मुनासा—तीर्थद्वार क्या करते हैं ? तीर्थद्वार जगत्के प्राणियोंको पापमुक्त या पवित्र करते हैं । हाँ तीनों स्त्रात्र और तीर्था कालों में तीर्थद्वार प्राणियों को पवित्र करते हैं उनको पापों—दु खों से छुडाते हैं । तीर्थद्वार किसके द्वारा प्राणियों को पवित्र करते हैं ? अपने नाम स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपा + द्वारा । ऐस संसार को पवित्र करनेवाले तीर्थद्वारों की उपासना या धाराधना सभी क्षागों को करनी चाहिये । प्रथकार महाशय कहते हैं जा

+नाम=नाम अरिहन्त=किसी व्यक्ति की अरिहन्त सज्ञा । स्थापना=स्थापना अरिहन्त=अरिहन्त का चित्र या मूर्ति । द्रव्य=द्रव्य अरिहन्त=जो अरिहन्त पद या शुक या पानेवाला है । भाव=भाव अरिहन्त=जो वक्त मान काल में अरिहन्त पद का अनुभव कर रहा है । नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—य शब्द के विभाग हैं । इन विभागों का ही ' निक्षेप' कहते हैं ।

इन चारों निक्षेपों द्वारा तीर्थद्वार प्राणियोंको पवित्र करते हैं । दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि, हम जगत् के प्राणियों अरिहन्तों के नाम अरिहन्त की मूर्तियों या तस्वीरों अरिहन्त-पद या शुकने वाले या पाने ही वाले और वक्त मान समयमें अरिहन्त-पदका अनुभव करनेवाला द्वारा पवित्र होते हैं ।

तीर्थद्वार जगत् के प्राशिर्या को पवित्र करने में हम छन्दर विधि में उन्हीं की उपासना करते हैं।

आदिम पृथिवीनाथमादिम निप्ररिग्रहम् ।

आदिम तीर्थनाथ च ऋषभस्वामिन स्तुम ॥३॥

जो इस अवसरिणी कालमें पहला ही राता, पहला ही त्यागा मुनि श्रीग पहला हा ताथद्वार हुआ है, उन ऋषभदेव स्वामी का हम स्तुति करते हैं।

तुनामा—इस महोका पहला महोपति कौन हुआ ? ऋषभदेव स्वामी ! हम पृथ्वी पर पहला त्यागी कौन हुआ ? ऋषभदेव स्वामी ! पहला ताथ नाथ या तीर्थद्वार कौन हुआ ? ऋषभदेव स्वामी ! प्रापकता आवाप करत हैं—इस समार क पहल राजा पहल त्यागी और पहल ताथद्वार ऋषभदेव हुआ है। हम उन्हीं सब से पहल तराग सब स पहल त्यागी और सब स पहल तीर्थद्वार की स्तुति करत हैं।

अहन्तमजित विश्व कमलाकर चन्द्रमू ।

अम्लान केवलादर्श सक्रान्त जातं न्नुवे ॥३॥

जिस तरह सूर्य से कमल-धन अमलित होता है उसी तरह जिस से यह सारा जगत् आनन्दित हो अमलित है, जिसके ज्ञान रूपी निमल दर्पण में सारे जीवों का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उन

सुखासा—जिस अजितनाथ स्वामी से संसार उसी तरह उखी होता है, जिस तरह कमल-वन सूर्य से उखी या प्रफुल्लित होता है, जिस के शानरूपी आसन में सारे लोकाँ—सारी दुनियाँभोंका प्रतिबिम्ब—अक्स पड़ता है, हम उसी अजित अहत्त—अजित नाथ स्वामी की स्तुति करते हैं।

विश्वभव्यजनारामकुल्यातुल्या जयन्ति तां ।

देशना समये वाचः श्रीसभवजगत्पते ॥५॥

जिस तरह नाली का पानी बागीचे के वृक्षों की तृप्ति करता है उसी तरह श्री संभवनाथ स्वामी के उपदेश-समय के घचन समस्त जगत् के प्राणियों की तृप्ति करते हैं। भगवान् के ऐसे घचनों की सधन जय जयकार हो रही है।

सुखासा—जिस तरह नाली के जल से बागीचे के वृक्ष और लतापत्तादि तृप्त होकर प्रफुल्लित हो जाते हैं उसी तरह श्री संभवनाथजी महाराज के उपदेश-समय के घचनों को छुनकर संसार के प्राणी, तृप्त होकर प्रफुल्लित हो जाते हैं। जिस तरह नाली के जलम वृक्ष तृप्त उद्यत हैं उनमें धमक-धमक आजाती है, उसी तरह श्री संभवनाथजीके उपदेशामृतका पान करके संसारी प्राणियों के मुखमाये हुए कुन्द दिल खिल उद्यत हैं उन के चेहरों पर सौन्दर्य आजाती है। उन का भय भग जाता है, चिन्ता दूर हो जाती है। और पाप या दुःख नौ दो ग्यारह हात हैं। स्वामी संभवनाथजीके तृप्तिकारक और शान्तिदायक अमृत समान घचनों की सधन जय हो रही है। संसारी या भव्य प्राणी उनका कभी अर्द्धा भक्तिसे छनत और उनपर अमल करते हैं।

अनेकान्तमताम्भोधि समुल्लासनचन्द्रमाः ।

दद्यादमन्दमानन्द भगवानभिनन्दन. ॥६॥

जिस तरह चन्द्रमा को देखकर समुद्र घड़ता है, उसी तरह जिन से स्याद्वाद मत घड़ा, वह अभिनन्दन भगवान् सथ को पूर्ण नया सुखी और आनन्दित करें।

सुलासा—चन्द्रमा की तरह ल स्याद्वाद मत रूपी समन्दर को उल्लसित करने वाले अभिनन्दन भगवान् सब लोगों को पूर्ण रूप से छुड़ी करें।

द्युसत्किरीटशाणाग्रोचे जिताघ्निनखावलि ।

भगवान् सुमति स्वामी तनोत्वभिमतानिय ॥७॥

जिन के चरणों के नाखून, घन्दना करने वाले देवताओं के मुकटों की नीकों से घिस घिस कर, सान से घिसकर साफ हो जाने वाले शस्त्र की तरह, साफ होंगये हैं,—वह सुमतिनाथ भगवान् तुम्हारे मनोरथों को पूर्ण करें।

सुलासा—जिन भगवान् सुमतिनाथ के चरण-कमलों में देवता लाग आन मस्तक रगते या गवात हैं, व भगवान् तुम्हारी अभिलाषाओं को पूरी करें—तुम तो चाहत हो, वही तुम्हें द।

या भी कह सकते हैं, भगवान् सुमतिनाथ महामहिमान्वित हैं। देवता तक उन के चरण कमलों में मस्तक झुकाते हैं। इस से प्रतीव होता है, व

ल समुद्र का स्वभाव है कि, वह चन्द्रमा को देखकर उल्लसित या खुश होता है। खुश होकर वह उस के पास जाना चाहता है। इसी ही पूर मासी के दिन जब चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाआ से उदय होता है तब समुद्र उमगता है उस को लहर इतनी ऊँची उठता है कि, चन्द्रमा के दे सेना चाहती है।

देवताओं व भी स्वामी हैं। और मयको झाँकर कवन उन्हींके घरणोंमें मस्तक भुकाओ उन्हींकी बन्दना धाराधना और उपामना करो। व देव दय तुम्हारी अभिलाषाओं का पूरा करेग।

पद्मप्रभप्रभोर्देहभासं पुष्पान्तु व शिवम् ।
अन्तरगारिमथन कोपाटोपादिवारुणा ॥८॥

शरीर के अन्दर रहनेवाले शत्रुओं को दूर भगाने के लिए भगवान् पद्मप्रभ स्वामी ने इतना कोप किया कि, उनके शरीर की कात्ति टाल ही गई। भगवान् की वही कात्ति तुम्हारी सम्पत्ति की वृद्धि करे।

सुलासा—बाहर के शत्रुओं की अपना भीतर के शत्रुओं की अपन वग में करना और उन्ह पराजित करके बाहर निकाल देना परमावश्यक है बाहरी शत्रुओं से हमारी उतनी हानि नहीं है, जितनी कि काम क्रोध लोभ, माह आदि भीतरी शत्रुओं से है। ये शत्रु प्राणी के इहलोक के सब और मान-पद लाभ करने में पूर्ण रूप से बाधक हैं। इनके शरीर में रहने से प्राणी का हर तरह अनिष्ट साधन ही होता है। उस सिद्धि किमी हालत में भी नहीं मिल सकती। इसी से सिद्धि चाहनेवाले को इन्हें शरीर से निकाल देना चाहिये। ग्रन्थकार कहता है, इन भीतरी शत्रुओं के शरीर रूपी किन से बाहर निकाल देने के लिए भगवान् ने इतना क्रोध किया कि क्रोध के मारे उनके शरीर का रंग लाल हागया। भगवान् का वही लाल रंग का कात्ति तुम्हारा सम्पत्ति को बढ़ाए।

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय महेन्द्रमहिताग्रये ।

नमश्चतुर्गणस्य गगनाभोगभास्वते ॥६॥

जिस तरह सूर्य से आकाश शोभायमान होता है, उन्ही तरह जिन भगवान् सुपार्श्व नाथ से साधु-साध्वी एवं श्रावक और श्राविका कृपे चार प्रकार का संघ शोभायमान होता है, जिनके चरणों का घटे घटे इन्द्रों या महेन्द्रों ने पूजा की है, उन्हीं भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र को हमारा नमस्कार है ।

सुनाया—जिस तरह सूर्य आकाश में शोभित होता है उन्ही तरह भगवान् सुपार्श्वनाथ साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं के संघ रूपी आकाश में शोभित होते हैं । जिस तरह सूर्य आकाश में रौशनी फैला देता और वहाँ का अन्धकार हर लेता है, उन्ही तरह भगवान् सुपार्श्वनाथ साधु-स्वाधा और श्रावक-श्राविकाओं के अन्धकार-रूप हृदयों में रौशनी करत और उनके अज्ञान अन्धकार का हरण कर लेते हैं वैसे वैसे इन्द्र उन की चरण-वन्दना करत हैं । एवं भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ जी को हमारा नमस्कार है ।

चन्द्रप्रभप्रभोश्चन्द्रमरीचिनिचयोऽज्वला ।

मूर्त्तिर्मूर्त्तिसितध्यान निर्मितेन श्रियेऽस्तु व ॥१०॥

भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी देह चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल या निमल है । इसलिये, ऐसी मालूम होता है, मानों वह

१ साधु = संसार त्यागी पुण्य । साध्वी = समारत्यागनेवाली स्त्री ।
श्रावक = उपदेश्य अनुभववाला । श्राविका = उपदेश्य अनुभववाली ।

मूर्तिमान् शुद्ध्यान से बनी है। भगवान् की स्वभावसे ही सुन्दर
देह तुम सब का कल्याण करे।

करामलकवद्विख, कलयन् केवलश्रिया।

अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः, सुविधिबोधयेऽस्तुव ॥११॥

जो अपने फेबल ज्ञान से, समस्त संसार को, हाथ में रखे
हुए आँवलेकी तरह, साफ देखनेवाले हैं, जो अचिन्तनीय माहात्म्य
या प्रभाव के खजाने हैं, वे सुविधिनाथ भगवान् तुम्हारे-सम्यक्त्व
पाने में सहायक हों।

सुनासा—जिन सुविधिनाथ भगवान् को सारा भूमण्डल उन के कवल-
ज्ञान के बल से हाथ में रखे हुए भावल + की तरह हरतरफ से साफ दिखाई
दता है, और जो अचिन्तनीय, प्रभाव के भण्डार हैं वही सुविधिनाथ भगवान्
आप लोगों के सम्यक्त्व—पूर्णता—सत्य के प्राप्त करन में सहायक हो,
अर्थात् उनकी कृपा या सहायता से आप लोग का सत्य की प्राप्ति हाजाय।

ॐ अचिन्तनीय माहात्म्य = प्यास में भी न आन योग्य महिमा या
शक्ति।

+ जिन तरह मनुष्य को हाथ में रखे हुए आँवले को हर पहल से देख
सकना आसान है उसी तरह भगवान् को सारे संसार को देख संता आसान
है। मनुष्य अपने समक्षजुओं से हाथ के आँवले को स्पष्ट देख सकता है,
भगवान् सुविधिनाथ अपने कवल ज्ञान से संसार को स्पष्ट देख सकते हैं।

‘अचिन्तनीय = जिसका स्वप्न भी न किया जासके, जिसकी कल्पना
भी न हो सके।

ॐ सम्यक्त्व = सत्य, पूर्णता, पूर्य ज्ञान।

सत्वानां परमानन्दकन्दोद्भेदनवाम्मुद ।

स्याद्वादामृतनिष्यन्दी शीतल पातुवोजिन ॥१२॥

जो प्राणियों के परमानन्द रूपी अङ्कुर को प्रकट करने के लिए नवीन मेघ के समान हैं और जो स्याद्वाद रूपी अमृत की घषा करने वाले हैं वेही भगवान् श्री शीतलनाथजी तुम्हारी रक्षा करें ।

शुभासा—जिस तरह नवीन मेघके बरसनात अङ्कुर प्रकट होते हैं; उसी तरह भगवान् श्री शीतलनाथजी के उपदेशामृत की घषा करने से मसारी प्राणियों के हृदय में परमानन्द या परम सुखका अङ्कुर प्रकट होता है । धन्यकार कहता है, जिन भगवान् के उपदेशों से प्राणियों के हृदय में परमानन्द का उदय होता है वही भगवान् आप लोग को सब प्रकार के दुःख, क्लेश, दुष्ट और आपदाओं से बचाव ; दुःख से हटा कर सुख पर लाने और पाप ताप के गन्धों में गिरने से रोकें ।

भयरोगार्त्तजन्तुनामगदंकारदर्शन ।

नि श्रेयसश्रीरमण श्रेयास श्रेयसेऽस्तु व ॥१३॥

जिस तरह चिकित्सक या वैद्य का दर्शन रोगियों को आनन्द देने वाला है, उसी तरह स्वस्वकार के दुःख और क्लेशों से दुखी प्राणियों को जिन भगवान् श्रेयासनाथका दर्शन आनन्द देने वाला है, और जो मोक्ष-लक्ष्मी के स्वामी हैं, वे ही श्रेयासनाथ स्वामी तुम्हारा कल्याण करें ।

पुलासा—जिम तरह वेश को दस्त ही रागी को आनन्द होता है, राग वश से पीड़ा छूट जाने की आशा से खुशी होती है उसी तरह संसार रूपी रोग से पीड़ित प्राणियों का भगवान् श्रेयासनाथ व दर्शना से प्रमदता होती है, उनको पाप-ताप के भय और भयङ्कर चिन्तासि से रिहाई मिलती है, उनके मुँहसे हुए हृदय-कमल खिल उठते हैं क्योंकि भगवान् मोक्ष लक्ष्मी रमण या मोक्ष के स्वामी हैं। व दुखिया प्राणियों का दुःख-नाश से उद्धार कर सकते हैं, उन्हें जन्म मरण के घोर दुःखों से छुटा सकते हैं उन्हें परम पद या मोक्ष दे सकते हैं। प्रथकार कहता है, पेग ही परमानन्द के दाता और मोक्ष के स्वामी भगवान् श्रेयासनाथ, आप लोगों का कल्याण करे !

विश्वोपकार कीभूततीर्थकृत्कर्मानिर्मिति ।

सुरासुरनरै पूज्यो वासुपुत्र्य पुनातु व ॥१४॥

जिन्होंने जगत् के उपकार करनेवाले तीर्थङ्कर नाम कर्मका वाधा है, जो सुर, असुर और मनुष्यों द्वारा पूजने योग्य हैं वे वासुपुत्र्य भगवान् तुम्हें पवित्र करें !

त्रिमल स्वामिनो वाच कतकक्षोदसोदरा ।

जयन्ति त्रिजगच्चेतोजलनैर्मल्यहेतव ॥१५॥

ॐ मोक्ष=जन्म से रहित । जिम की मोक्ष हो जाती है, उसे फिर जन्म सेना नहीं पता । जिम का जन्म नहीं होता, उसकी मृत्यु भी नहीं हो सकती । जन्म मरण से पीड़ा छूट जाने को ही मोक्ष होना कहते हैं ।

जिस तरह निर्मली का चूर्ण जल में घोल देने से जड़ की निर्मल या साफ कर देता है उसी तरह भगवान् विमलनाथ की वाणी तीनों जगत् के प्राणियों के अन्त करणों का मैल दूर करके उन्हें पवित्र करती है। आप की अर्थात्क वाणी की सत्यता जय हो रही है।

सुलासा—निर्मला एक प्रकारकी वनस्पति हाती है। उसको पीगडर गदन में गदने पानी में घोस दन में जल विलसौरी शाउ की तरह माफ हा जाता है। पथफार कहता है भगवान् विमलनाथ के उपगग या वचन भी निर्मली की तरह ही तीनों आर्वाक प्राणिया क मत्र अन्त करणों का शुद्ध और साफ कर दन हैं; यानी उन क अन्त करणों पर जा काम बाध, लाभ, माह और इग द्वेष प्रभृति का मैल गमा रहता है वह भगवान् के उपगग में दूर हा जाता है, और अन्त करण निमल आइने की तरह स्पच्छ और माफ हा जात हैं। भगवान् की एनी साकात्तर वाणी की सत्यता जय त्यकार हा रही है। संसार उन क उपगग का श्रद्धा और भक्ति त एना और उन पर अमन करता है।

स्वयभूरमणस्पर्द्धीकरुणारसवारिणा ।

अनत जिदनता व प्रयच्छतु सुखत्रियम् ॥१६॥

जिस तरह स्वयं-भूरमण नामक समुद्र में अनन्त जलराशि है। उसी तरह श्री अनन्तनाथ स्वामी में अनन्त—अपार दया है। यही अनन्तनाथ प्रभु अपनी अपार दया से तुम्हें अनन्त सुख सम्पत्ति दें।

सुलासा—श्री अनन्तनाथ स्वामी स्वयंभूरमण—समुद्र त स्वर्वा करत हैं। जिस तरह उस समुद्र में अनन्त जल भरा है उसी तरह भगवान् में

अनन्त—अपार दया जरा है। जिस भगवान्‌र्म अनन्त दया है वही भगवान्‌ दया करके आपलोगों का अनन्त अक्षय हृषीकेश्यं प्रदान करे, वही धर्म कारका आधय है।

कल्पद्रुमसधर्माणामिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम् ।

चतुर्धाधर्मदेष्टार धर्मनाथमुपास्महे ॥१७॥

जो भगवान् प्राणियों को उनके मन चाहे पदार्थ देने में कल्प वृक्ष के समान हैं और जो चार प्रकार के धर्म का उपदेश देनेवाले हैं, उन भगवान्‌ थी धर्मनाथजी की हम उपासना करते हैं।

सुधासा—कल्पवृक्ष या कल्पद्रुम म यह गुण्य है कि उससे जा कोय जिस परायणों का मना करता है, उस वह वहाँ पदार्थ आसानी से देता है। भगवान्‌ धर्मनाथजी संसार के प्राणियों के लिए कल्पवृक्ष हैं। समारी साग उन भगवान्‌ से जो चीज मांगते हैं भगवान्‌ उन्‌ वही चीज सइज में दते हैं। इस के गिरा व दान, शील, तप और भाव रूपी चार प्रकार के धर्म का उपदेश भी दते हैं। हम उन्‌ ही कल्पवृक्ष के समान मनवांछित फल दाता भगवान्‌ की उपासना करते हैं।

सुधासोदरवाग्ज्योत्स्ना निर्मलीकृतदिङ्मुख ।

भृगुलक्ष्मा तम शात्यै शातिनाथजिनोऽस्तुव ॥१८॥

ॐ कल्पवृक्ष—एक वृक्ष का नाम है, जो माँगने पर मन-चाह पदार्थ देता है, यानी उससे जा माँगा जाता है, वही देता है। भगवान्‌ भी भर्षों के लिए कल्पवृक्ष हैं, उनसे प्राणी जो माँगते हैं, उन्‌ वही देते हैं जो चाहने वाले का स्त्री, पुत्र-कामी को पुत्र और धन-कामी को धन प्रमूर्ति।

जिन्होंने अमृत समान चाणी रूपी चादनी से दिशाओंके मुखों को निमल कर दिया है और जिन में हिरन का लाञ्छन है वह शान्तिनाथ जिनेश्वर तुम्हारे तमोगुण अज्ञान का दूर करें ।

सुनामा—जिस तरह सुषार—चंद्रमा को सुषामय किरण की चादनी से दियाय प्रसन्न हो उठती है; उसी तरह श्रीशान्तिनाथ स्वामीके सुषा-समान उपदेश से सुनने वालों के मुख प्रसन्न हो उठते हैं । जिस तरह चंद्रमाके उदय होने से उसकी निमल चादनी छिन्कने से दशों दिशाओं का घोर अंधकार दूर हो जाता है उसी तरह भगवान् शान्तिनाथ के अमृतमय वचनों के सुनने से आताप्रां क हृदयकमल खिल उठते हैं उन के हृदयों का अज्ञान-अंधकार दूर हो जाता है, उनके शोक-सन्तप्त हृदयों में सुगीतल शान्ति का सञ्चार हो उठता है, व हिरन के लाञ्छन वाले भगवान् आप लोगों के अज्ञान अंधकार का उसी तरह नष्ट करें जिसतरह चंद्रमा जगत के अंधकार को नष्ट करता है ।

श्रीकुन्धुनाथो भगवान् सनाथोऽतिशयर्द्धिमि ।

सुगसुरनृनाथानामेकनाथोऽस्तु व श्रिये ॥१६॥

जिस के पास अतिशयों की श्रद्धि या सम्पत्ति है और जो देवताओं, राक्षसों और मनुष्यों के राजाओं का एक स्वामी है, श्रीकुन्धुनाथ भगवान् तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा करें ।

सुलासा—जो श्रीकुन्धुनाथ भगवान् पाँतीस अतिगर्वा की सम्पत्ति के स्वामी और दण्ड वज्रनेत्र तथा भेरुद्रोंके भी नाथ हैं, वही भूदारा कल्याण कर ।

अरनायस्स भगवाश्चतुर्थारनभोरवि ।

चतुर्थपुरुषार्थश्रीविलास पितनोतु व ॥२०॥

जो भगवान् श्री अरनाथजी चौथे आरे^६ में उसी तरह शोभा-
यमान थे, जिस तरह आकाश में सूर्य शोभायमान होता है, वह
भगवान् तुम्हें मोक्ष दें ।

६ काठ चक्र के दो भाग होते हैं — १) उत्पत्तिगी और (२) अथ
सर्विणा, इन दोनों मुख्य भागोंके छद्म-छद्म हिस्स होते हैं । इन हिस्सों
को ही 'आर' कहते हैं ।

सुरासुरनराधीशमयूरनववारिद्रम् ।

कर्मद्रुन्मूलने हरितमल्ल मल्लिभिष्टुम ॥२१॥

जिन भगवान् को देखकर सुरपति असुरपति और नरपति
उसी तरह प्रसन्न हुए, जिस तरह नवीन मेघको देखाकर मोर प्रसन्न
होते हैं और जो भगवान् कर्म रूपी वृक्षको निर्मूल करणमें पेटागत
हाथी के समान हैं, उन्हीं महािनाथ भगवान् की हम स्तुति
करते हैं ।

७ कर्म बंधनमें बंधे रहनेसे प्राणी का जन्म मरणसे पीड़ा नहीं श्रुता ।
जब तक कर्मों की जन् नाश नहीं होता, तब तक प्राणी को बारम्बार जन्म
लेना और मरना पन्ता है । जो कर्म को जड़ से उखाड़ के कर्म हैं, वे मोक्ष
प्राप्त करते हैं, उन्हें फिर जन्मना और मरना नहीं पन्ता ।

जगन्महामोहनिद्रा प्रत्यूषसमयोपमम् ।

मुनिसुप्ततृणाथस्य देशनावचन स्तुम ॥२३॥

श्रीमुनिसुप्ततृणाथस्य स्वामीका उपदेश जो जगत्की महान् महान् श्रुति निद्रा के नाश करने के लिए प्रातः काल के समान है, हम उसका स्तुति करते हैं ।

श्रुतिनिद्रा—यह जगत् मिथ्या और अज्ञान है । आयु बट बट बट बट म पाना निकलने का तरह दिन दिन घटती जाती है मीन मीन पर मेहरावा करना है समी और शत्रु पुत्रादि सब धपला का समान बन्धन है, फिर भी प्राणियों का हाथ नहीं होता क्योंकि व जगत् की महामोहमया निद्रा में मग्न हैं । उन मोहनिद्रा में सोन वालों का जगाने के लिए, श्री सुप्ततृणाथ स्वामी का उपदेश कथन प्रातः काल के समान है । निम्न तरह प्रातः काल होने से प्रार्थना निद्रा त्याग कर उठ बैठते हैं । उन्नी तरह सुप्ततृणाथ स्वामी का मेहरावा का उपदेश का उन कर मोहनिद्रा में गक रहने प्रायः अतः साधन और क्रम बन्धन काटने का बड़ा करत है । प्रत्यक्ष कहता है, हम उन्हीं स्तुति महाराज का उपदेश-वचनों की स्तुति या प्रशंसा करत है क्योंकि व मोहनिद्रा दूर करने में अत्यन्त महौषधि के समान है ।

लुठन्ती नमता मूर्ध्नि निर्मलीकार कारगाम् ।
 त्रारिपला इव नमे, पान्तु शदनखांशत्र

श्रीनेमिनाथ भगवान् के चरणोंके नाखूनों की किरणें उन के चरणों में सिर नमानेवालों के सिर पर जल प्रधाद की भाँति पड़तीं और उन्हें पवित्र करती है। भगवान्के नाखूनों की ये ही किरणें तुम्हारी रक्षा करें !

सुलासा—जो प्रार्थी भगवान् नमिनाथ के चरण-कमला में सिर झुकात है, उनकी पदबन्दना करत है उनक गिरों पर भगवान् के चरणों के नाखूनों की किरण गिरती और उन्हें पापमुक्त करती है। जिन किरणों का जगत् प्रभाव है व किरण आप की रक्षा करें !

यदुर्वशसमुद्रेन्दु , कर्मकचहुताशन ।

अरिष्टनेमिर्भगवान् भूयाद्वोऽरिष्टनाशन ॥२४॥

जो यदुर्वश रूपा समुद्र के लिए चन्द्रमाके समान और कर्म रूपी घन के लिए अग्नि के समान थे, वह श्री नेमिनाथ भगवान् तुम्हारे अरिष्ट को नष्ट करें ।

सुलासा—जिस तरह चन्द्रमा के प्रभाव से समुद्र बरता है उसी तरह जिस भगवान् के प्रभाव से यदुर्वश की वृद्धि हुई और जिन्होंने कर्म को उसी तरह भरन कर दिया, जिस तरह आग वन का जला कर भस्म कर देती है, वही अरिष्टनेमि भगवान् ही नेमिनाथ स्वामी आपका अरिष्टनाश नाश करें !

कमठेघरगुन्द्रे च, श्लोचितकर्मकुर्याति ।

प्रभुस्तुत्यमनोवृत्ति, पार्श्वनाथ श्रियेऽस्तु च ॥२५॥

आगे धरने स्वभाष के अनुसार धारण करनेवाले कमठ नामक दूत और धरणेन्द्र नामक असुरकुमार—दैरी और गेजक पर निरकी मनोवृत्ति समाप्त रही, यही भगवान् पार्श्वनाथ तुम्हारी सम्पत्ति के कारण हों !

सुनाया—एवम्भवे भगवान् पार्श्वनाथन धरणेन्द्र की शक्ति स राजा की थी, इसलिये उसमें वह उनकी भक्ति करता और उपमग बजाता था; किन्तु कमठ उनका बैरी था; वह उपमग करता था यानी उनपर आपदाये जाता था पर भगवान् समदर्शी थे उनका मनमें शत्रु मित्र समान थे वे शत्रु और संबद्ध ज्ञान पर समभाव रखते थे। पार्श्वनाथ कहता है वही समदर्शी भगवान् पार्श्वनाथ तुम्हारी एवम्भवे सम्पत्ति की वृद्धि करें—तुम्हारा कल्याण करें !

कृतापराधेऽपिजने, कृपामन्थर तारयो ।

ईपद्वाप्पार्द्रयोर्भद्र, श्रीश्रीर जिननेत्रयो ॥६॥

श्रीमहावीर प्रभु में दया की मात्रा इतनी अधिक थी कि उन्हें पूर्ण रूप से क्षाने और दुःख देनेवाले संगम^६ नामक देव

६ एक समय महावीर भगवान् तप करते थे। उस समय संगम नामक देवने उन पर ६ मास तक उपमग किया; नगर प्रभु विचलित न हुए। भगवान् की दयिता श्ल कर देवने स्वयं जान की इच्छा न कहा—'दृश्ये ?

पर उन्हें दया आ गई, इससे उनकी आँवों की पुतलिया उस पर झुक गई—इतना ही नहीं आँसुओं से उनकी आँवें तक तर हो गईं। ऐसे दया भाव पूर्ण प्रभु के नेत्रों का बह्याण हो।

सुवासा—भगवान् इतने दयालु थे कि उन्हें अपने अनिष्ट कारिणों पर भी दया आती थी। वे अपने कर्णों का भूल कर, सतानरान क कर्णों को ही फिर करते थे।



थव आप स्वच्छा पूजक आहार के लिए भ्रमण कीजिये। मैं आपका उपसर्ग नहीं कहूँगा। भगवान् ने कहा था—मैं तो अपनी इच्छा से ही भ्रमण करता हूँ, किसी के कहने या दवाव हासिल से नहीं।” निम्न समय देव वहाँ से चले लगे। तब भगवान् की आँवों में यह सोच कर आँसु आगये कि इस बेचारे ने जो अनिष्ट काम किये हैं, उनके कारण इन दुःख हागा। प्रभु को इस दृष्टि का सत्य में रण कर ही कलिकाल-समय श्री हेमचन्द्राचार्य ने हम स्तुति श्लोक की रचना की है।

चरित्रारम्भ

पहला भव

पर जिन तीर्थद्वारा को नमस्कार किया गया है उन्हीं के समय और उन्हीं के तोषा में १२ चरणों ६ अक्षरों की—घासुदेव, ६ यलदेव और ६ प्रति घासुदेव हुए हैं।

ये सब महा पुरुष त्रिपस्त्रिंशत् शताब्द पुरुषों के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें से कितने ही मोक्ष लाभ कर चुके हैं और कितने ही लाभ करने वाले हैं। इन्होंने अयसर्पिणी कालमें जन्म लेकर भरतक्षेत्र को पवित्र किया है। शलाका पुरुषपत्न्य स सुशोभिन इन्हीं पुरुष रत्नों के चरित्रों का वर्णन हम करते हैं, क्योंकि महापुरुषों का वाचन बल्याण और मोक्षके देनेवाला होता है। हम सबसे पहले भगवान् श्री शुकभद्रय भ्यामा का जीवन चरित्र, “उस भवसे जिसमें उन्हें सम्यक्त्व प्राप्त हुआ था” लिखते हैं।

ॐ य मव उता भयमं चधया चागामी भय मं निश्रयत मातृ-गामी दाम सं शलाका पुरुष कहलाते हैं।

अन्यथा समुद्र और अमलग द्वीपस्त्री वंशर्णों पर घण्टीदिक्का से परिघोष्ठित एक द्वीप है। उसका नाम जम्बूद्वीप है। यह अनेक नदियों और चर्यधर पर्वतों से सुशोभित है। उस द्वीप के बीच में स्थण रत्नमय मरु नामक पर्वत है। यह उसकी नाभि के समान शोभायमान है और यह एक लाख योजन ऊँचा है। तीन मेघगण्डे उसकी शाभा प्लाती हैं। उसपर चालास योजन की चूलिका समनल भूमि है। यह धी अर्हन्तोषे मन्दिर से जगमगा रही है। उसके पश्चिम ओर विदेह क्षेत्र है। उस क्षेत्रमें भूमण्डलके भूषण समाप्त क्षिति प्रतिष्ठितपुर नामका एक नगर है।

उस नगर में, किसी समय में प्रमथचन्द्र नामका राजा राज्य करता था। यह तरपति धर्म धर्म में आत्स्य रहित था। महान ऋद्धियों के कारण यह इन्द्र की भांति शोभायमान था। उस राजा के नगर में धन नामका एक साहूकार था। जिस तरह धनकों नदियाँ समुद्र में आकर आश्रय लेती हैं, उसी तरह माना प्रकार की धनराशियोंने उससे यहाँ आश्रय ग्रहण किया था। उसके पास अनन्त धन सम्पत्ति थी जो चन्द्रकी चन्द्रिका की तरह छोटे बड़े, नीचे-ऊँचे समी का उपकार साधन करती थी। अर्थात् उसकी सम्पत्ति परोपकार के कामों में ही व्यर्थ होती थी।

धन-क्षेत्र उसका अलग करन वाला चर्यधर—पर्वत।

पहली मसला में नन्दन वन, दूसरी मसला में क्षोमनन वन और तीसरी मसलामें पादक वन है।

जिस तरह महादेवगङ्गा नदीके प्रवाह में पवन अचल और अटल रहता है, उसी तरह धन सेठ सदाचर रूपिणी नदी के प्रवाह में, पर्वत के समान अचल और अटल था। वह सत्पथ से प्रिय लित होने वाला नहीं था। बहुत क्या—वह सारी पूजा का पवित्र करने वाला सेठ सभी से पूजा जाने योग्य था। उसमें पशुपति उरुके अमोघ वीज के समान औदार्य, गाम्भीर्य और श्रेष्ठ्य आदि गुण थे। अनान की ढेरियों की तरह उसके घरमें रत्नों की ढेरियाँ थी। जिस तरह शरीर में प्राण वायु मुख्य होता है उसी तरह वह धन सेठ धनवान्, गुणवान् और कीर्तिमान लोगों में मुख्य था। जिस तरह बड़े भारी तालाब के जाम पास की जमीन उसके स्रोतों से तर रहता है उसी तरह उस सेठ के घरसे उसमें नीकर चाकर प्रभृति तर रहते थे।

वसन्तपुर जानेकी तैयारी

एक दिन मर्त्तिमान उत्साह का तरह उस साहूकारने किराना लेकर वसन्तपुर जानेका इरादा किया। उसने नगरमें अपने आदमियों द्वारा यह डौड़ी विट्वादी— 'धन सेठ वसन्तपुर जाने वाले हैं। जिस किसी को वसन्तपुर चलना हो, वह उनके साथ होल। जिसके पास चढ़ने की सजारी न हागी, उसे वह सजारी देंग। जिसके पास छाने पीन व धनन न हागी, उसे वह रत्न देंग। जिसके पास राह-खर्च न हागी, उसे वह राह-खर्च देंग। राहमें चौराँ और डाकूओं तथा सिह व्याघ्र

पशुओं से सयकी रक्षा करेंगे। जो कोई अशक्त होगा, उसकी पालना वह अपने घघ्नुओंकी तरह करेंगे।" इस तरह डोंडी पिट जाने पर, कुलाङ्गनाओंने उसका प्रस्थान-मंगल किया। इसके बाद वह आचार्य युक्त सार्धवाह सेठ, शुभ मुहूर्त्त में, रथमें बैठ कर, शहर के बाहर चला। सेठ के कूँच करने के समय जो भेरी बजी, उसको घसन्तपुर निवासियोंने अपने धुलाने वाला हरफारा ममझा। भेरी-नाद सुन सुनकर, सभी लोग तैयार हो गये और नगर के बाहर जागये।

धर्मघोष आचार्य्य ।

इसी समय अपनी साधुचर्या और धर्माचरण से पृथ्वी को पवित्र करने वाले एक धर्मघोष नामक आचार्य्य उस साहूकार के पास आये। उन्हें देखते ही यह साहूकार विस्मित होकर अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उन सूर्यके समान तेजस्वी और कान्तिमान् आचार्य को नमस्कार किया और उनसे पधारनेका कारण पूछा। आचार्य्य महाराज ने कहा—“हम तुम्हारे साथ घसन्तपुर चलेंगे।” सार्धवाह बोला—“महाराज ! आज मैं धन्य हूँ, कि आप जैसे साथ चलने-योग्य महापुरुष मेरे साथ चलने को पधारे हैं। आप सान्द मेरे साथ चलिये।” इसके बाद उसने रसोई बनाने वालोंसे कहा कि, तुम लोग महाराजके लिए अन्न पानादि पाने पीनेके समान सदा तैयार रखना। सार्धवाह की यह आज्ञा सुनते ही आचार्य्य ने कहा—“साधुओं

का वही आहार ग्रहण करना चाहिये, जो न तो उनसे लिए नयाव किया गया हो, न कराया गया हो और न संकल्प ही किया गया हो। सेठ जी ! जितेन्द्र शासन में साधुओं के लिए कृप बागड़ी और तालाब का चर घीने का भा मनाही है क्योंकि वह अग्नि घने शस्त्रोंत अक्षिन किया हुआ नहीं हाता ।” ये धाते हा ही रही थीं कि, इननेमें किसी पुरुषने आकर सध्या जाले यादगे के समान सुन्दर रंगवाले पके हुए आमोंसे भरा हुआ एक थाग सार्थगाह के पाम रख दिया। घन साथगाहन, जनीय प्रमन्न चित्तने, आचार्य से कहा—“आप इन फलोंको ग्रहण करें तो मुझपर बड़ी कृपा हो।” आचार्य ने कहा—“हे श्रद्धालु ! साधुओं के लिए सचित फलोंके छूने तक की मनाही है खाना तो घड़ी दूर की बात है।” सार्थगाह ने कहा—“आप महा दुःकर मन धारण करते हैं। प्रमादी यदि चतुर भी हो, ठोभी ऐसा मन एक दिन भी नहीं पाल सकता। खैर, आप साथ चलिये। आप को जो अन्न पानादि प्राह्य होंगे मैं वही आपको दूँगा।” इस तरह कहकर और नमस्कार करके, उसने उनको विदा किया।

सेठ का पन्थगमन ।

इसके बाद सार्थगाह घड़ी उड़ी तरङ्गों घाले ममुद्रकी तरह अपने चञ्चल घोड़े ऊट, गाड़ी और बैलोंके सहित चरने लगा। आनाथ महाराज भी मानो मूर्च्छिमान मूल गुण और उत्तर गुण हों, ऐसे साधुओं से घिर कर चलने लगे। सारे सघने

आगे आगे धन साथवाह चला था। उसके पाँचे पीछे उसका मित्र मणिभद्र चलता था। उनके दीनों आर सवारोंका दण्ड चलता था। उस समय साथवाह के सफेद छत्रोंके देखने से शत्रु शत्रुके यादलों का और मोरकी पूँछ के छातों से घरा शत्रुके मेघों का भान होता था यानी जब सफेद छातों पर नजर आती थी, तब आकाश शत्रु के मेघोंसे गिर जय मयूर पुच्छ के छातों पर दृष्टि पड़ता थी तब धर्म काल के यादों से ज्ञान मालूम होता था। घनजात यानी पृथ्वी की आधारभूत वायु जिस तरह पृथ्वी को घटन करती है उन्ही तरह सार्धवाह के ऊट घलघ, खाइ, खहर और गध उससे कल्मसे होने योग्य सामान को ला रहे थे। व इतनी तेजी से चल रहे थे कि, उनके कदम जमीन को छूते मालूम न होते थे। ऐसा जान पड़ता था, गाया हिरनों की पीठों पर गीने लाद दी गई हैं। ऊट इतनी तेजी से चल रहे थे कि ऊँची-ऊँची पर्वों वाले पक्षीसे मालूम होते थे। बन्दर बैठे हुए जवानों के मीठा करने योग्य गाड़ियाँ ऐसी मालूम होती थीं, मानों चलते-फिरते घर हों। विशालकाय माट माटे क धों वाले भैंसे आकाश से पृथ्वी पर धाय हुए यादलों के समान जल को होने और लोगोंकी प्यास बुझाते थे। गाड़ियों के पहियोंके धूँ धूँ शब्दों से ऐसा मालूम होता था, माना सार्धवाह के सामान के बोझ से दबी हुई पृथ्वी चीन्कार कर रही हो। बैल, ऊँट और घाड़ों के पैरोंसे उड़ी हुई धूल आकाश में ऐसी छा गई थी, व सूखीभेद अंधकार हो गया था—हाथ की हाथ व सूकन

या । दिशाओं के मुख भाग को बहरे करने वाली, बेलों के गलों की घड़ियों की टनकार दूर से ही सुनकर, चमरी मृगों के उच्चों समेत अपने कान खड़े कर लिये और डरने लगे । भागी शोभको ढोने घाले ऊँट चलने चलते भी अपनी गर्दनों को घुमा घुमाकर बारम्बार वृक्षों के अगले भागोंको चाटने लगते थे । मालसें मरे थोरोसे लड़ हुए गधे अपने कान ऊँचे और गर्दनें मीठी करके एक दूसरे को दानों से काटने और पीठे रह जात थे । हर ओर हृदयारयन्द रक्षकों से घिरा हुआ वह सघ यज्ञ के पीजरे में रखे हुए की तरह माग में चलता था । महामूल्यवान् मणिकों धारण करने वाले सपके पास लोग जिस तरह नहीं जात उसी तरह डेर धन वहन करने वाले इस सघ के पास चोर नहीं आते थे—दूर ही रहते थे । निधन और धनवान् दोनों का एक नजर से देखने वाला, दानों की ही रक्षा का समान रूपसे उद्याग करन वाला सेंट सार्थवाह सत्र को साथ लेकर उसी तरह चलने लगा जिस तरह यूगपति हाथी अपने साथ के सत्र हाथियों को लेकर चलता है । नयनों को प्रफुल्लित करके, गेगों से मग्मान पाता हुआ धन सार्थवाह सूर्य की तरह रोज राज चलने लगा ।

श्रीपम-उर्णन ।

उम्मी समय नदियाँ और सरोवरों के जल का रात्रियों को तरह, मंजुचित करने वाली, पथिकों के लिए भयङ्कर और महा

उत्कट प्रीप्स प्रवृत्त आगई। भट्टी के आदर की लकड़ियों से निकलने वाले उत्ताप के जैसा, घोर दुःसह पथ चलने लगा। सूर्य अपनी अग्नि कणों के समान जलती हुई तेज धूपको चारों ओर फैलाने लगा। उस समय, संघ के पथिक, गरमी से घबरा कर, मार्ग में आने वाले अगल बगल के वृक्षोंके नीचे विध्राम करने और व्याऊओं में जल पी पीकर लेट लगाने लगे। गरमी के मारे, जैसे अपनी जीभें बाहर निकालने और फोड़ों की मार की परवा न करके नदी की कीचड़ में घुसने लगे। ढैलों पर तडातड चायुक पड़ते थे, तोमी वे अपने हाँकने वालों का निरादर और मार की पर्जा न करके, चारग्यार कुमार्ग के वृक्षों के नीचे जाते थे। सूर्य की तपई हुई लोह की सूइयों जैसी किरणों की तपतसे मनुष्य, और पशुओं के शरीर मोम की तरह गलने लगे। सूर्य नित्य ही अपनी किरणों को तपाये हुए लोहेके फलों जैसी करने लगा। पृथ्वी की धूलि, माग में फँकी हुई कण्डों की भाग की तरह, विषम होने लगी। संघ की छियाँ राह में आने वाली नदियों में घुस घुसकर और कमलनाड तोड़ नोड़कर अपने-अपने गलों में डालने लगीं। सेठ सार्धवाह की छिया पसीनों से तरबतर कपड़ों से, जल में भीगी हुई की तरह राहमें बहुत ही अच्छी जान पड़ने लगीं। कितने ही पथिक ढाक पलाश, ताड और कमल प्रभृति के पत्तों के पत्ते घना घनाकर धूप से हुए ध्रम को दूर करने लगे।

वर्षा-वर्णन ।

इसके बाद, प्रीतम ऋतु का तरह, प्रशासियों की चाल को रोकने वाली, मेघ चिह्न-स्वरूपिणी, वर्षा ऋतु आगई । आकाश में यत्र वे समान धनुष को धारण करके, धारा रूपी धारों की वृष्टि करता हुआ मेघ घट भाया । उससे मघ व लोगों को बड़ा कष्ट हुआ, वह मेघ मिलाग हुए पुले की भांति रिजगी को घुमा घुमाकर, बालकों की तरह, सघके सभी लोगो को डराने लगा, अथान् यात्रक जिस तरह घास का पुली को जलाकर घुमाते वीर लोगों का डराते हैं, उसा तरह वह मेघ रिजगी का चमका चमका कर संघबालों का भयभीत करने लगा । आकाश तक गये हुए और फैले हुए जलके प्रवाहने, पथिकों के हृदयों की तरह, नदियों के विशाल तटों—किनारों को तोड़ डाला । घरा व पाना ने पृथिवी व ऊंचे नीचे भागों का समाप कर दिया । क्योंकि जड़ पुर्यों का उदय होने पर भी, उनमें विरेक कहाँ आता है ? अथान् गृषों का अम्युदय होन पर भी उनमें विरेक या विचार का अभाव ही रहना है । पानी काचड तथा फाटों से दुगम हुए भाग में एक कोस राह चलना चार सौ कोस के समान मालूम होने लगा । घुटनों तक कीचड में फँसे हुए लोग, जेल से छूटे हुए कैदियों की तरह, धीरे धार चलने लगे । जत्र प्रवाह को देखकर पेमा भान होता था, मानो हुए द्वि ने प्रत्येक राह में प्रवाह के मिय से, अपनी भुजा रूपी आगल श्लोर्गों के रोकने के

लिप फैलादी है। उस समय कीचड़में गाड़ियों के फमने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो विरकाठ से मर्दन होती हुई पृथ्वी ने क्रोध करके उनको पकड़ लिया हो। ऊँटों के चलाने वाले राह में नीचे उतर कर रस्सियाँ पकड़ पकड़ कर ऊँटों को खींचने लगे; पर ऊँटों के पैर, जमीन पर न टिकने की वजह से फिसलने लगे और वे पद पदपर गिरने लगे। धन सार्थवाह ने वषा कालमें राह की कठिनाइयों का अनुभव करके, उस घोर उनमें तम्बू तनवा दिये। सघके लोगों ने भी यह समझ कर कि, वषा अस्तु यहीं षाटनी होगी अपनी अपनी भोंपड़ियाँ बनाली क्योंकि देश कालका उचित विचार करने वालों को दुखा होना नहा पडता है। मणिभद्रने निर्जन्तु स्थान में यनी हुई एक भोंपड़ी या उपाश्रय दिखलाया। उसमें साधुओं सहित जाचार्य महा राज रहने लगे। अघमें बहुत लोगों के होने और वषा कालका लम्बा समय होनेसे, सब का खाने पाने का सामान और पशुओं के खाने के घास प्रभृति पदाथ समाप्त हो गये। इसलिये संघ के लोग भूखने मार, मलिन वस्त्रवाले तपस्त्रियों की तरह, कन्दमूत्र और फल फूल प्रभृति पाने के लिए इधर-उधर भटकने लगे। सघके लोगों की ऐसी घुरा हालत देखकर, सार्थवाह के मित्र मणिभद्र ने, एक दिन, सध्या समय, ये सारा वृत्तान्त सार्थवाह से निवेदन किया। संघके लोगों की तकगीकों की बात सुनकर सार्थवाह उनकी दुःख चिन्ता से इस तरह निश्चल हो गया, जिस तरह, पवन रहित समय में, समुद्र निष्कम्प हो जाता है। इस

तरह चिन्ता में डूबे हुए साधवाह का क्षणभर में नींद आ गई। "निम्ने अति दुःख या भक्ति सुप्त होता है, उम्मे तन्बाल नादि आजाती है, क्योंकि ये दोनों निद्रा के मुख्य कारण हैं।" जब रात के चौथे पहर का आरम्भ हुआ, तब अश्वशाला के एक उत्तम आशयवाले पहरेदार ने नाचे लिंगी हुई यातें वहीं —

धनसेठकी उद्विग्नता ।

"हमार स्वामी जिनकी कीर्ति दशों दिशाओं में फल रही है, स्वयं वे सकलपन्न अवस्था में होनेपर भी, अपने शरणागतों का पालन भले प्रचार करते हैं।" पहरेदार की उपरोक्त बात सुन कर साधवाह ने विचार किया कि किसी शक्त ने ऐसी बात कहकर मुझे उलाहना दिया है। मेरे संघ में दुःखों का भंडार है ? अर ! मुझे अब स्वप्नल धाना है, कि मेरे साथ धर्मघोष आचार्य आये हैं। वे अमृत अकारित और प्रासुक भिक्षा से ही उदर पोषण करते हैं। बन्दमूर् और फलफूल आदि को तो वे छूने भी नहीं। इस कठिन समय में, वे कैसे रहते होंगे ? इस दुःख की अवस्था में उनकी गुजर कैस होनी होगी ? ओह ! जिन आचार्यों को, राहमें मरह की सहायता देने की बात कहकर, मैं अपने साथ इस सफर में लाया हूँ, उनकी मैं आज ही याद करता हूँ। मुझ मूर्ख ने यह क्या किया ! आज तक जिनका मेने घाणीमात्र से भी कभी सत्कार नहीं किया, उनको आज मैं किस तरह भुँह दिखलाऊँगा ? खैर ! गया समय दाय नहीं

जाता। फिर भी मैं आज उनके दर्शन करके अपने पापों को तो धो डालूँ। वे इच्छा रहित-निस्पृह पुरुष हैं। उन्हें किसी भी वस्तु की चाहना नहीं। ऐसे पुरुष का मैं कौनसा काम बन ? ऐसी विन्ता में मुनि दशनोंके लिण उत्सुक, सार्यवाह को रातका शेष रहा हुआ चौथा पार दूमरी रातके समान मालूम हुआ।

सेठका आचार्य के पास जाना।

इसके बाद जब रात थी गह और सघेरा हो गया तब सार्यवाह उज्ज्वल घन्नाभूषण पहन कर अपने मुख्य आदिमियों को साथ लेकर, सुनि के आश्रम की तरफ चला। वहाँ जाकर उसने दावके पत्तोंसे छारें हुए छेदों वाली, तिर्तीर भूमि पर यनी हुई भोपड़ी में प्रवेश किया। उसमें उसने पापरूपी समुद्र को मथने वाले, मोक्ष के मार्ग, धर्म के मण्डप और तेज के नागर जैसे धम घोष मुनि को देखा। वे कथाय रूपी गुम्ब में दिग्गज कायाण लक्ष्मी के हार समान और संघ के अद्वैत भूषण समान तथा मोक्ष कामी लोगों के लिए कण्टक के समान मालूम होते थे। वे एकत्र हुए तब, मूर्त्तिमान आगम और तार्थों को प्रवृत्तानेवाले तीर्थदूरों का तरह शोभित थे। उनके आस पास और मुनि लोग बैठे थे। उनमें से कोई आत्मध्यान में मग्न ही रहा था, कोई मीनव्रत अवलम्बन किये हुए था, कोई कार्योत्सग में लगा हुआ था, कोई आगम-शास्त्र का अध्ययन कर रहा था, कोई उपदेश दे रहा था कोई भूमि प्रमार्जन कर रहा था, कोई

गुरु को वन्दना कर रहा था, कोई धर्म कथा कह रहा था कोई श्रुतका उद्देश अनुसन्धान कर रहा था, कोई अनुज्ञा दे रहा था और कोई तत्त्व कह रहा था। सार्धसाह ने सबसे पहले आचार्य महाराज को और पीछे अनुसन्ध से अन्यान्य मुनियों को वन्दना किया। उन्होंने उसे पाप नाश करनेवाला “धर्मलाभ” दिया। इसका शब्द आचार्य के चरण कमलों के पास, राजहस की तरह बैठकर सार्धसाह ने, ध्यान के साथ, गोत्रे लियी बातें कहनी आरम्भ कीं -

जमा प्रार्थना ।

“हे भगवन् ! जिस समय मैंने आप को मेरे साथ आने के लिये कहा था, उस समय मैंने शरद ऋतुके मेघ की गज्जा के समान मि । मन्त्रम दिखाया था, क्योंकि उस दिन से आज तक त तो मैं आपको वन्दना करने आया और न अन्नपान तथा उखादिक से आपका सत्कार हो किया। जाग्रतावस्था में रहते हुए भी, सुमायस्या में रहने वाले के समान मैंने यह क्या किया ? मैंने आपकी अज्ञा की और अपना वचन भङ्ग किया। इसलिए हे महाराज ! आप मेरे इस प्रमादाचरण के लिए मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। महात्मा लोग सब कुछ सहनेसे ही हमेशा “सबसह” की उपमा को पाये हुए हैं।

ॐ पृथ्वी को “सबसहनी” इमोनिय कहते हैं, कि उस सत्कार खूँदता है और उसपर अनक प्रकार के अत्याचार करता है परन्तु वह चुपचाप सब सहती है। महापुरुष भी पृथ्वी की तरह ही सब कुछ सहनेवाला होते हैं, इसीमह ‘सबसह’ की उपमा मिली है

धन साधनाहका मुनिदान ।

सार्धवाह की ये बातें सुनकर सूरि ने कहा—“सार्धवाह ! मार्ग में हिंसक पशुओं और चोर डाकूओं से तुमने हमारी रक्षा की है । तुमने हमारा सब तरह से सत्कार किया है । तुम्हारे सबके लोगों ने हमें योग्य अन्नपानादि दिये हैं । इसलिए हमें किसी प्रकार का भी दुःख या केश नहीं हुआ है । तुम हमारे लिए जरा भी चिन्ता या गेद मत करो ।” सार्धवाह ने कहा—“सत्पुरुष निरन्तर गुणों को ही देखते हैं, इसीसे, मेरे शोष सहित होने पर भी, आप मुझे ऐसा कहते हैं, यानी सद्गोप होनेपर भी मुझे निर्दोष मानते हैं । आप चाहें जो कहें, मेरा तो अपने प्रमाद के कारण सिर नीचा हुआ जाता है । सचमुच ही, इस समय मैं अतीव लज्जित हूँ । अब आप प्रसन्न हृत्वि और साधुओं को मेरे पास आहार लाने को भेजिये जिससे मैं इच्छामुक्त आहार दूँ । सूरि बोले—“तुम जानते हो कि, घनमान योग द्वारा जो अन्नादिक अन्न, अकारित और अचित्त होते हैं, वे ही हमारे उपयोग में आते हैं ।” सूरि के ऐसा कहने पर सार्धवाह ने कहा—‘जो चीज आपके उपयोग में आयेगी, मैं उसे ही साधुओं को दूँगा ।’ यह कहकर धन साधनाह अपने आवास स्थान को चला गया । उसके पीछे पीछे ही दो साधु भिक्षा उपाज्जनार्थ उसके द्वारे पर गये पर देवयोगसे, उस समय उसके घरमें साधुओंको देने योग्य कुछ भी नहीं था । यह श्वर-उधर देवो लगा । एक जगह

उसे अपने निर्मल अन्त करण के समान ताजा घी दीप गया । उसने कहा—'क्या यह आपके ग्रहण करने योग्य है ?' साधुओं ने उत्तर दिया—'हाँ, इसे हम ग्रहण कर सकते हैं । यह हमारे उपयोग में आ जायगा । इसके लेनेमें हर्म कोई आपत्ति नहीं ।' यह कहते हुए उन्होंने अपना पात्र रख दिया । मैं धन्य हुआ मैं शून्य हुआ, मैं पुण्यात्मा हुआ, ऐसा विचार करते-करते उसे रोमाञ्च हो आया और उसने साधुओं को घी दे दिया । आनन्द के आँसुओं द्वारा पुण्यादुर को बहाते हुए, सार्यवाह ने घृत दान करने के बाद मुनियों को नमस्कार किया । मुनि भी सब प्रकार के कल्याणों की सिद्धि में विद्व मंत्र के समान 'धर्मलाभ' देकर अपने आश्रम को चने गये । इस दान के प्रभाय से साधवाह को, मोक्षवृक्ष का बीज-रूप अतीव दुर्लभ बोधिबीज—समक्ति प्राप्त हुआ अर्थात् उसे मोक्ष लाभ करने का पूण ज्ञान हो गया । रातके समय सार्यवाह फिर मुनियों के आश्रम में गया ; आता लेकर और गुरु महाराज को प्रदना करके उनके सामने बैठ गया । इसके बाद, धर्मघोष सूत्रि ने उसे मेघकी जैसी घाणी द्वारा, नीचे लिखी 'नेशना' दी —

धर्मघोष सूत्रिका उपदेश ।

धर्मकी महिमा ।

“धर्म ही उत्कृष्ट भगल है । धर्म ही स्वर्ग और मोक्ष का दाता है । धर्म ही ससार रुपी घनको पार करने की राह दिखलाने-

पाला है। धर्म माता की तरह पालन पोषण करता है, पिता की तरह रक्षा करता है, मित्र की तरह प्रसन्न करता है, धन्धु की तरह स्नेह रखता है, गुरु की तरह उज्ज्वल गुणों का समावेश करता है और स्वामी की तरह उत्कृष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यह सुखका महा हर्म्य है, शत्रु-संकट में धर्म ही शीत से पैदा हुए जड़ता के नाश करने के लिए धर्म और पाप के मर्म को जानने वाला है। धर्म से जीव राजी होता है, धर्म से बलदेव होता है धर्म से अर्द्धचक्री—वासुदेव होता है, धर्म से चक्रवर्ती होता है, धर्म से देव और इन्द्र होता है, धर्म से प्रेयेयक और अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र देवत्व मिलता है, धर्म से तीर्थङ्कर पद तक मिल जाता है। जगत् में, धर्म से सब तरह की सिद्धियाँ मिलती हैं।

चार प्रकार का धर्म ।

दुर्गति में पड़े हुए जन्तुओं को धारण करता है, इस से उसे 'धर्म' कहने हैं। यह धर्म दान, शील, तप और भाव के भेदसे चार प्रकार का है। धर्मके चार भेदों में जो 'दान धर्म' है, यह ज्ञान-दान अभय-दान और धर्मापग्रह दान,—इन नामों से तीन प्रकार का कहा है।

ज्ञान दान ।

धर्म को नहीं जानने वाले लोगों को देशना—उपदेश देने, याचना देन अथवा ज्ञान प्राप्ति के साधन देने को 'ज्ञान दान' कहते हैं। इस से प्राणी को अपने हिताहित या भले-बुरे का ज्ञान हो जाता है और जीव आदि तत्वों को जान जानेसे विरक्ति हो जाती है। ज्ञानदान से प्राणी को उज्ज्वल 'केवल ज्ञान

की प्राप्ति होती है और घट सब लोगों पर धनुप्रद करता हुआ, लोकाग्र पर भारुद्ध होता और मोक्ष-पद लाभ करता है।

अभय-दान ।

अभयदान—मन, ध्यान और काया से जीव हिंसा न करना न कराना और करन घाले का अनुश्रोत न करना 'अभय दान' है।

जीव दो प्रकार के होते हैं—(१) स्थायर और (२) अम ।

स्थायर भी दो प्रकार के होते हैं—(१) पयात और (२) अपयात ।

पयात की कारण-रूप छ पयातियाँ होती हैं। उनके नाम ये हैं—(१) आहार, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) प्रासो च्छ्याम (५) भाषा और (६) मन । एकेन्द्रिय के चार त्रिषेन्द्रिय के पाँच और पञ्चेन्द्रिय के छ पयातियाँ होती हैं। पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और धनस्पति—ये एकेन्द्रिय स्थायर पहगते हैं। इनमें से पहले चार के 'सूक्ष्म और वादर' दो भेद हैं। धनस्पति के प्रत्यक्ष और साधारण' दो भेद हैं। उनमें से साधारण धनस्पति के भी 'सूक्ष्म और वादर' दो भेद हैं।

अम जीव द्वान्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—इस तरह चार प्रकार के होते हैं। पञ्चेन्द्रिय के 'समी और असमी' ये दो भेद हैं। जो मन और प्राण को प्रवृत्त करके शिक्षा, उपदेश और ध्यानाद्य को समझते हैं उनको "समी" कहते हैं। जो इनके विपरीत होते हैं, ये "असमी" कहलाते हैं।

स्पर्शन रसन, घ्राण चक्षु और श्रोत्र,—ये पांच इन्द्रियाँ हैं। स्पर्श रस गन्ध, रूप और शब्द—ये अनुब्रम से इन्द्रियों के विषय हैं।

कृमि, शल्य जोंक, कीड़ी, मीप एव छीपो यगोर विविध आरति वाले प्राणी 'द्वीन्द्रिय' कहलाते हैं। जू, मकड़ी, चींटी, और लील यगोर को 'त्रीन्द्रिय जंतु' कहते हैं। पतंग, मक्खी, भोंगा और डाँस प्रभृति 'चार इन्द्रिय वाले' हैं। याकी जलचर, घल चर, नमचर पशु पक्षी, नारकी, मनुष्य और देव—इन सब को 'पञ्चेन्द्रिय जीव' कहते हैं। इनके प्रकार के जीवों के प्याय यानी आयुष्य को क्षय करना, उन्हें दुःख देना और हिंस उत्पन्न करना,—तीन प्रकार का 'वध' कहलाता है। इन तीनों प्रकार के जीव वध को त्याग देना—'अभय दान' कहलाता है। जो अभय दान देता है,—उह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को देता है क्योंकि वध से वचा हुआ जीव यदि जीता है तो, चार पुरुषार्थ प्राप्त कर सकता है, यानी जीव का जीवन रहने से उसे चार पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। प्राणी को राज्य, साम्राज्य और देवराज्य की अपेक्षा जीवित रहना अधिक प्यारा है इसीसे अशुचि या नरक में रहने वाले कीड़े और स्वर्ग में रहने वाले इन्द्र—दोनों को ही प्राणनाश का भय समान है। इन वास्ते बुद्धिमान पुरुष को निरन्तर ईह अभय-दान में, अग्रमत्त होकर प्रवृत्त

धर्मोपग्रह दान ।

दायकशुद्ध, ग्राहकशुद्ध, दैयशुद्ध, बालशुद्ध और भाषशुद्ध,— इन तरह धर्मोपग्रह दान पाँच प्रकार का होता है । उसमें म्यायोपा निग इत्यगाला, अच्छी बुद्धि वाला इच्छा रहित और दान दकर पश्चात्ताप नहीं करने वाला मनुष्य को दान देना है, यह 'दायक शुद्ध दान' कहलाता है । ऐसा निरा और ऐसा पात्र मुझे प्राप्त हुआ, इसलिए मैं श्रुताद्य हुआ—जो ऐसा मानने वाला हो यह 'दायक शुद्ध' होता है । म्यायय योग से धिरन, तीन गौरव से घञ्जिन, नान मुनि धारक पाँच समिति पात्रक रागद्वेष से रहित नगर यन्ता शरीर-उपकरण आदि में निर्मम, अग्राह दत्तार शीलाम के धारक, ज्ञान दर्शन और धारित्र रूप रक्षत्रय के धारक, धीर, साँन और लोहे को समान समझने वाले, दो शुभ ध्यान (धम ध्यान और शुभ ध्यान) को धारण करने वाले, जिनैन्द्रिय, उदर पूति जिनता ही आहार लेन वाले, निरन्तर यथा शक्ति अनेक प्रकार के तप करने वाले, अग्राह रूपसे सत्रह प्रकार के मयमका पालने वाले, अग्राह प्रकार के ग्रहचर्य्य का आचरण करने वाले ग्राहक को दान देना—'ग्राहक शुद्ध दान' कहलाता है । यपालीन शौच रहित असन, गान, पाद्य, म्याद्य, पात्र और मंगारा आदि का दान—'दैयशुद्ध दान' कहलाता है । योग्य समय पर, पात्र का दान देना—'बाल शुद्ध दान' कहलाता है और कामता रहित धरदा पूत्यक जो दान दिया जाता है,—यह 'भाषशुद्ध दान' कहलाता है । देह के बिना धर्म नहीं होता और अत्रादिक के बिना देह नहीं

रहती, अतः हमेशा 'धर्मापग्रह दान' करना चाहिए। जो मनुष्य अशन पानादि धर्मोपग्रह दान सुपात्र को देता है, वह तीर्थको अविच्छेद करता और परमपद पाता है।

शीलव्रत।

सायद्य योगों का जो प्रत्याग्यान है उसे "शील" कहते हैं। यह देश विरति तथा सर्व विरति ऐसे दो प्रकार का है। पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—इस तरह सब मिश्रकर दश विरति के बारह प्रकार होते हैं। स्थूल, अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच प्रकार अणुव्रत के हैं। दिग्विरति, भोगोपभोग विरति, अनर्थ दण्ड विरति—ये तीन गुणव्रत हैं और सामायिक, देशायकाशिक, पीपध तथा अतिथि संविभाग—ये चार शिक्षाव्रत हैं। इस प्रकार का यह देश विरति गुण शुश्रूषा आदि गुणवाले—यति धर्म के अनुरागी,—धर्म पथ्य भोजन के अर्थों, शम स्वप्न, निर्वेद, करुणा और आस्तिष्य,—इन पाँच लक्षण-युक्त, सम्यक्त्व को पाये हुए मिथ्यात्व रहित और सानुबन्ध क्रोधके उदय से रहित गृहस्थी महात्माओं को, चारित्र्य मोहनी का नाश होने से, प्राप्त होता है। अस और स्थावर जीवों की हिंसा के वर्जने को सर्वविरति कहते हैं। यह सिद्धिरूपा महल के ऊपर चढ़ने के लिए नसैनी स्वरूप है। यह सत्रविरति गुण—प्रगति से अप कपायवाले, ससार सुख से विरक्त और जिनप आदि गुण वाले महात्मा मुनियों को प्राप्त होता है।

तप महिमा ।

जो कर्म को तपाना है उसे 'तप' कहते हैं । उसके 'वाह्य और अभ्यन्तर' ये दो भेद हैं । अनशन, ऊनीदरी वृत्ति संश्लेष, रस त्याग, कायकेश और सलीनता—ये छ प्रकार के 'वाह्य तप' हैं और प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, स्वाभ्यास, विनय, वायोत्सर्ग और शुभ ध्यान—ये छ प्रकार के 'अभ्यन्तर तप' हैं ।

देशनाकी समाप्ति ।

ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रय को धारण करने वाले में अद्वितीय भक्ति रखना, उसका कार्य करना, शुभ की ही चिन्ता करना और संसारकी निन्दा करना—इन चार को 'साधना' कहते हैं । यह चार प्रकार का धर्म निस्सीम फल—मोक्ष फलके प्राप्त करने में साधन रूप है । इसवास्ते संसार भ्रमण से डरे हुए मनुष्यों को, सावधान होकर, इसका साधना करनी चाहिए ।"

पुन मार्ग गमन ।

घन तपुर पहुँचना ।

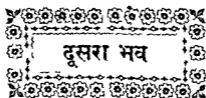
देह त्याग ।

इस प्रकार देशना सुनकर घन-सेठ बोला—'स्वामिन् ! यह धर्म बहुत दिनों के बाद आज मेरे सुनने में आया है इसलिये इतने दिनों तक मैं अपने कर्मों से ठगाता रहा,' वह इस तरह कहकर,

गुरु के चरण कमलों तथा अन्य मुनियों को घन्दना कर के, अपने आत्माको ध्य मानता हुआ अपने निवास स्थानको गया । इस प्रकार की धर्म देशना से परमानन्द में मग्न सार्धवाह ने यह रात एक क्षण के समान बिता दी । सोकर उठे हुए उस सार्धवाह के समीप भाग में, प्रात काल के समय कोई मगलपाठक शंख-जैसी गभीर और मधुर ध्वनिके साथ इस प्रकार बोला — 'घोर अधकार से मलीन, पद्मिनीकी शोभाको चुरानेवाली और पुरुषोंके ध्ववसाय से हरने वाली रात—वर्षाऋतु की तरह—चली गई है । जिस में तेजस्वी और प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य उदय हुआ है और जो व्यवसाय कराने में सुहृद् के समान है ऐसा यह प्रात काल शरद् ऋतु के समय की भाँति, बुद्धि को प्राप्त हो रहा है । जिस तरह तत्त्वज्ञान से बुद्धिमानों के मन निर्मल हो जाते हैं उसी तरह इस शरद् ऋतु में, सरोवर और नदियोंके जल निर्मल होने लग गये हैं । जिस तरह आचार्य के उपदेश से प्रथ संशय रहित हो जाने हैं उसी तरह, सूर्य की किरणों से कीचड़ सूख जाने के कारण, राहें साफ हो गई हैं । मार्ग के चीलों और चक्रधारा के बीच में जिस तरह भाडियाँ चलती हैं उसी तरह नदियाँ अपने दोनों किनारों के बीच में बहने लग गई हैं और मार्ग—पके हुए तुच्छ धान्य साधाँ, नीपार, घालूँक और कुषल आदि से—पथिकों का आतिथ्य सत्कार करते हुए से मालूम हो रहे हैं । शरद् ऋतु वायु से हिलते हुए गन्नों के शब्द से, प्रजास्तियों को सवारियों पर चढ़ने के समय की सूचना सी देती मालूम हो रही है । सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे भूलसे

हुए पधिकोके लिए यादल, क्षण भर को छातोंका काम करने लगे हैं। सद्गुरुके भांड अपने खुरोंसे जमीनको खोद रहे हैं, मालूम होता है, सुख पूरक चलनेके लिए, वे जमीनको हमजार या घौरस कर रहे हैं। पहले जो मार्गके प्रसाह गर्जना करते और पृथ्वी पर उछलते हुए दिखाइ देने थे, वे इस समय—घर्याकालके यादलोंकी तरह—नष्ट हो गये हैं। फलोंके भारसे झुकी हुई डालियों और फद्म फद्म पर मिलने वाले साफ पानीके झरनोंके, पधिकरण मार्गमें बिना किसी प्रकारके यत्नके ही, पायेयगले हो गये हैं। उत्साह पूर्ण चित्तवाले उग्रमी लोग राजहंसकी तरह, देशान्तर जानेके लिए उतावल कर रहे हैं। 'मड्डल पाठककी उपरोक्त बातें सुन कर, हमने मुझे प्रयाण समयकी सूचना दी है' ऐसा विचार कर, साथसाहने प्रयाण मेरी बजवा दी। गोपालके गोशृङ्गनादसे जिस तरह गायोंका झुण्ड चलता है उसी तरह पृथ्वी और आकाशके मध्य भागको पूर देने वाले मेरी नादसे सारा सार्य वहाँसे चल दिया। भय प्राणी रूपी कमलोंको बोध करनेमें दक्ष, मुनियोंसे घिरेहुए आचार्य्य ने भी—किरणोंसे घिरेहुए भारकरकी तरह—वहाँसे विहार किया। सद्गुरुकी रक्षाके लिए, आगे-पीछे और दोनों बाजू, रक्षा करने वाले सवारोंको तैनात करके, धन सेठने वहाँसे कूँच किया। सार्य्यवाह जब उस घोर धनको पार कर गया, तब उससे आज्ञा लेकर, धर्मघाय आचार्य्य अन्यत्र विहार कर गये। जिस तरह नदियोंका समूह समुद्रमें पहुँच जाता है, उसी तरह सार्य्यवाह भी बिना किसी प्रकारकी विघ्न बाधाके मार्गको तय

कर के, वसन्तपुर पहुँच गया। वहाँ पर उसने, थोड़े ही समय में, कितना ही माल बेच दिया और कितना ही खरीद लिया। इस के बाद जिस तरह मेघ समुद्र से जल भर लाता है, उसी तरह धन सेठ, गृह धन सम्पत्ति भंगकर, फिर क्षितिप्रतिष्ठितपुरमें आया और कुछ समय के बाद उन्न पूर्ण होने पर, बाल धर्म को प्राप्त हुआ, अर्थात् पञ्चत्व को प्राप्त हुआ—इस संसार से चल बसा।



सेठ का पुनर्जन्म ।

युगलियों का चर्णन ।

मुनि दान के प्रभाव में वह, उत्तर कुम्भेश्वर में, सीता नदी के उत्तर तट की ओर, जम्बूद्वीप के पूर्व अक्षर में, जहासवदा पद्मान्त सुयम नामक द्वारा गर्तेगा है, युगलियाद्वय में उत्पन्न हुआ।

युगलिये तीन तीन दिन के बाद जाने की इच्छा करने वाले, दो सौ छप्यन पृष्ठ करपटक या पसलियोंवाले, तीन कोसधे शरीर वाले, तीन पल्य की आयुवाले, अत्य कपाय वाले और ममता हीन

होते हैं। उनके—आयुष्य के अन्तमें—मरने के किनारे हाने पर, एक समय प्रसन्न होता है; और पैदा होता है एक अपत्यका जोड़ा यानी जोड़ली सतान। उस सतानका ४८ दिन तक पालन पोषण करके, वे मरजाते हैं। उस देहको त्यागनेके बाद, ये देवगतिमें, उत्तर कुरु क्षेत्र में, उत्पन्न होते हैं। उस उत्तर कुरुक्षेत्र में स्वभावसे ही शक्र जैसी स्वादिष्ट रेती है। शरद ऋतु की चन्द्रिका के समान स्वच्छ निर्मल जल और रमणीक भूमि है। उन क्षेत्र में मयाङ्ग प्रभृति दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो युगलियों को मनराहित पदार्थ देते हैं। उन में से मयाङ्ग नामक कल्पवृक्ष मद्य देते हैं भृङ्गाङ्ग नामक कल्पवृक्ष पात्र देते हैं, तूयाङ्ग नामक कल्पवृक्ष मधुर रस से यजनेवाले अनेक प्रकार के धाजे देते हैं, दीप शिवाङ्ग और ज्योतिष्काङ्ग नामक कल्पवृक्ष अद्भुत प्रकाश या रोशनी देते हैं चित्राङ्ग नाम के कल्पवृक्ष फूलमालाएँ देते हैं, चित्ररत्न नाम के कल्पवृक्ष भोजन देते हैं, मण्यत्रङ्ग नामक कल्पवृक्ष गहने और जेवर देते हैं, गेहाकार कल्पवृक्ष गेह या धान देते हैं पर अनङ्ग नामके कल्पवृक्ष दिव्य यज्ञ देते हैं। ये कल्पवृक्ष नियत और अनियत दोनों प्रकारके पदार्थ देते हैं। आर कल्पवृक्ष भा सत्र तरह के मन चाहे पदार्थ देते हैं। वहाँ पर सत्र तरह के मन चाहे पदार्थ देने वाले कल्पवृक्षों की भरमार होने से, धत-सेठ का जीव, युगुलिया-रूप में स्वर्ग के समान त्रिपय सुखों को भोगने लगा।

तीसरा और चौथा भव

देवलोक में जन्म ।

युगलिया जन्म की उम्र पूरा करके, धन सेठ का जीव पूरा जन्म के क्षण के फल स्वरूप, देवलोकमें देवता हुआ । वहाँ से घब कर, वह पश्चिम महाप्रदेह स्थित गन्धिलामती त्रिजग में, वैनाद्य परतके ऊपर गांधार देशके गन्धसमृद्धि नामक नगरमें, विद्याधर-शिरोमणि शतवत नाम के राजा की चन्द्रकान्ता नाम की भाव्या की बोज से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । शक्तिमान् होने के कारण, उस का नाम महाप्रद रखा गया । रक्षकों द्वारा रक्षित और लालित-पालित कुमार महाप्रद प्रम प्रम से, वृष की तरह घड़ने लगा । चन्द्रमा की तरह, अनुग्रम से सब कलाओं से पूजा होकर, कुमार महाप्रद लोगों के नेत्रों को उत्सव रूप ही गया । उचित समय आने पर, अवसर को समझने वाले माता पिता, मूर्तिमयी लक्ष्मी के समान यिनयवती बन्धा के साथ, उस का विवाह कर दिया । यह कामदेव के तीक्ष्ण शस्त्र रूप, कामितियों के कर्मण रूप और रतिदे लीलायनके समार यौवनको प्राप्त हुआ । उसके देर अनुग्रम

से बछुप की तरह ऊँचे और समान तलुपवाले थे। उसके शरीर का मध्य भाग सिंहके मध्य भागको तिरस्त्रुत करने वालोंमें अगुआ था। उसकी छाती पर्यंतकी शिलाके समान थी। उसके ऊँचे-ऊँचे कंधे घेलेके बन्धोंकी तरह शोभायमान होने लगे। उसकी भुजाए शेषनागके फणोंसी शोभित होने लगीं। उसका ललाट पूणिमा के आधे उगे हुए चन्द्रमा की लीला को ग्रहण करने लगा और उसकी म्धिर आरुति—मणियों के समान दन्तध्रेणा नखा और स्वर्ण तुल्य कान्तियुक्त शरीर से—मेरुपर्यंत की समस्त लक्ष्मी की तुलना करने लगी।

राजा शतबलके उच्च विचार ।

कुमार का अभिषेक ।

एक दिन सुसुद्धिमान पराक्रमी और तत्पक्ष विधाधर पति राजा शतबल, एकान्त स्थलमें विचार करने लगा—‘अहो! यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है; इसे ऊपर से नये नये गहनों और कपड़ों से कत्रतक गोपन रख सकते हैं? अनेक प्रकार से सत्कार करते रहने पर भी यदि एक बार सत्कार नहीं किया जाता, तो, धल पुरुष की तरह यह देह तत्काल विचार को प्राप्त ही जाती है। बाहर पडे हुए विष्टा, मूत्र और कफ, घोर पदार्थों से लोग घृणा करते हैं, किन्तु शरीर के भीतर ये ही सब पदार्थ भरे पडे हैं पर लोग उनमे घृणा नहीं करते। जीर्ण हुए धृशके कोटर में, जिम तरह सर्प बिच्छू घोर क्रूर प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी

तरह इस शरीर में, पीडा करने वाले अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। शरद् ऋतु के मेघ की तरह यह काया, स्वभाव से ही, नाशमान् है। यौवन भी देखते-देखते, रिजली की तरह, नाश हो जाने वाला है। आयुष्य पताका की तरह चञ्चल है। सम्पत्ति तरंगों की तरह तरल है। भोग भुजङ्ग के फण की तरह विषम हैं। संगम स्वप्न की तरह मिथ्या है। शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा, काम क्रोधादिक तापों से तपकर, पुटपाक की तरह, रात दिन सीजता रहता है। अहो! आश्चर्य की बात है कि, इन दुःपदायी विषयों में सुख मानने वाले प्राणियों को, नरक के अपवित्र कीड़े की तरह, जरा भी निरक्ति नहीं होती। अध्या आदमी जिस तरह अपने सामने के कृप को नहीं देखता उसी तरह दुरन्त विषयों के पत्रों में फसा हुआ मनुष्य अपने सामने खड़ी हुई मृत्यु को नहीं देखता। जरा सी देरके लिए, विष के समान भीड़े लगने वाले विषयों से, आत्मा मूर्च्छित हो जाता है, उसके होश हवास ठिकाने नहीं रहते इसीसे अपनी भलाई या हितका कुछ भी विचार नहीं कर सकता। चारों पुरुषार्थों के धरावर होने पर भी, आत्मा पापरूप 'अर्थ और काम' में ही प्रवृत्त होता है; यानी धर्म और मोक्ष का खयाल भुलाकर, केवल धन और स्त्री का ही ध्यान रखता है—धर्म और मोक्ष की प्राप्ति में प्रवृत्त नहीं होता। प्राणियों को, इस अपार संसार रुपी समुद्र में, अमूल्य रत्न के समान, मनुष्यमव मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। कदाचित् मनुष्य भय प्राप्त हो भी जाय, तोभी उसमें भगवान् अरहन्तदेव और सुसाधु गुरु तो

पुण्य-योग से ही मिलन है। जो अपने मनुष्यभय का फल ग्रहण नहीं करता, वह यस्तीजाले शहर में चोरो से लूटे हुए वं समान है। इसघाम्तें कथञ्चधारी महाबल कुमार को राज्य भार सौंप कर—उर्गे गद्दी पर बिठाकर, मैं अपनी इच्छा पूरी करूँ।' मन ही मन ऐसे विचार करके, राजा शतघल न अपने पुत्र—कुमार महाबल—को अपने निबट्ट बुलवाया और सब विनीत नम्र, सुशील राजकुमार को राज्य भार ग्रहण करने—राजकी घागडोर अपने हाथों में लेने का आदेश किया। महात्मा पुरय गुरुजनों की आज्ञा भंग करने में बहुत डरते हैं इस काम में वे पूरे कायर होते हैं, अन राजकुमार ने, पिता की आज्ञा से, राजबाज हाथ में लेना भीर घगना मंजूर कर लिया। राजा शतघल ने, कुमार की सिंहासनारूढ़ करके, उसका अभियेक और तिलक-मंगल अपने ही हाथों से किया। मुचबुन्द के पुण्यां की सी कान्तिवाले चन्दन वं तिलक से, जो उसके ललाट पर लगाया गया था, नवीन राजा पेसा सुन्दर मालूम होता था, जैसा कि चन्द्रमा के उदय होनेसे उदयाचल मालूम होता है। इस के पंखों के समान, पिता के छत्र के तिरपर फिरने से यह पेसा शोभने लगा जैसा कि शरद्व ऋतु के बादलों से गिरिराज शोभता है। निर्मल वगुलों की जोड़ी से मेघ जैसा शोभना है, दो सुन्दर चलायमान चँवरों से यह पेसा ही शोभने लगा। चन्द्रोदय के समय, समुद्र जिस तरह गम्भीर गरजता करने लगता है, उसके अभियेक के समय, दशों

करने लगी। यह शतबल राजा का ही रूपान्तर है उसका ही दूसरा रूप है, उसी की आत्मा की छाया है—ऐसा समझ कर सामन्त और मंत्री—अमीर उमराय और वजीर लोग उसकी इज्जत उसकी प्रतिष्ठा और उसका आदर सत्कार एवं मान करने लगे।

शतबलका दर्शनग्रहण।

स्वर्गारोहण।

इस तरह पुत्र को राजपद पर बैठाकर, शतबल राजा ने, आचार्य के चरणों के समीप जाकर, शमसाध्याज्य—चारित्र्य ग्रहण किया। उसने असार विषयों को त्यागकर, साररूप रतत्रय—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य को धारण किया; तथापि उसकी ममचित्तता अग्रण्ड रही। उस जितेन्द्रिय पुरुष ने कपार्यों को इस तरह जड़ से नष्ट कर दिया, जिस तरह नदी अपने किनारे के वृक्षों को समूल उखाड़ फेंकती है। यह महात्मा मनको आत्मस्वरूप में लीनकर, वाणी को नियम में रख, काया से चेष्टा करता हुआ, दुःमह परिपक्वों को सहन करने लगा। मैत्री करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य,—इन चार भावनाओं से जिस की ध्यान सन्नति वृद्धि को प्राप्त हो गई है—ऐसा शतबल राजपि, मुक्ति में ही हो इम तरह, धमन्द आनन्द में रहने लगा। ध्यान और तप द्वारा, अपने आयुष्य को लीला में ही शेष करके, यह महात्मा देवताओं के स्थान को प्राप्त हुआ, यानी देवलोक में गया।

महावल की राज्यस्थिति ।

कुमार की विषया सक्ति ।

महावल कुमार भी, अपने यत्नान विद्याधरों के साहाय्य से, सुन्दर के समान अक्षरण्ड शासन से, पृथ्वी का राज्य करने लगा । जिस तरह हंस कमलिनी के खण्डों में प्रीडा करता है, उसी तरह वह, रमणियों से घिरा हुआ, सुन्दर घागीचों की पत्तियों में सुख से प्रीडा करने लगा । उसने नगर में हमेशा होनेवाले सगीत की प्रतिबन्धि से वैताल्य परत की गुफायें, मानो सगीत का अनुवाद करती हों इस तरह, प्रतिबन्धित होनेवा गूँजने लगीं । अगल अगल में स्त्रियों से घिरा हुआ, वह मूर्च्छिमान शृङ्गार रसके जैसा दीखने लगा । स्वच्छन्दता से विषय प्रीडा में आसक्त हुए महावल राजा के लिए, विपुत्रत के समान रात और दिन समान होने लगे ।

राजसभा ।

एक दिन दूसरे मणिस्तम्भ हों ऐसे अनेक मंत्री और सामन्तों से अर्चन, सभा में कुमार बैठा हुआ था और उसकी नमस्कार करके सार समासद भी अपने अपने योग्य स्थानों पर बैठे हुए थे । वे राजकुमार के विषय में, एकाग्र नेत्रों से, मानो योग की लीला धारण करते हों, ऐसे दिपाई देते थे । स्वयं बुद्धि, मन्त्रिमति, शनमति और महामति—ये चार मंत्री भी आकर वहाँ बैठे हुए थे । उनमें से स्वामी की मार्गमें अमृत मिथु नुत्त, बुद्धि-

रूपी रत्नमें रोहणाचल पत्रत से समान और सम्यग्दृष्टि स्वयं बुद्धमन्त्री, उस समय इस प्रकार विचार करने लगा —

स्वयंबुद्धमन्त्री की स्वामिभक्ति ।

“अहो ! हमारे देखते देखते विषयासक्त हमारे स्वामी का, दुष्ट अभ्यों की तरह इन्द्रियों द्वारा हरण हो रहा है अर्थात् दुष्ट धोढे जिस तरह अपने रथी को बुराहों में ले जाकर मष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं उसी तरह दुष्ट इन्द्रियों हमारे विषयों में कँसे हुए स्वामी का सत्यानाश कर रही हैं ! हम सब लोग देख रहे हैं, पर कुछ करते धरते नहीं ; क्या यह शर्म की बात नहीं है ? इसकी उपेक्षा करने वाले हम लोगों को धिक्कार है ! विषय वितोद में लगे हुए हमारे स्वामी का जन्म व्यर्थ जा रहा है,—इस बात को जान कर, मेरा मन उसी तरह तड़फती और छटपटाती है; जिस तरह कि अल्प जलमें मछली तड़फती और छटपटाती है । अगर हमारे जैसे मंत्रियों से भी कुमार उच्च पदको प्राप्त न हो, बुराह को त्यागकर बुराह पर न आये, विषयों को विषयत् न ल्यागे, तो हम में और मसखरों में क्या तफ़ावत होगा ? इसलिए स्वामी से अनुनय जिनय करके उन्हें हिनमान पर लाना चाहिये । भद्रता-पूर्वक विषय भोगों की बुराइयाँ समझा बुझाकर, उन्हें बुराह से हटाकर बुराह पर लाना चाहिये । क्योंकि राजा लोन, सारणी की तरह जिनपर प्रधान या मंत्रीगण ले जाते हैं, उधरही जाते हैं । सम्भव है, स्वामी के व्यसनों से जीवन निर्वाह करने वाले, स्वामी

को विषय भोगा में लगाकर जिन्दगी बसर करने और गुलज उड़ान वाले विरोध करें, हमारे अच्छे काम में विघ्न बाधा उपस्थित करें लेकिन हमको तो स्वामी के हितकी बात कहना ही चाहिये। क्या हिन्दों के डर से कोई खेत में अनाज घोना बन्द कर देता है? स्वामी के साथ शुभचिन्तक सेवक को विराधिया के भय और हजारों बाधों की सम्भावना होने पर भी अपने पवित्र कर्तव्य का पत्र के अन्त करने में अनाकानी न करनी चाहिये। स्वयंभुव मंत्री ने, जो सारे बुद्धिमानों में अग्रणी था अगुआ था इस प्रकार विचार कर और अज्ञानियद्वारा बधात् हाथ जोड़ कर राना में कहा—

स्वयंभुव मंत्री का सदुपदेश ।

“हे राजन्! यह रुसार समुद्र के समान है। नदियों के जल से जिस तरह समुद्र की वृत्ति नहीं होती, समुद्र के जल से जिस तरह थडवानल की वृत्ति नहीं होती, प्राणियों से जिस तरह यम राज की वृत्ति नहीं होती। काष्ठ समुद्र से जिस तरह अग्नि की वृत्ति नहीं होती, उनी तरह, इस जगत् में विषय सुखों से किसी दशामें भी आत्मा की वृत्ति नहीं होती। प्राणी ज्यों ज्यों विषयों को भोगता है, त्यों त्यों उसकी उनके भोगने की इच्छा और भी बलवती होती है। नदी किनारे की छाया दुर्जन, विषय और सपादिक विषय प्राणी, अत्यन्त सेवन करनेसे, विपत्ति के कारण ही होते हैं। सारांश यह कि ये जितने ही अधिक सेवन

किये जाते हैं, उतने ही अधिक दुःख और आपदाओं के देनेवाले होते हैं। इनका परिणाम भला नहीं। ये सदा दुःख के मूल हैं। कामदेव, सेवन करने से, तत्काल सुख के देनेवाला जान पड़ता है, परन्तु परिणाम में वह विरस है। गुजाने से जिस तरह दाद बढ़ता है, सेवन करनेसे उसी तरह कामदेव भी बढ़ता है। दाद में एक प्रकार की छुजली चलाकरती है उसमें मनुष्य को अपूर्व आनन्द आता है, उस आनन्द की रात त्रिषण्डक बता नहीं सकते। ज्यों ज्यों गुजाने हैं, गुजाते रहने की इच्छा होती है, छुजाने से तृप्ति नहीं होती, पर परिणाम उसका घुरा होता है, दाद बढ़ जाता है जिससे नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। दाद की सी ही हालत कामदेव की है। स्त्री सेवन से तत्काल पक्ष प्रकार का अपूर्व आनन्द आता है, उम आनन्द पर पुन्य मुग्ध हो जाता है। निरन्तर स्त्री सेवन करने से मनकी तृप्ति नहीं होती। वह अधिकाधिक स्त्री-सेवन चाहता है, परन्तु परिणाम इसका भी दाद की तरह बराब ही होता है। मनुष्य का धन्य और दुःखों से पीछा नहीं छूटता, क्योंकि कामदेव नरक का दूत, व्यसनों का समुद्र विपत्ति रुपी लता का अङ्कुर और पाप ब्रह्म का फयारा है। कामदेव के वश में हुआ पुरुष, मय के वश में हुए की तरह, सवाचार रुपी मार्ग से झट होकर, संसार रुपी पट्टे में गिरता है। जहाँ कामदेव की मूर्ती बोलती है, जहाँ कामदेव का आधिपत्य रहता है वहाँ से सदा चार शीघ्र हा नीचे ग्यारह होता है। कामदेव पुरुष के सर्व्यनाश में कोई धात उठा नहीं रखता। जिस तरह गृहस्थ के घर में चूहा

घुसकर अनेक स्थानों को छाने डालना है, उसी तरह कामदेव मनुष्य शरीर में घुस कर धर्म धर्म और मोक्ष को लूट रहा है। स्त्रियाँ देखने, छूने और भोगने से, धिपट्टी की तरह, अत्यन्त व्यामोह पाडा उत्पन्न करती हैं। ये कामरूपी लुम्बक—पारधि या शिकारी की जाल हैं; इसलिये हिरण के समान पुरुषों के लिए अनर्थकारिणी होती हैं। जो ममत्तरे मित्र हैं वे तो केवल पाने पाने और म्ना तिलास के मित्र हैं। इससे वे अपने स्वामी के परलोक सम्बन्धो हित का विचार नहीं करते। स्वार्थियों को स्वामी के हित से क्या मतलब ? स्वामी के हित का विचार करने से उनके अपने स्वार्थ में बाधा पड़ती है। उनकी मौन में फफ आता है। ये स्वार्थ-तत्पर नीच लम्पट और तुशामदो हाकर अपने स्वामी को स्त्रियों की बातों नाच गान और दिहगा से मोहित करते हैं। वेर के फाड के सम्बन्ध से जिम् तरह केले का वृक्ष कमी सुष्वा नहीं होता उसी तरह कुसग से कुलीन पुरुषों का कमी भी अभ्युदय नहीं होता—अध-पतन ही होना है। इसलिये हे कुलमान स्वामी। प्रमत्त हजिये। आप स्वयं विश्व हैं; इसलिये मोह का त्यागिये और व्यसनों से विरक्त होकर धर्म में मन लगाइये। छाया हान वृक्ष, जल रहित सरोवर, सुगन्ध विहीन पुष्प, दन्त विना हस्ती, लाघण्य-रहित रूप मंत्रा विना राज्य, देव मूर्ति विना मन्दिर चन्द्र विना यामिनी, चारित्र्य विना साधु, शस्त्र-रहित सैन्य और नेत्र रहित मुख जिस तरह अच्छा नहीं लगता, उसी तरह धर्म

गदित पुरुष भी अच्छा नहीं जाता—पुरा मातृम होता है।
 चत्रचर्तों भी यदि अधर्मी होता है, तो उसको पर भय में
 पेना जन्म मिलता है जिस में पराय अत्र भी राज्य-लक्ष्मी के
 समान समझा जाता है। यदि मनुष्य बड़े कुल में पैदा होकर भी
 धर्मोपार्जन नहीं करता है; तो दूसरे भय में, कुत्ते की तरह
 दूसरे के जूटे भोजन को खाते वाला होता है। ब्राह्मण भी यदि
 धर्म हीन होता है, तो वह नित्य पाप का ध्यान करता है और
 बिल्ली के समान दुष्ट चेष्टा वाला होकर म्लेच्छ योनि में जन्म लेता
 है। धर्म हीन भव्य प्राणी भी बिल्ली सर्प, सिंह, बाज और गिद्ध
 प्रभृति की नीच योनियों में अनेकानेक जन्मों तक उत्पन्न होता
 और यहाँ से नरक में जाता है और यहाँ, मानो घेर से कुपित हो
 रहे हों ऐसे परमाधामिभू देवताओं से अनेक प्रकार की कदर्यना
 पाता है। सीसे का गोला जिस तरह अग्नि में पिघलता है, उसी
 तरह अनेक व्यसनों की आवेग रूपी अग्नि के भीतर रहने वाले
 अधर्मों प्राणियों के शरीर क्षीण होते रहते हैं, अतः ऐसे प्राणियों
 को धिक्कार है! परम बन्धु की तरह, धर्म से सुख की प्राप्ति होती है।
 नाथ की तरह, धर्म से आपत्ति रूपी नदियाँ पार की जा सकती
 हैं। जो धर्मापार्जन में तत्पर रहते हैं, वे पुरुषों में शिरोमणि होते हैं।
 लताएँ जिस तरह पृष्ठों का आश्रय लेती हैं संपत्तियाँ उसी तरह
 धर्मात्माओं का आश्रय ग्रहण करती हैं; यानी लक्ष्मी धर्मात्माओं
 के पाम आती है। जिस तरह जल से अग्नि नष्ट हो जाती है,
 उसी तरह धर्म से आधि, ^{उपाधि} जोकि पाडा की

हेतु हैं तत्काल नष्ट हो जाती हैं। परिपूर्ण पराक्रम से किया हुआ धर्म, दूसरे जन्म में, कल्याण समृद्धि देने के लिए जामिन रूप होता है। हे स्वामिन् ! यद्बुत क्या कहें ? नसैनी से जिस तरह मनुष्य महल के सर्वोच्च भाग पर घड़ जाता है, उसी तरह प्राणी बलवान धर्म से लोकाग्र—मोक्ष—को प्राप्त होता है। आप धर्म ही से विद्याधरों के स्वामी हुए हैं, इनलिये, उत्कृष्ट लाभ के लिये अर भी धर्म का ही आश्रय लें।

नास्तिक मत-निरूपण।

घाद विवाद।

स्वयंबुद्ध मन्त्री के उपरोक्त वार्ते कहने के घाद, अमावस्या, की रात्रि के समान मिथ्यात्वरूपी अन्धकार की घान रूप और निष समान विषम बुद्धिवाला अभिन्नमति नाम का मन्त्री बोला—
“अरे स्वयंबुद्ध तुम धन्य हो। तुम अपने स्वामी की अनीज हितकामना करते हो। डकार से जिस तरह आहार का अनुभव होता है, उसी तरह तुम्हारी प्राणी से तुम्हारे अभिप्राय का पता चलता है। सदा सरल और प्रसन्न रहने वाले स्वामी के सुख के लिये, तुम्हारे जैसे कुलीन मन्त्री ही ऐसी वार्ते कह सकते हैं दूसरा तो कोई कह नहीं सकता। किस कठोर स्वभाव के उपाध्याय ने तुम्हें पढ़ाया है जिन्हसे अस्तमय में उजू पात जैसे पचन तुमने स्वामी से कहे। संभव जब अपने भोग के लिए ही स्वामी की सेवा करते हैं; तब वे अपने स्वामी से—“आप भोग

न भोगों" ऐसा किन्तु तरह यह सकते हैं ? जो इन भय सम्यन्धी भोगों को त्याग कर, परलोकके लिये चेष्टा करते हैं, वे, दधेली में रखे हुए घाटने-साग्य लेण पदार्थों को छोड़कर, कोहरी घाटोपाले का सा काम करते हैं । धर्म से परलोक में फल की प्राप्ति होती है, ऐसी बात जो बहरी जाती है, यह अमङ्गल है, क्योंकि परलोक की जनों का अमाय है, इसलिये परलोक भी नहीं है । जिन्म तरह गुड, विष्ट और जल योग पदार्थों से मद् शक्ति उत्पन्न होती है, उन्नी तरह पृथ्वी, जल, तेज और वायु से चेतना शक्ति उत्पन्न होती है । शरीर से जुदा बारी शरीरधारी प्राणी नहीं है जो इस शरीर को त्याग कर परलोक में जाय, इसलिये विषय सुख को घेष्टके भोगना चाहिये विषयों के भोगने में निःशङ्क रहना चाहिये और अपने आत्मा को उगना नहीं चाहिये, क्योंकि स्वार्थे न्न श करना मूर्खता है । धर्म और अधर्म—पुण्य और पाप की तो शङ्का ही नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सुरादिक में—वे विघ्न बाधा उपस्थित करी घाते हैं और फिर, गधे के सींगों की तरह वे कोई चीज ही भी नहीं । ज्ञान, चित्पन पुण्य और यत्नाभूषण प्रभृति से जिन्म पत्थर को पूजते हैं, उसने क्या पुण्य किया है ? और जिस पत्थर पर बैठकर लोग मल मूत्र त्याग करते हैं, उसने क्या पाप किया है ? अगर प्राणी धर्म से उत्पन्न होते और मरते हैं, तो पानी के बुन्नुले किस धर्म से उत्पन्न और नष्ट होते हैं ? जयतय चेतन अपनी इच्छा से चेष्टा करता है, तब तक यह चेतन यहलाता है और जय यह चेतन नष्ट हो जाता है, तब उसका

पुनर्जन्म नहीं होता। जा प्राणा मरते हैं, वे ही फिर जन्म लेते हैं, ऐसा कहना सच्चा सुनिश्चय है—रहने भाग की बात है। इस बात में कुछ भी तथ्य नहीं है। मित्र के फूल जैसी फोमल शय्या पर, कालाभयवती सुन्दरी रमणियों के साथ, निशङ्क रमण करते हुए और अमृत-समान भोज्य और पेय पदार्थों को पधार्य आस्थापूर्वक करते हुए अपने स्वामी को जो कोई गोकना है—इन मंत्र भोगों के भोगने का निदेश करना है, उसे स्वामी का धैर्य समझना चाहिए। हे स्वामिन् ! मानो आप सौम्य—सुमध्य ही से पैदा हुए हों, इस तरह आप कपूर, चन्द्रा, अमर, कस्तूरी और चन्द्रादि से रात दिन व्याप्त रहिये—दिवारात उन्हीं का आनन्द उपभोग कीजिये। हे राजन् ! नेत्ररक्त करने या आँसुओं को सुख देने के लिए उद्यान, घाहन, किला और विश्रशाया प्रमृति जो जो पदार्थ सुन्दर और मनोमुग्धकर हों, उनको शरस्वार देखिये। हे स्वामिन् ! घीणा, घेणु, मृदग, आदि वाता के साथ गाये जानेवाले गीतों का मधुर शब्द बरने करते हैं, स्वयं ही तरह, टालते रहिये। जसक जायन रहे, नर नरु विषय-सुख भोगने हुए जाना चाहिए और धर्म कार्य के लिए छटापाना न चाहिये, क्योंकि धर्म अर्ध या कुछ भी फल नहीं है; अथवा धर्म अर्ध कोई चीज नहीं, अतः इनका फल भी नहीं। जितने दिन तिलगी रहे, उतने दिन मीज करनी चाहिए। आनन्दमग्न रहकर जीवन यापन करना चाहिये।

हो सकता है ? ये सब बातें त्रिवार करने लायक हैं। रूप, रस, गंध और स्पर्श—ये चार गुण पृथिवी में हैं। रूप, स्पर्श और रस—ये तीन गुण जल में हैं। रूप और स्पर्श—ये दो गुण तेज या अग्नि में हैं और एक स्पर्श गुण वायु में है। इस तरह इन भूतों के मिश्र मिश्र स्वभाव सब को मातृम ही है। अगत् नृ यह नहे कि, जिस तरह जलसे त्रिसदृश मोती पैदा होते देखा जाता है, उसी तरह अचेतन भूतों से चेतन की भी उत्पत्ति होती है, तो तैरा यह कहना भी उचित और ठीक नहीं है। क्योंकि माती प्रभृति में भी जल दीप्तता है तथा मोती और जल दोनों पौद्रलिक हैं; अतः उनमें त्रिसदृशता नहीं है। पित्त, गुड और जल आदि से होनेवाली मद शक्ति का तू द्रष्टान्त देता है परन्तु यह मदशक्ति भी तो अचेतन है। इसलिए चेतन में यह द्रष्टान्त घट नहीं सकता। देह और आत्मा का ऐक्य कदापि कहा नहीं जा सकता; क्योंकि मरे हुए शरीर में चेतन—आत्मा उपलब्ध नहीं होता। एक पत्थर पूज्य है और दूसरे परमल सूत्र आदिका लेपन होना है,—यह द्रष्टान्त भी असंग है क्योंकि पत्थर अचेतन है। उसे सुख दुःख का अनुभव ही कैसे हो सकता है ? इसलिए, इस देहसे भिन्न परलोक में जानेवाला आत्मा है और धर्म अधर्म भी हैं; क्योंकि उनका कारण-रूप परलोक सिद्ध होता है। आग की गरमी से जिस तरह मक्षपन पिघल जाता है; उसी तरह स्त्रियों के आलिगन से मनुष्यों का विवेक सब तरह से नष्ट हो जाता है। अनर्गल और घट्टन रसवाले आहार

पुत्रगणों को जानेनाग मनुष्य उमरत फुर्क तरह उल्लि
 कर्म को जानता ही नहा। चन्दन, यग, कम्पुग और कूर
 प्रभृति की सुगन्ध से, मगान्की तरह, कान्पु मनुष्यों पर
 आक्रमण करता है। काँटों की बाड में टाँके हुए कण्टे के फुँडे
 से जिम तरह मनुष्य की गति म्ब्रजित हो जानी है उसी तरह
 स्त्री आदि के रूपमें संलग्न हुए नेत्रों में पुष्प म्ब्रजित हो जाग
 है। धूर्त मनुष्य की मिश्रता जिम तरह थार्डी नेत्र के लिए मुख-
 कारी होती है, उसी तरह बारम्बार मोहित करने योग मंगीत
 हमेशा क्याणकारी नहीं होता। इमलिए, हे म्यामिन !
 पाप के मिश्र, धर्म के विरोधी और नरक में आकर्षण करने के
 लिए पापरूप त्रियरों को दूर से ही त्याग दो, क्योंकि एक तो
 सेव्य होता है और दूसरा सेवक होता है, एक याचक होता है
 और दूसरा दाना होता है एक चाहन होता है और दूसरा उमरे
 उगार चढन वाला होता है, एक समय मोगनेवाग होता है और
 दूसरा समयदान देनेवाग होता है,—द्वैतान्क धर्मों से इस
 लोक में ही, धर्म अधम का बडा भारी फल नेत्रन में आता है।
 यदि धर्म अधम का फल प्राणी को न मोगना पडना, तो इस
 जगत् में हम सब को समान देखते। किस्की का मालिक स्त्री
 किसी की नौकर, एक को मिथारा और दूसरे का दात एक
 को सगरी और दूसरे को सगार तथा एक को समय म्ब्रजित
 वाला और दूसरे को समयदान देनेवाला न म्ब्रजत। सबको बह
 जो जैसा भला या पुण कर्म काता है, उसे ५५

है और उस पत्र के भोगने के लिए, कर्म करनेवाले को, मरकर, फिर जन्म लेना पड़ता है। इस जगत् में, ये सब आँखों से देखने पर भी, जो मनुष्य परतोक और धर्म अधर्म को नहीं मानते, उन बुद्धिमानों का भी भला हो। अब और अधिक क्या कहें ? हे राजन् ! आपको असत् घाणो के समान दुःख देनेवाले अधर्म का त्याग करना चाहिये और सत् घाणो के समान सुख के अद्वितीय कारण रूप धर्म को ग्रहण करना चाहिये।”

क्षणिक मत का नैराश्य ।

ये बातें सुनकर शतमनि नामक भत्री बोला—‘प्रतिक्षण भंगुर पदार्थ त्रिपय के ज्ञान के सिवाय दूसरी ऐसी कोई आत्मा नहीं है और वस्तुओं में जो स्थिरता की बुद्धि है, उसका मूल कारण वासना है, इसलिये पहले और दूसरे क्षणों का वास्तविक एकत्व वास्तविक है—क्षणों का एकत्व वास्तविक नहीं।’

स्वयंभुव ने कहा—‘कोई भी वस्तु अणु—परमपर रहित नहीं है। जिस तरह जल और घास घनैर की गायों में दूध के लिए कृयना की जाती है, उसी तरह आकाश कुमुम समान और पटुप के रोम के समान, इस लोक में, कोई भी पदार्थ अवयव रहित नहीं है। इसलिये क्षणभंगुरता की बुद्धि व्यर्थ है। यदि वस्तु क्षणभंगुर है, तो सन्तान परम्परा भी क्षण भंगुर—क्षण में नाश होनेवाली—क्यों नहीं कहलाती ? अगर सन्तान की निरव्ययता को मानते हैं, तो समस्त पदार्थ क्षणिक—

क्षणस्थायी किस तरह हो सकते हैं ? यदि सत्र पदार्थों को अनित्य—स्वदा न रहने वाले—मानते हैं, तो सौंपी हुई धरोहर का चापस माँगना, पहली यात की याद करना और अभिमान करना,—ये सत्र किस तरह हो सकते हैं ? अगर जन्म होनेके पीछे क्षणभंग में ही नाश हो जाय, तो दूसरे क्षण में हुआ पुत्र पहले के माता पिता का पुत्र नहीं कहलायेगा और पुत्र के पहले क्षण में हुए माता पिता के माता पिता न कहलायेंगे। इसीग्ये वैसा कहना असंगत है। अगर विवाह के समय, पिछले क्षण में, दम्पति क्षणनाशयन्त हों, तो उस स्त्री का वह पति नहीं और उस पति की वह स्त्री नहीं ऐसा होय वह कहना अनुचित है। एक क्षण में जो अशुभ घम करे, वही दूसरे क्षण में उसका फल न भोगे और उसको दूसरा ही भोगे, ताँ इससे किये हुए का नाश और न किये हुए का आगम या प्राप्ति—ये दो बड़े शोच होते हैं।”

इसके बाद महामति मन्त्री बोला—‘वह सत्र माया है, वास्तव में कुछ भी नहीं। ये सत्र पदार्थ जाँ दिखाएँ देते हैं, स्वप्न और मृगतृष्णा के समान मिथ्या हैं। गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, धर्म-अधर्म और अपना-पराया—ये सत्र व्यवहार से देखने में आते हैं; लेकिन वास्तव में कुछ भी नहीं है। जो इस लोक

उम मास को गिद्ध पक्षी लेकर उड़ गया—उभयघ्नष्ट होकर अपने आत्मा को ठगते हैं या पाण्डिड्या की छोटी शिक्षा को सुनकर और नरक से डरकर, मोहाधीन प्राणी मन प्रभृति से अपने शरीर को दण्ड देते हैं। और लाजक पक्षी पृथ्वी पर गिरने की शंका से जिस तरह एक पाँच से नाजता है, उसी तरह मनुष्य नरकपात की शंका से तप करता है।”

स्वयं बुद्ध बोला—‘अगर वस्तु सत्य न हो, तो इससे अपने कामके करनेवाला अपने कामका कर्त्ता किस तरह हो सफता है? यदि माया है, तो सुपनेमें देखा हुआ हाथी कामक्यों नहीं करता? अगर तुम पत्थरों के कार्यकारण-भाव को सच नहीं मानते, तो गिरने वाले पत्थर से क्यों डरते हो? अगर यही बात है, तो तुम और मैं—वाच्य और वाचक कुछ भी नहीं हैं। इस दशा में, व्यवहार को करने वाली इष्ट की प्रतिपत्ति भी किस तरह हो सफती है? हे देव! इन वितण्डवाद में परिद्धत, सुपरिणाम से परारमुक्त, और विषयाभिलाषी लोगों से आप ठगे गये हैं; इसलिये निवेक का अलम्बन करके विषयों को त्यागिये एव इस लोक और परलोक के सुख के लिये धर्म का आश्रय लीजिये।

इस तरह मंत्रियों के अलग अलग भाषण सुनकर, प्रसाद से सुन्दर मुँहवाले राजा ने कहा—“हे महाबुद्धि स्वयं बुद्ध! तुमने बहुत अच्छी बातें कहीं। तुमने धर्म ग्रहण करने की सलाह दी है, यह युक्ति-युक्त और उचित है। हम भी धर्म-

हैं ही नहीं हैं, परन्तु युद्ध में विमलवद अस्त्र अस्त्र में अस्त्र अस्त्र
 ग्रहण किया जाता है उमी मछ अस्त्र अस्त्र में अस्त्र अस्त्र
 करना उचित है। युद्ध में ही वायु हूँ निम्न की तरह ही
 की प्रतिपत्ति किये बिना, कौन उमरी अस्त्र का प्रयोग है ?
 तुमने जो धर्म का उपदेश दिया है, यह अयोग्य अस्त्र पर किया
 है, अर्थात् वे मॉरे दिया है : क्योंकि योगा के यज्ञ समय पर
 का उच्चार अस्त्र नहीं लगता। धर्म का फल परगोक है, इस
 में सन्देह है। इसलिये तुम इस लोक के सुधाभ्यास का
 निषेध क्यों करते हो ? अर्थात् इस दुनिया के मने लूटने से मुक्त
 क्यों रोकते हो ?

राजा की उपरोक्त बातें सुनकर स्वयंभू द्वार जाह कर
 बोला—“आवश्यक धर्म के फल में कभी मांश का करना उचित
 नहीं, आपको याद होगा कि, बाल्यागस्था में अस्त्र अस्त्र अस्त्र
 धन में गये थे। यहाँ एक सुन्दर कानिषा अस्त्र को देखा था।
 उस समय देव ने प्रसन्न होकर आप से कहा—मैं कानिषा
 नामक तुम्हारा पितामह हूँ। कूर निरह अस्त्र अस्त्र अस्त्र
 से उद्धिन्न होकर, मैंने तिनके की तस्त्र अस्त्र अस्त्र अस्त्र
 प्रय को ग्रहण किया। अन्तगस्था में ही, अस्त्र अस्त्र अस्त्र
 कलश रूप त्याग भाष को मैंने ग्रहण किया। अस्त्र अस्त्र
 में लान्तकाधिपति देव हुआ हूँ। अस्त्र अस्त्र अस्त्र अस्त्र
 में प्रमादा होकर मत रहना। अस्त्र अस्त्र अस्त्र अस्त्र

गया। अतः हे महाराज! आप अपने पितामह की कही उन बातों को याद करके परलोक का अस्तित्व मानिये, क्योंकि यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण हो, यहाँ और प्रमाणों की कल्पना की क्या जरूरत ?

स्वयंबुद्ध का कहा हुआ पिछला इतिहास ।

राजा ने कहा—'तुमने मुझे पितामह की कही हुई बातों की याद दिलाई,— यह बहुत अच्छा काम किया। अरु मैं धर्म-वर्त्म किसके कारण हूँ, उस परलोक को दिलसे मानता हूँ। राजा की आज्ञास्मिता पूर्ण करने सुनकर, ढोक मौका देकर, मिथ्यादृष्टियों की बाणी रूप धूट में भ्रम की तरह, स्वयंबुद्ध मंत्री ने इस तरह कहा आरम्भ किया—'हे महाराज! पहले मापके अंश में बुद्धचन्द्र नामका राजा हुआ था। उसने एक मसी नाम की एक स्त्री और हरिचन्द्र नामका एक पुत्र था। वह राजा कर्मकर्मों, परिश्रमपत्ता, धार्य्यार्थ में अग्रसर, यम राज के समान निर्दयी, दुर्गन्धारी और भयङ्कर था, सोभी उसने बहुत समय तक राज्य भोगा। क्योंकि पूर्वोपाजित पुण्य का फल अग्रतिम होता है। उस राजा को, अवसान काठ में, घातुप्रिपर्यय का रोग ही गया और वह निन्द्यार्थ रूप तक बे केशों का नमूना हो गया। इस रोग से, उसकी रूढ़ि भी गरी हुई शय्या काँटों की सजात हो गई। नरम गुदगुदा पत्रंग शूलों की तरह चुभने लगा। सरस भोजन नाम के रस

की तरह नीरस लगने लगा। चन्दन, अमर, बस्तूरी प्रभृति सुगन्धित पदार्थ दुर्गन्धित मालूम होने लगे। पुत्र और स्त्री शत्रु की तरह, दृष्टि में उद्वेगकारी हो गये। मधुर और सरस गान-गधे, ऊँट और स्यारों के भयङ्कर शब्दों की तरह-कानों को हेशकारी लगने लगा। जिसके पुण्यों का मिच्छेद होता है, जिसने सुकमा का छोटा भाजाता है, उसके लिये सभी विपरीत हो जाते हैं। कुसुमती और हरिश्चन्द्र, परिणाम में दुःखकारी, परक्षण भर के लिए सुखकारी विषयों का उपचार करते हुए गुण रीति से जागने लगे। अङ्गारों से चुम्बन किये गये की तरह उसने प्रत्येक अङ्ग में दाह पैदा हो गया। दाह के मारे उसका शरीर जलने लगा। शेष में, यह दाह से हाय हाय करता हुआ शीतपगयण होकर, इन्द्रजालिया से कूँच कर गया। मृत्यु की अग्निस्स्मार आदि क्रिया करके, सदाचार कपो मार्ग का पथिक बनकर, उसका पुत्र हरिश्चन्द्र विप्रित्त राज्यशासन और प्रजापालन करने लगा। अपने पिता की वप के पण्डित रूप हुई मृत्यु को देखकर, यह ब्रह्मा में सूर्य की तरह, सब पुरुषों में मुख्य धर्म की स्तुति करने लगा। एक दिन उसने अपने सुबुद्धि नामक भ्रातृक—चालसखा को यह आज्ञा दी कि, तुम नित्य धर्मवेत्ताओं से धर्मोपदेश सुनकर मुझे सुनाया करो। सुबुद्धि भी अत्यन्त तत्पर होकर राजाज्ञा को पालन करने लगा। नित्य धर्म वधा सुनकर राजा को सुनाने लगा। अनुकूल अधिकारी की आज्ञा सत्पुरुषों के उत्साह वर्द्धन में सहायक होता

है, अर्थात् अनुकूल अग्निभागी की आज्ञा से भले आदिमियों को उत्साह होता है। रोग से डरा हुआ मनुष्य जिस तरह अग्निधि पर श्रद्धा रखता है पाप से डरा हुआ हरिश्चन्द्र उसी तरह सुबुद्धि के कहे हुए धर्म पर श्रद्धा रखता था।

एक दिन नगर के बाहर के बगीचे में रहनेवाले शीलधर नामक महामुनि को देखलज्जान हुआ; इससे देवता अर्चन करने के लिए वहाँ जा रहे थे। यह वृत्तान्त सुबुद्धि ने हरिश्चन्द्र से कहा। यह भ्रमाचार पाते ही वह शुद्ध हृदय राजा, घोड़े पर चढ़कर-मुनीन्द्र के पास पहुँचा और उन्हें नमस्कार करके वहाँ बैठ गया। महामुनि ने कृमति रूपी अन्धकार में अन्ध्रिका के समान धर्म-देशना उसे दी। श्रेयता के शेष होने पर, राजा ने हाथ जोड़ कर मुनिगज से पूछा—'महाराज ! मेरा पिता मरकर किस गति में गया है ?' त्रिकाश्रुती मुनि ने कहा—'राजन ! आप का पिता स्वानमा नरक में गया है। उसके जैसे धो और स्थान ही नहीं है। इस बात के सुनने ही राजा को घैराभय उत्पन्न हो

ॐ विषयों के भागन में रोगाका, कुल में दाया का, धन में राज का मौन रहन में दानता का बल में शत्रुघ्ना का, सौन्दर्य में सुभाष का गुणा में दुष्ट का और शरीर में मौत का भय है। संसार और संसार के सभी कामों में भय है। अथवा भय नहीं है तो एक मात्र वैराग्य में नहीं है, जिस वैराग्य में भय का नाम भी नहीं है और जिसमें सभी प्रायः शान्ति लबालब भरी है यदि आप को उमी वैराग्य विषय पर सर्वोत्तम ग्रन्थ दखना है, तो आप हरिदास षण्ड कल्पनी कलकत्ता से सचित्र वैराग्य शतक" मँगाकर

गया। मुनि को नमस्कार करके जीर यहाँ से उठकर वह तत्काल अपने स्थान पर गया। यहाँ पहुँचने पर उसने अपने पुत्र का राजगद्दी पर बिठा कर सुयुद्धि से कहा कि, मैं दीक्षा ग्रहण करूँगा। इसलिए मैं तब ही मेरे पुत्र का भी तुम निन्द्य धर्मोपदेश देने रहना। सुयुद्धि ने कहा—'महाराज' मैं भी आप के साथ वृत्त ग्रहण करूँगा और मेरी तरह मेरा पुत्र आप के पुत्र को धर्मोपदेश सुनायेगा। इसके बाद राजा और सुयुद्धि मन्त्रीने कमरूपी परत के भेदने से घस के समान घस ग्रहण किया और दार्घकाल तक उसका पालन करके मोक्ष लाभ किया।

हे राजन! तुम्हारे यश में दूसरा एक दण्डक नाम का राजा हुआ है। उस राजा का शासन प्रचण्ड था और वह शत्रुओं के लिए साक्षात् यमराज था। उसके मणिमाली नाम का एक प्रसिद्ध पुत्र था। यह अपने तेज से, सूर्य की तरह दशा दिशाओं को प्रकाशित करता था। दण्डक राजपुत्र मित्र, स्त्री ग्लान सुरण और धन में अत्यन्त परसा हुआ था। यह इन सबको अपने प्राणों से भी अधिक चाहता था। आयुष्य पूर्ण होने पर आर्त्तध्यान में ही लगा रहनेवाला यह राजा, मरकर, अपने ही भण्डार में दुर्धर

दक्षिण। मनुष्य मात्रक दुखने पाय्य प्रथम ह। उमरमं गत एव भावपूज्य
 २६ चित्र ह जिनक दुखने मात्रक अभिमानियो का मद्जर का तरह
 उतर जाता है, संसार स्वप्नवत प्रतीत होता है और शिवय शिवयन धुर
 सगमे सगत है। पृष्ठ संख्या ४८० सुनहरा अक्षरों से रचना सिद्ध-बन्धी
 पुस्तक का मूल्य ५) शक-स्य १२।

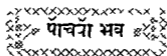
अजिगा हुआ। जो भण्डार में जाता उसे ही यह अग्नि के समान सर्वभक्षी और दुरात्मा भण्डार तिम्र जाता। एक दिन उस अज्ञात मणिमाली को भण्डार में घुमते देखा। पूर्वजन्म की बात याद रही से, उसने उसे "यह मेरा पुत्र है" इस तरह पहचान लिया। मूर्तिमान् स्नेह की तरह अजिगा की शान्त मूर्ति को देख कर, मणिमालीने अपनी मन में समझ लिया कि, यह मेरा कोई पूर्वजन्म का बच्चा है। फिर ज्ञानी मुनि से यह जान कर कि, यह मेरा भण्डार पिता है उसने उमे जौधर्म सुनाया। अज्ञातने भी अर्हन् धर्मको जानकर स्वयेगभाव धारण किया, शेषमें शुभध्यान परायण होकर वेद त्याग की और देवत्व प्राप्त किया। उस देव होने, पुत्र प्रेम के लिए, स्वर्ग से आकर, एक दिव्य मोतियों का हार मणिमाली को दिया, जो आज तक आप के हृदय पर मौजूद है। आप हरिखण्ड के वंश में पैदा हुए हैं और मैं सुसुद्धि के वंश में जन्मा हूँ। इसलिये, प्रेम से आये हुए इस प्रभाव से आप धर्म में मन लगाइये—धर्माचरण कीजिये। अध मने आपको, पिता अध सर, जो धर्म करने की सलाह ही है, उसका कारण भी सुनिये। आज नन्दनयन में मने दो चारण मुनि देखे। जगत् के प्रकाश को उत्पन्न करने वाले और महामोह रूपी अन्धकार को नाश करने वाले वे दोनों मुनि एकत्र चेरें मालूम करते थे, गोधा चन्द्र रूप ही मिले हों। अपूर्व ज्ञान से शोभायमान दोनों महात्मा धर्म देशना देने थे। उस समय मने उनसे आप की आयुष्यका प्रमाण पूछा। उन्होंने आपका आयुष्य एक मास का ही काफी बताया।

हे महामति ! यही कारण है कि मैं धाप से धमाचरण करने का जल्दी कर रहा हूँ ।

महाराज राजा ने कहा—'स्वयंभुव ! हे बुद्धिमान ! तू ही एक मात्र भैया बंधु है, जो मेरे हित के लिये—मेरी भगवत् के लिये तड़पा करता है । त्रिष्यों से गकर्षित और मोह निद्रा में निहित अथवा त्रिष्यों के पात्रों में फँसे हुए और मोह की नींद में सोये हुए मुझे जगाकर तुमने बहुत श्रमा किया । अब मुझे यह बताना कि, मैं किस तरह धर्मकी साधना करूँ । धायु धोड़ी रह गई है, इतने समयमें मुझे कितना धर्म साधन करना चाहिए । बाग लग जाने पर तन्हा-तूफानों किस किस तरह खोदा जाता है ?

स्वयंभुवने कहा—'महाराज ! आप वेद न करें और दृढ़ रहें । आप, परलोक में मित्र के समान यतिधर्म का आश्रय लें । एक दिनकी भी दीक्षा पालने वाला मनुष्य मोक्ष लाभ कर सकता है, तब स्वर्ग की तो बात ही क्या है ! फिर मदायल राजा ने उस की धात मंजूर कर के, आचार्य जिस तरह मन्दिरमें मूर्ति की स्थापना करते हैं उसी तरह पुत्र को अपनी पदवी पर स्थापन किया, यानी उसे राजाही साँपी । इस के बाद उसने हीन और अनाथ लोगों को पैसे अथवा दान दिया कि, उस नगर में कोई मँगला ही न रह गया । दूसरे इन्द्र की तरह उसने चैत्यों में त्रिचित्र प्रकार के घण्ट, माणिक, सुवर्ण और कूट घण्ट से पूजा की । बाद में, स्वजन और परिजनोंसे क्षमा माँड मुनीन्द्रके चरणों में जा, उसने उनसे मोहलक्ष्मीकी सन्धी रूपा दीक्षा ब्रह्माकारकी ।

सब साग्रय योगों की विरति के साथ साथ उस राजपिं ने चार प्रकार के आहारों का भी प्रत्याख्यान किया और समाधिरूप अमृत के भरने में निरन्तर तिमग्न होकर, कमलिनी की तरह जरा भी ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु यह महासत्य-शिरोमणि मानों पाने के पदार्थों को पीता और पीने के पदार्थों को पीता हो, इस तरह अक्षीण कान्तिवाला दीपने लगा, अर्थात् उसके भूखे-प्यासे रहने पर भी—कुछ भी न पाने पीने पर भी, उस की कान्ति क्षीण और मलीन न हुई। यादम दिनों तक अन्नशन पालन कर—भूखा प्यासा रह अन्त में पञ्च परमेष्टि नमस्कार को स्मरण करते हुए उसने अपना शरीर त्याग दिया।



यहाँ से सञ्चिन किये पुण्य बलसे, दिव्य घोड़े की तरह, यह तत्काल दुर्लभ ईशाकल्प यात्री अन्य देवलोक में पहुँचा। यहाँ श्रीप्रभ नामके विमान में, यह उसी तरह उत्पन्न हुआ जिस तरह मेघ के गर्भ में विद्युत्पुञ्ज उत्पन्न होता है। उसकी आकृति दिव्य थी। उसका शरीर सप्त धातुओं से रहित था। उसमें मिर्मिके फूल जैसी सुकुमारता थी और दिशाओं को आत्रान्त करने वाली कान्ति थी। उसकी देह यज्ञ के समान

थी। उममें प्रभूत उन्साह, सब तरह के पुण्य-लक्षण, इच्छा
 नुसार रूप धारण करने की क्षमता, अवधिज्ञान, सब तरह के
 विज्ञान में पारङ्गलता, अणिमा आदि भाठों सिद्धिया निर्दोषता
 और अचिन्त्य वैभव प्रभृति सब गुण और सुलक्षण थे। वह
 ललिताङ्ग जैसे नामको साथक करने वाला देव हुआ। दोनों
 पाँवा में रत्नमय बडे, कमर में कर्दनी हाथों में बंगन, भुजा
 ओर भुजवन्द, छाती पर हार, कानों में कुण्डल, मिर पर फूलो
 की माला एवं किरोट वगैर आभूषण दिव्य धर और सार
 शरीर का भूषण रूप यौवन—ये सब उसके पैदा होनेके समय
 उसके साथ ही प्राप्त हुए थे। अथवा वह उपरोक्त गहने, कपडे
 और जयानी को साथ लेकर जन्मा था। उसके जन्म समय में
 अपनी प्रतिध्वनि से दिशाभा को प्रतिध्वनित करनेवाली दुँदु
 भियाँ बर्जी और 'जगत को सुखी करो एव जयलाम करो' ऐस
 शब्द मङ्गल पाठक बहने लगे। गात और घाघ के निर्घोष—गाते
 यजाने की आवाजों तथा धन्दिजना के कोलाहल से व्याकुल वह
 विमान अपने स्वामी के आने की सुशी में गरजता हुआ सा
 मालूम होते लगा। सोकर उठे हुए मनुष्य की तरह उठकर
 और सामने का दिग्गजा दणकर, ललिताङ्ग देव इस प्रकार
 विचार करने लगा— यह इन्द्रजाल है ? स्वप्न है ? माया है ?
 क्या है ? ये नाच और गान मेरे उद्देश से क्यों हा रहे है ? य
 विनीत लोग मुझे अपना स्वामी धनाने के लिये क्यों छटपटा रहे
 है ? इस, लक्ष्मी के मन्दिर रूप, आनन्द स्वरूप स्वरूप, सेव्य प्रिय

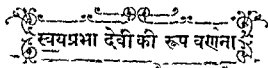
और रथ भुवन में मैं कहाँ से आया हूँ ?' उनके मनमें इस तरह के तर्क चिंतन उठ ही रहे थे, कि इतने में प्रतिहार ने उसने पास आकर और हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की —

ललिताग देवका प्रतिहारी द्वारा
कहा हुआ स्वरूप

हे नाथ ! आप जैसे स्वामी को पाकर आज हम धन्य और मनाप हुए हैं। इसलिये विनम्र और आभाकारी सेजकों पर अमृत-ममन दृष्टि से कृपा कीजिये। सब तरह के मन चाहे पदार्थ देनेवाला, अक्षय लक्ष्मी वाला और सब सुखों का स्थान— यह ईशान नामका कुम्भरा देवलोक है। जिस विमान को आप इस समय अलंकरण कर रहे हैं, इस श्रीप्रम नाम के विमान को आपने पुण्य धर्म से पाया है। आप की स्मृति के मण्डन रूप ये नव सामानिक देव हैं, जिन में से आप एक हैं, तीसरी आप इस विमान में अनेक की तरह दीखते हैं। हे स्वामिन् ! मंत्र के फलरूप ये तिस्रो पुरोहित देव हैं। ये आप की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं इसलिए आप इनको समयोचित आदेश कीजिये। हमी दित्तगी बग्गोवाटे परिपद नामक देव हैं, जो श्रीग और विलास की बातों से आपका दिल यह रायेंगे। निर

न्तर यद्यत्तर को पहनी चाले, उत्साह प्रकार के ताण शस्त्रा को धारण करी चाले और स्वामी की रक्षा करने में क्षुण्ण—ये आपने धर्मरक्षण देवता हैं। आप के नगर का रक्षा करने चाले ये लीरपाल देवता हैं। आपकी सेना में ये रणरुग कुशा धुरन्धर सेनाजिनि हैं। ये पुरवासी और देशवासी प्रकीर्णक देवता आप की प्रजा रूप हैं। ये सब भी आप की निमात्र रूप बाधा को मस्तक पर धारण करेंगे। ये आभियोग्य देवता आप की दासों की तरह सेवा करने चाले हैं और ये विविधक देवता सब प्रकार के मूले काम करने चाले हैं। सुन्दर रमणियों से रमणीक आंगनचाले, मन को प्रसन्न करने चाले और रत्नों से जडे हुए ये आपके महल हैं। सुवर्ण कमल की रान जैसी रत्नमय ये चाटिकायें हैं। रत्न और सुवर्ण की चोरी चाले ये तुम्हारे श्रीडा पर्यंत हैं। हर्षकारी और स्वच्छ जगचाली ये श्रीडा नदियाँ हैं। नित्य फलफूल देवेचाले ये श्रीडा उद्यान हैं। अपनी कान्ति से दिशाओं के मुख को प्रकाशित करनेचाला सूर्यमण्डल के समान, रत्न और मणियों से बना हुआ यह आप का समामण्डप है। चमर, दर्पण और पंखेचाला ये वाराङ्गनाये आप की सेवा में ही महीत्सव मानने चाली हैं। चारों प्रकार के धाजे बनाने में दक्ष ये गन्धर्व आप के सामने गाना करने को सजे हुए छडे हैं। प्रतिहारी के ऐसा कहने के बाद, एलि ताग देव को अवधिमान से जिस तरह पिउले दिन की बात याद आजाती है उस तरह, पूर्व जन्म की बात याद आगई। 'अहो !

पहले जन्म में, मैं विद्याधरों का स्वामी था। मुझे धर्म मित्र जैसे स्वयंभुद्व मंत्री ने जैनेन्द्र धर्म का बोध कराया था। उससे दीक्षा लेकर मैंने अनशन किया था। उसी से मुझे यह फल मिला है। 'अहो! धर्म का अचिन्त्य शोभन है।' इस तरह पूर्ण जन्म की यातों को यादकर और यहाँ से तन्याग उठकर, उम देवने छडीदार के हाथ का सहारा लेकर सिंहासन को अलङ्कृत किया। उसके सिंहासनारूढ होते ही जयश्रुति हुई और देवताओं ने अभियेक किया। चँवर डोलने लगे। गन्धर्व मधुर और मंगल गान गाने लगे। इसके बाद, भक्तिभाय पूर्ण ललिताङ्ग देव ने यहाँ से उठकर, चैत्य में जाकर, शाश्वती अर्हन् प्रतिमा की पूजा की और देवताओं के तीन प्रामके उदुगार से मधुर और मंगलमय गायनों के साथ, विविध स्तोत्रों से जिनेश्वर को स्तुति की। पीठे ध्यानदीपक पुस्तकें पढ़ीं और मंडप के तमने पर रखी हुई अगिहन्त का अस्त्रि—हस्ती की अर्चना की।



स्वयंप्रभा का देहान्त।

ललितांग देव का विलाप।

इसके बाद, पूर्णिमा के चन्द्र जैसे दिव्य छात्र को धारण का

ने से प्रकाशमान होकर, वह क्रीडा मयन में गया। यहाँ उमने अपनी प्रभा से त्रियुक्त प्रभा को भी भग्न करने वाली स्वयंप्रभा नाम की देवी देवी। उसके नेत्र मुग और चरण बनीय कोमल थे। उमने मियसे, यह लायण्य लिधु के बीच में रहने वाली कमल-पाटिकासी जान पड़ता थी। अनुपूर्व से म्पूल और गोल उरु से यह ऐसी मालूम होती था, मानों कामदेव ने यहाँ अपना तपस स्थापन किया हो। निमल घन्र वाले विशाल नितम्बों—घृतडों से यह ऐसी अच्छी लगती थी, जैसी कि किनारों पर राजहंसों के झुण्डों के रहने से नदी लगती है। पुष्ट और उन्नत स्तनों का भार वहन करने से एका टुण, यज्ञ के मध्य भाग जैसे एका उदर से यह मनोहारिणी लगती थी। उमका त्रिरेशा-संयुक्त मधुर स्वर बोलने वाला वंठ, कामदेव की विजय कहानी कहने वाले गण के जैसा मालूम होता था। त्रिम्यफल को निरमृतन करने वाले होठ और नेत्ररूपी कमल की ढंडी की लाला को धारण करने वाली नाक से यह बहुत ही मनोमुग्धकर जान पड़ती थी। पूर्णमासी के अर्द्धचन्द्र की सर्प लक्ष्मी को हग्ने गाने अपनी सुन्दर और त्रिम्य ललाट से यह चित्त का हरे लेती थी। कामदेव के हिंसोले की लीला को चुराने वाले उसके कान से और पुष्पराण या ममभ के धनुष की शोभा को हग्ने वाली उमकी भ्रुकृतियाँ थीं। उसके सुन्दर चिकने और काज के स्तन

मालूम होनी थी। मनोहर मुद्रामंड धार्मिक अध्यात्मों से घिरी हुई, वह चरित्रों से घिरी हुई गंगा की शीतली थी। ललिताङ्ग देवकी को जो पाम आते देवदत्त, उग्रा अतिशय स्नेह के साथ छोड़े हीकर, उसका स्तब्ध किया। इसने बाद, यह धीमे धीमे रिमात का स्वामी उससे साथ एक पत्र पर बैठ गया। जिस तरह एक फवारे के लता और वृक्ष शोभते हैं, उसी तरह वे दोनों पास पास बैठे हुए शोभने लगे। चेतियों से जगहे हुए के समान, निरिद्ध प्रेम से निर्दिष्ट उन दोनों के द्विध आयस में लीन हो गये। अविच्छिन्न प्रेम रूपी सौरभ से पूर्ण ललिताङ्ग देवी स्वयं प्रमा के साथ फाड़ा करते हुए पशुतसा समय एक घण्टीके समान चिता दिया। फिर वृक्ष से पत्ता गिरने की तरह, असुख पूरी होने से, स्वयं प्रमा देवी वहाँ से व्युत्त हुई शर्यात वृक्षी गनिकी प्राण हुए। असुख पूरी होनेपर, इन्द्र में भी खदे की सामर्थ्य नहीं। गिरा के विच्छेद-दुःख से यह देव पर्यंत से अकन्त और अकालत की तरह भूच्छित हो गया। फिर क्षण भर में होश में आकर, अपने प्रत्येक शब्द से सारे धार्मिक विमान को चलाता हुआ यह आरम्भार प्रिलाप करने लगा। उग्रा उसे अच्छे से सुनते थे। धार्मिकों से चित्त अचरित होकर था। मोक्ष पर्यंत से उने स्वख्या न होती थी और मन्दन वर ने भी उसका द्विध पुरुष न होता था। हे त्रिनेत्रे! हे त्रिनेत्रे! तु वहाँ ही? इन गण्ड रह-भदर प्रिलाप करनेवाला घन देव सारे सत्कार को सूर्यप्रभा मय देखता हुआ, श्पर उधर फिटो लगा।

निर्नामिका का वृत्तान्त ।

इधर स्वयंबुद्ध मन्त्री को अपने स्वामी की मृत्यु से घराय्य उत्पन्न हुआ । उसने श्री सिद्धाचार्य नामक आचार्य से दीक्षा ली । बहुत समय तक अतिचार रहित धृत पालन करके वह मर गया और ईशान देवलोकमें इन्द्रका दृढधर्मा नामक सामानिक देव हुआ । उस उदार बुद्धिवाले देव का हृदय, पूर्व वन्ध के सम्यग्धर्मे, बधु की तरह, प्रेम से पूर्ण हो उठा । उसने वहाँ आकर, ललिताङ्ग देव को आश्वासन देने के लिए कहा — “हे महासत्व ! देवल लीने लिए आप ऐसा मोह क्यों करते हैं ? धीर पुरुष प्राण त्याग का समय आ जाने पर भी इस हालत को नहीं पहुँचने ।” ललिताङ्ग देव ने कहा — “हे बधु ! आप ऐसी बातें क्यों करते हैं ? पुरुष प्राणों का विरह तो सह सकता है, पर वान्ता का विरह नहीं सह सकता । इस संसार में एक मात्र मुगनयनी कामिनी ही सागभूत है, क्योंकि उस पर के बिना सारी सम्पत्तियाँ असार

७ महाराजा भृगुहरिचरित शृङ्गारवृत्त में भा एक जगह लिखा है —

हरिणाप्रेमया यत्र गृहिणी न विलोक्यते ।

सवितं सः सम्पद्भिरपि तदु भवन् वन ॥

जिस घर में मुगनयनी गृहिणी नहीं दीखती, वह घर सब सम्पत्तिसम्पन्न होने पर भी वन है ।

अगर आप को मुनि मनमाहनी कामिनीया क सम्यग्धर्म जान प्राप्त करना है, उन क हासलिलास लीला और नान नयनों का आनन्द लेना है तो आप कलकत्ते की छप्रसिद्ध हरिदास एण्ड कम्पनी से सचित्र शृङ्गार-

हो गई है।" उस के ऐसे दुःख से इशान इन्द्र का यह सामानिक देव भी द्रुमी हो गया। फिर त्रिभिज्ञान का उपयोग कर उसने कहा— हे महाभ्रातृ! तप वेद न करें। मैंने, ज्ञानरत्न से, भाप की प्रिया बहू है, यह बात जान ली हूँ। इसलिये आप स्वल्प हों और सुने—पृथ्वी पर, ज्ञानकी खण्ड के विदेह क्षेत्र स्थित नन्दी नामक गाँव में द्रिष्टि स्थितिवाला एक नागिर नामक गृहस्थ रहता है। वह पेट भरने के लिए, हमेशा, प्रेत की तरह भटकता है। तोभी भूखा प्यासा ही मोता और भूखा प्यासा ही उठता है। द्रिष्टि में भूख का तरह, मन्द भाग्य में शिरो मणि, नागधी नामकी स्त्री उस के है। खुजली गोगाले के जिस तरह पुजली के ऊपर फोड़े फुन्सी और हो जाती हैं, उसी तरह नागिर के ऊपर ऊपर ६ कपारों गाँवकी सूजमीकी तरह स्वभाव से ही बहुत पानेवाली धुरा और जगत् में निन्दित होने वाली हुई। इतने पर भी, उसकी स्त्री फिर गर्भवती हो गई। प्रायः द्रिष्टियों को शीघ्र ही गर्भधारण करने वाली स्त्रियाँ मिलती हैं। इस मौके पर नागिर मन में चिन्ता करने लगा—'यह मेरे किस कर्म का

शतक मंगाकर, समार को मारभूत मनमाहिनी नारिया के सम्बन्ध का सभी बातों का किरण हृदिये। इसमें भद्र हरिक ग्लानका क सिवा संस्कृत के महाकवियों और उद शहराकी चकोली कविताएँ भी दो गई हैं। साथ ही १५ मनामाहक चित्र भी दिए हैं। गृहकार रम प्रेमिणी का यह पद्य अत्यन्त सुखा चाहिये। १५ > पृष्ठों को मनाहर तिलहर पुस्तक का दाम ३॥) डाक-खर्च ॥३)

फल है, जिस से मैं, मनुष्य-लोक में रह कर भी नरक की व्यथा भोगता हूँ। मैं जन्म से दृष्टिहीन हूँ और मेरे इस दृष्टिक्रम का प्रतिकार भी नहा हो सकता। मैं इस जन्म के प्रतिकार रहित दृष्टि से उसी तरह क्षीण हो गया हूँ जिस तरह श्रीमठ से वृक्ष क्षीण हो जाता है। प्रत्यक्ष अलक्ष्मी-स्वरूपा पूर्वजन्म की वैरिणी और कुलक्षणा—कन्याओं ने मुझे बड़ा फट्ट दिया है। यदि इस धार भी कन्या पैदा हुई, तो मैं कुटुम्ब को त्याग कर देशान्तर में जा रहूँगा।

निर्नामिका और केवली का समागम।

“यह इस तरह चिन्ता किया करता था कि, इस बीच में उस दृष्टि की धरती ने कन्या जनी। धाम में सूई घुसने की तरह उस ने कन्या जन्म की बात सुनी। इस के बाद दुष्ट बैल जिस तरह भार को छोड़कर चला देता है उसी तरह यह नागिठ कुटुम्ब को छोड़कर चल दिया। उसकी खी को, प्रसन्न दुष्ट के ऊपर, पति के परदेश चले जाने की व्यथा ताजा घाव पर ममक पड़ने के समान प्रतीत हुई। अत्यन्त दुःखिता नागिणी ने उस कन्याका नाम भी न रक्खा, इसलिये लोग उस कन्या को निर्नामिका नाम से पुकारने लगे। नागिणी ने उस का पालन पोषण भी अच्छी तरह से नहीं किया, तोभी यह कन्या बढ़ने लगी। घनाहत प्राणीकी भी, यदि आयु शेष न हुई हो तो, मृत्यु नहीं होती। अत्यन्त अमागी और माता को उद्वेग करानेवाली यह कन्या दूसरों के घरों में नीचे काम करने दिन पाटने लगी। एक दिन, उत्सव

उस समय, किसी धनी के बालक के हाथ में लड्डू देकर, वह अपनी माँ से लड्डू माँगने लगी। उस समय उसकी माँने क्रोधित होकर कहा—“मोदक क्या तेरे बाप होते हैं, जो तू मागती है? अगर तेरी लड्डू खाने की ही इच्छा है, तो अमर निलक पर्वत पर, काठ की भारी लाने के लिए, रस्ती लेकर जा।” अपनी माता की, जङ्गली कण्डे की भाग के समान, दाह करने वाली बात सुनकर, गेती हुई वह बाला रस्ती लेकर पर्वत की ओर चली। उस समय, उस पर्वत पर, एक गच्छिकी समाधि में रहे हुए युगन्धर मुनि को केवल ज्ञान हुआ था। इस से निकट रहने वाले देवताओं से केवल ज्ञान की महिमा का उत्सव मनाना आरम्भ किया था। पर्वत के पास के नगर और गाँवों के लोग यह समाचार सुनकर, उस मुनीश्वरको नमस्कार करने के लिए जल्दी जल्दी आ रहे थे। नाना प्रकार के अलङ्कारोंमें भूषित लोगोंका आते देखकर, वह निर्नामिका कन्या विस्मित होकर, चित्र गिपीसी पड़ी रही। फिर बातों ही बातों में लोगों के आने का कारण जानकर, दुःख-रूपी भारी के समान काठ की भारी को वहाँ पटक कर वह भी वहाँ से चला दी और दूसरे लोगों के साथ पहाड़ पर चढ़ गई। तीर्थस्व के लिए मुले रहते हैं। उन मुनिगण के चरणों को कल्पवृक्ष के समान मानने वाली निर्नामिका कन्याने बड़े आनन्द से उन को घण्टना की। कहते हैं कि, गति की अनुसारिणी मति होती है; अर्थात् जैसी होनहार होती है, वैसी ही मति हो जाती है। मुनीश्वर ने, मेघवत् गम्भीर धाणा से,

लोक-समूह को हितकारी और आहादकारी धर्म देशना या धर्मोपदेश लिया। त्रिपयों का सेवन, कच्चे सूत से रने हुए पलंग पर बैठने वाले पुरुष की तरह, संसार रूपी भूमि पर गिरने के लिए ही है, अर्थात् कच्चे सूत से रने हुए पलङ्ग पर बैठने वाले का जिस तरह अध पतन होता है उसी तरह त्रिपय मयी पुरुष का भी अध पतन होता है। कच्चे सूत के पलङ्ग पर बैठने वाले को, जिस तरह शीघ्रमें नीचे गिरकर, दुखी होना पड़ता है; उसी तरह त्रिपय भोगी को परिणाम में घोर दुःख और कष्ट उठाने पड़ते हैं। जगत् में पुत्र, मित्र और कलत्र धरैर का समागम एक गाँव में रात्रि निवास करने और सोकर उठ जाने वाले घटोही के समान है। चौरासी लाख धीनियों में घूमने वाले जीवों को जो अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं, वे उनके अपने कर्मों के फल हैं, अर्थात् उनके कर्मों के फल स्वरूप उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार की देशना या धर्मोपदेश सुनकर, निर्नामिका हाथ जोड़ कर बोली,—‘हे भगवान्! आप राव और रक में समदृष्टि रखने वाले हैं—गरीब और अमीर दोनों ही आपकी नजर में समान हैं, इसलिये मैं विवक्षित करके पूछती हूँ कि आपने संसार को दुःख सदन रूप कहा, परन्तु क्या मुझमें भी अधिक दुःखी कोई है?’

चारो गतियो में दुःख का वर्णन ।

“केवली भगवान् ने कहा— हे दुःखिनी बाला!—हे भद्रे! तुम्हें

तो क्या दुःख है ? तुम से भी अधिक दुःखी जीव हैं, उनका हाल सुन । जो अपने दुष्कर्मों के फल-स्वरूप नरक गति में पैदा होते हैं, उनमें से कितनों ही के शरीर भेदे जाते हैं और कितनों ही के अङ्ग छेदे जाते हैं और कितनों ही के सिर धड़से अलग किये जाते हैं । उनमें से कितनेही, नरक गति में, परमाधामी असुरों द्वारा तिलों की तरह फोहू में पड़े जाते हैं ; कितने ही लकड़ी की तरह काटे जाते हैं और कितने ही लोहेके यतनोंकी तरह फूटे जाते हैं । वे असुर कितनों हीको शूलों की शय्या पर सुलाते हैं कितनों ही को कपड़ों की तरह पत्थर की शिलाओं पर पछाड़ते हैं और कितनों ही के साग की तरह टुकड़े-टुकड़े करते हैं । उन नारकीय जीवों के शरीर, वैक्रिय होने के कारण तुरत मिल जाते हैं और वे परमाधार्मिक असुर उन्हें फिर पहले की तरह ही तकलीफें देते हैं । इस तरह दुःखों को भोगने वाले वे प्राणी करुण स्वर से चीखते चिल्लाते हैं । यहाँ प्यासे जीवों को पार म्यार सोसे का रस पिलाया जाता है और छाया चाहने वाले प्राणी, तलवार के ध्वे पत्तों वाले, असिपत्र नामक वृक्ष के नीचे बिठाये जाते हैं । अपने पूर्वजन्म के कर्मों का स्मरण करते हुए, वे प्राणी एक मुहूर्त भर भी बिना घेदना के रह नहीं सकते । हे बन्धी ! उन नपुंसक नारकियों को जो जो दुःख और कष्ट भेदने पड़ते हैं, उनका वर्णन करनेसे भी मनुष्य का दुःख होता है ।

इन नारकियों की बात तो दूर रही, प्रत्यक्ष दिखाई देने

वाले जगचर, धलचर नभचर और निर्यञ्ज प्राणी भी अपने पूर्व जन्म के कर्मों से अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। जगचर जीवों में से कितने ही तो एक दूसरे को खा जाते हैं। चमड़े के चाहने वाले उनकी चामड़ा उतारते हैं मांस की तरह वे भूँजे जाते हैं, खाने की इच्छा वाले उन्हें खाते हैं और चरबी की इच्छा वाले उन्हें गलाते हैं। धलचर जंतुओं में, निर्मल मृग प्रभृति को सबल सिंह जगैरः प्राणी मांस की इच्छा से मार डालते हैं। शिकारी गेग मांस की इच्छा से अथवा धीड़ा के लिए उन निरपराधी प्राणियों को मार डालते हैं। वैश्व प्रभृति प्राणी भूख प्यास, सर्दी गरमी सहन करने, अति भार वहन करने और चायुक, अंकुश एवं लकड़ी घेरेर की मार खाने से बड़ा दुःख पाते हैं। आकाशमें उड़नेवाले पक्षियों में तीतर, तोता, ययूतर और चिड़िया प्रभृति को उनका मांस खाने की इच्छावाले यान, शिकरा और गिद्ध घेरेर पक्री खा जाते हैं तथा शिकारी गेग इन सब को नाना प्रकार के उपायों से पकड़कर और घोर दुःख देकर मार डालते हैं। उन निर्यञ्जों को अन्य शस्त्र और जठ प्रभृति का भी बड़ा डर होता है। अतः अपने अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का नियन्त्रण ऐसा है, जिस का प्रसार रुक नहीं सकता। इसी को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि कोई भी अपने पूर्वजन्म के कर्मोंका भोग भोग नैसे बच नहीं सकता। अपने अपने कर्मोंका फल सभीको भोगना होता है।

‘जिन को मनुष्यत्व मित्रता है, जो मनुष्य योनि में जन्म लेते

हैं उनमें से कितने ही प्राणी जन्मसे ही बंधे, बहरे, लूटे और षोढी होते हैं कितने ही घोरी और जारी करनेवाले प्राणी, नारकीयों की तरह, भिन्न भिन्न प्रकार की शिक्षा से निग्रह पाते हैं ; और कितने ही नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होकर अपने पुत्रों से भा निरस्त होने हैं। कितने ही मूय से बिके हुए—नीकर, गुलाम बगैर—पञ्चर की तरह अपन स्वामी की ताडना, तर्जना और भर्त्सना सहते, बहुतसे धोभ उठाते एवं भूख प्यास का दुःख सहते हैं।

देशना की समाप्ति ।

‘परस्पर के पराभव से केश पाये हुए और अपने अपने स्वामियों के स्वामित्व में बंधे हुए देवताओं को भी निम्नर दुखी रहना पड़ता है, स्वभावसे ही दारुण इस संसार में, दुःखों का पार उसी तरह नहीं है। जिस तरह समुद्र में जल-जंतुओं का पार नहीं है ; जिस तरह भूत प्रेतादिक से संकलित स्थान में मंत्राक्षर प्रतीकार करनेवाला होता है, उसी तरह दुःख के स्थान रूप इस संसार में जैनधर्म प्रतीकार करनेवाला है। बहुत धोभ से जिस तरह नाथ समुद्र में डूब जाती है उसी तरह हिंसा से प्राणी नरक रूपी समुद्र में डूब जाता है, अतः हिंसा हरगिज न करनी चाहिये। निरन्तर असत्यका स्वाग करना उचित है, क्योंकि असत्य धचनसे मनुष्य इस संसार में चिरकालतः उनी तरह भ्रमता है ; जिस तरह तिनका हवा

के बरंडर या थगूरे में भ्रमता है। किमी की भी रिना दी हुई चीर न लेनी चाहिये अथवा किसी भा चीर की चोरी न करना चाहिये, क्योंकि कौंच की फली के छूने के समान अदत्त—रिना दिया हुआ पदार्थ लेने से किसी हालत में भी सुख नहीं मिलता। अन्नहचर्य्य को त्यागना चाहिये। क्योंकि अन्नहचर्य्य रंक का तरह गला पकड़कर मनुष्य को नरकमें ले जाता है। परिग्रह इकट्ठा न करना चाहिये, क्योंकि बहुत योद्ध से पैल जिस तरह फीचड में फँस जाता है, उसी तरह मनुष्य परिग्रह के बश में पडकर दुःख में डूब जाता है। जो लोग हिंसा प्रभृति पाच अन्नका देशसे भी त्याग करते हैं, वे उत्तरोत्तर कल्याणसम्पत्ति के पात्र होते हैं।'

निर्नामिका का पुनर्जन्म ।

सखिताग और स्वयंप्रभा का पुनर्मिलन ।

'बेजली भगवान् के मुँहसे ऐसी बातें सुनकर निनामिका को घैराम्य उत्पन्न हो गया और लोहे के गोले की तरह उस की कर्म-प्रिय भिद् गयी। उस ने उस मुनीश्वर के पास से जन्डी तरह मम्यन्त्य ग्रहण किया और परलोक-रूपी मार्ग में पाथेय तुल्य अहिंसा आदि पाँच अणुवृत धारण किये। इस के बाद मुनि महाराज को प्रणाम कर, मैं वृत्तार्थ हुई—ऐसा मानती हुई, वह निर्नामिका भारी उठाकर अपने घर गई। उस दिन से, यह सुबुद्धिमती बाला अपने नाम की तरह युगंधर मुनि की घाणी को

र भूलकर नाना प्रकार के तप करने लगी। यह युवती हो गई, नोभी उस दुर्भंगा के साथ जिन्सी ने विवाह नहीं किया, क्योंकि कडवा तृष्यी पच जाती है, नोभी उसे खोइ नहीं खाता। घर्त्तमान में, यह निनामिषा विशेष घैराग्य और भाव से युगधर मुनि के पास अनशन घत ग्रहण करके रहती है। इसलिये हे ललिताङ्ग देव ! आप वहाँ जाओ और उसे अपने दर्शन दो ; जिन्से आप पर आसक्त हुई वह माफ़र आप की स्त्री हो।" कहा है कि, अन्नमें जैसी मति होती है, वैसीही गति होती है। पीछे ललिताङ्ग देव ने घैसा ही किया ; और उस के ऊपर आसक्त हुई वह मती मरकर स्वयंप्रभा नाम्ना उसकी पत्नी हुई। मानो प्रणय कोष से रुठ उर गई हुई स्त्री फिर मिल गयी हो, इस तरह अपनी प्यारी को पाकर, ललिताङ्ग देव खूब कीडा करने लगा ; क्योंकि अधिक घाम लगने पर छाया अच्छी लगतीहा है।

ललिताङ्गदेव के च्यवन-चिह्न ।

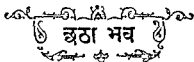
इस तरह कीडा करने हुए बितना ही समय बीत जानेपर ललिताङ्ग देव को अपने च्यवन—पतनने चिह्न नजर आने लगे। मानो उम के त्रियोग भय से रत्नाभरण निस्तेज होने लगे और उम के शरीर के कपड़े भी मैले होने लगे। जय दुःख नङ्गदीक आता है, तब लक्ष्मीपति भी लक्ष्मी से अलग हो जाते हैं। ऐसे समय में, उसे धम से अरुचि और भोग में विशेष आसक्ति हुई। जब अन्न समय आता है, तब प्राणियों की प्रवृत्ति में केरफार

होता ही है। उसके परिजनोंके मुह से अपशकुनमय—शोक मारक और विरस वचन निकलने लगे। कहा है, कि घोलन वाले के मुख से होनहार के अनुरूप ही बात निकलनी है। जाम-से प्राप्त हुई लक्ष्मी और लज्जाक्षी प्रिया ने, मानो उस ने कोई अपराध किया हो इस तरह, उमे छोड़ दिया। चाँदी के जिन तरह मृत्यु समय पंख धा जाते हैं; उमी तरह, उमरे अर्शन और निद्रारहित होने पर भी, उसमें दीनता और निद्रा भाग्य। हृदय के साथ उस के सन्धि बन्धन ढीठे हो गये। महावृत्तान्त पुराणों से भी न हिलनेवाले उस के घटपट्ट कौंधने लगे। अरु नीरोगी अङ्ग और उपाङ्गों की सन्धियाँ मानो भविष्य में अने घागी घेतना की शङ्का से टूटने लगीं। जिस तरह दृमरा के स्याया भाव देखने में असमर्थ हो, उम तरह उस का दृष्टि अन्ध-प्रदण करने में असमर्थ होने लगी; यानी उस का नय कलने गद। मानो गर्भावास में निवास करने के अङ्गोंका नय लगत है, इस तरह उस के सारे अङ्ग कौंधने लगे। ऊपर मन्मथ ईश्वर को ऐसे मजेन्द्र की तरह, उस ललिताङ्ग देव को ग्य श्रीग ग्य न, नदी, बावनी और वगीचे भा प्यारे नहीं लगत थे। उम की ऐसी हालत देखकर देवी स्वर्पप्रना न बग,—“हे नाथ! मेन आप का क्या अपराध किया है, कि आप का मन मुझ से फिर हुआ सा जान पड़ता है ?”

ललिताग देव का च्यवन ।

उसने कहा,—“प्यारी ! तैने कुछ भी अपराध नहीं किया है । हे सुन्दर भौंहोंवाली ! अपराध तो मैं ही किया है जो पूर्वजन्म में ओछा तप किया । पूर्वजन्म में, मैं त्रिचाधरों का राजा था । उस समय, मैं भोग कार्य में जाग्रत और धर्म कार्य में प्रमादी था । मेरे मीमांस्य से प्रेरित होकर, स्वयंबुद्ध नामक मन्त्री ने आयु का शेषांश यानी रहने पर मुझे जैनधर्म का बोध कराया और मैंने उसे स्वीकार किया । उस जग मी मुहत में किये हुए धर्म के प्रभार से, मैं अत्यन्त श्रीप्रभ विमारका स्वामी रहा ; परन्तु अब मेरा च्यवन होगा— मैं इस पदपर न रहूँगा ; क्योंकि अल्पव्यय वस्तु किसी को भी मिल नहीं सकती ।” यह इस तरह बातें कर ही रहा था कि इसी बीच में दृग्धर्मा नामक देव उन के पास आकर बहने लगा —“आज इशान चरित्रके स्वामी नन्दीश्वरराक्षि द्वीप में जिनेन्द्र प्रतिमा की पूजा करने को जाने वाले हैं ; इसलिये आप भी उन की आज्ञा से चलिये ।” यह बात सुनते ही—‘अहो ! स्वामी ने दुष्म भी समयोचित ही दिया है—’ कहते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी प्यारी सहित वहाँको चला । नन्दीश्वर द्वीप में जाकर उसने शाश्वती अर्हत्प्रतिमा की पूजा की और पृथ्वी में अपने च्यवन काल की बात को भी भूँ गया । इस के बाद स्वल्प चिन्तवाला वह देव दूसरे तीर्थों का जा रहा था, कि इसी बीच में आयुष्य

क्षीण होने से, क्षीण तैलवाले दापक की तरह, राहमें ही पञ्चव्य को प्राप्त हुआ ; यानी देह-त्याग किया ।



जम्बूद्वीप में, सागर-समीप स्थित पूर्ण विन्ध में, सीता नाम महावती के उत्तर अञ्चल में, पुण्डरीकवती नभनी विजय के मध्य में, लोहागल नामक बड़े भारी नगर के सुवर्णजय राजा के लक्ष्मी नाम्नी स्त्री की कोप से ललिताङ्ग देव का जीव पुत्र-रूप में पैदा हुआ । आनन्द से प्रसुब्धित माता पिता ने प्रमत्त हास्य, शुभ विसस में, उसका नाम यज्ञजय रखा । ललिताङ्ग देव के विरह से दुःखार्त हो, स्वयंप्रसादी भी, कितने ही समय तक धर्म-कार्य में लीन रहकर, वहाँ से च्यो, यानी उन का देहाय सान हुआ । मरकर वह उन्नी विजय में, पुण्डरीकविण नगरी के वज्रसेन राजा की गुणवती नाम की स्त्रामे पुत्री-रूप में जमी । अतीव सुन्दरी होने के कारण माता पिता ने उसका नाम श्री-मती रखा । जिस तरह उद्यान पालिका-मात्रि द्वारा लात्रि होनेसे गता बढ़ती है ; उसी तरह वह सुन्दर स्मन्त्र्य वाली कोमलद्वी वाला धार्यों द्वारा लात्रि पत्रि हाकर अनुक्रम से बढ़ने लगी । सुवर्ण की अँगूठी को न्यि तरह रत्न प्राप्त होता है उसी तरह अपनी स्निग्ध कान्ति से ज्ञान-तुल्य को

करनेवाली उस राजवाला को यौग्य प्राप्त हुआ। एक दिन, सख्याकी अश्लेषा जिस तरह परत पर चढ़ती है, उसी तरह वह अपने स्वर्गभोग्य महल पर चढ़ी। उस समय, मनोरम नामक धार्मिकोंमें किसी मुनीश्वर को ये धर्म ज्ञान प्राप्त होने के कारण वहाँ जानेवाले श्रेयताओं पर उस की नजर पड़ी। उन को देखते ही मैंने पहले भी ऐसा देखा है,—ऐसा विचार करने वाले उस यात्राको, रात के स्वप्न का तट, पूर्वजन्म की घात याद आ गई। मानो हृदय में उत्पन्न हुए पूर्वजन्म के ज्ञान का भार वहन न कर सकती हो, इस तरह वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। सपियों के चन्दन प्रभृति द्वारा उपचार करने से उस होश आ गया। उठते ही वह अपने चित्तमें विचार करने लगी—“पूर्वजन्म में ललिताङ्ग देव नामक देव मेरेपति थे। उनका स्वर्गमें पतन हुआ है परन्तु इस समय वे कहाँ हैं, इस बात की खबर न लगनेसे मुझ दुःख हो रहा है। मेरे हृदय पर उहाँ का प्रतिधर्म या अक्स पडा हुआ है और वेही मेरे हृदयेश्वर हैं। क्योंकि कपूर के घासन में नमक क्यों रखता है? अगर मेरे प्राणपति मुझसे बातचीत न करें, तो मेरा औरों से बातचीत करना बुरा है। ऐसा विचार करके, उसने मीठा धारण कर लिया—बोला हा छोड़ दिया।

श्रीमती के पाणिग्रहण के उपाय।

जब वह न बोली, तब सपियों वैवदाय की शङ्का से तन्वामन्त्र

रे यथोचित उपचार करने लगीं। ऐसे सैकड़ों उप
 मो उसने मीन न त्यागा, क्योंकि धीमारी और हो
 और हो, तो थाराम नहीं होता। काम पडने से, वह
 गियों को धरार लिख कर अथवा भौं और हाथों के
 अपने मन का भाव जनानी थी। एक दिन धीमती अपने
 लन में गई। उस समय एकांत जानकर उस की
 नाम्नी धाय ने उस से कहा—“राजपुत्री! निम्न हेतु से
 धारण किया है, वह हेतु मुझ से कह और दुःख में मुझे
 रन बनाकर अपना दुःख हल्का कर। तब दुःख को
 र में उस के दूर करने का उपाय करूगी, क्योंकि रोग
 रना रोग की चिन्ता हो नहीं सकती। इसके बाद
 तरह प्रायश्चित्त करनेवाला मनुष्य सद्गुरु के सामने अपना
 वृत्तान्त निवेदन कर देता है, वसी तरह धाम्नी ने अपने
 म का यथार्थ वृत्तान्त पण्डिता को कह सुनाया। तब उस
 वृत्तान्त को एक पट्टी पर लिख कर, गांध करने में चतुर
 उता उस पट्टी को लेकर बाहर चली। उसी समय धनु
 चक्रवर्ती की धर-गाँठ होने के कारण, उस के उत्सव में
 मित्र होने के लिये, अनेक गाँठ और गणेशुमार आने लगे।
 ल समय धीमती के बड़े भाग मन्थ की तरह लिखे हुए उस
 ट को अच्छी तरह फैलाकर पण्डित राज्याय में खड़ी हो कर
 कतने ही आगम शास्त्र ज्ञान पर गाँठ के अर्थ
 देखे हुए नन्दीगढ़ की पत्नी

लगे। कितने ही आदमी भ्रष्टा से अपनी गद्द हिलाने हुए, उसमें लिपे हुए श्रीमन् धरहस्त के मल्लेक विम्ब का वर्णन करने लगे, कितने ही बला कौशल कुशल राहगीर उसे तेज नगर से देखकर देवाओं की शुद्धि की धारम्भार तागीफ बनने लग और कितने ही लोग उस पट के अन्दर के काले, सफेद पीले, नीले और गल रंगों में मध्या के घात्रलों के समान, बनाये हुए रंगों का वर्णन करने लगे। इसी मौके पर, यद्यार्थ नामवाले दुदर्शन राजा का दुदात्त नामका पुत्र वहाँ था पहुँचा। वह एक क्षण तक पट को देखकर, घनाघटी मूर्च्छा से जमीन पर गिर पडा और फिर होश में आगया हो, इस तरह उठ बैठा। उससे उठने पर लोगों ने जब उससे उससे येदोश होने का कारण पूछा, तब वह कपट नाट्य करके धपना वृत्तान्त कहने लगा—‘इस पटमें किसी ने मेरे पूर्यजम का वृत्तान्त लिखा है। इस के देखने से मुझे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ है। यह मैं कलि ताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है।’ इस तरह उसमें जो जो लिखा था उसने उसी प्रमाण से कहा। इसके बाद पण्डिता ने कहा—‘यदि यही बात है, तो इस पट में कौन कौन स्थान हैं, अंगुली से बताओ।’ दुदात्त ने कहा—‘यह मेरा पर्वत है और यह पुण्डरीकिणी नदी है।’ फिर पण्डिता ने मुनिका नाम पूछा, तब उस ने कहा—‘मुनिका नाम मैं भूठ गया हूँ।’ उसने फिर पूछा—‘मन्त्रीवर्ग से घिरे हुए इस राजा का नाम क्या है और यह तपस्वी कौन है यह बताओ।’ उसने कहा—‘मैं इन

के नाम नहीं जानता। इन घातों से उसे धूर्त मायाजी समझ कर, पण्डिता ने दिल्ली के साथ कहा—'तेरे कथनानुसार यह तेरा पूर्वजन्म का चित्र है। गण्डिताङ्ग क्षीय का जीव तू है और तेरी स्त्री स्वयंप्रभा, इस समय, नन्दीप्राम में, कर्मदोष से लँगडी होकर जमी है। उसे जाति स्मरण हुआ है इससे उसने अपना चरित्र इस पत्र में लिखकर, जय में घातकी गण्ड में गाया, तब मुझे दे दिया। उस लँगडी पर दया जाने से मैंने तुम्हें आज निकाला इसलिये अब तूमेरे साथ चत्र, मैं तुम्हें उमरे पास घातकी गण्ड में ले चढ़ूँ। हे पुत्र! वह गरीबनी तेरे प्रियांग के कारण बड़े दुःख से जीती है। इसलिये वहाँ चलकर, अपनी पूर्वजन्म की प्राणवल्लभा को आभ्यासन कर—उसे तपस्वी दे।' ये घातें कहकर ज्योही पण्डिता चुप हुई कि, उसके समयम्भ या गोटिया यारों ने उसकी दिल्ली करते हुए कहा—'मित्र! आप को स्त्री रत्न का प्राप्ति हुई है, इस से जान पड़ता है कि, आप के पुण्यका उदय हुआ है। इसलिये आप वहाँ नाकर, उस लूली स्त्री से मिलिये और सदा उमरी पापगिरी कोजिये। मित्रों की ऐसी मनखरी भी घातें मुतकर दुर्दान्त गज्जित हो गया और बेची हुई बन्तु में से नगिरी—जारी रही हुई की तरह होकर, वहा से चला गया।'

श्रीमती का पाणिग्रहण ।

यज्ञसेन का दीक्षा ग्रहण ।



यज्ञजप और श्रीमती का विवाह ।

कुछ देर बाद, लोहारगल पुर से आया हुआ, यज्ञजप कुमार भी वहाँ आया । उसने चित्र लिखा चरित्र देखा और वेहोश हो गया । पंखों से हवा की गर और जल के छींटे मारे गये, तब उसे होश हुआ । इसके बाद मानो स्वर्ग से ही आया हो, इस तरह उसे जानि स्मरण हुआ । उसी समय पण्डिता ने पूछा—कुमार ! पट का लेख देखकर तुम वेहोश क्यों हो गये ? “यज्ञजप ने कहा—“भद्रे ! इस पटमें मेरा और मेरी स्त्री का पूर्वजन्म का वृत्तांत लिखा हुआ है, उसे देख मैं वेहोश हो गया । यह श्रीमान् ईशान कल्प है, उसमें यह श्रीप्रभ विमान है, यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है । धातकीपण्ड के नन्दी ग्राम में, इस घर के बन्दर, महादरिद्री पुरप की यह निनामिका नाम की पुत्री है । वह यहाँ अमर तिलक पहाड के ऊपर आरूढ हुई है और उसने इस युगधर मुनि से अनशन मत ग्रहण किया है । यहाँ मैं, मुझ पर आसक्त, उसी स्त्री को अपने दर्शन देने आया हूँ और फिर वह यहाँ पञ्चत्व को प्राप्त होकर यानी मरकर, स्वयंप्रभा नाम्नी मेरी देवी के रूप में पैदा हुई है । यहाँ, मैं, नन्दीश्वर द्वीप में, जिनेश्वर देव की अर्चना

में लगा हुआ हूँ। वहाँ से दूसरे तीर्थों में जाता हुआ, यहाँ मैं च्युत गया हूँ; यानी मेरा दूसरे लोक के लिए पतन हो गया है,— मैंने अन्य लोक में जाने के लिए अपना पहला और पुराना शरीर त्याग दिया है। अजेली, दीन दुखी और सहाय हीन अवस्था में यह स्वयंप्रभा यहाँ आई है, इस को मैं मानता हूँ और यही मेरी पूर्व जन्म की प्रिया है। वह स्त्री यही है और उसने ही इसे जाति स्मरण से लिपा है,—यह मैं जानता हूँ, क्योंकि पिता, अनुभव के कोई भी आदमी इन सब बातों को जान नहीं सकता। चित्र पट में सब स्थान दिखलाकर, वह ऐसा कह ही रहा था, कि इतने में परिडिता बोली—'कुमार! आप का कहना सब ही।' यह कहकर वह सीधी श्रीमती के पास आई और हृदय को शून्य रहित करने में औपधि समान वह धारणान उसने श्रीमती को कह सुनाया, अर्थात् दिल की छटक मिटाने वाली वे सब बातें उमने उससे कह दा। मेघ के शब्दों से जिददूर परत की जमीन जिस तरह रत्नों से भङ्गुरित होती है, उसी तरह श्रीमती अपने प्यारे पतिके वृत्तान्त सुनकर रोमाञ्चित हुई। पीछे उसने परिडिता के द्वारा अपने पिता को इस बात की खबर कराई, स्वतन्त्र रहना कुलस्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है। मेघ की वाणी से जिस तरह मोर प्रसन्न होता है, उसी तरह परिडिता भी बातों से वज्रसेन प्रसन्न हुआ और शीघ्र ही वज्रजय कुमार को बूलवाकर उन से कहा— 'मेरी बेटी श्रीमती पूर्वजन्म की तरह इस जन्म में भी आपका गृहिणी हो।' वज्रजय ने यह बात मंजूर कर ली तब वज्रसेन

चन्द्रवर्ती ने, समुद्र जिस तरह विष्णु के साथ लक्ष्मी की शादी करता है, उसी तरह अपनी कन्या श्रीमती का पाणिग्रहण उनके साथ कर दिया। इसके बाद चन्द्र और चन्दिका की तरह मिले हुए वे दोनों पति पत्नी, उज्ज्वल रेशमी कपड़े पहन और राजा की आज्ञा ले, लोहागलपुर गये। वहाँ सुवर्णजंघ राजा ने पुत्र को योग्य समझ, राजगद्दी पर बिठा, आप दीक्षा ग्रहण की।

वज्रजघ और श्रीमती के पुत्र-जन्म।

पुष्करपाल के सामन्तों की बगावत।

वज्रजघ और श्रीमती का सहायतार्थ आगमन।

इधर राजा वज्रसेन ने अपने पुत्र पुष्करपाल को राज्यलक्ष्मी सौंपकर दीक्षा अगोकार की और वह तीर्थङ्कर हुए। अपनी प्यारी श्रीमती के साथ भोग विलास या पेश-आराम करते हुए वज्रजघ राजाने, हाथी जिस तरह कमल को वहन करता है उसी तरह, राज्य का वहन किया। गंगा और सागर की तरह वियोग को प्राप्त न होने वाले और निरन्तर सुख भोग भोगने वाले उस दम्पति के एक पुत्र पैदा हुआ। इस बीचमें, सपा की भारी के समान महाक्रोधी, सीमा के सामन्त राजा पुष्करपाल के विरुद्ध उठ पड़े हुए। सर्प की तरह उन्हें घस में करने के लिए, उसने वज्रजघ को बुलाया। वह बलवान राजा उसकी मदद के लिए शीघ्र ही चल दिया। इन्द्र के साथ जिस तरह इन्द्राणी चलनी

है; उम्मी तरह पति में अचला भक्ति रखनेवाली श्रीमती अपने पति के साथ हो ली। आधी राह तय करने पर, अमावस्या की अंधेरी रात में चाँदनी का भ्रम करने वाला एक घातक पड़ोसा घन उन्हें मिला। राहगीरों के यह कहने पर, कि इस घनमें दृष्टिप्रिय सर्प रहता है, उन्होंने उस राह की छोड़कर दूसरी राह पकड़ी, अर्थात् वे दूसरे मार्ग से चले; क्योंकि नांतिग पुरग प्रसृत अर्थ में ही तत्पर होते हैं। पुण्डरीक की उपमा वाले राजा यज्ञजघ पुण्डरीकिणी नगरी में आये। उनके बल और साहाय्य से पुण्डरीक ने सारे साम्राज्य अपने आधीन कर लिये। विधि के जानने वाले पुण्डरीक ने, गुप्तकी तरह, राजा यज्ञजघ का मृत्यु सत्कार किया।

यज्ञजघ और श्रीमती की वापसी।

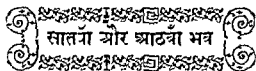
यज्ञजघ को बेराग्य।

पुण्डरीक मारा जाना।

दूसरे दिन श्रीमती के मार्ग की आशा लेकर, लक्ष्मी के साथ जिम तरह लक्ष्मीपति चरने हैं; उम्मी तरह यज्ञजघ राजा श्रीमती के साथ वहाँ से चला। यह शत्रुनाशन राजा जब सरकड़ों के घन के निकट आया, तब मार्ग के कुशांग पुण्डरीक ने उस से कहा,— 'अभी इस घन में दो मुनियोंको केन्द्र ज्ञान हुआ है; अतः देवताओं के जाने के उद्योग से, दृष्टिप्रिय सर्प विपहीन हो गया

है। वे सगरसेन और मुनिसेन नाम के, सूर्य चन्द्रमा के समान, दोनों मुनि इस समय भी इसी घनमें मौजूद हैं। वे दोनों ही सहोदर भाई हैं—एक माँके पेटसे पैदा हुए हैं। यह समाचार सुनते ही राजा वज्रजंघ अत्यन्त प्रसन्न हुए और जिन तरह विष्णु समुद्र में निवास करते हैं, उसी तरह उन्होंने उम्र चारों निवास किया। देवमण्डली से घिर कर उपदेश या देशना देते हुए उन दोनों मुनियों के भक्तिभार से मानों नष्ट हो गया हो, इन तरह उस राजा ने स्त्री सहित चन्दना की। उपदेश या देशना के शेष होने पर, उसने अन्न, चक्र और उपकरणों दिकों से मुनियों को प्रतिगम्या, अर्थात् अन्न चक्र आदि भेंट देकर उन का मत्कार किया। इस के बाद मनमें विचार किया—“वे दोनोंही सहोदर भाव में समान हैं। दोनों ही निष्काम निर्मम और निष्परिग्रह हैं। वे दोनोंही धर्य हैं पर मैं इनके जैसा नहीं हूँ अतः मैं अधर्य हूँ। अतः को ग्रहण करनेवाले और अपने पिता के समारग को अनुभग्न करनेवाले ये दोनों औरस पुत्र हैं और मैं वैसा न करने के कारण, बिक्री से खरीदे हुए पुत्र के जैसा हूँ। ऐसा होते हुए भी, यदि अतः ग्रहण करू तो अनुचिन्त नहीं है; क्योंकि दाक्षा, दीपक की तरह ग्रहण करने मात्रसे ही अज्ञान अन्धकार का नाश करती है अतः यहाँ से नगर में पहुँच पुत्र को राज्य सौंप, इस जिस तरह हंस की गति का आश्रय लेता है, मैं भी अपने पिता की गति का आश्रय लूँगा, अर्थात् मैं भी अपने

पिता का ही पदानुसरण करूँगा—पिताकी तरह दीक्षा लूँगा । पाछे मानो एक दिउ हो इस तरह, घत ग्रहण में भी पाद करनेवागी श्रीमती के साथ यह अपने लोहागंग नगर में आया । वहाँ, राज्य के लोभ से, उसके पुत्रने धन के जोर से मन्त्रिमण्डल को अपने हाथ में कर लिया । जल्दये सम्राजघासे कौन नहीं भेदा जा सकता ? सरेरे उठकर घत ग्रहण करना है और पुत्रको राज्य सौंपना है, यह चिन्ता करते करते धोमती और राजा सो गये । उन सुख से सुने हुए दम्पति के मार डालने के लिए, राजपुत्र ने जहर का धूर्त किया । घर में लगी हुई आग की तरह, उसे कौन निराग्न कर सकता है ? प्राण को छींचकर बाहर निकालने वाले माँरुडे के जैसे, उस त्रिधूप के धूर्त के नाक में घुसने से राजा, और रानी तन्काट मर गये ।



वे एही पुरुष वहाँ से देह छोडकर, उत्तर कृष्णक्षेत्र में युग्म रूप में पैदा हुए । 'एक चिन्ता में मरनेवालों की षषसी गति होती है ।' इस क्षेत्र के योग्य आयुष्य को पूरी करके, वे मर गये और मरकर दोनों ही श्रीधर्म देवलोक में परस्पर प्रेमो देव हुए ।

साथ बढने हैं, उन्ही तरह वे चारों बालक एक साथ बढने लगे । हमेशा साथ खेलनेवाले वे बालक—जिस तरह वृक्ष, मेघ के जठ को सोव लेता है उसी तरह—सब कला कलाप को साथ साथ ही ग्रहण करने लगे । श्रीमती का जीव भी, देवलोक से चय कर, उसी शहर में इश्वरदत्त सेठ का पेशा नामक पुत्र हुआ । पांच करण और छठे अन्त करण की तरह, वे छहों मित्र वियोग, रहित हुए । उन में सुविधि वैद्य का पुत्र जीवानन्द औपधि और रसनीप्य के पिपाक से अपने पिता सम्बन्धी अष्टाङ्ग आयुर्वेद का जानकार हुआ । जिस तरह हाथियों में पेरचत और नर ग्रहों में सूर्य्य अग्रगण्य या श्रेष्ठ है उसी तरह वह बुद्धिमान और निर्दोष त्रिद्याजाला नर वैद्या में अग्रणी या श्रेष्ठ था । वे छहों मित्र सहोदर भाइयों की तरह एक साथ खेलते और परस्पर एक दूसरेके घर पर इफ्ते होते थे । एक समय, वैद्य पुत्र जीवानन्द के घर पर वे सब बैठे हुए थे । उसी समय एक साधु भिक्षा उपाज्जनार्थ वहाँ आया । वह साधु पृथ्वीपाल राजा का गुणाकर नामक पुत्र था । उसने मॄ की तरह राज्य को त्याग कर, शम नाम्राज्य या चारित्र्य ग्रहण किया था । ग्रीष्म ऋतु की धूप से जिस तरह नदियाँ सूख जाती हैं उसी तरह तपश्चर्या के कारण वह खूब सूखकर बटि से हो गये थे । अथवा मौसम गरमा की तेज धूप के मारे, जिस तरह नदियों में अाप जॄ रह जाता है उसी तरह तप के कारण उन के वदन में भी अल्प रक्त मास रह गये थे । गरमी की नदियों की तरह व कृश वाय हो गये

थे। समय थे समय अपथ्य भोजन करने से, उन्हें एमि कुष्ट रोग हो गया था। यद्यपि उन के सारे शरीर में एमिकुष्ट फैल गया था—उनके सारे अङ्गमें कोढ़ धूना था और कीड़े किलकिलाने थे। तथापि वे किसी से दया न मागते थे, क्योंकि मोक्ष कामी लोग शरीर की उतनी पर्या नहीं करते—वे शरार की ओर से लापरवाही ही रहते हैं—वे शरीर को कोई चीज समझते ही नहीं।

मुनिचिकित्सा की तैयारी।

शोमुत्रिका के विधानसे, घर घर घूमने हुए उन साधु का, छठ के पारण के दिन, उहोने अपने दरवाजे पर आते देता। उस समय, जगत के अद्वितीय धैर्य स्वप्नशील जीवानन्द से महीधर कुमारने किसी कदर निलगी के साथ कहा—‘तुम रोग-परीक्षा में निपुण हो, औपचित्य हो और चिकित्सा कर्म में भी दक्ष हो, परन्तु तुम में दया का अभाव है। जिस तरह बेशर्या धनहीन को नजर उठाकर भी नहीं देखती, उन्नी तरह तुम भी निरन्तर स्तुति और प्रार्थना करनेवालों के सामने भी नहीं देखते। परन्तु त्रिवेणी और त्रिचाण्डील पुष्ट को एक मात्र धन का लोभी होना

साधु जब आहार ग्रहण करने के लिए गृहस्थों क घर जाय तब उस गाम्भ्र्य क आकार से जाना चाहिये, शास्त्रका यही विधान है। अगर वह सीधी पक्ति जायगा तो सम्भर है, बराबर क घर वाले, मालुम न होने से, साधुके भिन्न दान की तैयारी न कर सकें।

उचित नहीं। किसी समय धम्मार्थ चिकित्सा भी करनी चाहिए। निदान और चिकित्सा में जो तुम्हारी कुशलता है, उस के लिए प्रिया है; क्योंकि येमे रोगी मुनि की तुम उपेक्षा करते हो। महोदर कुमार की बातें सुन कर, विमान रत्न के रत्नाकर समान जीवानन्दने कहा—‘तुमने मुझे थोड़ा दिया, यह बहुत ही अच्छा काम किया। जगतमें प्रायः ब्राह्मण द्वेष रहित नर नहीं आते। धनिक अथशुभ नहीं होते, देहधारी तिरोग नहीं होते; मित्र इत्यादि रहित नहीं होते; विद्वान् धनज्ञान नहीं होते, गुणी गर्व रहित नहीं होते। खियाँ चपलता विहीन नहीं होती और राजपुत्र सदाचारी नहीं होते। यह महामुनि अत्रय ही चिकित्सा करने लायक है। लेकिन मेरे पास दवा का सामान नहीं है, यह अन्तराय रूप है। उस बीमारी के लिए जिन दवाओं की जरूरत है, उन में से मेरे पास ‘लक्ष्मण तैल’ है; परन्तु गोशीर्ष चन्दन और रत्नकमल मेरे पास नहीं हैं। इनको तुम लाकर दो। इन दोनों चीजों को हम लायेंगे, यह कह कर वे पाँचों चार बाजारको चले गये और मुनि अपने स्थान को चले गये। उन पाँचों मित्रोंने बाजारमें जाकर एक बूढ़े व्यापारी से कहा—‘हमें गोशीर्ष चन्दन और रत्नकमल दाम लेकर लाजिये। उस धनिक ने कहा—‘इन दानों चीजों का मूल्य एक एक लाख मुहर है। मूल्य देकर आप उन्हें ले जा सकते हैं परन्तु पहले यह पतलाइये कि उनकी बाण को किस लिए जरूरत है। उन्होंने कहा—‘जो दाम हों सो लाजिये और उन्हें हमें लाजिये। एक महात्माकी चिकित्साके लिए उनकी जरूरत है।

ही सेठ आश्चर्य्य चकित हो गया उस के नेत्र पट्टे से हो गये—
 यह हक्का बक्का होकर दैगता रह गया । गोमाञ्च ने उस के हृदय
 के आन्द का पता लगता था । यह अपने दिल में इन भाँति
 विचार करने लगा—‘बहो ! यहाँ तो इन सब का उमाद प्रमाद
 और धामदेव से भी अधिक मदपूर्ण यौधन और यहाँ इन की
 वयोवृद्धों के योग्य विवेक-पूर्ण मति ? इस उठनी जगानी में, इनमें
 वृद्धों के योग्य विवेक विचार पूर्ण मति-गति देखकर विस्मय होता
 है, मेरे जैसे बुढ़ापे से जर्जर शरीर वाले मनुष्यों के करने योग्य
 शुभ कामों की ये बरतें हैं और दमन करने योग्य भार की उठाते
 हैं ।’ ऐसा विचार कर वृद्ध घणिक ने कहा—‘हे भद्र पुरुषो ! इन
 गोशीर्ष चन्दन और कम्यलको ले जाइये । आप लोगोंका कल्याण
 हो । मूल्य की दरकार नहीं । इन वस्तुओंका धर्मरुपी अक्षय
 भूय में लूँगा, क्योंकि आप लोगोंने मुझे सहोदरके समान धर्म
 कार्य में हिस्सेदार बनाया है ।’ यह कह कर उसने दोनों चीनें उहें
 दे दी । इस के बाद, उस भाविक आत्मा वाले श्रेष्ठ सेठने दीक्षा
 लेकर परम पद लाभ किया ।

जीवानन्द वैद्य द्वारा मुनिकी चिकित्सा ।

अपूर्व और आश्चर्य्य चमत्कार ।

आरोग्य लाभ ।



इस तरह औषधि की सामग्री लेकर, महात्माओं में श्रेष्ठ थे

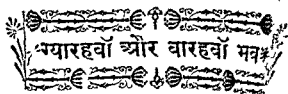
मत्पुरुष सर्वत्र दयासे ही काम लेते हैं। इस के बाद, जीवानन्द ने, अमृतरस समान प्राणी को जिलानेवाले, गोशीर्ष चन्दन का लेप करके मुनि की आश्वासना की। इस तरह पहले चमड़े के भीतर के कीड़े निकले। तब उन्होंने ने फिर तेल की मात्श की। उस से उदानमायु से जिस तरह रस निकलता है, उस तरह मांस के भीतर के बहुत से कीड़े निकल पड़े। तब, पहले की तरह फिर रत्न कमल उढाया गया। इसबार जिस तरह दो तीन दिन के दही के कीड़े बलता के ऊपर तिर आते हैं, उसी तरह कीड़े उस कमल पर तिर आये। उन्होंने वे फिर मरी हुई गाय पर डाल दिये। अहो! कैसा उस वैद्य का बुद्धि कौशल था। उसने कमाल किया। पीछे, मेघ जिस तरह गरमी से पीड़ित हाथी को शान्त करता है; उन्होंने ने उसी तरह गोशीर्ष चन्दन के रस की धारा से मुनि को शान्त किया। कुछ देर बाद, उन्होंने तीसरी बार तेल मर्दन किया। उस समय हड्डियों में रहनेवाले कीड़े भी बाहर निकल आये, क्योंकि बलवान पुरुष हष्ट पुष्ट हो तो यज्ञ के पींजरे में भी नहीं रहता। उन कीड़ों को भी रत्न कमल पर चढाकर, उन्होंने उन्हें भी गाय की लाश पर डाल दिया। सच है, नीच को नीच स्थान ही घटना है। पीछे उस वैद्य शिरोमणि ने परम भक्ति से, जिस तरह देवता की तिलेपन करते हैं उसी तरह, मुनि के गोशीर्षचन्दन का लेप किया। इस तरह चिकित्सा करने से मुनि निरोग और नवीन वान्तिमान होगये और उजाली हुई सोने की मूर्ति की तरह शोभा पाने लगे। अन्त

का पराग ग्रहण करता है, पर उन को बट्ट नहीं देता, उसी तरह वे भी गृहस्थों के घरसे आहार ग्रहण करते थे, पर उनको बट्ट हो ऐसा काम नहीं करते थे। सुभट्ट या थोड़ा जिस तरह प्रहार को सह सकते हैं, उसी तरह वे धैर्य को अगलभया कर, भूप, प्यास और धूप प्रभृति के परिपह या बट्ट को सहन करते थे। मोहगज मेनापतियों के जैसे चारों कथायों को उद्धों ने क्षमा प्रभृति अर्थों से जीत लिया था। पीछे उन्होंने द्रव्य और भाव से मंलेखना करके, कर्मरूपी पत्र को नाश करने में यत्नयत् अनशन व्रत ग्रहण किया। शेषमें, समाधि को भजनेवाले उन लोगोंने पञ्च परमेष्ठी का स्मरण करते हुए अपने अपने शरीर त्याग दिये। महात्मा लोग मोह रहित ही होते हैं, अर्थात् महापुरुषों में मोह नहीं होता, संसार के उत्तम से उत्तम पदार्थ तो क्या चीज हैं उन्हें अपने दुर्लभ शरीर से भी मोह नहीं होता।



वे उद्धों महात्मा वहासे देहत्याग कर, अच्युत नाम के धारद्वयें देवलोक में, इन्द्रके सामानिक देव हुए। इस प्रकार के तपका साधारण फल नहीं होता। याईस सागरोपम आयुष्य पूरी करके

व वहाँ से च्यत्रे अघाम् उनका उस लोक से दूमरे लोकके लिये
 पत्र हुआ, क्योंकि मोक्ष के लिये और किसी भी अगहमें स्थाना
 नहीं है, अघाम् जयनक मोक्ष नहीं होती, तबतक प्राणी को लिये
 शक्ति नहीं मिलती। यह एक स्थान में सदा नहीं रहता। एक लोच
 से दूमर लोक में दूमरे से तीसरे में,—इसी तरह घूमा जाता है।
 एक शरीर छोड़ता है, और दूमरा शरीर धारण करता है। शरीर
 त्यागने और धारण करने का अगह एकमात्र मोक्षमे है।
 मक्ष हा जाने से प्राणी को फिर मरना और जन्म लेना नहीं पड़ता।



वज्रसेन के पुत्र-जन्म ।

यज्ञनाम को राजगद्दी ।

वज्रसेन को वैराग्य ।

जम्बू द्वीप के पूव, त्रिदेह लिये पुच्छर्जास्थ में, लघण-
 समुद्र के पास, पुण्डरीकिनाम की लक्ष्मी। इस गद्दी के राजा
 वज्रसेन की धारणी नाम की राजा की लक्ष्मी, उनमें से वीर
 अनुम से, पुत्ररूप में जन्म लिया। अज्ञे औरानन्द घेण,
 चतुदश महास्थलों से सुक्ति अज्ञेयक पहल

राजपुत्र का जीव बाहु नाम का दूसरा पुत्र हुआ। मन्त्री पुत्र का जीव सुबाहु नाम का तीसरा पुत्र हुआ। श्रेष्ठी पुत्र और सार्वभौम पुत्रके जीव पीठ और महापीठ नाम के पुत्र हुए। केशव का जीव सुयशा नाम का अन्य राजपुत्र हुआ। वहाँ सुयशा वचपासे ही वज्रनाम का आश्रय करने लगा। कहा है पूर्वाजमसे सम्बन्ध हुआ स्नेह व ध्रुत्वमें ही र्थायता है अथात् जिन में पूर्वाजम में प्रीति होती है, उनमें इस जन्म में भी प्राति होती ही है—पूर्वाजम की प्राति इस जन्म में भी धनिष्ठना ही कराती है। माता छ वर्षधरः पर्यन्तों ने पुरुष रूपमें जन्म लिया हो, इस तरह वे राजपुत्र और सुयशा अनुक्रम से बढन लगे। वे महा पराक्रमी राजपुत्र बाहुर के रास्ता में घोड़े कुदान थे इस से अनेक रूपधारा रैवन्त के प्रिलास को धारण करने लगे। कलाओं का अभ्यास कराने में उनके कलाचार्य साक्षीभूत ही हुए। क्योंकि महान् पुरुषों या बड़े जेगों में गुण खुद बखुद ही पैदा होजाते हैं, मिलान को विशेष कष्ट उठाना नहीं पडता। शिला की तरह बड़े बड़े पर्यन्तों को व. अपने हाथों से तोलते थे। इससे उन की बन् वीडा किसी से पूरी न होती। इसा बीच में लोकान्त्रिक देवताओं ने आ

ॐ वष = नेत्र धर = धारणा करनेवाला, अतः वष धर = तंत्र का धारण करनेवाला। शुभ, द्विमवन्त, महा द्विमवन्त निम्न शिली रूपी और नीलवन्त, — यद् मत हीमवन्तादि क्षेत्रों को जुदा कर रहे, इससे वष धर पवत कहलाते हैं।

† साकारा तर्क देवताओं का ऐसा स्तान्तन आचार ही है। अथात् सदा से उनकी वही रीति है।

कर राजा यज्ञसेन ने प्रशिक्षिणी—‘स्यामिन् ! धर्मतीय प्रवर्त्ताओ इस के बाद यज्ञसेन राजा ने यज्ञ जैसे परानामी यज्ञनाम का गद्दीपर सिंहाया और मैघ जिम तरह जल से पृथ्वी को नृत करने हैं ; उन्ही तरह उसने साम्प्रतिक क्षान से पृथ्वी को नृत कर दिया । देव, असुर और मनुष्यों के स्वामियों ने राजा यज्ञ सेन का निगमोत्सव किया और राजा ने, चन्द्रमा के आकाश का अलङ्कन करने की तरह, उद्यान को अलङ्कन किया, अथात् उस के राज्य छोड़कर जाने का उत्सव देवराज, अराराज और नृपालो ने किया और राजा यज्ञसेन ने, नगर के बाहर यमीत्रे में डेरा डाला और वहाँ ही उन म्ययंजुद्ध भगवान् न दीक्षा ली। उसी समय उन को मन पर्याय छान उत्पन्न हुआ पाठे यह आत्म स्वमाय में लीन होनेवाले, समता रूप छ-के धनी ममताहीन, निष्परिग्रही और नाना प्रकार के अस्त्रों के धारण करनेवाले प्रभु पृथ्वीपर विहार करने लगे अथर्वज्ञान में परिभ्रमण करने लगे । इधर यज्ञनाभ ने अपने अस्त्रों को अलग अलग देश दे दिये और लोकपालों से सिंहास इष्ट सोदना है उसी तरह यह भी रोज सेवा में अस्त्रों के चारों भाइयों से साहने लगा । सूर्य के सारथी बनना तथा सुयशा उस का सारथी हुआ । महारथी हुए का सारथी अपने योग्य ही नियुक्त करना चाहिये।

वज्रनाभ चक्रवर्ती का वर्णन ।

वज्रनाभ भगवान का आगमन ।



वज्रनाभ को वैराग्य ।

अब वज्रसेन भगवान् को, आत्मा के ज्ञानादि गुणों को नष्ट करने वाले घाति कम* रूपी मल के नाश होने से, दर्पण के ऊपर का मैल नाश होने से जिस तरह दर्पण में उज्ज्वलता होती है, उसी तरह उज्ज्वल ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

उसी समय वज्रनाभ राजा की आयुधशाला अथवा अस्त्रागार में, सूयका भी तिरस्कार करनेवाले, प्रभाकर की प्रभा की भी नीचा दिखानेवाले, घब्रने प्रवेश किया । और तेरह रत्न भी उन को उसी समय मिल गये । जल के प्रमाण से जिस तरह पत्थनी ऊंची होती है उसी तरह सम्पत्ति भी पुण्य के प्रमाण से मिलती है । जल जितना ही ऊँचा होता है, कमलिनो भी उतनीही उंची होती है । पुण्य जितना ही अधिक होता है, सम्पत्ति भी उतनी ही अधिक मिलती है । पुण्य जितना ही कम होना है, सम्पत्ति भी उतनी ही कम मिलती है । सुगन्ध से खींचे गये भीरों की तरह ; प्रयत्न पुण्यों से लीची हुई निधियाँ उन के घर की टहल करने लगीं अर्थात् पुण्ययत्न से नौ निधियाँ उसके घर में रहने लगीं ।

* आत्मा के ज्ञानादि गुणों को घात करने या नष्ट करने वाच जाना धरणी । दश भावराशी मोहनी अन्तराय — य चार कम घाति कम कह सारत हैं ।

इसके बाद उसने सारी पुष्कलावती जीतली तब सब राजाओंने उसके चक्रवर्त्तियों का अभिषेक किया—उसे चक्रवर्त्ती माना और उस की वश्यता स्वीकर की—अपने तर्द उसके अधीन माना । उस भोगों को भोगनेवाले चक्रवर्त्तियों की धर्मबुद्धि दिनोंदिन इस तरह अधिकाधिक बढ़ने लगी मानो वह उसकी बन्ती हुई उम्रसे स्पृहां करके बढ़ती हो अर्थात् ज्यों ज्यों उसकी उम्र बढ़ती थी, त्यों त्यों धर्मबुद्धि उम्रसे पीठेरह जाना नहीं चाहती थी । जिस तरह ढेर जलसे घेल् बढ़ती हैं उसी तरह भय वैराग्य सम्पत्ति से उसकी धर्मबुद्धि पुष्ट होने लगी, इसी बीचमें, साक्षात् मोक्ष हो इस तरह परमानन्द करनेवाले भगवान् धम्मसेन घूमते घूमते वहा आ पहुँचे और अल्प वृक्षके नीचे बैठकर उन्होंने धर्मदेशना या धर्मोपदेश देना आरम्भ किया । चक्रवर्त्तियों वज्रनाभने ज्योंही प्रभुसे आने की खबर सुनी त्योंही वह अपने प्रधुओं सहित—राजहंस की तरह—जगत्त्रु जिनेश्वर के चरण कमलों में, बड़ी प्रसन्नता से जा पहुँचा । तीन प्रदक्षिणा देकर और और जगदीश को नमस्कार करके, छोटा भाई हो इस तरह इन्द्रके पीछे बैठ गया । श्रावकोंमें मुख्य श्रावक वह चक्रवर्त्तियों—भव्य प्राणियों के मन रूपी सीप में रोध रूपी माती पैदा करनेवाली, स्वाति नक्षत्र की वर्षा के समान प्रभु की देशना सुनने लगा । जिस तरह गाना सुनकर हिरनका मन उतसुक हो उठता है, उसी तरह वह भगवान् की घाणी को सुनकर उतसुक-मन हो उठा और इस भाँति विचार करे लगा — “यह अपार संसार समुद्र की तरह दुस्तर है—इसका पार

कठिन है, पर इसने पार लगाने वाले लोकनाथ मेरे पिताही हैं। यह अंधेरे की तरह पुरुषों को अत्यन्त अधा करनेवाले मोह को सब तरफसे भेदनेवाले जितेश्वर हैं। चिरबाल से संचित कर्म राशि असाध्य ध्याधि स्वरूपा है। उसकी चिन्तित करनेवाले यह पिताही हैं। बहुत क्या कहें? करुणारूपी अमृतके सागर-जैसे यह प्रभु दुःख केशों को नाश करनेवाले और सुखोंके अद्वितीय उत्पन्न करनेवाले हैं अर्थात् यह प्रभु करुणामागर हैं। इनके समान दुःखोंके नाश करने और सुखोंके पैदा करनेवाला और दूसरा कोई नहीं है। अहो! ऐसे स्वामीने होनेपर भी, मोहांधों में मुख्य मीने अपने आत्मा को कितन समय तक चंचित किया इस तरह विचार कर, चमत्तोंने धर्म चमत्तों प्रभुसे भक्ति पूजक गद्गद् होकर कहा—“हे नाथ! घास किस तरह खेतको खराब कर देता है, उसी तरह अर्थसाधन को प्रतिपादन करने वाले नीतिशास्त्रोंने मेरी मति बहुत समय तक भ्रष्ट कर दी। इन्हीं तरह मुझ विषय लोलुपने नाट्य कर्मसे इस आत्माको, नट की तरह, अनेक धार नचाया; अर्थात् अनेक प्रकार के रूप धर धर कर, मीने आत्मा को अनेक नाच नचाये। यह मेरा साम्राज्य अर्थ और काम को निवन्धन करनेवाला है। इसमें जो धर्म चिन्तन होता है, वह भी पापानुबंधक होता है। आप जैसे पिता का पुत्र होकर, यदि मैं संसार समुद्र में भ्रमण करूँ, तो मुझमें और साधारण मनुष्य में क्या भिन्नता होगी? इसलिये जिस तरह मीने आपके दिये हुए साम्राज्य का पालन किया, उसी तरह अथ मैं

संयम साम्राज्य का भी पालन करूँगा, अतएव आप मुझे उमे दीजिये ।”

वज्रनाभ का टीचा ग्रहण करना ।

वज्रसेन को निर्वाणप्राप्ति ।

इसके बाद अपने घंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान चक्रवर्त्तनि अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, भगवान् से व्रत ग्रहण किया । पिता और बड़े भाई द्वारा ग्रहण किये हुए व्रत को उसके याहु प्रभृति भाइयोंने भी ग्रहण किया क्योंकि उनका कुलजन्म ऐसाही था— उनके कुल में ऐसाही होता आया था । सुयशा सारथी ने भी— घमके सारथी की तरह—अपने स्वामी के साथ ही भगवान् से दीक्षा ग्रहण की; क्योंकि क्षेत्रक स्वामी की चालपर चलनेवाले ही होते हैं । यह वज्रनाभ मुनि थोड़े ही समय में शास्त्र ममुद्र के पारगामी होगये । इससे मानो प्रत्यक्ष पुरु अङ्गुणों को प्राप्त हुई जगम द्वादशांगी हो, ऐसे मान्द्रूम होने लगे । याहु वगैर मुनि भी ग्यारह अङ्गों के पारगामी हुए । क्षयोपशमसे विचित्रता को प्राप्त हुए गुण सम्पत्तिया भी विचित्र प्रकारकी ही होती हैं । ज्योत् पूवके क्षयोपशम के प्रमाणसे ही गुण प्राप्त होते हैं । वे स्र सन्तोष रूपी धनके धनी थे, तो भी तीर्थङ्कर की चरण सेवा और दुष्कर तपश्चर्या करने में असन्तुष्ट रहने थे । उन्हें संसारी पदार्थों की तृष्णा न थी, सत्रमें सन्तोष था, मगर तीर्थङ्कर की चरण सेवा और कठिन तप से उन्हें सन्तोष न होता था ।

इन की जितना करते थे, उतनेसे उन की शक्ति न होती थी वे इन्हें और भी अधिक करना चाहते थे। वे मासोपवास आदिक तप करते थे, तोमी निरन्तर तीर्थङ्कर के घाणी रूपी अमृत के पान करने से उन्हें शक्ति न होती थी। भगवान् वज्रसेन तीर्थङ्कर, उत्तम शुद्ध ध्यान का आश्रय कर, ऐसे निर्वाण पद को प्राप्त हुए, जिन का देवताओं ने महोत्सव किया।

वज्रनाभ मुनि की महिमा ।

अनेक प्रकार की लब्धियाँ ।

अथ, धम के वज्रु हों जैसे वज्रनाभ मुनि, द्रव धारण करने वाले मुनियों की साथ लेकर पृथ्वीपर विहार करने लगे अर्थात् पृथ्वी पर्यटन करने लगे। जिन तरह अन्तरात्मा से पाँचों इन्द्रियों सनाथ होता है; उसी तरह वज्रनाभ स्वामी से बाहु प्रभृति चारों भाद्र और सारथी—ये पाँचों मुनि सनाथ होगये। चन्द्रमा की कान्ति से जिस तरह नीपथियाँ प्रकट होती हैं; उसी तरह योगके प्रभाव से उन्हें खेलादि लब्धियाँ प्रकट हुई, कोटि वेध रससे जिस तरह बहुतसा ताम्बा सोना हों जाता है; उसी तरह उनका जरासे श्लोष्म की मालिश करने से फोटी की काया सुवर्णवत् कान्तिमयी हो जाती थी, अर्थात् उनकी नाक से निकलने हुए रहँट की मालिश से फोटी की काया सोने के समान होजाता थी। उन के काँ, भाक और अङ्गों का मेल सब तरह के रोगियों के रोगों को शांति करनेवाला और कस्तूरी के समान

सुगन्धित था। अमृत कुण्ड में स्नान करने से रोगी जिस तरह आरोग्य लाभ करते हैं; उसी तरह उनके शरीर के ठूने मात्र से रोगी लोग निरोग होते थे। विष तरह सूयका तेज अधिकार का नाश करता है; उसी तरह धरसाती और नदियों का बहने वाला जड़ उनके स्नानसे सब रोगों को नाश करता था। गन्ध हस्ती के मूत्र की गन्धसे जिस तरह और हाथी भाग जाते हैं; उसी तरह उनके शरीर से लगकर आये हुए वायु से विष प्रभृति के दोष दूर भाग जाते थे। यदि, किसी तरह, कोई विष मिला अनादिक पदार्थ उनके मुख या पात्र में आ जाता था, तो अमृतके समान विषहीन हो जाता था। जहर उतारने के मन्त्राक्षरों की तरह, उनके ध्वनों को याद करने से विष व्याधिस पीडित मनुष्यों की पीडा नाश हो जाती थी। जिस तरह सीपी का जड़ मोती हो जाता है उसी तरह उनके तापून, घाल दानों और उनके शरीर से पैदा हुए मेल प्रभृति पदार्थ शीघ्ररूप में परिणत हो जाते थे।

फिर सुंके नाँव में भी डोरे की तरह घुस जाने की सामर्थ्य जिससे ही जाती है, वह अणुत्व शक्ति उन को प्राप्त होगी अथवा इच्छा करने मात्र से वह अपना छोटे से-छोटा रूप बना सकते थे। उन को अपने शरीरका बड़ा करने की वह महत्वशक्ति प्राप्त होगी, जिससे वह अपने शरीर को इतना बड़ा कर सकते थे कि जिस से मेरु पर्यंत उन के धुनतक आये। उन्हें यह लघुत्व शक्ति प्राप्त होगी, जिस से वह अपने शरीर को ^{किसी} ^{रूप} से

मा हका कर सकते थे। उन्हें यह शुक्ल शक्ति प्राप्त होगई, जिससे यह अपने शरीर को, इन्द्रादि देवतानों के लिए भी असहनीय, यज्ञसे भी भारी बना सकते थे। उन्हें ऐसी प्राप्ति शक्ति प्राप्त होगई, जिससे यह, पृथ्वीपर रहनेपर भी वृक्षों पत्तों के समान मरके अग्रभाग और गक्षत्र आदिकों को छू सकते थे। अर्थात् पृथ्वीपर पड़े हुए यह आकाश के तारों को हाथों से छू सकते थे। उनको ऐसी प्राकाश्य शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे यह जलमें चलने की तरह चल सकते थे और जलकी तरह पृथ्वीमें उन्मज्जन निमज्जन कर सकते थे। उन को ऐसी इशत्य शक्ति प्राप्त होगई थी जिससे यह चन्द्रपत्तों और इन्द्र की शक्ति को घटा सकते थे। इनको ऐसी अपूर्व चशित्व शक्ति प्राप्त हो गई थी, जिससे वह स्वतंत्र और दूर जन्तुओं को भी घरा में कर सकते थे। उन्हें ऐसी अप्रतिघाती शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे यह छद्म की तरह पर्वत के पाल से निशक गमन कर सकते थे। उन को ऐसी अप्रतिहन अन्तर्धान होने की सामर्थ्य होगई थी कि यह हवा की तरह सब जगह अदृश्य रूप धारण कर सकते थे और ऐसी काम रूपन्ध शक्ति प्राप्त होगई थी जिससे यह एक ही समय में अनेक प्रकार के रूपों से लोक को पूर्ण कर सकते थे।

एक अर्थ रूप बीज से अनेक अर्थ रूप बीज जान सके ऐसी बीज बुद्धि, कोठी में रखे हुए धान्य की तरह पदले सुने हुए अर्थ को याद किये बिना यथास्थितरूपे ऐसी कोष्ट बुद्धि और आदि

अन्त या मय का एक पद सुनतेसे तत्काल सार ग्रन्थ का घोष होजाय, ऐसी पदानुसारिणी लघि उनको प्राप्त हो गई थी। एक वस्तु का उद्धार करके अन्तमुहूर्त्त में समस्त श्रुत समुद्र में अगगाहन करने की सामर्थ्य से वे मनोयली लघि वाले हुए थे। एक मुहूर्त्त में मूलाक्षर गिनेने की लीला से सय शास्त्र को घोष डालने थे, इसलिये वे वाग्बली भी होगये थे। चिरकालक समाधि या कापोत्सर्ग में स्थिर रहते थे किन्तु उन्हें भ्रम—ध्यान और ग्लानि नहीं होती थी, इससे वे कायबली भी हुए थे। उनके पात्र के कुन्डिन भद्रमें भी अमृत क्षीर, मधु और घीवारस आनेसे तथा दुग्ध से पीडित मनुष्यों को उन की वाणी अमृत, क्षीर, मधु और घृत के समान शक्तिदायिनी होती थी, इससे वे अमृत क्षीर मायाज्यात्रि लघि वाले हुए थे। उन के पात्र में रखा हुआ थोड़ा सा अन्न भी दान करने से अक्षय होजाता था इसलिए उन को अक्षीण महानमी लघि प्राप्त हो गयी थी। तीर्थद्वार की समाधी तरह थोड़ी सी जगह में भी वे अमंल्य प्राणियों को रिठा सकते थे। इसलिये वे अक्षीण महालय लघि वाले थे और एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का रिषय भी प्राप्त कर सकते थे, इसलिये वे संमिन्न श्रोत लघि वाले थे। उन की जत्राचरण लघि प्राप्त हो गई थी, जिससे वे एक कदम में रुचकद्वीप पहुँच सकते थे और वहाँ न वापस लौटते समय पहले कदम में नन्दी श्वर द्वीप में आते और दूसरे कदम में जहाँ से चले थे वहाँ आ

सकते थे, यानी वे अपने तीन डगों में इतना लम्बा सफर तय कर सकते थे। यदि वे ऊँचे जाना चाहते, तो एक डग में मेरु पर्वत स्थित पाडुक उद्यान में जा सकते थे और वहाँ से वापस लौटते समय एक डग में नन्दन वन में और दूसरे डग में उत्पात भूमि की तरफ आ सकते थे। त्रिधाचारुण लक्ष्मि से वे एक फलाँग में मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरी फलाँग में नन्दीश्वर द्वीप में जा सकते थे और वापस लौटते समय एक फलाँग में पूर्व उत्पात भूमि में आ सकते थे। उर्ध्वगति में, जघाचरण से विपरीत गमनागमन करने में शक्तिमान थे। उनको आसीविष लक्ष्मि भी प्राप्त हो गई थी, इसके सिवा निग्रह अनुग्रह कर सकने वाली और भी बहुत सी लक्ष्मियाँ उन्हें मिल गई थीं, परन्तु इन लक्ष्मियों से वे काम न लेते थे, उन्हें उपयोग में न लाते थे क्योंकि मुमुक्षु पुण्यों को मिलो हुए चीज में भी आकांक्षा नहीं होती।

बीस स्थानों का स्वरूप।

अप वज्रनाभ स्वामी ने, बीस स्थानों की आराधना से, तीर्थङ्कर नाम गोत्रकर्म दृढता से उपार्जन किया। उन बीस स्थानों में पहला स्थान— अर्हन्त और अरहन्तों की प्रतिमा पूजा से, उनके अमर्णवाद का निषेध करने से और अद्भुत अर्थ वाली उनकी स्तुति करने से आराधना होती है (अरिहन्त पद)। मन्दि स्थान में रहने वाले सिद्धों की भक्ति के लिए जागरण उत्सव करने से तथा यथार्थ रूप से सिद्धत्व का कीर्तन करने से दूसरे

स्थान की आराधना होती है (सिद्ध पद) । घाल, स्नान और नव दीक्षित शिष्य प्रभृति यतियों पर अनुग्रह करने से और प्रवचन या घनुविध संघ का वात्सल्य करने से तीमरं स्थापन की आराधना होती है (प्रवचन पद) । और यदुमान पूज्यक आहार, औषध और कपड़े यगिर के दान से गुरु का वात्सल्य करना चौपा स्थानक (आश्रय पद) है । घीस घव की दाक्षा पयाय वाले पर्यय स्थविर, साठ वर्ष की उम्र वाले (वय स्थविर), और ममयायांग के धारण करने वाले (धृत स्थविर) की भक्ति करना—पाचरां स्थानक (स्थविर पद) है । अर्थ की अपेक्षा में, अपने से बहुधुन धारण करने वालों को अन्न घटादि क दान योग्य न वात्सल्य करना—छटा स्थानक (उपाध्याय पद) है । उत्कृष्ट तप करने वाले मुनियों की भक्ति और विधामणा से वात्सल्य करना,—सातवां स्थानक (साधु पद) है । प्रश्न और वाचना घगेर से गिन्तर हादशागी रूप श्रुत का सूत्र अर्थ और उन दोनों से ज्ञानीपयोग करना,—आठवां स्थानक (ज्ञानपद) है । शंका प्रभृति दोष से रहित, स्थैर्य्य प्रभृति गुणों से भूयित और शमादि लक्षण वाला सम्यग्दर्शन—नयां स्थानक (दर्शनपद) है । ज्ञान दर्शन, चरित्र और उपचार—इन चार प्रकार के कर्मों को दूर करवां वाला विनय,—दसवां स्थानक (विनय पद) है । इच्छा मिथ्या करणादिक दशविध समाचारी का योग में और आवश्यक में अनिचार रहित यग करना,—ग्यारहवां स्थानक

सकते थे, यानी वे अपने तीनों डगों में इतना लम्बा सफर तय कर सकते थे। यदि वे ऊँचे जाना चाहते, तो एक डग में मेरु पर्वत स्थित पाडुष उद्यान में जा सकते थे और वहाँ से वापस लौटते समय एक डग में नन्दन वन में और दूसरे डग में उत्पात भूमि की तरफ आ सकते थे। विप्राचारुण लक्षि से वे एक फलांग में मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरी फलांग में नन्दीश्वर द्वीप में जा सकते थे और वापस लौटते समय एक फलांग में पूर्व उत्पात भूमि में आ सकते थे। उर्ध्वगति में, जघाचरण से विपरीत गमनागमन करने में शक्तिमान थे। उनको आसीषिय लक्षि भी प्राप्त हो गई थी, इसके सिया निग्रह अनुग्रह कर सकने वाली और भी बहुत सी लक्षियाँ उन्हें मिल गई थीं परन्तु इन लक्षियों से वे, काम न लेते थे, उन्हें उपयोग में न लाते थे, क्योंकि मुमुक्षु पुरुषों को मिली हुई चीज में भी आकांक्षा नहीं होती।

बीस स्थानों का स्वरूप ।

शय चन्द्रनाभ स्वामी ने, बीस स्थानों की आराधना से, तीर्थङ्कर नाम गोत्रकर्म दृढता से उपार्जन किया। उन बीस स्थानों में पहला स्थानक—अर्हन्त और अरहन्तों का प्रतिमा पूजा से, उनके अवर्णनाद का निषेध करने से और अनुभुत अर्थ वाली उनकी स्तुति करने से आराधना होती है (अरिहन्त पद)। सिद्धि स्थान में रहने वाले सिद्धों की भक्ति के लिए जागरण उत्सव करने से तथा यथार्थ रूप से सिद्धत्व का कीर्तन करने से दूसरे

स्थान की आराधना होती है (सिद्ध पद) । बाल, प्लान और मय दीक्षित शिष्य प्रभृति यनियों पर अनुग्रह करने से और प्रयत्न या अनुविध संघ का वात्सल्य करने से तीसरे स्थानक की आराधना होती है (प्रयत्न पद) । और यद्गुमान पूर्यक आहार, औषध और कपड़े धोकर, वे दान से गुरु का वात्सल्य करना भीथा स्थानक (आचार्य पद) है । बीस वष की दीक्षा पयाय वाले पर्यय स्थानिक साठ वष की उम्र वाले (वष स्थानिक), और समवायाग के धारण करने वाले (धुन स्थानिक) की भक्ति करना — पाठ्याँ स्थानक (स्थानिक पद) है । शर्भ का अपेक्षा में, अपने से बहुधुन धारण करण वालों को अन्न घट्टादि के दान धोकर, स वात्सल्य करना—छठा स्थानक (उपाध्याय पद) है । उत्कृष्ट तप करने वाले मुनियों की भक्ति और विश्रामणा से वात्सल्य करना,—सातवाँ स्थानक (साधु पद) है । प्रभ और वाचना धोकर से निगन्तर द्वादशांगी रूप धुन का सूत्र अथ और उन दोनों से शानोपयोग करना —आठवाँ स्थानक (ज्ञानपद) है । शंका प्रभृति दोष से रहित, स्वैर्य्य प्रभृति गुणों से भूषित और शमादि लक्षण वाला सम्यग्दर्शन—नवाँ स्थानक (दृग्गणपद) है । ज्ञान दर्शन, चारित्र्य और उपचार—दसवाँ प्रकार के कर्मों को दूर करण वाला वितय,—दसवाँ स्थानक (वितय पद) है । इच्छा मिथ्या करणादिक दशविध समाचारी का योग में और आवश्यक में अतिचार रहित यत्न करना,

तीर्थद्वार नाम कर्म का उन्मूलन ।

बारहवें भव की समाप्ति

इस काम अभ्यासकों में से एक एक पद का आराधन करता भी तीर्थद्वार नाम कर्म के दन्त का कारण है। परन्तु घन्ननाम भागवान् ने तो इस तरह पदों का आराधा करके तीर्थद्वार नाम कर्म का दन्त किया। यादुमुनि ने साधुओं का धैर्यायस करने से चतुर्थियों के भोग पत्र को देनाग कर्म उपाजन किया। तस्वी महारियों की विश्रामणा करनेवाले सुबाहु मुनि ने लोको चर यादुवत् उपाजन किया। तब घन्ननाम मुनि ने कहा— 'अहो ! साधुओं की धैर्यायस और विश्रामणा करने वाले ये यादु और सुबाहु मुनि धन्व है।' उनकी ऐसी प्रशंसा से पीठ और महापीठ मुनि विचार करने लगे— जो उपकार करने वाले हैं उन्हीं की यही प्रशंसा होती है, अग्न दोनों आगम शास्त्र के अध्ययन और ध्यान में लगे रहने से कुछ मा उपकार न कर सके इसलिये अपनी प्रशंसा कीत करे! अथवा सब लोग अपने काम करने वाले को ही प्रशंसा करते हैं। इस तरह माया मिथ्यात्व ने युन इया करने से पाँचे हुए दुष्कृत्य को आगेचत न करने से, उन्हीं की नाम कर्म—स्त्रीयने की प्राप्ति रूप कर्म उपाजना किया। उन छहों महारियों ने अनिचार रहित और लज्ज की धारा के

समान प्रव्रज्या बौ चौदह लाख पूर्ण तक पालन किया। पीछे वे छहों धीरमुनि दोनों प्रकार की सलेषता पूर्यक पादोपगमन अनशन अंगीकार करके, सर्वार्थ सिद्धि नाम के पाचमे अनुत्तर त्रिमान में तैतीस सागरोपम आयुवात्रे देवता हुए।





दूसरा सर्ग

सागरचन्द्र का वृत्तान्त ।

सागरका राजभुवन में सत्कार ।



स जम्बूद्वीप में, पश्चिम महा विदेह के अन्दर, शत्रुओं से अपराजित, अपराजिता नामकी नगरी थी। उस नगरी में, अपने बल पराक्रम से जगत् को जीनेवाला और लक्ष्मी में ईशानेन्द्र के समान ईशानचन्द्र नामका राजा था। वह एक बहुत बड़ा धनी चन्द्रनदास नामक सेठ रहता था। वह सेठ धमात्मार्यों में अग्रणी और सत्कार को आनन्दित करने में चन्द्रन के समान था। उसके जगत् के नेत्रों को सुजी करने वाला सागरचन्द्र नामका पुत्र था। जिस तरह चन्द्रमा समुद्र को आहादित और आनन्दित करता है उसी तरह वह अपने पिता को आनन्दित और आहादित करता था। स्वभाव से ही सरल, धार्मिक और विदेशी भागरचन्द्र सारे शहर का

एक मुग्धमंडा हो रहा था। एक समय जबकि, सामंत राजा लोग इशागचन्द्र राजा के दशा और चाकरी के लिये आकर उस के दर्द मिर्द बैठे हुए थे, तब वह राजभंग में गया। राजा ने भी उस के पिता की तरह उसका शासन और पाप इलायची प्रभृति से पूब आदर-सम्मान किया और उसे स्नेह दृष्टि से देगा।

वसन्तागमन ।

उस समय एक मङ्गल पाठक राजद्वार में आकर, शंखध्वनि का पराजित करनेवाली वाणी से इस तरह कहने लगा— 'हे राजन् ! आज आप के बाग में उद्यान पालिका या मालिन की तरह अनेक प्रकार के फूलों की सजावटवाली वसन्त लक्ष्मी शोभित हो रही है। इन्द्र जिस तरह नन्दन वन की सुशोभित करता है, उसी तरह आप भी पिले हुए फूलों की सुगन्ध से दिशाओं के मुख को सुगन्धित करनेवाले उस वगीचे को सुशोभित कीजिये।' मङ्गल पाठक की उपरोक्त बात सुनकर, राजा ने द्वारापाल को हुपम दिया— 'अपने शहर में ऐसी घोषणा करा दो कि कल सुबेरे सब लोग राज बाग में एकत्र हों।' इसने बाद राजाने स्वयं सागाचन्द्र की भासा दी— 'आप भी आइयेगा।' स्वामी की प्रसन्नता के यही लक्षण हैं। पीछे राजा से छुट्टी पाकर सागुकार या लडका बड़ी पुशी के साथ अपने घर आया। वहाँ बकर उसने अशोकदत्त नाम के अपने मित्र से राजाका सम्बन्धी सारी बात कही।

सागर और अशोक वाग में ।

सागरचन्द्र की बहादुरी ।

प्रियदर्शना की रत्ना ।

दूसरे दिन सवेरे ही राजा अपने परिवार समेत वाग में गया । वहाँ नगर के लोग भी आये थे, क्योंकि 'प्रजा राजा का अनुसरण करनेवाली होती है।' मलय पत्र के साथ जिस तरह वसंत श्रुतु आती है उसी तरह सागरचन्द्र भी अपने मित्र अशोकदेव के साथ वाग में पहुँचा । कामदेव के शम्भु में रहने वाले कामी पुरुष—फूलतोड़-सोड़कर नाच-गान घोंघर में लग गये । स्थान स्थान पर इकट्ठे होकर क्रीडा करते हुए नगर निवासी, निवास किये हुए कामदेवकारी राजा के पडाव की मुग्घना करने लगे । कदम कदम पर गाने घजाने की ध्वनि इस तरह उठने लगी, गोया दूसरी इन्द्रियों के त्रिपयों को जीतने के लिये उठी हों । इतने में, पास के किसी वृक्ष की गुफा में से "रक्षा करो, रक्षा करो" की आवाज किसी ट्टी के कठ से अकस्मात् निकली । उस आवाज के कान में पडते ही, उस से आकर्षित हुए के समान सागरचन्द्र "यह क्या है!" कहता हुआ संभ्रम के साथ वहाँ दौड़ा गया । वहाँ जाकर उसने देखा कि, जिस तरह ध्याग्र हिरनी को पकड़ लेता है, उसी तरह बन्दीवानों ने पूर्णभद्र सेठ की प्रियदर्शना नामकी बन्धा पकड़ रखी है । जिस तरह साप

की गर्दन नोडकर मणि को ले लेते हैं, उम्मी तरह उसने एक बन्दीवान के हाथ से छुरी छीन ली। उसका ऐसा पराक्रम देखकर, सब बन्दीवान वहाँ से नी हो ग्यारह हुए क्योंकि 'जल्लाई हुर्र भाग की देखकर व्याघ्र भी भाग जाते हैं।' इस तरह कठियारों लोगों से आस्रलता छुड़ाने की तरह सागरचन्द्र ने दुर्ग से प्रियदर्शना छुड़ाई। उस समय प्रियदर्शना विचार करने लगी— "परोपकार करने के व्यसनी पुरुषों में मुख्य यह कीत है ? शत्रु। मरे सौभाग्य की भग्नति से सिंचा हुआ यह पुरुष यहाँ आ गया, यह बहुत अच्छा हुआ। कामदेवके रूप की निरस्कार करनेवाला यह पुरुष मेरा पति है।" इस तरह के विचार करती हुई प्रियदर्शना अपने घर को चली गई। सागरचन्द्र भी प्रियदर्शना को अपने हृदय में बिठाकर, अपने मित्र अशोकदत्तके साथ अपने घर गया।

सागर के पिताका पुत्रका उपदेश देना।

होते होते यह बात उसके पिता चन्दनदासके कानों तक भा पहुँच गई। ऐसी बात किस तरह छिप सकती है ? चन्दनदासने यह हाल जानकर मा ही मन विचार किया—'लडके का दिल प्रियदर्शना से लग गया है, उसे उससे मुहब्बत हो गई है। यह उचित ही है, क्योंकि राजहंस के साथ कमलिनी ही शोभा देती है। परन्तु सागरचन्द्र ने जो उदुमटपना किया यह ठीक नहीं। क्योंकि पराक्रमी होनेपर भी, घणिक लोगों को अपना पराक्रम प्रकाशित न करना चाहिये। फिर, सागरका स्वभाव सरल है।

उसकी मायाजी और धूर्त अशोकदत्त से मित्रता हुई है। फेटे के वृक्ष को जिस तरह घेरने भाइ की सगन हितकारी नहीं होती उसी तरह सागरदे नाथ उसकी मैत्री हितकर नहीं।' इस तरह बहुत देरतक विचार करके उसने सागरचन्द्र को अपने पास बुलाया और जिस तरह उत्तम हाथी को उसका महाउत शिक्षा देना आरंभ करता है उसी तरह मीठे घवनों से उसे शिक्षा देनी आरंभ की —

“हे यशो सागरचन्द्र ! सारे शास्त्रों का अभ्यास करने से तु व्यवहारकी सारी बातें जानता है, तोभी मैं तुझसे कुछ कहता हूँ। अपने वैश्य लोग कला कौशल से जीविका करनेवाले हैं। अपना अनुभूत और मनोहर भेषमें रहनेसे अपनी निन्दा नहीं हो सकती। इसलिये तुझे यौवनावस्था—जवानीमें भी अपने बल पराक्रमको गुप्त रखना चाहिये। इस ससारमें, बणिक लोग, सामान्य शर्षमें भी, शङ्कायुक्त धृतिवाले कहलाते हैं। जिन तरह स्त्रियोंका शरीर ढका रहनेसे ही अच्छा लगता है, उसी तरह अपने लोंगोंकी सम्पत्ति, विषय-क्रीडा और दान सदा गुप्त रहनेसे ही अच्छे मालूम होते हैं। अर्थात् स्त्रियोंके शरीर, वैश्योंकी धन सम्पत्ति, विषय क्रीडा और दानकी शोभा गुप्त रहनेमें ही है। जिस तरह ऊँटके पाँवमें बँधा हुआ सुवणका तोडा अच्छा नहीं लगता उसी तरह अपनी वैश्य जातिको अनुचित कर्म शोभा नहीं देते। अतः प्रियपुत्र ! अपनी कुल परम्पराके अनुसार उचित व्यवहार परायण हो कर घड़ी करो, जो अपने कुलमें होता आया है—

कुल परम्पराके विपरीत मत चलो। सम्पत्तिकी तरह अपने गुणों को भी गुप्त और पोशीदा रखो। जो स्वभावसे कपटी और दुर्जन हैं उनका संसर्ग त्याग दो। कपटहृदय वाले दुष्टोंकी समाप्ति मन करो, क्योंकि दुष्टोंका संसर्ग हठकिये कुत्तेके घिपकी तरह काल योगसे विचारको प्राप्त होता है। यच्चे 'कोठ जिस तरह फैलनेमें शरीरको दूषित कर देता है उसी तरह तेरा मित्र अशोकदत्त जियादा हेलमेल और परिचयसे तुझे दूषित कर देगा—तेरे चरित्रको क्लुपित कर देगा। यह गायत्री गणिका—वेश्याकी तरह, मनमें और, वचनमें और पय विषाम और ही है। यह कहता कुछ है, करता कुछ है और इसके मनमें कुछ है। यह मन वचन और कर्ममें एकसाँ नहीं है।

सागरचन्द्रका जग्राव ।

सेठ चन्दनदास इस प्रकार आदरपूर्वक उपदेश देकर चुप हा गया, तब सागरचन्द्र मनमें इस तरह विचार करने लगा — 'पिताजी जो मुझे इस तरहका उपदेश दे रहे हैं, इससे मालूम होता है कि, उनको प्रियदर्शना सम्प्रधी वृत्तान्त ज्ञात हो गया है। मेरा मित्र अशीषदत्त पिताजीको सङ्कति करने योग्य नहीं जचता। यह उसे मेरे सङ्ग रहनेके लायक नहीं समझते। इन्हें उसकी मुहबत से मेरे विगड जानेका भय है। मनुष्यका भाग्य भन्द होनेसे ही ऐसे स्तीख देने वाले गुरुजन नहीं होते। सौभाग्य वालोंको ही ऐसी सत्शिक्षा देने वाले गुरुजन मिलते हैं। भलेही उनकी मरजी-

माफिक कोई क्यों न हो ?' मन ही मन क्षण भर ऐसे विचार करके, सागरचन्द्र विनययुक्त अतीव नम्र वाणीसे बोला —“पिताजी ! आप जो आदेश करें, जो हुक्म दें, मुझे वही करना चाहिये क्योंकि मैं आपका पुत्र हूँ । जिसे काम के करनेमें गुरुजनोंकी आज्ञा का उल्लङ्घन हो, उस कामके करनेसे अलग रहना भला, लेकिन अनेक बार, देवयोगसे, अकस्मात् ऐसे काम आ पड़ते हैं जिनमें विचार करनेके लिये, थोड़ेसे समयकी भी गुञ्जाइश नहीं होती अथवा विचार करनेके लिये समय मिलना कठिन हो जाता है । जिस तरह किसी किसी मूलकके पाँव पत्रिज करनेमें पय-वेला निकल जाती है उसी तरह कितने ही कामोंका समय विचारमें पड़नेसे निकल जाता है । मनुष्य विचारोंमें लगता है और समय निकल जानेसे काम बिगड जाता है—भयङ्कर हानि हो जाती है । ऐसे प्राण-सङ्कट काल में भी, प्राणोंके सशयका समय आनेपर भी, जान-ओखिमका मौका आ जानेपर भी, पिताजी ! अरसे मैं ऐसा काम करूँगा, जिससे आपको शर्मिन्दा होना न पड़े—अ पको लज्जासे सिर नीचा न करना पड़े । आपने अशोकदत्तके सम्बन्धमें जो बातें कही हैं, उनके सम्बन्धमें मेरी यह प्रार्थना है कि, न तो मैं उसके दोषोंसे दुपित ही हूँ और न उसने गुणोंसे भूपित ही हूँ । मैं उसके गुण-दोषोंसे सर्वथा अलग हूँ । रात दिन साथ रहने वचन से एक सग खेलने, बारम्बार मिलने सजातीय या समान जातीय हो एक विद्या पढ़ने, समान शील और उन्नमें बराबर होने पर परोक्षर्म या नामौजूदगी में उपकार करने पर्यं सुख दुःखमें भाग लेने प्रभृति कारणोंसे उसके साथ मेरी मैत्री

हागढ़ है। उसमें मुझे जराभी कपट नहीं दीखता उसके व्यवहार में मुझे छल कपटकी गन्धभी नहीं आती। मालूम होता है, मेरे मित्रके सम्बन्धमें आपको किसीने झूठी खबर दी है—गलत और मिथ्या बात कही है। क्योंकि दुष्टलोग सबको दुःख देनेवाले ही होते हैं। दूर्जनों का काम शिष्टों को दुःख और क्लेश पहुँचाना ही है। उन्हें पराई हानि में ही लाभ जान पड़ता है। उन्हें दूसरों को दुःखा देनेसे प्रसन्नता होती है। वे दूसरों के सुख से सुखी नहीं होते। बड़ाचिन्त घह ऐसा ही हो—मायावी और घूर्त ही हो; नोमो घह मेरा क्या कर सकता है? मेरी कौनसी हानि कर सकता है? क्योंकि एक जगह रहने पर भी काँच काँच ही रहेगा और मणि मणि ही रहेगी—काँच मणि न हो जायगा और मणि काँच न हो जायगी।”

सागरचन्द्र का विवाह ।

पति पत्नी का पारस्परिक व्यवहार ।

इस तरह बह कर सागरचन्द्र चुप हो गया, तब सेठ ने कहा—
‘पुत्र ! यद्यपि तू बुद्धिमान है, तथापि मुझे कहना ही चाहिये ; क्योंकि पराये अन्त करण को जानना कठिन है—पराये दिलमें क्या है, यह जानना आसान नहीं।” इसके बाद पुत्रके भाव को समझने वाले सेठ ने शीलादिव शृणों से पूर्ण प्रियदर्शना के लिये पूर्णमद्र सेठ से मगनी की, अर्थात् अपने पुत्र के लिए कन्या देनेकी प्रार्थना की। तब आपके पुत्र ने उपकार द्वारा मेरी पुत्री पहले

ही खरीद ली है' ऐसा कह कर पूणमद्र सेठ ने सागरचन्द्र के पिता की बात स्वीकार करली ; अर्थात् अपनी कन्या देना मजूर कर लिया । फिर, शुभ दिन और शुभ लग्न में उनके मा धार्यों ने सागरचन्द्र के साथ प्रियदर्शना का विवाह कर दिया । मनचाहा राजा बजने से जिस तरह खुशी होती है उसी तरह मनवांछित विवाह होने से घर बधू—दुल्ह दुल्हिन को बड़ी खुशी हुई । प्रसन्नता धर्यों न हो, घर को मन चाही वह मिली और बहू को मन चाहा घर मिला । दोनों के समान अन्तःकरण होने से—एक से दिल होने से गोया एक आत्मा हो, इस तरह उन दोनों की मुहूर्त सारस पक्षी की तरह बढ़ने लगी । चन्द्र से जिस तरह चन्द्रिका शोभती है उसी तरह निर्मल हृदय और सौम्य दर्शन वाली प्रियदर्शना सागरचन्द्रने शोभने लगी । चिरकालसे घटना घटाने वाले देव के योगसे, उन शीलमान्, रूपमान् और सरलहृदय स्त्री पुरुषोंका उचित योग हुआ—अच्छा मेल मिला । आपसमें एक दूसरेका विश्वास होनेसे, उन दोनों में कभी अविश्वास तो हुआही नहीं, क्योंकि, सरलाशय व्यक्ति कदापि विपरीत शंका नहीं करते अर्थात् असरल हृदय और छली बपटी स्त्री पुरुषोंके दिलोंमें ही एक दूसरेके खिलाफ म्याल पैदा होते हैं । सीधे सादे सरल चित्त वालोंके दिलोंमें न अविश्वास उत्पन्न होता है और न विपरीत शंका ही उठती है ।

अशोकदत्तकी दुष्टता ।

अशोक और प्रियदर्शनाका कथोपकथन ।

एक दिन सागरचन्द्र किसी कामसे बाहर गया हुआ था ।

ऐसे ही समयमें अशोकदत्त उसके घर आया, और उसकी पत्नी प्रियदर्शनासे कहने लगा—‘सागरचन्द्र हमेशा धनदत्त सेठकी स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलता जुलता है, उसका क्या मतलब है ? स्वभावसे ही सरलहृदया प्रियदर्शना ने कहा—“उसका मतलब आपके मित्र जाने अथवा सचदा उनके दूसरे हृदय आप जानें। ध्यवसायी और घड़े लोगोंके एकान्त सूचित कामोंको कौन जान सकता है ? और जो जाने वह घरमें क्यों बहे ?” अशोकदत्त ने कहा—“तुम्हारे पतिका उसके साथ एकान्तमें मिलने जुलनेका जो मतलब है, उसे मैं जानता हूँ, पर कह कैसे सकता हूँ ?”

प्रियदर्शना ने कहा— उसका क्या मतलब है ? वे उससे एकान्तमें क्यों मिलते हैं ?

अशोकदत्तने कहा—‘हे सुन्दर भौहों वाली सुन्दरी ! जो प्रयोजन मेरा तुम्हारे साथ है, वही उनका उसके साथ है ।’

अशोकके ऐसा कहने पर भी उसके भावको न समझकर सरलाशया प्रियदर्शानाने कहा—‘तुम्हारा मेरे साथ क्या प्रयोजन है ?’

अशोकने कहा—‘हे सुध्रु ! तेरे पति के सिवा, तेरे साथ क्या किसा दूसरे रसीले सचेतन पुरुषका प्रयोजन नहीं ?’

प्रियदर्शनाकी फट्कार ।

कानमें सूई जैसा, उसकी दुष्ट इच्छाकी सूचित करने वाला अशोकदत्तका धचन सुनकर प्रियदर्शना सकोपा हो गई—क्रोधसे बाँप उठी और नीचा मुँह करके आक्षेप के साथ बोली—‘रे भ्रम

दर्याद ! रे पुरुषाघम ! रे कुल्लङ्गार नीच ! तैने ऐसा चिचार कैसे किया और किया तो मुझसे कहा कैसे ? मूर्खने ऐसे साहस को धिक्कार है ! अरे दुष्ट ! मेरे महात्मा पतिकी तू औरही तरह अपने जैसी सम्भावना करता है , तो मित्रके मियसे तुम्ह शत्रु-जैसे को धिक्कार है ! रे पापी ! चाण्डाल ! तू यहाँसे चला जा, छडा न रह, तेरे देखने से भी पाप लगता है ।’

अशोक और सागर का मिलन ।

अशोक की घार नीचता ।



कष्टपूर्ण धार्ते ।

प्रियदर्शनासे इस तरह अपमानित होकर अशोकदत्त चौर की तरह यहाँसे लम्बा हुआ । गो हत्या करने वालेकी तरह, पाप रूपी अन्धकारसे मलीन मुँही और विमनस्क अशोकदत्त चला जाता था कि, इतने में उसे सामने से आता हुआ सागरचन्द्र दीप गया । स्वच्छ अन्त करणवाले सागरचन्द्रने उससे चार नजर हँतेही पूछा-‘ मित्र ! तुम उद्विग्न से कैसे दीखते हो ?’ सागरकी धान सुनते ही , दीर्घ निश्वास त्याग कर, कष्टसे दुखित हुएके समान होठोंको खराते हुए मायाके पहाड अशोकने कहा—
‘ हे भाई ! हिमालय पर्वतके नजदीक रहने वालोंने सरदी से ठिठरनेका कारण जिस तरह प्रकट है, उसी तरह इस ससार में बसने वालोंने उद्वेग का कारणभी प्रकटही है । कुठारके फोडेकी

तरह, यह वृत्तान्त न तो छिपाया ही जा सकता है और न प्रकट ही किया जा सकता है।'

इस तरह कहकर और कपटके आँसू दिखाकर अशोकदत्त चुप होगया। निष्कपट सागरचन्द्र मनमें विचार करने लगा— 'अहो! यह संसार बसंत है, जिसमें ऐसे पुरुषों कोभी अकस्मात् ऐसे बन्देहके स्थान प्राप्त हो जाते हैं। धूर्तों जित्त तरह बर्षि की सूचना देता है, उसी तरह, धीरज से न सहै जाने योग्य, इसके भीतरी उद्वेगकी इसके आँसू जयदस्ती, सूचना देते हैं।' इस तरह चिरकाल तक विचार करके उसके दुःखसे दुःखी सागरचन्द्र गद्गद स्वरसे इस प्रकार बहने लगा— 'हे बन्धु! यदि अप्रकाश्य न हो, बहनेमें दर्ज न हो, तो अपने इस उद्वेगके कारणको मुझसे इसी समय कहो और अपने दुःखका एक भाग मुझे देकर अपने दुःखकी मात्रा कम करो।'

अशोकदत्तने कहा— 'प्राण समान आपसे जय मैकोइभी बात छिपाकर नहीं रखा सकता, तब इस वृत्तान्तको ही किस तरह छिपा सकता हूँ? आप जानते हैं कि, अमावस्याकी रात जिस तरह अन्यकारको उत्पन्न करती है, उसी तरह त्रिधा मनर्षको उत्पन्न करती हैं।'

सागरचन्द्रने कहा— 'भाई! इस समय तुम नागिनके जैसी किसी छोड़े संकट में पड़ेहो?'

अशोकदत्त घनावट्टी लज्जाका भाव दिखाकर बोला— 'प्रिय-दर्शना मुझसे बहुत दिनोंसे अनुचित बात कहा करती थी, परन्तु

मैंने यह समझकर कि कमी तो इन्में लाज आयेगी और यह स्वयं समझ-बूझकर ऐसी घातोंसे अलग ही जायगी, मैंने लज्जाके मारे कितने ही दिनों तक उसकी अपमान-पूर्वक उपेक्षाकी, तीमी यह अपनी कुलटा नारीके योग्य घातें कहनेसे बन्द न हुई। अहो ! स्त्रियोंका कैसा असह्य आग्रह होता है ! हे मित्र ! आज मैं आपको खोजनेके लिए आपके घर पर गया था। उस समय छल-कपट से भरी हुई उस स्त्रीने राक्षसीकी तरह मुझे रोक लिया लेकिन हाथी जिस तरह धन्धनको तुड़ाकर अलग हो जाता है उसी तरह मैं भी उसके पंखेसे बड़ी कठिनाईसे छूटकर जल्दी-जल्दी यहाँ आ रहा था। राहमें मैंने विचार किया कि, यह स्त्री मुझे जीता न छोड़ेगी। इसलिये मैं खुदही आत्मघात कर लूँ तो कैसा ? परन्तु मरना भी मुनासिब नहीं, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में—मेरे न रहने पर, वह स्त्री मेरे मित्रसे इन सब घातों को कहेगी यानी इसके विपरीत कहेगी, इसलिये मैं स्वयं ही अपने मित्रसे ये सब बातें कह दूँ, जिससे स्त्रीका विश्वास करके वह नष्ट न हो जाय। अथवा यह कहना भी उचित नहीं क्योंकि मैंने उस स्त्रीका मनोरथ पूर्ण नहीं किया, तब उसकी बुरी यानको कहकर घाव पर नमक क्यों छिड़कूँ ? मैं ऐसे विचारों में गलता पैचाँ हो रहा था, कि आपने मुझे देख लिया। हे माइ, यही मेरे उद्वेग का कारण है। अशोकदत्तकी बातें सुनते ही मानो हालाहल विष पान किया हो, इस तरह पवन रहित समुद्र की तरह सागरचन्द्र स्थिर हो गया।

सागरचन्द्रकी सरलता

सागरचन्द्रने कहा—‘स्त्रियोंसे ऐसी ही भाशा है, उनसे ऐसी ही काम हो सकते हैं, क्योंकि खारी जमीन के निवाण के जलमें खारापन ही होता है। मित्र! अब दुखी मत होओ, अच्छे काममें लगे रहो और उसकी बातों को याद मत करो। भाई! वास्तव में वह जैसी हो, भलेही वैसीही रहे, परन्तु उसके कारण से अपन दोनों मित्रोंके मनमें मलीनता न हो—अपने दिलोंमें फर्क न आये।’ सरल प्रकृति सागरचन्द्रकी ऐसी अनुनय-विनय से वह अधम अशोकदत्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि मायावी लोग अपराध करके भी अपनी भात्मा की प्रशंसा कराते हैं।

सागरचन्द्रको संसारसे विरक्ति ।

देहत्याग और युगलिया जन्म ।

उस दिनसे सागरचन्द्र प्रियदर्शनाको प्यार करना छोड़कर, निस्नेह होकर, रोग वाली अंगुलीकी तरह, उसको उद्वेगके साथ धारण करने लगा, फिरभी उसके साथ पहिलेकी तरह ही बर्ताव करता रहा। क्योंकि, अपने हाथोंसे लगाई और पाट्टी पोपी हुई हता अगर घाँव भी हो जाय तोभी उसे जडसं नहीं उखाड़ते ।

प्रियदर्शनाने यह सोचकर, कि मेरी यज्ञहसे इन दोनों मित्रोंका वियोग न हो जाय अशोकदत्त सम्यग्धी वृत्तान्त अपने पतिसे न कहा। सागरचन्द्र संसारको जेलखाना समझकर, अपनी सारी धन दौलतको दीन और अनार्योंको दान करके वृत्तार्थ करने लगा ।

समय आने पर, प्रियदर्शना सागरचन्द्र और अशोकदत्त—इन तीनोंने अपनी अपनी उम्र पूरी करके देह त्याग दी; अर्थात् पञ्चत्वको प्राप्त हुए। उनमें सागरचन्द्र और प्रियदर्शना इस जम्बूद्वीप में, भरतक्षेत्रके दक्षिण छण्डमें गंगा और सिन्धु नदीके बीचके प्रदेशमें, इस अवसर्पिणी के तीसरे धारेमें, पल्योपमका आठवाँ भाग शेष रहने पर, युगलिया रूपमें उत्पन्न हुए।

छ आरोंका स्वरूप।

पाच मरत और पाँच पेरावन क्षेत्रमें कालकी व्यवसा कर नेके कारण रूप बारह आरोंका कालचक्र गिना जाता है। यह काल चक्र—(१) अवसर्पिणी और (२) उत्सर्पिणी,—इन भेदोंसे दो प्रकारका होता है। उसमें अवसर्पिणी कालके एकान्त सुपमा आदि छ धारे हैं। एकान्त सुपमा नामक पहला धारा चार कोटा कोटी सागरोपमका, दूसरा सुपमा नामक धारा तीन कोटा कोटी सागरोपमका, तीसरा सुपम दुःखमा नामक धारा दो कोटा कोटी सागरोपमका, चौथा दुःखम सुपमा नामक धारा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटा कोटी सागरोपमका, पाचवाँ दुःखमा नामक धारा इक्कीस हजार वर्षका और पिछला या छठा एकान्त दुःखमा नाम धाराभी इतना ही यानी इक्कीस हजार वर्षका होता है। इस अवसर्पिणीके जिस तरह छ धारे बहे हैं, उसी तरह कमसे विपरीत धारे उत्सर्पिणी कालके भी जानने चाहिएँ। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालकी सम्पूर्ण संख्या बीस को— सागरोपमकी है। इसीको “काल चक्र” कहते

पहले आरंभमें मनुष्य तीन पत्रोपम तक जीने वाले, छ ब्रह्म ऊंचे शरीर वाले और चौथे दिन भोजन करने वाले होते हैं। वसवतुष्ट्र सरधान वाले सब लक्षणोंसे लक्षित यज्ञरूपमभाराच सहन संघषण वाले और सदा सुखान्दने वाले होते हैं। फिर, वे मोघरहित, मानरहित, निष्कपट्टी, लोभ हीन और स्वभावसे ही अधमको त्याग करने वाले होते हैं। उत्तर ऋतुकी तरह उस समयमें रात दिन उनसे इच्छित मनोग्रन्थको पूर्ण करने वाले, मद्याङ्गादिक दस तरहके “कपटृक्ष” होते हैं। उनमें मद्याग नामक कटपटृक्ष माँगनेपर तत्काल स्वादिष्ट मदिरा देते हैं। भृताग नामक कटपटृक्ष भण्डारीकी तरह पात्र देते हैं। त्र्याङ्ग नामक कटपटृक्ष तीन तरहके धाजे देते हैं। दीप शिला और उपोतिष्क नामके कपटृक्ष अत्यन्त प्रकाश या रोशनी देते हैं। चित्राग नामक कपटृक्ष चित्रत्रिचित्र फूँगेकी माला देते हैं। चित्ररस नामक कटपटृक्ष रसोद्भयोकी तरह विविध प्रकारके भोजन देते हैं। मरायङ्ग नामके कटपटृक्ष मन चाहे गहने या जेवर देते हैं। गेहाकार नामके कटपटृक्ष गन्धर्वतगरकी तरह क्षणमात्रमें सुन्दर भक्तान देते हैं और अनस नामक कटपटृक्ष इच्छानुसार धन या कपडे देते हैं। ये प्रत्येक वृक्ष औरभी अनेक तरहके मन चाहे पदार्थ देते हैं।

उस समय पृथ्वी शक्ररसे भी अधिक स्वादिष्ट होती है और नदी धरैर का जल अमृतके समान मधुर या मीठा होता है। उस आरंभमें अनुक्रमसे धीरे धीरे आयुष्य, सहननादिक और कल्प वृक्षोंका प्रमाण घटना जाता है।

सागर और अशोक का पुनर्जन्म ।

अशोक का हाथी के रूप में जन्म लेना ।

अशोक और सागर को पर जन्म में मुलाकात ।

सागरचन्द्र और प्रियदर्शना तीसरे आरेफे धन्तमें फिर पैदा हुए, इसलिये वे नौसौ धनुष ऊँचे शरीरवाले एक पत्थरोपमके दशमाश वायुप्यवाले युगलिये हुए । उनके शरीर यज्ञरूपम नाराच संहनन वाले और समचतुरन्त्र सस्थान वाले थे । मेघ-मालासे जिस तरह मेघ पर्वत शोभित होता है, उसी तरह जात्यचन्त सुवर्णकी कान्ति वाला उस सागरचन्द्रका जीव अपनी प्रियङ्गु रङ्गवाली स्त्री से शोभित होता था ।

अशोकदत्त भी, अपने पूर्वजन्मके किये हुए षण्ण्डसे, उसी जगह, सफेद रंग और चार दाँतोंवाला देवहस्तीके समान हाथी हुआ । एक दिन यह हाथी अपनी मौजमें घूम रहा था । घूमते घूमते उसने युग्मधर्मि अपने पूर्वजन्मके मित्र—सागरचन्द्र को देखा ।

विमलवाहन पहला कुलकर—राजा ।

विमलवाहन और चन्द्रयज्ञा का देहात ।

मित्र को देखतेही, उस हाथीका शरीर दर्शनरूपी अमृत-धारासे व्याप्त मा हो उठा । धीजसे जिस तरह अंकुर की उत्पत्ति होती है, उसी तरह उसमें स्नेहकी उत्पत्ति हुई । इसलिये उसने उसे, सुख मालूम हो इस तरह, अपनी सूँड से आलिङ्गन

किया और उसकी इच्छा न होनेपर भी उसे अपने कंधेपर बिठा लिया। परम्परा-दर्शनके अभ्याससे, उन दोनों मित्रोंको, जरा देर पहले किये हुए काम की तरह, पूजकमका स्मरण हुआ— पहले जन्मकी याद आगई। उम्र नमय, चार दंतोंवाले हाथीपर बैठे हुए सागरचन्द्रको, विष्णुयसे उत्तान नेत्रोंवाले दूसरे युगलिये, इन्द्रके समान देखने लगे। चूंकि वह शङ्ख कुन्दपुष्प और चन्द्र-जैसे निर्मल हाथापर बैठा हुआ था इसलिये युगलिये उसे विमलयाहन नामसे पुकारने या बुलाने लगे। जानि स्मरणसे मर तरहकी नीतिको जाननेवाग, विमल हाथीके याहनवाला और स्वभावसे ही स्वरूपजान वह सरसे अधिक या ऊँचा हुआ। कुछ समय बीतनेके बाद, चारित्र्यभ्रष्ट यतियों की तरह, बल्य कृष्णोंका प्रभाव मन्दा पडने लगा। मानो बुद्धने किस्से दूसरे लगाये हों, इस तरह मद्योग कल्पवृक्ष बल्य और विगस मद्य विलम्बसे देने लगे। भृताग कल्पवृक्ष, मानो दें कि नहीं, ऐसा विचार करने हों और परवश हों इस तरह, माँगनेपर भी विलम्बसे पात्र देने लगे। तूया ग कल्पवृक्ष, वेगारमें पकड़े हुए गन्धर्वों की तरह जैसा चाहिये वैसा, माना नहीं करते थे। बारम्बार प्रार्थना करनेपर भी, दीपशिखा और ज्योतिष्क कल्पवृक्ष, जिस तरह दिनमें दीपक की शिखा प्रकाश नहीं करती, उसी तरह वैसा प्रकाश नहीं करते थे। चित्राग कल्पवृक्ष भी, दुर्घि नीत सेपककी तरह, इच्छा करतेही तत्काल फूलोंकी मालाएँ नहीं देत थे। चित्ररस कल्पवृक्ष, दानकी इच्छा क्षीण सदा

घन घाँटनेवालेकी तरह, चार प्रकारका विचित्र रसवाला भोजन, पहले जितना नहीं देते थे। मण्यंग कल्पवृक्ष, मानो फिर किस तरह चापस मिलेगा, ऐसी चिन्तासे आकुल होगये हों इस तरह, पहलके प्रमाण से, गहने या जेवर नहीं देते थे। मन्वव्युत्पत्ति शक्तिवाले क्वचि जिस तरह अच्छी क्वत्रिता देरम करसक्ते हैं, उसी तरह मेहाकार क्वत्रवृक्ष घर देनेमें देर करने लगे। धूर प्रहोंसे अघग्रहको प्राप्त हुआ मेघ जिस तरह थोडा थोडा जल देता है, उसी तरह जनम वृक्ष हाथ रोक-रोककर वल देने लगे। कालके ऐसे प्रभावसे, युगलियोंको भी, देहसे अवयवों की तरह, कल्पवृक्षोंपर ममता होने लगी। एक युगलियेकेस्त्री कार क्विये हुए कल्पवृक्षका दूसरे युगलियेक आश्रय करनेसे, पहले स्त्रीकार करनेवाले का बहुत भारी पराभव होने लगा। इसलिए आपसके ऐसे पराभव को सहन करने में अममर्थ युगलियोंने अपनेसे अधिक विमलवाहन को अपने स्वामी मान लिया। जाति-स्मरणसे नीतिन विमत्राहनने, जिस तरह वृद्धा आदमी अपने नातेदारोंको घन घाँट देता है उसी तरह युगलियोंको कल्पवृक्ष घाट दिये। दूसरे के कल्पवृक्ष की इच्छासे मय्यादा भग करनेवालोंके शिक्षा देनेके लिएउम्ने "हाकार नीति" प्रकट की। जिस तरह समुद्र की भरतीका जल मय्यादा उल्लङ्घन नहीं करता, उसी तरह 'हा ! तूने दुरा काम किया' ऐसी शब्दसे सिखाये हुए युगलिये उसकी मय्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते थे। भृण्डे या लफडी की घोट सहना भला, पर हाकार शब्दसे

किया गया तिरस्कार भग्न नहीं।' इस तरह वे युगलिये मानने लगे। उस विमलदाहन की उम्रके जग छ महीने बाकी रह गये, तब उसकी चन्द्रयशा नाम की छासे पत्र जोड़ने सन्तान पैदा हुई। वे दोनों जोड़ले अमल्य पूर्वके आयुष्यवाले, प्रथम संस्थान और प्रथम संहननवाले, श्यामवर्ण और नाट सौ धनुष प्रमाण ऊँचे शरीरवाले थे। माता पिताने उनके चक्षुष्मान और चन्द्रकान्ता नाम रखे। साथ साथ पैदा हुए लता और वृक्षकी तरह वे साथ-साथ बढ़ने लगे। छ मास तक अपने दोनों यक्षोंका पालन पोषण करके, जग और गेग विना मरकर, विमलदाहन सुषणकुमार देवलोकमें और उस की स्त्री चन्द्रयशा नागकुमार देवगेजमें उत्पन्न हुई क्योंकि चन्द्रमाके अस्त होनेपर चन्द्रिका तदा रहती। वह हार्थी भी अपनी उम्र पूरी कर के, नागकुमार निरायमें, देवरूपमें पैदा हुआ क्योंकि कालका माहात्म्यही ऐसा है।

दूसरा तीसरा कुलकर—राजा ।

इसने बाद चक्षुष्मान भी, अपने पिता विमलदाहन की तरह, हाकार नीतिले ही युगलियां को मर्यादाके अन्दर रखने लगा। अन्त समय निकट होनेपर, चक्षुष्मान और चन्द्रकान्ता वे यशाम्बी और सुरूपा नामकी युगधर्मि जोड़ली सन्तान उत्पन्न हुईं। वे भी वैसेही संहनन और वैसेही संस्थानवाले तथा किमी कदर कम उम्रवाले हुए धय और वृद्धि की तरह, वे दोनों

अनुक्रम म बढने लगे । साढे गान सौ धनु प्रमाण उ चे शरीर घाले और सदा साथ साथ घूमनेवाले थे दोनों तोरण स्तम्भ के त्रिलोक को धारण करते थे । मृत्यु हो जानेपर, चक्षुष्मान सुवर्णकुमारमें और चन्द्रकाता नागकुमारमें उत्पन्न हुई । माता पिता का देहांत होनेपर, यशस्वी अपने पिता की तरह, जिस तरह गोपाल गायों का पालन करता है उसी तरह, सब युगलियों का लीला से पालन करने लगा । परन्तु उससे जमाने में, मदमाता दाधी जिस तरह अदृश को नहीं मानता है, उसका उल्टा करने करता है, उसी तरह युगलिये भी अनुक्रमसे 'हाकार दण्ड का उल्टा करने लगे । तब यशस्वीने उन लोगोंको 'भाकार दण्ड' से शिक्षा देना शुरू किया । क्योंकि जय एक दया से रोग आराम न हो, तब दूसरी दयाकी व्यवस्था करती ही चाहिये । वह महामति यशस्वी दण्ड या थोड़ा अपराध करनेवाले को दण्ड देनेमें हाकार नीतिसे काम लेने लगा । मध्यम अपराध करनेवाले को दण्डित करने में दूसरी 'भाकार नीति का प्रयोग करने लगा और भारी अपराध करनेवालोंपर दोनों ही नीतियों का इस्तेमाल करने लगा । यशस्वी और सुरूपा की जब थोड़ी सी उम्र पाकी रह गई तब जिस तरह बुद्धि और धिनयसाध साथ उत्पन्न होते हैं, उसी तरह उनसे एक जोड़ली सन्तान पैदा हुई । पुत्र चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था, इसलिये मा धापने उसका नाम अभिचन्द्र रखा और पुत्री प्रियङ्गुलता का प्रतिरूप थी, इसलिये उस का नाम प्रतिकुपा रखा । वे अपने

माता पिता से कुछ बम उभ्रवाले और माटो छे मौ धनुष ऊचे शरारवाले थे । एकर मिले हुए शमा और अश्वत्थ - पीपल - वृक्षके समान वे साथ साथ बढ़ने लगे । गंगा और यमुना के पवित्र प्रवाह से मिले हुए जलकी तरह वे दोनों निरंतर शोभने लगे । आयु पूरी होनेपर यशस्वी उदधिकुमार में उत्पन्न हुआ और सुक्या उसके साथ ही काट परके नागकुमार में पैदा हुई ।

चौथा कुलकर—राजा ।

अभिषेक भी अपने पाप की तरह उन्नी स्थिति और उा दोनों नीतियों से युगलियों का शासन करने लगा । इसके बाद, जिस तरह अनेक प्राणियों के इच्छित चन्द्रमा को रात्रि जनती है, उन्नी तरह प्रांत अरणा में प्रतिरूपाने एक जोड़ली मृतान जाा । माता पिताने पुत्रका नाम प्रसेनपित रखा और पुत्री उसके भेषों की प्यारी लगती थी इससे उसका नाम चक्षुकाता रखा । वे अपने माँ-बापसे बम उभ्रवाले, तमाल वृक्षके समान श्याम फाल्गुनवाले, बुद्धि और उत्साह की तरह, साथ साथ बढ़ने लगे । वे छे मौ धनुष प्रमाण शरीर को धारण करनेवाले और अग्निपुत्र कालमें जिस तरह दिन और रात एक समान होते हैं, उन्नी तरह एकमी जातिवाले हुए । उसके पिता धर्मिचन्द्र पशुत्व को प्राप्त होकर—देहत्याग पर, उदधिकुमार में पैदा हुए और प्रतिक्रिया नागकुमार में उत्पन्न हुई ।

ॐ पुत्र और मय राशि पर जब मूय आता है तब उग विरगत काय कहत ई ।

पाँचवाँ कुलकर—राजा ।

प्रसेनजित भो, अपने पिता की तरह, सब युगलियों का राजा हुआ । क्योंकि, महात्माओंके पुत्र बहुधा महात्मा ही होते हैं । जिस तरह कामार्त्त या कामी लोग लज्जा और मर्यादा का उल्लङ्घन करते हैं, उसी तरह उस समयके युगलिये भी 'दाकार और माकार' नीतिका उल्लङ्घन करने लगे । उस समय प्रसेनजित, धनाचार रूपी महाभूत को प्रस्त करनेमें मन्नाक्षर-जैसी, तीसरी, धिक्कार नीति को काममें लाने लगा । प्रयोग पुराल प्रसेनजित, जिस तरह त्रय अंगुश से हाथी का शासन करते हैं उसी तरह, तीन नीतियोंसे सब युगलियों का शासन करने लगा । इसी बीचमें चक्षु कान्ताने स्त्री पुरुष रूपी युग्म सन्तान की जन्म दिया । साढ़े पाँच सौ धनुष प्रमाण शरीर वाले, वे भी अनुक्रम से वृक्ष और उस की छाया की तरह साथ साथ बढ़ने लगे । वे दोनों युग्मधर्मि मरुदेव और श्रीकान्ताके नामसे लोक में प्रसिद्ध हुए । सुवर्ण की सी कान्तिवाला यह मरुदेव अपनी प्रियगुल्ता के समान रंगवाली मिथासे उसी तरह शांभने लगा जिन्म तरह नन्दन वन की वृक्ष श्रेणीसे वनकाचल—मेघ शोभता है । देहावसान होनेपर, प्रसेनजित हीपकुमार में उत्पन्न हुआ और चक्षु कान्ता देह त्यागकर तामकुमार में गई ।

छठा और सातवाँ कुलकर ।

माता पिता के लीकान्तारेत होनेपर, मरुदेव सब युगलियोंका

उसी नीति प्रथमे उसी तरह शासन करने लगा, जिस तरह देवा प्रियति इन्द्र देवनाभों का शासन करते हैं। मरुदेय और धीवान्ता के प्रान्तवाग्ने समय, उनमें मामि और मरुदेया इस नाम के युग्म या जोड़ ले पैदा हुए। मया पाँच स्त्री धनुष प्रमाण शरीर पाये ये दोनों, क्षमा और संयम की तरह, मध्य भागही बढी लगे। मरुदेया प्रियहुलताके जैसी वान्तिवाली थी और मामि सुघर्षणकी स्त्री वान्तिवाग्य था। इसलिये ये दोनों, मागों अपने मातापिताके ही प्रतिधिभ्य हों इस तरह शोभा पाने लगे। उन महा मागों की वायु उनके माता पिता मरुदेय और धीवान्तासे कुछ कम—मग्याता पूर्णकी थी। मरुदेय वैद त्यागकर हीप कुमार में पैदा हुआ और धीवान्ता भी उन्ही समय मरुकर नाम कुमार में उत्पन्न हुए। उनके मरनेके बाद, नामिराजा युगत्रियों का स्मार्तवाँ ० कुलकर—राना हुआ। यह भी पहले यही हुई तीन प्रकार की नीतियासेही युगधर्मि मनुष्योंका शासन शिक्षण करने लगा।

मरुदेया माताके देखे हुए चौदह स्वप्न।

तीसरे भागके चीरामी पक्ष, पूर्व और नयासी पक्ष यागी तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे, तब आषाढ महीने की कृष्ण चतुर्दशी या आषाढ बंदी चौदस के दिन, उत्तराषाढा नभप्र

० पहला विमल-बाहन दूमरा पञ्जुप्मान, तीसरा यथस्वी, चौथा अमिचन्द्र, पाँचवाँ प्रमेनजिगु ह्या मरुदेव, और सातवाँ मामि कमकर हुआ। युगधर्मिके राजाको "कुलकर" कहते हैं।

में, चन्द्रका योग होते ही, घञ्जनाम का जीव, तैतीस सागरोपम आयु भोगकर, सार्धं सिद्ध विमानसे च्यवकर, जिस तरह मानसरोवरसे गङ्गातटमें हंस उतरता है उसी तरह, नाभि कुल कर की स्त्री—मग्देवा—के पेटमें अवतीर्ण हुआ। जिस समय प्रभु गर्भमें आये उस समय, प्राणिमात्रके दुःखका विच्छेद होतैसे, त्रिलोकी में सुप्त हुआ और सर्पत्र बड़ा प्रकाश फैला। जिस रातको देवलोकसे च्यवनर प्रभु माता के गर्भमें आये उस रातको निवास भवनमें सोई हुए मग्देवाने चौदह महास्वप्न देखे। उन्होंने उन स्वप्नोंमें से पहले स्वप्नमें एक उज्ज्वल वृषभ या बल देवा, जिसके कर्धे पुष्ट थे, पूँछ लम्बी और सरल थी और जो सोनेके घुँघुण्डों की माला पहने हुए त्रिजला समेत शरद्वास्तु के मेरुके समान था। दूसरे स्वप्नमें उन्होंने—सफेद रङ्गका, प्रमोदित, निरन्तर झरते हुए मदकी नदीसे रमणीय, चलते हुए कैलाश जैसा—चार दाँत वाला हाथी देखा। तीसरे स्वप्नमें उन्होंने—पीले नेत्र दीर्घ जिह्वा और चपल अयालां वाला, शूरावीरोंकी जयपाताकाकी तरह दुम हिलाता हुआ—केशरीसिंह देखा। चौथे स्वप्नमें उन्होंने—कमलनयनी पद्म त्रिवासिनी अगल बगल अपनीसूँडोंमें पूर्णकुम्भ उठाये हुए दिग्गजोंसे शोभायमान—लक्ष्मी देखा। पाँचवें स्वप्नमें उन्होंने—देववृक्षोंके फूलोंसे गुयी हुई, सीधी और धनुर्धारियोंके चढाये हुए धनुषके समान लम्बी—फूलोंकी माला देखा। छठे स्वप्नमें उन्होंने—अपने मुखके प्रतिचित्रके समान, आनन्दका धारण रूप, अपने

कान्ति समूहसे दिशात्रोंको प्रकाशित किये हुए—चन्द्रमण्डल देवा । सातवें स्वप्नमें उन्होंने—रातमेंमी तत्काल दिनका भ्रम करने वाला, सम्पूर्ण अन्धकारको नाश करने वाला और फैलती हुई किरणों वाला—सूर्य देवा । आठवें स्वप्नमें उन्होंने—चपल कानोंसे शोभा यमान, हाथीने जैसी घूँघु रियोंकी लड़ीने भारजाली चञ्चल पनाका से मुशोभित—महा-रजा देवी । नवें स्वप्नमें उन्होंने—गिठे हुए कमलोंसे अशित समुद्रमयनसे निकले हुए सुधा कुम्भ या अमृत घटने समान—जगसे भरा हुआ सोनेका घडा देवा । दसवें स्वप्नमें उन्होंने—आदि अर्हतकी स्तुतिसे लिए अनेक मुख वाला हुआ हो पेसा भौरोंके गुञ्जार जाला और अनेक कमलोंसे शोभित—पद्माकर या पद्मसगेवर देवा । ग्यारहवें स्वप्नमें उन्होंने—पृथ्वी पर फैला हुआ, शरद ऋतुके मेरुकी लीलाको चुराने वाला और और उत्तर तरङ्ग समूहसे प्रित्तको ध्यानन्दिन करने वाला—क्षीरनिधि या क्षीरसागर देवा । बारहवें स्वप्नमें उन्होंने एक प्रभूत कात्तिमान् प्रिमान देवा । ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान्के देवत्वपनेमें उसमें रहनेके कारण वह पूषस्नेहके कारण वहाँ थापा हो । तेरहवें स्वप्नमें उन्होंने किसी कारणसे एक र हुए तारों के समूह और एकत्र हुए निर्मल कात्तिने समूह—जैसा रत्नपुञ्ज आकाशमें देवा । चौदहवें स्वप्नमें उन्होंने, त्रिलोकीने तेजस्वीपदा योंके पिण्डीभूत हुए तेजके समान प्रकाशमान्, निधूम अग्निने मुखमें धुसते देवा । रात्रिके प्रिराम समय, स्वप्नके अन्तमें, मुष्ठी स्वामिनी मन्ने । । तरह जाग उठी ।

हृदयके भीतर खुशी समाती न हो, इसलिये यह स्वप्न-सम्बन्धी सारे वृत्तान्तकी उद्गार करता ही, इस तरह यथार्थ हाल उन्होंने नामि राजको यह सुनाया । नामि राजने अपने सरल स्वभावके अनुसार स्वप्नका विचार करके—'तुम्हारे उत्तम पुत्र-पुत्र होगा' ऐसा कहा ।

मरुदेवा माताके पास इन्द्रका आगमन

स्वप्नफल कथन ।

उस समय, स्वामीकी मात्र बुल्फरपनसे ही सम्भावना थी, यह अयुक्त है, अनुचिन्तित है,—ऐसे विचारकरके मानो कोपायमान हुए हों इस तरह इन्द्रोंके आसन बम्पायमान हुए । हमारे आसन क्यों बम्पायमान हुए, इसका खयाल करते ही—इस बातकी घोषा दिमागमें करतेही भगवानके च्यवनकी बात इन्द्रोंको ध्यानमें आ गई—वे समझ गयेकि, भगवान्का च्यवन हुआ है । इसी समय तदन्तर्गत शशांग पिये हुए मिर्षोंकी तरह, सब इन्द्र इषट्टे होकर, भगवान्की माताको स्वप्नका अर्थ बतानेके लिए वहाँ आये । वहाँ आतेही हाथ जाडकर, जिस तरह वृत्तिकार सूत्रके अर्थकी स्पष्ट करता है—सूत्रका मूलान्ता मतलब समझाता है, उसी तरह वे त्रिनय पुत्रके स्वप्नके अर्थको स्पष्ट करने लगे—अर्थात् स्वप्नका फल या उद्भाव की ताबीर कहने लगे—

' हे स्वामिनी ! आपने स्वप्नमें पहले वृषभ—बैल देखा; इस कारण आपका पुत्र मोहरूपी एक—कीचमें फँसे हुए धर्म लगी रूपका उद्धार करनेमें समर्थ होगा । हाथी देवनेसे आपका पुत्र

पुरुषोंमें सिद्धरूप, धीर, निर्भय, शूरवीर और अस्त्रलिप्त पराक्रमवाला होगा। हे देवि! आपने स्वप्नमें लक्ष्मी देवी, इससे आपका पुरुषश्रेष्ठ पुत्र त्रिलोकी की साम्राज्य-लक्ष्मीका पति होगा। आपने कूलमाला देवी है, इससे आपका पुत्र पुण्यदशन स्वरूप होगा और समस्त जगत् उसकी आज्ञाको मालाकी तरह मस्तक पर धहन करेगा। हे जगत् माता! आपने स्वप्नमें पूणचन्द्र देखा है, इससे आपका पुत्र मनोहर और नयन सुखधर यानी नेत्रोंको आनन्द देने वाला होगा—जो उसके दशन धरगा उसेही सूख हागा—दशन धरने वालेके नेत्रोंकी दशनसे तृप्ति न होगी। आपने सूर्य देवा, इस लिये आपका पुत्र मोह हारी अन्धकारनाश करे, जगत्में प्रकाशको फैलाने वाला होगा। यह मसार के अज्ञान अन्धकारको नाश करे ज्ञानका प्रकाश फैलाया। आपने महाजना देवी, इसलिये अपना पुत्र आपके राजमें महान् प्रतिष्ठावाला और धर्मध्वज होगा। हे माता! आपने स्वप्नमें पूर कुम्भ देखा, इससे आपका पुत्र अतिशयोंका पूर पात्र हागा अथात् सर्व अतिशययुक्त होगा। आपने पद्माकर व पद्म-मरोधर देखा, इससे आपका पुत्र ससार हारी अन्धमें पड़े हुए मनुष्योंके पाप तापको नाश करनेवाला होगा। आपने शरमगर देवा इससे आपके पुत्रके अधृष्य होतेपर भी, उसे शय सब कोर जा सकेमें। हे देवि! आपने स्वप्नमें अलौकिक शिखर देखा, इससे आपका पुत्र वैमानिक द्रवोंके लिये भी राज होगा, जयान भी उसकी सेवकाइ करेगा। अत्र प्रकाशमान रत्न

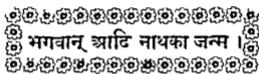
इसलिये आपका पुत्र सर्व गुण रूप रत्नोंकी पानके समान होगा, और आपने अपने मुँहमें जाज्वल्यमान अग्निको प्रवेश करते देखा, इससे आपका पुत्र अथ तेजस्त्रियोंके तेजको दूर करने वाला होगा। हे स्वामिनी ! आपनेजो चौदह स्वप्न देखे हैं, वे इस बात की सूचना देते हैं, कि आपका आत्मज—पुत्र—चौदह भुवनका स्वामी होगा। इस तरह स्वप्नार्थ यह कर, और मरुदेवा माताकी प्रणाम करके सब इन्द्र अपने अपने स्थानोंको चले गये। स्वामिनी मरुदेवा भी स्वप्नाथ सुधासे सिद्धि होनेसे उसी तरह उल्लसित और प्रसन्न हुए, जिस तरह वर्षा कालके जलसे सींची हुई पृथ्वी उल्लसित और हृषीक होती है अर्थात् घरसातके पानीसे जमीन जिस तरह तरो ताजा और हरीभरी होती है, उसी तरह मरुदेवा भी स्वप्नकृत या व्यापकी ताबीर सुननेसे पूर्युश हुईं।

मरुदेवाकी गर्भयुक्त शरीर-स्थिति।

अथ, जिस तरह मेघमाला सूर्यसे, लीप मोती से और गिरि चन्द्रसिंह से शोभा देती है, उसी तरह महादेवी मरुदेवा उस गर्भ से शोभित होने लगी। यद्यपि वे स्वभावसे ही प्रियगुणा के समान श्यामवर्ण था; तथापि शरद ऋतु से मेघमाला जिस तरह पाण्डुवर्ण हो जाती है उसी तरह वे गर्भके प्रभाव से पाण्डुवर्ण होने लगीं। जगत् के स्वामी हमारा दूध पीवेंगे, इस हर्ष से ही मानो उन के स्तन पुष्ट और उन्नत होने लगे। मानो भगवान् का मुँह दाने के लिये पदलेसे ही उन्कटित हो, इस तरह

उनके नेत्र विशेष विकार को प्राप्त होगये, अर्थात् मगवान् का मुँह देखने की उत्पत्ति और शालमा से उनकी आँखों में पास किम्म की तन्त्रीगी होगई। उनका नितम्ब भाग यानी कम्मर के पीछे का हिस्सा यद्यपि पहलेसे ही विशाल था; तथापि जिस तरह कपाजाल चीतने के बाद नदी के किनारे की जमीन विशाल हो जाती है; उसी तरह और भी विशाल होगया। उनकी चाल यद्यपि स्वभावमे ही मन्दी थी लेकिन अब मनगाले हाथी की तरह और भी मन्दी होगई। सर्वेरे के समय जिस तरह सिडान् धादमी की बुद्धि घट जाती है, और गरमी की ऋतु में जिस तरह समुद्र की घेला घट जाती है; उसी तरह गमागम्पा में उन की लास्य लक्ष्मी घटने लगी। यद्यपि उन्होंने त्रिलोकी के अस्ताधारण गर्मको धाम्ण कर रखा था, तथापि उन्हें जरा भी कष्ट या खेद न होता था, क्योंकि गर्म में रहनेवाले अर्हन्नों का पेना ही प्रभाव होता है। जिस तरह पृथ्वा के भीतरी भाग में अकुर करने हैं; उसी तरह मरुदेश माना के पेट में यह गर्म भी, गुमराति से घोर धार करने लगा। जिस तरह शीतल जलमें हिम मृत्तिका या रस डालने से यह और भी शीतल हो जाता है; उसी तरह गर्मके प्रभाव से स्वामिनी मरुदेश और भी अधिक विषयत्सला या जलप्यारी हो गई। गर्ममें भाये हुए मगरान् के प्रभाव से जल घर्मों लीगों में, नाभिराजा अपने सिद्धि से भी अधिक गये। शरदु ऋतु के योग या ऋतु से जिस तरह

किरणों का तेज और भी अधिक हो जाता है। उसी तरह सारे कल्पवृक्ष और भी अधिक प्रभापशाली हो गये। जगत् में तिर्यक और मनुष्यों के आपस के घैर शान्त होगये, क्योंकि घर्षा प्रस्तुति आने से सर्वत्र सन्ताप की शान्ति हो जाती है।



इस तरह नौ महीने और साढ़े आठ दिन घीतनेपर, चैत मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन जय सब ग्रह उच्च स्थानमें आये हुए थे और चन्द्रमा का योग उत्तराषाढा नक्षत्रसे हो गया था तब महादेवा मरुदेवाने युगल धर्मो पुत्रको सुखसे जना। उस समय मानो हर्ष को प्राप्त हुए हां, इस तरह दिशायें प्रसन्न हुए और स्वर्गवासी देवताओं की तरह लींग घड़ी खुशी से तरह तरह की मीठानों अथवा खेल तमाशों में लरा गये। उपपाद शय्या (देवताओं के पैदा होने की शय्या) में पैदा हुए देवता की तरह, जरायु और रुधिर प्रभृति कलङ्कसे घग्जित, भगवान् बहुत ही सुन्दर और शोभायमान दीखने लगे। उस समय जगत् के नेत्रों को चमत्कृत करनेवाला और अन्धकार को नाश करनेवाला विजलीके प्रकाश जैसा प्रकाश तीनों लोक में हुआ। नौकरों के न घजानेपर भी, मेघघत् गम्भीर शरदवाली, दु दुभी आकाशमें यजने लगी। उस समय पैसा जान पडने लगा, मानो स्वर्ग

द्वार समझवाला सतिका गृह—जशाघर बनाया। इसके बाद सवर्त नामक धायु से सतिकागार या जशाघरके चारों तरफ फोस भर तक के बकर पत्थर और बाँटे दूर कर दिये। संवर्त धायु का संहरण करके और भगवान् को प्रणाम करके, वे गीत गाती हुई उनके पास बैठ गई।

इस तरह आसरा के काँपने से प्रभु का जन्म जानकर, मेघ चरा, मेघवती, सुमेधा, मेघमालिनी, तोषधारा, विचित्रा, धारि पेणा और घटादिका नाम की, मेघ पत्रपर रहनेवाली, उर्ध्व-लोक वासिनी आठ दिक्कुमारियाँ वहाँ आई। उन्होंने जिनेश्वर और जिनेश्वर की माता को नमस्कार पूर्वक स्तुतिकर भावों के महीने की तरह, तत्काल, आकाश में मेघ उत्पन्न किये। उन मेघों से सुगन्धिन जल घरमाकर, सतिकागार के चारों तरफ चार फोस तक, चन्द्रिका जिस तरह अँधेरे का नाश कर देती है उसी तरह, धूल का नाश कर दिया। घुटनोंतरु, पाँच रङ्ग के फूलों की धृष्टि से मानो तरह तरह के चित्रोंवाली ही हो इस तरह पृथ्वी को शाभामन्ती बना दी। पीछे तीर्थद्वार के निर्मल गुण गान करती हुई एवं हयोंत्कर्ष से शोभा पाती हुई वे अपने योग्य स्थानपर बैठ गईं।

पूर्व रुचकाद्रि पर्वत पर रहनेवाली नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दियर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, और अपराजिता नाम की आठ दिशा कुमारियाँ भी मानों मन के साथ स्पर्धा करनेवाले हों ऐसे

वेगवान् त्रिमानों में बैठकर वहाँ आई । म्यामी और मन्देवा माता को नमस्कार कर, पहले की तरह कह, हाथों में दर्पण ले, मांगलिक गीत गाती हुई पूरे दिशा की तरफ घड़ी रही ।

दक्षिण रुक्काद्रि परतपर रहनेवाली समाहारा सुप्रदक्षा, सुप्रसुद्धा, यशोधरा, ज्दमीवती, शोणती चित्रगुमा और धनुन्धरा नाम की आठ दिशा कुमारियाँ प्रमोद प्रेरित का तरह प्रमोद करती हुई वहाँ आई और पहले की दिक्कुमारियों की तरह जिनेश्वर और उन की माता का नमस्कार करके, अपना हाथ निवेदन कर, हाथ में कण लेकर, दक्षिण दिशा में गीत गाती हुई घड़ी रही ।

पश्चिम रुक्काद्रि परतपर रहनेवाली इन्देयी, सुरादेयी पृथ्वा पद्मावती एवनासा, अनघामिका, भद्रा और अशोका नाम की आठ दिक्-कुमारियाँ, भक्ति से एव दूमर को नीत लेना चाहती हैं इस तरह गूँघ जल्दी जन्दी आई और पहले यालियाँ की तरह भगवान् और माता को नमस्कार करके विश्वि का और पावा हाथ में लेकर गीत गाती हुई पश्चिम दिशा में घड़ी रही ।

उत्तर रुक्काद्रि परत से अलम्बुमा, मिथवेशी, पुण्डरीक धारणी, हासा, सधप्रमा, श्री और ही नाम की आठ दिक्कुमारियाँ वायु-वैसे रथ पर चढ़कर, अभियोगिक देवताओं के साथ जल्दी से वहाँ आई और भगवान् तथा उन की माता को

नमस्कार कर, अपना काय जना, हाथ में चँवर ले गीत गाती हुई पश्चिम दिशामें पड़ी होगई ।

विदिशाओं के रचक पर्यंत से चित्रा, चित्रकनका; मतेरा सुभ्रामणि नाम्नी चार दिक्कुमारियाँ भी आईं और पहलेशालियों की तरह जिनेश्वर और माता को नमस्कार कर, अपना काम जना, हाथ में दीपक ले ईशान प्रभृति विदिशाओं में पड़ी रहीं ।

रचक द्वीप से रूपा, रूपामिका, सुरूपा, और रूपबावती नाम की चार दिक्कुमारियाँ भी वहाँ तत्कात्र आई । उन्होंने भगवान् का नाभि नाल चार अङ्गुल छोड़कर छेदन किया । इसके बाद वहाँ पड़ा खोद, उसमें उसे डाल, गड्ढे को रत्न और वस्त्र से पूर दिया और उसके ऊपर द्रु से पीठिका बाँधी । इस के बाद भगवान् के जन्म घर के लगता लगन, पूर्य दक्षिण और उत्तर दिशाओं में, उन्होंने लक्ष्मी के घररूप तीन फदलीगृह या केले के घर बनाये । उनमें से प्रत्येक घर में उन्होंने धिमान में हों ऐसे विशाल और सिंहासन से भूषित चतुशाठ या चौक बनाये । फिर जिनेश्वर को अपनी हस्ताञ्जलि में ले, जिन माता को चतुर दाम्नी या होशियार टहलनी की तरह, हाथ का सहारा देकर, चतुशाठ या चौक में ले गईं । वहाँ दोनों को सिंहासनपर बिठाकर, बूझी मालिश करनेवाली की तरह, वे खुशबूदार लक्ष पाक तैत्र की मालिश करने लगीं । तैलके अमन्द आमोद की सुगन्ध से दिशाओं को प्रमुदित करके उन्होंने उन दोनोंके दिग्ग उषटन लगाया । फिर पूर्य दिशा की चतुशाठ में ले जाकर,

सिंहासनपर बिठाकर, अपने मन के जैसे स्नाफ निमल पानी से, उन्होंने दोनों को स्नान कराया। भुगन्धिन कणाय बछों से उनका शरीर पोंछकर, गोगीण चन्दन के रस से उन को चर्चिन किया और दानों को दिव्य घख और विज्रगी के प्रफारा के समान विविध आभूषण पहनाये। इसके बाद भगवान् और उन की जननी को उत्तर चतुशाल में ले जाकर सिंहासनपर बिठाया। यहाँ उन्होंने अभियागिक देवताओं से, भुद्र दिमघन पर्यन्त से, शीघ्र ही गोशार्प चन्दन की लकड़ियाँ मँगवाई। भर पाये दो पाटों से अग्नि उत्पन्न करके, होम-योग्य बनाये हुए गोशीर्ष चन्दन के काट से, उन्होंने हवन किया। हवन का आग से जो भास्म तैयार हुई, उस की उन्होंने रक्षा पीटलियाँ बनाकर दोनों के हाथों में बाँध दीं। प्रभु और उन की जननी दोनों ही महामहिमान्वित थे तोमी दिक्कुमारियाँ भक्ति के बायेरा में थे सब कर रहा था। पीछे 'आप परत की जैसा आयु वाले होओ—प्रभु के कान में चेना बहकर, पन्थर के दो गोलों या उन्होंने आस्फाग्न किया। इसके बाद प्रभु और उन की जननी को स्तिका-भुषनमें परंगपरसुगाकर, वे मांगत्रिक गान गाने लगीं।

सौधमेन्द्रका भगवान्के पास आना और
उनकी स्तुति करना।

अथ उन समय, लग्न काल में जिस तरह सब राजे एक

साथ वज्र उठते हैं ; उन्नी तरह स्वर्ग की शाश्वत घण्टियाँ बड़े जोरों से बज उठीं । पर्वतों की चोटियाँ के समान अबल और आडम्ग इन्द्रों के आसन, समझ से हृदय काँपता है इस तरह, काँप उठे । उस वक्त सौं गम देवलोकाधिपति सौधर्मेन्द्र के नेत्र कापनेके आटोप से लाल होगये । ललाट पट्टपर भ्रुकुटी चढानेसे उनका चेहरा पिपाल होगया । भीतरी क्रोधरूपी अग्नि की शिखा की तरह उनके होठ फडकने लगे । मानो आसन को स्थिर करने के लिए—उस की कँपकँपी बन्द करने के लिए—वे एक पाँव को ऊँचा करने लगे और 'आज यमराज ने किसको चिढ़ी दी है ? आज मौत का वारण्ड किसपर जारी हुआ है ? आज किसका काल पुकार रहा है ?' ऐसा कहकर, उन्होंने अपना—शूरातन रूप अग्नि को वायु समान—वज्र ग्रहण करने की इच्छा की । इन्द्र को बुधित केशरीसिंह की तरह देवका, मातो मूर्त्तिमान हो—ऐसे सेनापतिने आकर कहा,—'हे स्वामि ! मुझे जैसे सिपाही के होते हुए, आप स्वयं आपेश में क्यों आते हैं ? हे जगन्पति ! आज्ञा कीजिये, मैं आप के किस शत्रु का मान मर्दन करूँ ?' उसी क्षण, अपने मन का समाधान कर, इन्द्रने अधधिज्ञान से देवा, तो उसे मालूम हो गया कि, आदि प्रभुका जन्म हुआ है । इससे क्रोधका वेग तत्काल हृदयसे गल गया, पुशारे मारे उसका गुस्सा फौगनही काफूर होगया । घृष्टिसे शांत हुए वायान्तल वाले पयतक तरह, इन्द्र शान्त हो गया । 'मुझे धिक्कार है जो मैंने ऐसा बिचार किया, मेरा दुष्कृत मिथ्या हो' यह कहकर उग्यने इन्द्रास

न त्याग दिया। भात भाट कदम भगवानके सामने रखकर, भातो
 दूसरे रत्न-मुकुटकी लक्ष्मीका देने वाली हो घेरी। बराबरिचो
 मालकपर स्थान करके जानु और मन्त्र-कर्मका पृथ्वीका स्पर्श
 करत हुए प्रभुका समस्कार किया और रोमांगित होकर
 उनकी इत प्रकाश स्तुति करने लगा — " हे तीर्थनाथ ! हे जगन्
 को सत्ताप करने वाले ! हे शशाङ्कके समुद्र ! हे भी माभिनन्दन !
 मैं भागको समस्कार करता हूँ । हे नाथ ! गन्धन प्रभृति तीन
 वगैरोंमें निम्न तरह में पद्य शोभित होता है । उसी तरह
 मनि प्रभृति तीन वगैरों मन्त्रि पीदा होने से भाग शोभते हैं । हे
 देव ! जान यह भक्त क्षेत्र स्वयंसे भी अधिक शोभायमान है ।
 क्योंकि त्रैलोक्यके मुकुट रत्न मद्भाग्य भागी उस भङ्गुत किया
 है । हे जगन्नाथ ! जन्म कल्याणसे पवित्र हुआ आनन्द दिन,
 मन्मार्गमें रहूँ तब तक, भागको तरह, चन्दनाकरा योग्य है। भागके
 इस जन्मके पर्यन्त नरकयोगियोंको सुख हुआ है । क्योंकि आ-
 नोका हृदय किरण मन्मार्गको लाने वाला नहीं होता ? इस
 जन्महीपर्यन्त भात क्षेत्र या भारतवर्षमें निधानकी तरह धर्म
 नष्ट हो गया है, उसे अपने आकाशी धीतरने फिर प्रकाशित
 करानिये । हे भगवान् ! भागके चरणोंको प्राप्त करके अथ वान
संसार-सागरमें नहीं तरेगा ? आपके पदपट्टजाकी शृंग दानसे
 अथ किनका भवसागरमें उद्धार न होगा ? क्योंकि भागके योग
 से लोहा भी समुद्रक पार हो जाता है । हे भगवान् !
 पृथ्वीपिहीन देशमें निम्न तरह कल्पवृक्षा हो और मन्देशमें

जिस तरह नदी का प्रवाह हो, उसी तरह इस भरतक्षेत्रमें गंगोंके पुण्यसे आपने अवतार लिया है।

मौधसेन्द्र का देवताओंको आदिनाथ भगवान् के जन्मकी खबर देना।

भगवानके चरण मलोंमें जानेकी तैयारी।

इस तरह देवलोकमें इन्द्रने पहले भगवानकी स्तुति की और पीछे आपने सेनाधिपति नैगमिणी नामक देवको आशा दी "हे सेनापति! जम्बूद्वीपमें दक्षिणाब्ध स्थित भरतक्षेत्रके मध्य भूमि भागमें लामोने निधि रूप, नामिशुलकरकी पत्नी मरुदेवाके पेट से, प्रथम तीर्थद्वारने पुत्र रूपसे जन्म लिया है। अब उनके जन्म स्नात्रके लिए सब देवताओंको बुलाओ।" इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर, उसने चौदह घोसके विस्तार और अद्भुत आवाजवाली सुधोया नामकी घण्टी तीन धार यजार्ई। मुख्य गाने वालेके पीछे जिस तरह और गवैये गाते हैं; उसी तरह सुधोया घण्टी की आवाज होने पर हमारे सब विमानोंकी घण्टियाँ भी उसके साथ साथ बजने लगीं। कुण्डपुत्रोंसे जिस तरह उत्तम फुलकी वृद्धि होती है, उसी तरह उन सब घण्टियोंकी आवाज दिशाओं विदिशाओंमें गूँज गूँज कर उड़ गई। देवता लोग प्रमादमें आसक्त थे यत्तीस लाख विमानों में वह शब्द तालवाकी भाँति अनुरणन रूप में बह गया। देवता लोग प्रमादमें आसक्त थे, गफलतमें पड़े हुए थे, घण्टियोंकी घोर ध्वनि सुनकर मूर्च्छित और बहोश

होगये और 'यह क्या होता है' पेने सन्नममें पडकर सायधान होन और चैतन्य लाभ करने लगे। इस तरह सायधान हुपदेवाको उद्देश करके, इन्द्रके सेनापतिन, मेघवत षाणीसे इस प्रकार कहा— हे देवताओ ! जिस इन्द्रका शासन अनुद्ध्य है, जिस सुरपतिकी आज्ञाके विरुद्ध कोई भी चग्नेका साहस कर नहीं सकता; जिन देवराजने हुफम के गिलाफ कोइमी घूँ नहा कर सकता, जिस स्वगाधिपतिके आदेशके विपरीत चग्नेकी किसीमें भी क्षमता और सामर्थ्य नहीं, वही यृत्तारि देवाधिपति इन्द्र आपलोगोको देवी प्रभृति परिघार सहित आज्ञा देने हैं, कि जम्बूद्वीपके दक्षिणाङ्ग भरतखण्डके मध्य भागमें, कुलकर नामिराजके पुलमें, आदि तीर्थद्वर भगवान् ने जन्म लिया है। उहीं भगवान्के जन्म कल्याणका महोत्सव मनानेके लिए हम लोग वहाँ जाना चाहते हैं। आप लोग भी सपरिवार वहाँ चलनेके लिए शीघ्र शीघ्र तैयार होकर हमारे पास आजायें इस शुभकाममें विलम्ब न करें क्योंकि इससे उत्तम शुभ कार्य और नहीं है।' इस आज्ञाके सुनतेही अनेक देवता तो भगवान्की भक्ति और प्रीतिसे त्रिचक्र धायुके समुप घेगसे जाने वाले हिरनकी तरह, चल पडे हुए। कितनेही, चक्र मक्से आकषित होने वाले लोहेकी तरह इन्द्रकी आज्ञासे आकर्षित होकर या त्रिचक्र रथाना होगये। कितने ही, नदियों के घेगसे दौडनेवाले जल जीवोंकी तरह अपनी अपनी घरवालियों के उत्साहित और उल्लसित करने पर जोर देनेसे चल पडे और

कितने ही वायुके आकर्षणसे गन्धके चलनेकी तरह, अपने मित्रोंके आकर्षणसे अपने अपने घरों से चल दिये। इस तरह अपने अपने खुन्दर विमानों और अन्य वाहनोसे, मानो दूमरा स्वर्ग ही इस तरह, आकाशको सुशोभित करते हुए देवराज इन्द्रके पास आकर इकट्ठे होगये।

पालक विमानकी रचना।

उस समय पालक नामक अभियोगिक देवको सुरपतिने असम्भाव्य और अग्रनिम यानी लाजवाब और बेजोड विमान रचने की आज्ञा दी। ग्यामीपी ब्राह्मा पात्रन करने वाले—मालिकके द्रुम मुतात्रिक काम करने वाले देवने तत्काल इच्छुगामी—परजीके माणिक चलने वाला विमान रचकर तैयार कर दिया। वह विमान हजारों रत्न निर्मित स्तम्भों—धम्भों—के किरण समूह से आकाश को परिक्रम करता था। उसमें घनी हुई खिडकि थीं उसके नेत्रों जैसी दीर्घ ध्वजाये उसकी भुजाओं जैसी और चेदिकाये उसके दाँनों वैसी मालूम होते थीं एउ सोनके कण्ठोसे यह पुलकित हुआ सा जाग पटता था। उसकी ऊँचाई ३००० मीटरकी और विस्तार या लम्बाई चौड़ाई ८ लाख मीलकी थी। उक्त विमानमें शान्तिकी तरह चाली तीन सोपान पत्थियाँ या सीढियोंकी फनारें थीं जो हिमालय पहाड पर गंगा सिन्धु और गङ्गिताशा नदियोंके जैसी मालूम होती थी। उन सोपान पत्थियों या साढियोंकी फनारके आगे इन्द्रधनुषकी शोभाको धारण करने

गाले, नाना प्रकारके रत्नसिंघने हुए तोरण थे। उस प्रिमानके अन्दर चन्द्रविम्व, दर्पण—आईना, मृदङ्ग और उत्तम दीपिका के समान चौरस और हमगार जमीन शोभा देती थी। उस जमीन पर विग्राह हुए रत्नमय शिलायें, अत्रिस्त और घनी किरणों से, दीवारों पर बने हुए चित्रों पर, पदों के जैसी शोभायमान लगती थीं यानी हीरे पत्थे और माणिक्य प्रभृति जवाहिरों से जो लगानार गहनी किरणें निकलती थीं वे दीवारों पर बने हुए चित्रों पर पदों के समान सुन्दर मालूम होती थीं। उसके मध्य भाग या बीचमें अक्षराओं जैसी पुनर्गियों से प्रिभूषित—रत्नखचित्र एक प्रेक्षामण्डप था और उस के अन्दर सिले हुए कमल की फणिका के समान सुन्दर माणिक्य की एक पीठिका थी। उस पीठिका की लम्बाई—चौड़ाई बत्तीस माइल थी और उस की मुटाई मोलह योचन थी। यह इन्द्र की लक्ष्मी की शय्या की मालूम होती थी। उसके ऊपर एक सिंहासन था, जो सारे तैज के सार के पिण्ड से बना हुआ मालूम पड़ता था। उस सिंहासन के ऊपर अपूर्व शोभागाला विचित्र विचित्र रत्नों से जडा हुआ और अपनी किरणों से आकाश के ध्यास करनेवाला एक विजय-वह्य था। उसके बीच में हाथी के धान में हो ऐसा एक घन्नाडुश और लक्ष्मी के घीडा करने के हिंडोले जैसी कुम्भिक जात के मोतियों की माला शोभा दे रही थी और उन मुक्क दाम के आसपास—गंगा नदी के अन्तर जैसी—उस माला से चिस्तार में आधी अर्द्ध कुम्भिक मोतियों की माला शोभ रही

थी। उनके स्पर्श-सुख के लोभ से मानो स्वल्पित होता हो इस तरह, पूर्व दिशाके मन्द गतिवाले वायुसे वे मालायें जरा जरा हिलती थीं। उनके अन्दर सञ्चार करनेवाला पवन ध्रुवण सुषुप्त शब्द करता था, याना हवा के कारण जो आवाज निकलती थी, यह कानों को सुषुप्तवायी और प्यारा लगती थी। उस शब्द से चेसा मालूम होता था, गोया यह प्रियभाषी की तरह, इन्द्र के निर्मल यश का गान करता हो। उस सिंहासन के आभय से, बायव्य और उत्तर दिशा तथा पूर्व और उत्तर दिशा के बीच में स्वर्गलक्ष्मी के मुहुट्ट जैसे चौरासी हजार सामानिक देवताओं के चौरासी हजार भद्रासन बने हुए थे। पूर्वमें आठ अम महिषी यानो इन्द्राणियों के आठ आसन थे। वे सहोदरों के समान एकले आकार से शोभित थे। दक्षिण पूरव के बीच में अभ्यन्तर सभा के सभासदों के बारह हजार भद्रासन थे। दक्षिण में मध्य सभा के सभासद - चौदह हजार देवताओं के अनुक्रम से चौदह हजार भद्रासन थे। दक्षिण पश्चिम के बीच में, बाहरी सभा के सोलह हजार देवताओं के सोलह हजार सिंहासनों की पक्तियाँ थीं। पश्चिम दिशा में, एक दूसरे के प्रतिनिध के समान सात प्रकार की सेना के सेनापति देवताओं के सात आसन थे और मेघ पर्यंत के चारों तरफ जिस तरह नक्षत्र शोभते हों, उन्नीस तरह शक सिंहासन के चौतरफा चौरासी हजार आत्म रक्षक देवताओं के चौरासी हजार आसन सुशोभित थे। इस तरह सारे विमान की रचना करके आभियोगिक देवताओं ने इन्द्र

को प्रथम ही तब इन्द्र न तत्काल उत्तर वैश्वित्र रूप धारण किया; इच्छानुसार रूप बनाना, देयताओंका स्वभाव है।

सौधमेन्द्र का विमान पर चढ़ना ।

इसके बाद मानों दिशाओं की लक्ष्मीही हो वेसा माट पट्टा नियों सहित, गन्धर्व और नटों का तमाशा देगते हुए, इन्द्रने सिंहासन की प्रदक्षिणा की और पूर्व ओर का सीढ़ियोंकी राहमे, अपनी मान प्रतिष्ठा या अपने उच्चरु के योग्य उन्नत सिंहासन पर चढ़ गया । उसके अंग के प्रतिविम्ब या अक्षय के भाणिक की दीवारों पर पड़ने से उसके सहस्रों अंग दीप्ता लगे । यह पूरा तरफ मुँह करके अपने आसनपर जा बैठा । इसके पीछे, उसके बूमरे रूप के समान सामानिक देय, उत्तर भाग की सीढ़ियों से चढ़कर, अपने-अपने भासनों पर जा बैठे, तब और देयता भी दक्षिण तरफ की सीढ़ियों से चढ़-चढ़ कर अपने-अपने भासना पर जा बैठे ; क्योंकि स्वामी के पास आसन का उड़दून नहीं होता । सिंहासन पर बैठे हुए इन्द्र के सामने पूर्ण प्रमृति थाटा मांगलिक पदार्थ शोभा देरहे थे । सचीपति क विरपर घन्टमार समान छत्र सुशोभित था । चरते फिरते हप्तों की तरह दानों तरफ संवर ढुल रहे थे । अरनों से परत शाना स्ना है, उमानर पताकाओं से सुशोभित आठ हजार मील ऊँचा एक इन्द्र विमान के आगे फरक रहा था । उस मल्ल नदियों से जिन सरह समुद्र शोभता है उसा तरह, सामानिक

ताओं से घिरकर इन्द्र शोभने लगा । अथ देवताओं के विमानों-से यह विमान घिरा हुआ था, इमलिये मण्डलाकार चैत्यों से घिरा हुआ जिस तरह मूल चैत्य शोभता है, उसी तरह यह शोभता था । विमान की सुन्दर माणिक्यमय दीवारों के अन्दर एक दूसरे विमान का जो प्रतिबिम्ब पड़ता था, उससे ऐसा मालूम होता था, मानो विमानों से विमानों को गर्भ रहा है, अर्थात् विमान के अन्दर विमान का धोया होता था ।

सौधमेन्द्रके विमानका खान होना और भगवान् के सूतिकागार के पास पहुँचना ।

दिशाओं के मुखमें प्रतिबिम्ब रूप हुए बन्दोजनों की जगन्धरि से, दुदुभि के शब्द से, गन्धर्व और नटोंके बाजोंकी आवाज से मानो आकाश को चीरता हो इस तरह, यह विमान, इन्द्र की इच्छा से, सौधर्म देवलोक के बीचमें होकर चला । सौधर्म देवलोक के उत्तर तरफ से जरा तिरछा होकर उतरता हुआ यह विमान, ८ लाख मील लम्बा चौड़ा होने से जम्बू द्वीप को ढकने वाला दृषकन सा मालूम होने लगा । उस समय राह चलनेवाले देव एक दूसरे से इस तरह कहने लगे—‘हे हस्तिगहन ! दूर हट जाओ, आप के हाथी को मेरा सिंह देख न सकेगा । हे भग्वा रोही महाशय ! जरा दूर रहो । मेरे उँट का मिजाज बिगड़ा हुआ है, उसे क्रोध आरहा है, आपके घोड़े को यह सहन न करेगा । हे मृगवाहन ! आप नजदीक मत जाओ, क्योंकि मेरा

को पहले की अपेक्षा भी सक्षित करता हुआ, इन्द्र जम्बूद्वीप के दक्षतन भरताब्द में, आदि तीर्थङ्करकी जन्मभूमिमें आ पहुँचा। सूर्य जिस तरह मेरु की प्रदक्षिणा करता है, उसी तरह वहाँ उस ने उस विमान से प्रभु के सूतिकागार की प्रदक्षिणा की और घर के कोने में जिन तरह धन रगते हैं, उसी तरह ईशान कोण में उस विमान को स्थापन किया।

सौधमेन्द्रका भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करना।

मरुदेशा माता को परिचय दना।



सौधमेन्द्रका भगवान्को प्रणाम करना।

पीछे महामुनि जिस तरह मान से उतरता है—मान का त्याग करता है—उसी तरह मस्तकचित्त शम्भुन्द्र विमान से उतर कर प्रभु के पास आया। प्रभु को देखते ही उस देवाधिपति ने पहले प्रणाम किया; क्योंकि 'स्वामी के दर्शन होते ही प्रणाम करना स्वामी की पहली भेट है।' इस के बाद माता सहित प्रभु की प्रदक्षिणा करके उसने फिर प्रणाम किया। क्योंकि भक्ति में पुनर्भक्ति दोष नहीं होता। यानी भक्ति में किये हुए काम को धारण करने से दोष नहीं लगता। देवताओं द्वारा मस्तकपर धर्मिपत्र किये हुए उन भक्तिमान् इन्द्र ने, मस्तक पर धञ्जलि जोड़कर, स्वामिनी मछेरा से इस प्रकार कहना आरम्भ किया —“अपने पेट में रत्नरूप पुत्र को धारण करनेवाली

और जगदीश्वर को जननेवाली है जगमाता ! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप धर्म हैं, आप पुण्यवती हैं, और आप सफल जन्मात्री तथा उत्तम लक्षणोंवाली हैं। त्रिलोकीमें जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ हैं उन में आप पवित्र हैं, क्योंकि आपने धर्म का उद्धार करने में अप्रसर और आच्छादित हुए मोक्ष मार्ग को प्रकट करनेवाले भगवान् आदि तीर्थङ्कर को जन्म दिया है, अर्थात् आप से धर्म को उद्धार करनेवाले श्री छिपे हुए मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करनेवाले भगवान् का जन्म हुआ है। हे देवि ! मैं सौधर्म देवलोक का इन्द्र हूँ। आप के पुत्र महन्त भगवान् का जन्मोत्सव मनाने के लिए यहाँ आया हूँ। इस लिए आप मुझ से भय, न करना—मुझ से शौफ न घाना। ये बातें कहकर, सुरपति ने मस्देवा माता के ऊपर अवस्थापनिका नाम की निद्रा निर्माण की और प्रभु का एक प्रतिप्रिय बनाकर उनकी बगल में रख दिया। पीछे इन्द्रने अपने पांचरूप बनाये, क्योंकि ऐसी शक्तिवाला अनेक रूपों से स्वामी की योग्य भक्ति करना चाहता है। उनमें से एक रूप से भगवान् के पास आकर, प्रणाम किया और प्रिय से नम्र हो— हे भगवन् आना कीजिये' यह कहकर कल्याणकारी भक्तिवाले उस इन्द्रने गोशीर्ष चन्दन से चर्चित अपने दोनों हाथों से मानो मूर्त्तिमान कल्याण हो इस तरह, भुवनेश्वर भगवान् को ग्रहण किया। एक रूप से जगत् का ताप नाश करने में छत्र रूप जगत्पति के मस्तकपर, पीछे खड़े होकर छत्र धारण किया, स्वामी की दोनों ओर,

को पहले की अपेक्षा भी सक्षित करता हुआ, इन्द्र जम्बूद्वीप के दक्षपन भरताक्ष में, आदि तीर्थङ्करकी जम्बूमिमें आ पहुँचा । सूर्य जिस तरह मेढ की प्रदक्षिणा करता है, उसी तरह वहाँ उस ने उस विमान से प्रभु के सृष्टिकागार की प्रदक्षिण की और घर के कोने में जिस तरह धन रखते हैं, उसी तरह ईशान कोण में उस विमान को स्थापन किया ।

सौधमेन्द्रका भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करना ।

मरुदेवा माता को परिचय दना ।



सौधमेन्द्रका भगवान्को प्रहण करना ।

पीछे महामुनि जिस तरह मान से उतरता है—मान का त्याग करता है—उसी तरह प्रमथचित्त शक्तेन्द्र विमान से उतर कर प्रभु के पास आया । प्रभु को देखते ही उस देवाधिपति ने पहले प्रणाम किया, क्योंकि 'स्वामी के दर्शन होते ही प्रणाम करना स्वामी की पहली भेट है।' इस के बाद माता सहित प्रभु की प्रदक्षिणा करके उसने फिर प्रणाम किया । क्योंकि भक्ति में पुनरुक्ति दोष नहीं होता; यानी भक्ति में किये हुए काम को बारम्बार करने से दोष नहीं लगता । देवताओं द्वारा मस्तरूपर अभिप्रेरु किये हुए उस भक्तिमान् इन्द्र ने, मस्तरूप पर अञ्जलि जोड़कर, स्वामिनी मरुदेवा से इस प्रकार कहना आरम्भ किया —“अपने पेट में स्तनरूप पुत्र को धारण करनेवाली

और जगदीश्वर को जननेवाली हे जगन्माता । मैं आप को नमस्कार करता हूँ । आप धन्य हैं, आप पुण्यवती हैं, और आप सफ़्त जन्मदात्री तथा उत्तम लक्ष्मणोंवाली हैं । त्रिगोकीमें जितनी पुण्यवती लिर्याँ हैं उन में आप पवित्र हैं, क्योंकि आपने धर्म का उद्धार करने में अग्रसर और आच्छादित हुए मोक्ष मार्ग को प्रकट करनेवाले भगवान् आदि तीर्थङ्कर को जन्म दिया है, अर्थात् आप से धर्म को उद्धार करनेवाले और छिपे हुए मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करनेवाले भगवान् का जन्म हुआ है । हे देवि ! मैं सीधर्म देवलोक का इन्द्र हूँ । आप के पुत्र महन्त भगवान् का जन्मोत्सव मनाने के लिए यहाँ आया हूँ । इस लिये आप मुझ से भय, न करना—मुझ से खौफ न खाना । ये बातें कहकर, सुरपति ने मरुदेवा माता के ऊपर अवस्थापनिका नाम की निद्रा निर्माण की और प्रभु का एक प्रतिविम्ब बनाकर उनकी घण्ट में रख दिया । पीछे इन्द्रने अपने पाँचरूप बनाये, क्योंकि ऐसी शक्तिवाला अनेक रूपों से स्वामी की योग्य भक्ति करना चाहता है । उनमें से एक रूप में भगवान् के पास आकर, प्रणाम किया और त्रिनय से नम्र हो—'हे भगवन् आशा कीजिये' यह कहकर कल्याणकारी भक्तिवाले उस इन्द्रने गोशीर्ष चन्दन से चर्चित अपने दानों हाथों से मानो मूर्त्तिमान कल्याण हो इस तरह, भुवनेश्वर भगवान् का ग्रहण किया । एक रूप से जगन् का ताप नाश करने में छत्र रूप जगत्पति के मस्तकपर, पीछे पड़े हाकर छत्र धारण किया ; स्वामी की दोनों ओर,

वाहुदण्ड के समान दो रूपों से दो सुन्दर चँवर धारण किये और एक रूप से मानो मुख्य द्वाग्पाल हो इस तरह घञ्ज धारण करके भगवान् के सामने गडा होगया। जय-जय शब्दों से आकाश को एक शब्दमय परनेवाले देवताओं से घिरा हुआ और आकाश जैसे निर्मल चित्तघाला इन्द्र पाँच रूपोंसे आकाश मार्ग से चला। प्यासे पथिकों की नजर जिस तरह अमृत सरोवर पर पड़ती है, उसी तरह उत्कण्ठित देवताओं की दृष्टि भगवान् के उम अद्भुत रूप पर पड़ी। भगवान् के उस अद्भुत रूप को देखने के लिए, आगे चलनेवाले देवता अपने पिछले भाग में नेत्रों को होने की इच्छा करते थे; यानी वे चाहते थे, कि अगर हमारे सिर के पीछे भाँसें होंगी तो हम भगवान् के अद्भुत मनमोहक रूप का दर्शन कर सकें। अगल वारा घञ्ज घाल देवताओं की स्यामी के दर्शनों से तृप्ति नहीं हुई, इन्द्रिये मानो उनके नेत्र न्यमित हो गये हों, इस तरह अपने नेत्रों को दूसरी आर नहीं कर सके। पीछे वाले देवता भगवान् के दर्शनों की इच्छा से आगे आना चाहते थे। इन्द्रिये उन्मत्त परनमें वया मित्र और स्यामियों की पया नहीं करत थे। इस के बाद देवता इन्द्र दृष्ट्य में रक्षा हाँ इस तरह भगवान् का भाव हृदय से उगाकर मर पयन पर गया। यहाँ पाण्डुय घनमें, दक्ष्या वृत्तिका पर, भक्तिपाण्डुय घन्या शिवाय, महन्ना स्नात्र के योग्य विदायनाय, पूय दिगा का स्यामो इन्द्र, हर्ष के स्याय, प्रमु को भयना गाद् में लेका बैठा।

तिस समय सौधमेंद्र मेरु पर्यंत के ऊपर आया उस समय
महायोग चलने से शर पाकर, महाराज लाग देवों से चिराहुमा
 विष्णुधारी कृष्णवाहन ईशान बलाधिपति ईशानेंद्र अथवा पुण्य
 नामक आधियोगिक देवों द्वारा बनाये हुए पुण्य विमान में बैठ
 कर दक्षयन दिशा की राहसे ईशान बल से नीचे उतरकर और
 उग निरला शरकर, गद्दीभर द्वीप में आ, उस द्वीप के ईशान
 घोष में स्थित रतिकर परतार, सौधमेंद्र की तरह अपने
 विमान का छेड़ा कर याकर, भर परत पर भगवान् के निकट
 मणि स्थित आया । सनतकुमार इन्द्र भी १२ लाख विमान
 यामी देवताओं से चिक्कर और सुमन नामक विमान
 में बैठकर आया । मदेन्द्र नामक इन्द्र, आठ लाख विमान यामी
 देवताओं सहित धीयत्सु नामक विमान में बैठकर, मनरे औम्नी
 क्षेत्र नामसे आया । इन्द्रेन्द्र नामक इन्द्र, विमान-यामी चार
 लाख देवताओं से साथ राधार्त्त नामक विमानमें बैठकर यामी
 के पास आया । लान्तप नामक इन्द्र, पचास हजार विमान-यामी
 देवताओं के साथ, कामयय नामक विमानमें बैठकर चिरश्वर
 के पास आया । शुभ नामक इन्द्र, चासीस हजार विमान यामी
 देवताओं के साथ, धीनिगम नामक विमानमें बैठकर, मेरु पर्यंत
 पर आया । मरुधर नामक इन्द्र ७ हजार विमान यामी
 देवताओंके साथ मनोरम नामक विमानमें बैठकर, जिनेश्वरके
 पास आया । भार्नेतप्राणत देवलोकका इन्द्र, चार सौ विमान-

वासी देवताओंके साथ अपने विमल नामक विमानमें बैठकर आया और आरणाच्युत देवलोकाका इन्द्रभी तीन सौ विमान-वासी देवताओंके साथ, अपने अति घेगवान सर्वतोभद्र नामक विमानमें बैठकर आया ।

उस समय रत्नप्रभा पृथ्वीकी मोटी तहमें निवास करने वाले भुवनपति और व्यन्तरके इन्द्रकिे जासन फाँप उडे । चमरचवानाम की नगरी में, सुधर्मा सभाके अन्दर चमर नामक सिंहासनपर, चमरासुर—चमरेन्द्र बैठा हुआ था । उसने अचधिज्ञानसे भगवानके जन्मका समाचार जानकर सम्पूर्ण देवताओंको सूचित करनेके लिए, अपने द्रुम नामके सेनापतिसे औधघोषा नामकी घण्टी बजवाई । इसके बाद अपने ६४ हजार सामानिक देवों, ३३ त्रायत्रिशक गुरुस्थानीय देवों, चार लोक पाल, पाँच अग्र महिषी या पटरानी अभ्यन्तर—मध्य—त्राय तीन परिपद्मोंके देव, सात प्रकारकी सेना, सात सेनाधिपति और चारों दिशाओंके ६४ हजार आत्मरक्षक देव तथा अन्य उत्तम ऋद्धिवाले असुर कुमार देवोंसे विग हुआ, आभियोगिक देवने तन्काल रचे हुए, ४००० मील ऊँचे, दाघ ध्रजासे सुशोभित और चार लाख मीलके विस्तार वाले विमानमें बैठकर भगवान्का जन्मोत्सव मनानेकी इच्छासे चला । यह चमरेन्द्रमी शक्रेन्द्रकी तरह अपने विमानको राहमें छोटा करके, भगवान्के आगमनसे पवित्र हुई मेघ पर्वत की घोटी पर आया । बलि चँचा नामकी नगरीका बलि नामका इन्द्रमी, महौघस्वराय नामका घण्टा बजवाकर महाद्रुम नामके

सेनापतिने पुत्रानेने आये हुए, साठ हजार सामानिक देव और इनसे चौगुने आत्मरक्षक देव एव अन्य त्रिंशत् प्रभृति देवों सहित, चमरेन्द्रकी तरह धमन्द धानन्दके मन्दिर रूप मेरु पर्वत पर आया। नाग कुमारका धरण नामक इन्द्र मेघस्यरा नामकी घण्टी बनवाकर, भद्रसेन नामके अपनी पैदल सेनापति द्वारा पुत्राने हुए ८ हजार सामानिक देवताओं और उनमें चार गुने आत्मरक्षक देव, ८ पटरानी एव अन्यमी नाग कुमारके देवोंको साथ लेकर दो गाय मील गम्ये चौंटे और दो हजार मीन ऊँच और इन्द्र भ्रजसे सुशोभित विमानमें बैठकर भगवान्के दशानके लिए उत्सुक हाथर मन्दराचल या मेरु पर्वत के उपर क्षणभंगमें आया। भूतानन्द नामक नागेन्द्र, अपनी मेघस्यरा नामकी घण्टी बनवाकर दक्ष नामक सेनापति द्वारा पुत्राने हुए सामानिक प्रभृति देवताओं सहित अभियोगिक देवताके बनाये हुए विमानमें बैठकर, तीन लोकके नाथने सनाथ हुए मेरु पर्वत पर आया। उन्नी तरह विद्युत्कुमारके इन्द्र हरि और हरिसह, सुवर्णकुमारके इन्द्र धेनुदेव और धेनुदागी अग्निकुमारके इन्द्र अग्निशिव और अग्निमाणव धायुकुमारके इन्द्र बेलम्ब और प्रमथन स्तनिन कुमारके इन्द्र सुपोध और महा धोप उद्धा कुमारके इन्द्र जलकान्त और जगप्रभ, क्षीप कुमारके इन्द्र पूण और अविष्ट एव दिक्कुमारके इन्द्र अमित और अमितपाहन भी यहाँ आये।

व्यन्तरोंमें पिशाचोंके इन्द्र काल और महाकाल, भूतोंके इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप यक्षोंके इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र राक्षसोंके इन्द्र भीम और महाभीम, किन्नरोंके इन्द्र किन्नर और त्रिपुररूप, त्रिपुररूपोंके इन्द्र सत्पुररूप और महापुररूप, महोरगके इन्द्र अति काय और महाकाय, गन्धर्वाँके इन्द्र गीतरति और गीतयशा अप्सरसि और पंच प्रसि वगेर व्यन्तरोंके दूसरे आठ निकाय, उनसे मोलद इन्द्र, उसमेंसे अप्सरसिके इन्द्र सनिहित और समानरु पंच प्रसिके इन्द्र घाता और विघाता ऋषिवादिके इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक, भूतवादिके इन्द्र ईश्वर और महेश्वर, वन्दितके इन्द्र सुवत्सक और विशालक, महावन्दितके इन्द्र हास और हासरति कुम्भाडके इन्द्र श्वेत और महाश्वेत, पावरुके इन्द्र पत्रक और पत्ररूपति ज्योतिष्कोंके असरपात सूर्य और चन्द्र इन दो नामोंके ही इन्द्र इन प्रकार कुल चौंसठ इन्द्र मेव परंत पर एक साथ आये ।

देव कृत जन्मोत्सव

इसके बाद अच्युत इन्द्रने जिेश्वरके जन्मोत्सवके लिये उपकरण या सामग्री लानेकी अभियोगिन् देवताओंको आज्ञा दी और उम्मी समय ईशान दिशाकी तरफ जाकर, वैज्रिय समुद्रघातमें क्षणभर में उत्तम पुद्गलोंको आकर्षणकर, सुवर्णके, चाँदीके, रत्नके, सुवर्ण और चाँदीके सुवर्ण और रत्नके, सोने

चाँदी और रत्नोंके पर्व मिट्टीके आठ माइल ऊँचे आठ तरहके प्रत्येकदिने एक हजार आठ सुन्दर बलश बनाये। बलशों की हाथ्याके प्रमाणसे उसी तरह सुवर्णादिकी आठ प्रकार की धारियाँ, दर्पण, रत्न, कण्डक, द्विविधियाँ, घाल, पात्रिका फूलों की भंगोरी,—ये सब मानो पहलेसे ही बनाकर रखी हों, इस तरह तत्काल बनाकर वहाँ से छाये। पीछे घषा के जलकी तरह क्षीर समुद्र से उढ़ोंने बलश भर जिये और मानो इन्द्र को क्षीर समुद्र के जल का अभिज्ञान कराने के लिये ही हो, इस तरह पुण्डरीक, उत्पन्न और कौकिलर ज्ञानि के कमल भी वहीं से संग ले लिये। जल भरनेवाले पुण्य घटे से जलाशय में जल ग्रहण करें, उन तरह हाथ में घटे लिये हुए देवोंने पुष्करवर समुद्र से पुष्कर जात के कमल ले लिये। मानो अधिक घटे बनाने के लिये ही हों, इस तरह मागध आदि तीर्थों से उढ़ोंने जल और मिट्टी ली। जिस तरह खरीद करनेवाले मुख्य यानगी लेते हैं उसी तरह गंगा आदि महा नदियों से उढ़ोंने जल ग्रहण किया। मानो पहलेसे ही धरोहर रखी हो, इस तरह शुद्ध हिमयन्त पर्वत से सिद्धार्थ पुण्य, श्रेष्ठ गन्धद्रव्य और सर्वोपधियाँ लीं। उसी पहाड़ के ऊपर के पद्म नाम के सरोवर से निर्मल, सुगन्धिन और पवित्र जल और कमल लिये। एक ही काम में लगे रहने से मानो स्पृहा करते हों, इस तरह उढ़ोंने दूसरे पर्वत के तालाबोंमें से पद्म प्रभृति लिये। सब क्षेत्रोंमें से, घैताद्वय के ऊपरसे और त्रिजयोंमें से, अतृप्त के सदृश देवताओं ने, स्वामी के

प्रसाद के समान जल और कमल प्रभृति लिये । मानो उनके लिये ही इकट्ठी करके रखी हों, इस तरह यक्षस्कार पर्वत के ऊपर से दूसरी पवित्र और सुगन्धित घस्तुएँ उहोने लीं । मानो कल्याण से अपने आत्मा की ही भरते हों, इस तरह आलस्य रहित उन देवताओं ने देवबुरु और उत्तर कुक्षेत्र के सरोवरोंसे फलश जलसे भर लिये । भद्रशाल, मन्दन, सौमनस और पाण्डुक घनमें से उहोने गोशीर्ष चन्दन आदि घस्तुएँ लीं । गन्धी जिस तरह सय तरह के गन्ध द्रव्यों को एकत्रित करता है, उसी तरह ये गन्ध द्रव्य और जलको एकत्रित करके तत्काल मेघ पर्वतपर आये ।

अब दस हजार सामानिक देव, चालीस हजार आत्मरक्षक देव, तैंतीस त्रायलि शत देव तीनों समाओं के सय देव, चार लोकपाल, सात बड़ी सेना, और रात सेनापतियों से घिरे हुए आरणाच्युत देवलोकका इन्द्र, पवित्र होकर, भगवान् को ध्यान कराने के लिए तैयार हुआ । पहले उस अब्युत इन्द्रने उत्तरासग फरके नि संग भक्ति से, गिले हुए पारिजात प्रभृति पुष्पों की अञ्जलि ग्रहण कर, और सुगन्धित धूप से धूपित कर, पिलोकी नाथ के पाम यह कुसुमाञ्जलि रखी । इसी समय देवताओं ने भगवान् की सानिध्यता प्राप्त होने के अद्भुत आनन्दसे मानो हँसते हों ऐसे और पुष्पमालाओं से चर्चिन किये हुए सुगन्धित जल के घडे वहाँ लाकर रखे । उन जल बलशों के मुँहपर भौरों के शर्दों से शब्दायमान हुए कमल रखे थे । इससे ऐसा मालूम

दाता था, मानो वे भगवान् के प्रथम छात्र मंगल का पाठ कर रहे हों और स्वामी के ध्यान कराने के लिये पातालों से आये हुए पाताल फलश हों, वे ऐसे बलशुभालूम होते थे। अच्युत इन्द्रने अपने सामानिक देयताओं के साथ, मानो अपनी सम्पत्तियों के फल रूप हों ऐसे १००८ बलश प्रदण किये। ऊँचे किये हुए भुजदण्ड के अग्रवर्त्तों ऐसे वे बलश जिनके दण्डे ऊँचे किये हों ऐसे कमल कोश की शोभा की विद्वम्यता करते थे; यथाम् उनसे भी निपादा सुन्दर लगने थे। पीछे अच्युतेन्द्र ने अपने मस्तक की तरफ बलश को जरा नचाकर जगत्पति को ध्या कराना आरम्भ किया। उस समय कितने ही देयता शुभा में होनेवाले प्रति शब्दों से मानो मेघ पवत को घाघाल करते हों इस तरह धानक नामके मृदग को यजाने लगे। भक्ति में तन्पर ऐसे कितने ही देयता, मयन करते हुए महासागर की ध्वनि की शोभा को चुगनेवाली आघाज की दु दुमियों यजाने लगे।

जिस तरह पवन बाहुल्य ध्वनिवाले प्रवाह की तरंगों को मिटाता है, उसी तरह कितने ही देयता, ऊँची ताल से झाँकोंको परस्पर मिडा मिडा कर यजाने लगे। कितने ही देयता, मानो ऊँचे लोच में जितेन्द्र की आत्मा का विस्तार करती हो, ऐसी ऊँचे मुँहवाली भेरी को जोर जोर से यजाने लगे। जिस तरह ग्यालिये किन्नी ऊँचे स्थानपर खड़े होकर सींगिया यजाने हैं; उसी तरह देयता मेघ शिपरपर खड़े होकर 'बाहल' नाम का धापा यजाने लगे। कितने ही देयता, जिस तरह दुष्ट शिर्षोंको

हाथ से पीटते हैं उसी तरह उद्वेगोप करने के लिए अपने मृदङ्ग तामक बाजे को पीटने लगे ; यानी मृदङ्ग बजाने लगे । कितन ही वहाँ आये हुए देवता, असंख्य सूरज और चन्द्रमा की कान्ति को हरनवाली सोने और चाँदी की भाँकों को बजाने लगे । कितने ही देवता मानो मुँह में अमृत भरा हो, इस तरह गाल फुलाकर शंख बजाने लगे । इस तरह देवताओं के बजाये हुए विचित्र प्रकार के बाजों की प्रतिध्वनि से मानो आकाश भी, बिना बाजा बजानेवाले के, एक बाजो जैसा होगया । चारण मुनि—'हे जगन्नाथ ! हे सिद्धिगामि ! हे वृषासागर ! हे धर्म-प्रवर्तक ! आपकी जय हो, आपका कल्याण हो'—इस तरहके ध्रुपद, उत्साह, स्वन्धक, गलित और वस्तुयुक्त—प्रभृति पद्य और मनोहर गद्य से स्तुति करने के बाद अपनी परिवार के देवताओं के साथ अब्धुने ३ भूवनभक्ता के ऊपर धीरे धीरे फलशों का जल डालने लगे । भगवान् के सिरपर जलधाराकी वृष्टि करनेवाले वे फलश मेघ पर्वत की चोटीपर बरसनेवाले मेघों की तरह शोभा देने लगे । भगवान् के मस्तक के दोनों तरफ देवताओं द्वारा झुकाये हुए वे फलश माणिक्य निर्मित मुकुट की शोभा को धारण करने लगे । आठ आठ मीठ के मुँह वाले घड़ोंमें से गिरनेवाली जल धाराय, पर्वत की गुहाओं में से निकलनेवाले झरनों के समान शोभा देने लगीं । प्रभु के मुकुटभाग से उछल उछलकर चारों तरफ गिरनेवाले जल के छींटें—धर्मरूपी वृक्ष के अद्भुत के समान शोभने लगे । प्रभु के

शरीरपर पड़ते ही मण्डलाकार हुआ कुम्भजल मस्तक के ऊपर सफेद छत्र के समान, ललाट भागपर फैला हुआ कान्तिमान ललाट के आभूषण जैसा, कर्ण भाग में वहाँ आकर विश्रान्ति को प्राप्त हुए नेत्रों की कान्ति जैसा, कपोल भाग में कपूर की पत्र रचना के समूह जैसा, मनोहर होठोंपर विशद हास्य की कान्ति के समान, कंठ देश में मनोहर मुकामाल जैसा, कन्धोंपर गोशीर्ष चन्द्रन के तिलक जैसा, भुजा, हृदय और पीठपर विशाल चक्रके सदृश पर कमर और घुटनों के बीच में विस्तृत उत्तरीय चक्रके समान—इस तरह क्षीरोदधि—क्षीर सागर का सुन्दर जल भगवान् के प्रत्येक अङ्ग में जुड़ी-जुड़ी शोभा को धारण करता था। जिस तरह चातक—पपैहिया—मेहके जलको ग्रहण करना है; उसी तरह कितने ही देवता भगवान् के ज्ञान के जल को जमीनपर पड़ते ही थ्रदासे ग्रहण करने लगे। ऐसा जल फिर कहीं मिलेगा,—यह विचार करके कितने ही देवता उसे, मरु देश या मारवाड के लोगों की तरह, अपने अपने सिरो पर छिड़कने लगे। कितने ही देवता, गरमी से घबराये हुए हाथि योंकी तरह, अमिलाय पूर्वक, उस जल से अपने अपने शरीर सँभलने लगे। मेघ पर्यंत की चोटियोंपर, जोर से फँडनेवाला वह जल चारों तरफ हजार नदियों की कल्पना कराने लगा और पाङ्क, सौमास, नन्दन तथा भद्रशाल यागीचा में फैलनेवाला वह जल धारों की लीलाको धारण करने लगा। ज्ञान करते करते भीतर का जल कम होने से नीचे मुलवाले इन्द्र के घड़े मानों

जल रूपी सम्पत्ति कम होने से लज्जित हुए से जान पड़ने लगे। उस समय इन्द्र की आज्ञा के अनुसार चलनेवाले आभि योगिक देवता उन घडों को दूसरे घडों के जल से भर देते थे। एक देवता के हाथ से दूसरे देवता के हाथमें—इस तरह अनेकों के हाथों में जानेवाले वे घडे श्रीमानों के बालकों की तरह शोभते थे। नाभिराज के पुत्र के समीप रखती हुई फलशों की पत्तियाँ आरोपण किये हुए सोने के कमलों की माला की लीला को धारण करती थीं। पीछे मुखभाग में जल का शब्द होनेसे मानो वे अर्हन्त की स्तुति करते हों ऐसे फलशों को देवता फिर से स्वामी के स्तिरपर ढोलने लगे। यक्ष जिस तरह चक्रवर्ति के धन कलश को पूर्ण करते हैं, उसी तरह देवता प्रभु के ज्ञान करने से खाली हुए, इन्द्रके घडों को जलसे पूर्ण कर देते थे। धारम्भार खाली होने और भरे जानेवाले वे घडे सञ्चार करने वाले घटीयत्र के घण्टों की तरह सुन्दर मालूम होते थे। अच्युनेन्द्र ने बगोडों घडों से प्रभु को ज्ञान कराया, और अपनी आत्मा को पवित्र किया, यह आश्चर्य की बात है। इसके बाद चारण और अच्युत देवलोक के स्वामी अच्युत इन्द्र ने दिव्यगंध कापायी वस्त्र से प्रभु के अंग को पोछा। उसके साथ ही अपनी आत्मा को भी मार्जन किया। प्रातःकाल की अम्रलेपा जिस तरह सूर्यमण्डल को छूनेसे शोभा पाती है, उसी तरह गन्ध कापायी वस्त्र भगवान् के शरीर का स्पर्श करने से शोभायमान लगता था। साफ किया हुआ भगवान् का शरीर सुवर्णसागरके

सर्वम्य जैसा था और यह सुवर्णगिरि—मेरु के एक भाग से बनाया हुआ हो ऐसा देदीप्यमान था ।

इसके बाद धर्मियोगिक देवताओंने गोदीर्घ चन्द्रन के रजसा फर्दम सुन्दर और विचित्र रखावियों में भरकर अच्युतेन्द्र के पास रखा, तब चन्द्रमा जिस तरह अपनी चाँदनी से मेरु पर्यंत के शिखर को विलेपित करता है, उसी तरह इन्द्र ने प्रभु के भंग पर उसका विलेपन करना आरम्भ किया । कितने ही देवताओं ने उत्तरामङ्ग धारण करके यानी च-घेर दुपट्टा डालकर, प्रभुके चारों तरफ अतीव सुगन्धिपूर्ण धूपदानी हाथों में लेकर खड़े हो गये । कितने ही उसमें धूप डालते थे । वे चिकनी त्रिकनी धूप की रेखासे मानो मेरु पर्यंत की दूसरी श्याम रंग की झूलिका बनाते हों, ऐसे मादूम देने थे । कितने ही देवता प्रभुके ऊपर ऊँचा सफेद छत्र धारण करने लगे । इससे वे गगनकरी महा मरौजर को कमलजाला करते हुएने जान पड़ने थे । कितने ही चँघर ढोलने लगे । इसमें वे स्वामी के दर्शनों के त्रिप अपने नातेदारों को पुगतते हों ऐसे मालूम होते थे । कितने ही देवता कमर बाँधे हुए आत्मरक्षककी तरह अपने हथियार लगाकर स्वामी के चारों तरफ खड़े थे । मानो आकाश गिप्त विद्युत्प्रता या चंचल विजृगी की लीला को बनाते हों, इस तरह कितने ही देवता मणिमय और सुवर्णमय पंगोंसे भगवान्को हया करने लगे । कितनेही देवता मानो दूबरे रङ्गाचार्य हों इस्तरह विचित्र विचित्र प्रकारके दिव्यपुष्पोंकी वृष्टि हर्षोत्कण्ठ पूछाकर करने लगे ।

कितने ही देवता मानो अपने पापका उच्चाटन करते हों, इस तरह अत्यन्त सुगन्धिपूण द्रव्योंका घुण कर चारो दिशाओंमें बरसाने लगे। कितने ही देवता मानो स्वामी द्वारा अधिष्ठि मंत्र पर्यंतकी श्रद्धि बढ़ानेकी इच्छा रखते हों इस तरह सुवर्णकी घर्षा करने लगे। कितनेही देवता स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करने के लिये उतरनेवाले तारोंकी पत्तियाँ हों ऐसी रत्नोंकी वृष्टि करने लगे, अर्थात् देवतागण जो रत्नोंकी घर्षा करते थे, उससे चेसा भाव्युम होता था, गोया प्रभुकी घन्दना करने के लिये आरमानसे सितारोंकी घर्षा उतर रही हों। कितनेही देवता अपने मधुर और मीठे स्वरसे गन्धर्वाँकी, सेनाया भी तिरस्कार करीवाले नये नये प्राम और रागोंसे भगवान् के गुण-भान करने लगे। कितनेही देवता मद्धे हुए, धन और छंदों वाले याजे यज्ञाने लगे, क्योंकि भक्ति अनेक प्रकारसे होती है। कितने ही देवता मानो मेघपर्यंतके शिखरोंको भी नचाना चाहते हों, इस तरह अपने चरण प्रहारसे उसकी कँपाते हुए मचाने लगे। कितने ही देवता दूसरी धार्मिगता हों इस तरह अपनी स्त्रियोंके साथ विचित्र प्रकारके अभिप्रायसे उज्ज्वल नाटक करने लगे। कितने ही देवता पँखों वाले गरुडकी तरह आकाशमें उड़ने लगे। कितनेही मुर्गों की तरह जमीनपर फडकी लगे। कितने ही हंसकी सी सुन्दर चालसे चलने लगे। कितने ही सिंहकी तरह सिंहनाद करने लगे। कितने ही हाथियोंकी तरह चिह्वाडते थे। कितने ही घोड़ोंकी तरह खुशीसे दिनहिनाते थे। कितने ही गधकी तरह घनघनाहट

की आवाज करने थे। कितने ही विद्वान् या मन्त्रारोपी तरह चार प्रकारके शब्द बोलते थे। कितने ही यन्त्र जिम् तरह वृक्षों की शाखाओंको हिलाने हैं, उम तरह अपने पाँवोंसे पवन शिखर को धँपाते हुए झुड़ते थे। कितने ही मानो रणसभामें प्रतिज्ञा करनेको तैयार हुए बौद्धा हों, इस तरह अपने हाथोंकी चपेटमें पृथ्वीके ऊपर ताडना करते थे। कितने ही मानो शाय जीने हों इस तरह हड़ग मजाते थे। कितने ही राजोंकी तरह अपने फूलों हुए गाँवोंको यजाते थे। कितने ही नटकी तरह विचित्र रूप बना कर लोगोंको हँसाते थे। कितनेही आगे पीछे और भगल बगलमें गे शकी तरह उछलते थे। त्रिपा जिम् तरह गोगकाग हीपर रास करती हैं, उमो तरह कितने ही गोलाकार फिरते हुए रासकी तरह गाते और मनोहर नाच करते थे। कितनेही आगश तरह प्रशश करते थे। कितने ही सूर्यकी तरह तपते थे। कितने ही मेघकी तरह गरजना करते थे। कितना ही चपलाकी तरह चमकते थे। कितनेही नाक तक पूय लाये हुए त्रिघार्योंकी तरह त्रिघार करते थे। स्वामीकी प्राप्तिमें हुए उम आनन्दको धीन छिपा मकता था ? इस तरह दरता अनेक तरहके आनन्दके त्रिचार कर रहे थे उस समय अन्युनेत्रने प्रभुके त्रिलेपन किया। उसने पारिजात प्रभृति थे गिने हुए फूलोंसे प्रभुकी मक्ति पूर्यष पूजाकी और जग पीछे हटकर मक्तिमें नष्ट होकर शिष्यकी तरह भगवान् की चन्दना की।

सौधमेन्द्रकी प्रभु-भक्ति ।

बड़े भारीके पीछे दूसरे सहोदरोंकी तरह, अन्य घामठ इन्द्रों ने भी उसी तरह स्नात्र और विलेपनसे भगवान् की पूजाकी ।

पीछे सुधर्म इन्द्रकी तरह ईशान इन्द्रने अपने पाँचोंरूप बनाये । उनमेंसे एक रूपसे भगवान् को गोद में लिया, एक रूपसे मोति योंकी झालरें लटकानेसे मानो दिशागोंकों नाच करनेका आदेश करता हो, इस तरह कपूर जैसा सफेद छत्र प्रभुके ऊपर धारण किया । मानो घुशीसे नाचते हों इस तरह हाथोंको विशेष करके दोनों रूपसे प्रभुके दोनों तरफ घँवर ढोरने लगा और एक रूपसे मानो अपने तर्ई प्रभुके दृष्टिपात से पत्रित्र करनेकी इच्छा रखना हो, इस तरह हाथमें त्रिशूठ लेकर प्रभुके आगे खड़ा हो गया ।

इसके बाद सौधर्मकल्पके इन्द्रने जगत्पतिसे चारों ओर स्फटिकमणिके चार बेल बनाये । ऊँचे ऊँचे मीनों वाले ये चारो बेल दिशागोंमें रहने वाले चन्द्रकान्तमणिके चार फीडा पर्वत हों इस तरह शोभने लगे । मानों पाताल फोडा हो, इस तरह उन बेलों के आठों सींगोंसे आकाशमें जल धारा चलने लगी । मूलमेंसे अलग अलग निकली हुई, पर अन्तमें जा मिली हुई ये जलधारायें, नदी के सगमका विभ्रम कराने लगी । देवता और असुरोंकी खियाँ द्वारा कौतुकसे देखी हुई ये जलधाराये नदियोंके समुद्रमें गिरने की तरह प्रभु पर गिरने लगीं । जलयंत्रके जैसे उन सींगोंमें से निकलते हुए जलसे इन्द्रने तीर्थङ्करको स्नान कराया । जिस तरह भक्तिसे

हृदय आर्द्र होता है, उसी तरह दूर उछलने वाले भगवान् के स्नानके जलसे देवताओंके पपड़े आर्द्र होगये यानी तर होगये। जिस तरह पेट्रजालिक अपने इन्द्रजालका उपसंहार करता है, उस तरह इन्द्रने उन चारों घैलोंका उपसंहार किया। स्नान करानेके बाद, धनी प्रीतिजाले उस देवराज ने देवदूष्य घरसे प्रभुके शरीरको रत्नके आर्द्रनेत्री तरह पोंछा। रत्न निर्मित पट्टेके ऊपर निर्मल और चाँदीके अगण्ड अक्षतोंसे प्रभुके पास अष्ट मङ्गल बनाये। पीछे, मानो बड़ा अनुराग हो इन तरह उत्तम अद्भुतगमसे त्रिजगत् गुरुके अङ्गमें त्रिलेपनकर प्रभुके हँसते हुए मुख रूपी चन्द्रकी चाँदीके भ्रमको उत्पन्न करने वाले उज्ज्वल दिव्य चक्षोंसे इन्द्रने पूजाकी और प्रभुके मस्तक पर विश्वके मुखियत्वका चिह्न रूप धन्न यानी हीरे और माणिकों का सुन्दर मुकुट पहनाया। पीछे इन्द्रने स्वर्ग्य समय आकाशमें पूर्य पश्चिम तरफ जिस तरह सूरज और चन्द्रमा शोभा देते हैं, उसी तरहका शोभा देने वाले दो सोनेके कुण्डल स्वामीके बानोंमें पहनाये। मानो लक्ष्मीके भूलनेका भूलाही हो वैसी विस्तार वाली मोतियोंकी माला स्वामीके गलेमें पहनायी। सुन्दर हाथीने धन्वे के दातोंमें जिस तरह सानेके कंकण पहनाये जाते हैं उसी तरह प्रभुके बाहु दण्डापर दो धाजून्ध पहनाये।

सौधमेन्द्र का प्रभु को स्तुति करना।

बड़े फार मोनियोंके मणिमय कंकण प्रभुके पहुँचे पर पहनाये । भगवान्की कमरमें धर्मधर पर्वतके नितम्ब भाग पर रहने वाले सुवर्ण कुल्के चिलासको धारण करने वाले सोनेका कटिसून यानी सोनेकी ब्रह्मनी पहनायी । और मानो देवताओं और देत्योंका तेज उनमें लगाहो, ऐसे माणिमय तोड़े प्रभुके दोनों चरणोंमें पहनाये । इन्द्रने जो जो आभूषण या गहने भगवान्के अगको अलङ्कृत करनेके लिए पहनाये, वे आभूषण या जेवर भगवान्के अगोंसे उल्टे अलङ्कृत होगये, यानी इन्द्रने गहने तो पहनाये थे, प्रभुके अंगोंके सजानेको, लेकिन उल्टे वे प्रभुके अंगोंसे सज उठे । गहनोंसे भगवान्के अङ्गोंकी शोभावृद्धि होनेके यज्ञाय उल्टी गहनोंकी शोभा बढ गई । पीछे भक्तियुक्त चित वाले इन्द्रने प्रफुल्लित पारिजातके फूलोंको मालासे प्रभुकी पूजाकी और पीछे मानो वृत्तार्थ हुआ हो इस तरह जरा पीछे हट कर प्रभुके सामने पडा हो, जगत्पतिकी आरती करने के लिए आरती प्रहणकी । जागृत्यमान् कान्तिवाली उस आरती से, प्रकाशित वीर्यवाले शिखरसे, जिस तरह महागिरि शोभित होता है उसी तरह इन्द्रशोभित होने लगा । अद्भुत देवताओंने जिसमें फूल बखेरे थे वह आरती इन्द्र ने प्रभु पर से तीन बार उतारी । पीछे भक्ति से रोमाञ्चित हो, शनस्तनसे यन्दना कर, इन्द्रने इस प्रकार प्रभुकी स्तुति करनी आरम्भ की —

“ हे जगन्नाथ ! त्रैलोक्य कमल मातएड ! हे ससार मरुस्थल में कल्पवृक्ष ! हे विश्वोद्धारण बान्धव ! मैं आपको नमस्कार

करता है। हे प्रभु! यह मुहूर्त्त भी घन्दना करने योग्य है। क्योंकि इस मुहूर्त्त में धमको जन्म देने वाले—अपुनर्जन्मा—फिर जन्म ग्रहण न करने वाले—त्रिव जन्तुओंको जन्म के दुःखसे छुड़ाने वाले—आपका जन्म हुआ है। हे नाथ! इस समय आपके जन्माभियेक के जलके पूट से प्रविष्ट हुई है और त्रिना यत्न किये जिम्मा मल दूर हुआ है, ऐसी यह रत्न ५ भा पृथ्वी सत्य नाम घाली हुई है। हे प्रभु! जो आपका रात दिन दर्शन करेंगे उनका जन्म धन्य है। हम तो अजर आने पर ही आपके दर्शन करने वाले हैं। हे स्वामि! मरुतक्षेत्र के प्राणियों का मोक्षमार्ग ढक गया है। उसे आप नवीन पाल्य या पथिक होकर पुन प्रकट कीजिये। हे प्रभु! आप की अमृत तुल्य धर्मदेशना की तो क्या बात है आपका दर्शनमात्र ही प्राणियों का कल्याण करनेवाला है। हे भगवतारव! आपकी उपमा के पात्र कोई नहीं, जिमसे आपकी उपमा दी जाय ऐमा कोई भी नहीं; इसलिये मैं तो आपके तुल्य आप ही हो ऐमा कहता हूँ तो अब अधिक स्तुति किस तरह की जाय? हे नाथ! आपके सत्य अर्थको घतानेवाले गुणों को भी मैं कहने में असमर्थ हूँ, क्योंकि स्वर्गभूरमण समुद्र के जल को कौन माप सकता है?"

इन्द्र द्वारा आदिनाथ भगवान्‌के लालन
पालन और मन वहलावके उपाय।

प्रभुका जन्मात्सव करके उनको उनके स्थानमें छाटना

इस की स्तुति करके, प्रमोद से सुगन्धित

मनवाले इन्द्रने, पहलेकी तरह ही, अपने पाँच रूप बनाये। उनमें से एक अप्रमादा रूप से, उस। इशान इन्द्र की गोदी से जगत्पति को, रहस्यकी तरह, अपने हृदयपर ले लिया। स्वामीकी सजा को जाननेवाले इन्द्र के दूसरे रूप, इसी बामपर मुकर्कर बिये गये हों, इस तरह स्वामी सम्यन्धी अपने अपने काम पहलेकी तरह ही करती लगे। इसके बाद, अपने देवताओंसे चिरा हुआ सुर-पति, आकाश मार्ग से, मख्देवा से अलङ्कृत किये हुए मन्दिर में आया। वहाँपर रते हुए तीर्थङ्कर के प्रतिविम्ब का उपसंहार करके उसने उसी जगहपर माता की बगल में प्रभु को रत्न दिया। फिर सूर्य जिस तरह पद्मिनी की नींद को दूर करता है, उसी तरह शक्रने माता मख्देवाकी अप्सर्पिणी निद्रा भगकी और नदी-कूलपर रहनेवाली सुन्दर हंस माला के त्रिलासको धारण करनेवाले साफ सफेद रेशमी वस्त्रप्रभुके सिरहाने रखे। बालावस्था में भी पैदा हुए भामण्डल के विकल्प को धरनेवाले रत्नमय दो बुण्डल भी प्रभु के सिरहाने रखे। इसी तरह सोनेसे बने हुए विचित्र रत्नहार और अर्द्धहारों से व्याप्त एवं सोने के सूर्य के समान प्रकाशमान श्रीदामदण्ड (गिल्लीदण्डा) त्रिलोता प्रभुके दृष्टिविनोद के लिये, गगन में दिवाकर अधरा आकाश में सूर्य की तरह, धरके अन्दर की छत की चाँदनी में लटका दिया। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं—प्रभु का दिल पुरुष होने के लिए, एक सोने और जवाहिरात से बना हुआ चित्ताकर्षक मनोहर खिलौना, प्रभु की नजर पडती रहे, इस तरह धरके अन्दर की

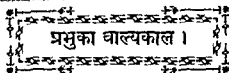
छतमें उसी तरह लटका दिया, जिस तरह कि आस्मान में मूय लटका हुआ है। पीछे इन्द्रने अल्कापुरी के स्वामी कुवेर को आज्ञा दी कि तुम बत्तीस कोटि हिरण्य, उतनाही सोना, बत्तीस बत्तीस गन्दासन, भद्रासन एवं दूसरे भी अतीव मनोहर वस्त्र नेपथ्य प्रभृति ससारी सुख देनेवाली चीजें, जिस तरह यादल मेह घरसाते हैं, उसी तरह, प्रभुके मन्दिरमें घरसाओ। कुवेरने अपने आज्ञापालक ब्रह्मकर्म नामके देवताओं द्वारा, तत्काल, उसी प्रमाण में धरा करायी, क्योंकि प्रचण्ड प्रताप पुरुषों की आज्ञा मुँहसे निकलते ही पुरी होती है। फिर, इन्द्रने अभियोगिक देवताओं को आज्ञा दी कि, तुम चारों निकायोंके देवताओं में इस यातकी डोंडी पिटवा दो कि, जो कोई अर्हन्त भगवान् और उनकी मा की अशुभ चिन्तना करेगा—उनका अनामल चीतेगा उसके सिरके, अर्जक मंजरीकी तरह, सात टुकड़े हो जायेंगे यानी अर्जक वृक्ष की मजरी के पककर फूटनेपर जिस तरह सात भाग हो जाते हैं; उसी तरह जगदीश और उनकी जननी या घुरा चाहनेवाले के मस्तक के सात भाग हो जायेंगे। जिस तरह शुद्ध की वाणी को शिष्य उच्च स्वरसे उद्घोषित करता है, उसी तरह उन्होंने भुवनपति व्यन्तर, ज्योतिषी और धैमानिक देवताओंमें उसी तरह डोंडी पीट दी—सुरपति की आज्ञा सबको जोर जोर से सुना दी। इसके बाद सूर्य जिस तरह यादल में जलका संक्रम करता है; उसी तरह इन्द्रने भगवान् के अँगूठे में अनेक प्रकार के रसों से भरी हुई नाडी संक्रमा दी यानी जिस

सूरज पादलों में जल का सञ्चार करता है, उसी तरह इन्द्रने जगदीश के अँगूठे में अमृत का सञ्चार कर दिया। अर्हन्त माता के स्तनों का दूध नहीं पीते, इसलिये जब उनको भूरा लगती है तब वे अपने सुधारस की वृष्टि करनेवाले अँगूठे को मुँहमें लेकर चूमते हैं। शेषमें प्रभु का सब प्रकारका धातु कर्म करने के लिए, इन्द्रने पाँच अप्सराओं को धाय होकर वहाँ रहने का हुक्म दिया, अर्थात् उनको धाय की तरह प्रभु के लालन पालन करनेकी आगा दी।

नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर देवताओंका महोत्सव करना।

जिन स्नात्र हो जानेपर, इन्द्र जब भगवान् को उनकी माँ के पास छोड़ने आया, तब बहुत से देवता, मेघ शिपर से, नन्दीश्वर द्वीप को चले गये। सौधमेंद्र भी ताम्रिपुत्रको उनके घर में रखा कर, स्वर्गवासियों के आवास स्थान—नन्दीश्वर द्वीप—में गया और वहाँ पूर्वदिशास्थित—क्षुद्रमेघ जिनने ऊँचे—देवरमण नाम के अश्वनगिरि पर उतरा। वहाँ उसने त्रिचित्र त्रिचित्र प्रकारकी मणियाँ की पीठिकावाले चैत्यवृक्ष और इन्द्रध्वज से अङ्कित चार दरवाजेवाले चैत्य में प्रवेश किया और अष्टाहिका उत्सव पूर्णक ऋषभादिष अर्हन्तों की शाश्वती प्रतिमाओं की उसने पूजा की। उस अञ्जनगिरि की चार दिशाभा में चार बड़ी बड़ी घाणिकार्यें हैं और उनमें से प्रत्येक में एकदिक मणिका एकैक दधिमुख पर्वत । दधिमुख नाम के उन चारों पहाड़ों के ऊपर के चैत्यों में

ऋषभ, चन्द्रानन, चाग्निपेण और उर्द्धमान इन चारों शाश्वत अर्हन्तों की प्रतिमाएँ हैं। शक्रेन्द्र के चारों दिक्पालोंने, अष्टाहिका उत्सव पूर्वक उन प्रतिमाओं की यथाविधि पूजा की। ईशान-इन्द्र उत्तर दिशा के नित्य रमणीक—रमणीय नाम के अञ्जनगिरि पर उनका और उसने परंपर परने हुए चैत्य में जो पहले की तरह शाश्वती प्रतिमा है, उसकी आष्टाहिक-उत्सव पूर्वक पूजा की। उसके दिक्पालों ने उस पहाड़ के चारों ओर की चार शवडियों के दधिमुख परंतों के ऊपर बने चैत्यों की शाश्वती प्रतिमाओं का उन्मी तरह अष्टा महोत्सव किया। अमरेन्द्र दक्षिण दिशास्थित नित्योद्योत नाम के अञ्जनगिरि पर उनका और रत्नों से नित्य प्रकाशमान उस परंत के चैत्य की शाश्वती प्रतिमा की बड़ी भक्ति से अष्टान्हिक महोत्सव पूर्वक पूजा की और उसकी चार चापिकाओं के अन्दर के चार दधिमुख परंतों के ऊपर के चैत्यों में उसने चार लोकपालों ने, अचल चित्त से महोत्सव पूर्वक वहा की प्रतिमाओं की पूजा की। धलि नामक इन्द्र पश्चिम दिशा स्थित सूर्यप्रम नाम के अञ्जन गिरिपर मेघके से प्रभाव से उतरा। उसने उस परंत के चैत्य में देवताओं की दृष्टिसे पवित्र करवण ऋषभा चन्द्रानन प्रभृति अर्हन्तों की प्रतिमाओं का उत्सव किया। उसके चार लोकपालोंने भी अञ्जनगिरि की चारों दिशाओं के चार चापिकाओं के दधिमुख परंतों की शाश्वती प्रतिमाओं का उत्सव किया। इस तरह मारे देवता नन्दीश्वर ह्योषमें सुरजन्वदर करके, जिस तरह आये थे; उन्मी तरह अपने अपने स्थानों को चले गये।



इधर स्वामिनी मरुदेवा सघेरे के समय ज्योंही उठी, उन्हीं रात के स्वप्न की तरह अपने पति नाभिराज से देवताओं के जाने जाने का सारा हाल कहा। जगदीश के उर या जाँघ पर नरूपम का चिह्न था, उसी तरह माता ने भी सारे सुपने में पहले ऋषभ ही देखा था, इससे आनन्दमग्न माता पिताने शुभ दिवस में, उत्साह पूर्वक प्रभु का नाम ऋषभ रखा। उहीं के साथ युष्म धर्मसे पैदा हुई बन्धा का नाम भी सुमगला ऐसा यथार्थ और पवित्र नाम रक्खा। वृक्ष जिस तरह नीर का जल पीता है, उसी तरह ऋषभ स्वामी इन्द्र के संकमण किये हुए अ गूठे का अमृत उचित समयपर पीने लगे। परत की गुफामें बैठा हुआ किशोर सिंह जिस तरह शोभायमान लगता है, उसी तरह पिता की गोद में बैठे हुए भगवान् शोभायमान थे। जिस तरह पाच समिति महामुनि को नहीं छोड़ता, उसी तरह इन्द्र की आज्ञा से रही हुई पाँचों धारें प्रभु को किसी समय भी अकेला नहीं छोड़ती थीं।

इच्चाकु नामक वशस्थापन

प्रभु का जन्म हुए ज्योंही एक वर्ष होने को आया, त्योंही सौधमेंन्द्र वश स्थापन करने के लिये चहाँ आया। सेवक को

मालो हाथ म्यामो के दशा करने उचित नहीं, इस विचारमें ही मानो इन्द्र पक्ष बड़ा इस का साँझ या गन्ना अपने साथ ले लिया। मानो शरीरधारी शम्भु शत्रु हो, इस तरह शोभना हुआ इन्द्र इक्षुदण्ड या गन्ना हाथ में लिये हुए नामिगज की गोद में बैठे हुए प्रभु के पास आया। तब प्रभुने भरविज्ञान से इन्द्र का संकल्प समझकर, उस ईश को लेने के लिये, हाथी की तरह, अपना हाथ लम्बा किया। म्यामी के भाव को समझनेवाले इन्द्रने, मलय से प्रणाम करके, भेंटकी तरह, यह इक्षुदण्ड प्रभु को भक्षण की। प्रभु ने ईश ले लिया, इसलिये "इक्ष्वाकु" नाम का वंश स्थापित करके इन्द्र म्यग को चला गया।

भगवान् के शरीर का वर्णन।

युगादिनाथ का शरीर स्येद-पमीना, रोग-मल से रहित सुगन्धिपूर्ण, सुन्दर आकारवाला और सोन के कमल जैसा शोभायमान् था। उनके शरीर में मांस और रक्त गाय के दूध का घाग जैसी उज्ज्वल और दुर्गन्ध रहित था। उनके आहार-विहार का विधि चमचक्षु के भगोचर की और उनके नाम की पुशानु किले हुए कमल के जैसी थी,—ये चारों गतिशय प्रभु का जन्म से प्राप्त हुए थे। यज्ञस्यमनाराज संघषण को धारण करनेवाले प्रभु मानो भूमिन्न श के भयसे यानी पृथ्वी के टुकड़े टुकड़े होना के डरसे धीरे धीरे चलते थे। यद्यपि उनका अवस्था छोटी थी—वे बालक थे, तोभी वे गभीर और मधुर

ध्वनि से बोलते थे—वाक्यावस्था होने पर भी उनकी धारणा में
 गाम्भीर्य और माधुर्य था। क्योंकि लोकोत्तर पुरुषों के शरीर
 की अपेक्षासे ही बालपन होता है। समचतुरस्र सस्थानवाले
 प्रभु का शरीर, मानो मीठा करने की इच्छावाली लक्ष्मी की
 काञ्चनमय मीठावेदिका हो, इस तरह शोभा देता था। समान
 उम्रवाले होकर आये हुए देवकुमारों के साथ, उनके चित्त की
 अनुवृत्ति के लिये, प्रभु खेलते थे। खेलते समय, धूलिधूसरित
 और घूँघुग्माल धारण किये हुए प्रभु मतवाले हाथी के चरने के
 जैसे शोभायमान लगते यानी मदावस्था को प्राप्त हुआ हाथी का
 यथा जैसा अच्छा लगता है, प्रभु भी वैसे ही अच्छे लगते थे।
 प्रभु लीला मात्र से जो कुछ ले लेते थे, उसे उड़ी ऋद्धिवाला
 कोई देव भी न ले सकता था। यदि कोई देव परपरीक्षा के
 लिये उनकी अँगुली पकड़ता, तो प्रभु के श्वास की हवा से
 धूल की तरह वह दूर जा पड़ता था। कितने ही देवकुमार गेंद को
 नरह जमीनपर लेटकर, प्रभु को अजीब गेंदों से तिलाने थे।
 कितने ही देवकुमार राजशुक्र होकर, चाटुकार या पुशामवी की
 तरह, 'जीओ जीओ, सुखी हो जैसे शब्द अनेक तरह से कहते
 थे। कितने ही देवकुमार स्वामी को तिराने के लिये, मोर का
 रूप बनाकर, केकावाणी से पद्मज स्वर में गा गाकर नाचते थे।
 प्रभु के मणोहर हस्तमाल को पकड़ने और छूने की इच्छा से,
 कितने ही देवकुमार, हस्त का रूप धारण करके गाधार स्वर में
 गाने हुए प्रभु के आस पास फिरते थे। कितने ही प्रभु के प्रीति

पूर्ण दृष्टिपात रूपी अमृत के पाने की इच्छा से, उनके अगल पगल, षोडश पक्षी का रूप धरकर, मध्यम स्वर से बोलने थे। कितने ही प्रभु के मन की प्राप्ति के लिये, कोयल का रूप धरकर, नन्ददीक के वृक्षपर बैठकर, पञ्चम स्वर से गाते थे। कितने ही प्रभु के घाहन या चन्ने की सजारी होकर, अपने आत्मा को पवित्र करने की इच्छा से, घोडे का रूप धरकर, धैवतध्वनि से तिहिनाते हुए प्रभु के पास आते थे। कितने ही हाथी का रूप धरकर, निगाद स्वर से बोलने और मीठा मुँह करके अपनी सुओं से प्रभु के चरण स्पर्श करते यानी पैर छूने थे। कोर बेल का रूप बनाकर, अपने सींगों से तट प्रदेश को ताड़न करते घीर वैष्णवी सी आवाजमें बोलने हुए प्रभु की दृष्टिको विनोद कराते थे। कोर अजनाचल सुरमेके पहाड-जैसे बड़े-बड़े भैसे बन कर आपस में लड़ने हुए, प्रभुको लड़ाई का खेल दिखाते थे। कोर प्रभुके दिल बहलानके लिये, महत रूप धारण करके, पम्प ठोक ठोक कर, अज्राहेमें एक दूसरेको बुलाते थे। इस प्रकार योगी जिम तरह परमात्माका उपासना करते हैं, उसी तरह देवबुमार अनेक प्रकार के खेल तमाशोंसे प्रभु की उपासना करते थे। एक ओर ये सब काम होते थे और दूसरी ओर उद्यानपात्रिपाओं शयन मालिनों द्वारा वृक्षा का लालन-पालन होने से जिम तरह वृक्ष बढ़ते हैं, उम्मा तरह पाँचाँ घायों के सावधानी से लालन-पालन लिये हुए प्रभु क्रम से बढ़ने लगे,

प्रभुकी यौवनावस्था

अंगुष्ठ पान करने या अंगूठा चूसने की अवस्था मीतने पर, दूसरी अवस्था में कदम रखनेही, घर में रहने वाले अर्हन्त सिद्ध पाक किया हुआ यानी पकाया हुआ अन्न खाते हैं, लेकिन भगवान् नाभिनन्दन तो, उत्तर कुशक्षेत्र से देवताओं द्वारा लाये हुए, कल्प तट के फलों को खाते और क्षीर समुद्र का जल पीते थे। पीते हुए कल्प के दिनकी तरह यौवनावस्था को उत्कृष्ट परफे, सूर्य जिस तरह दिने मध्य भागमें आता है, उसीतरह प्रभुने उस यौवन का आश्रय लिया जिसमें अत्यव विभक्त होते हैं; अर्थात् उच्यमाने ज्ञानीमें कदम रखा। भगवान् बालकमें युवक हो गये। यौवनावस्था आजाने पर भी प्रभुने दोनो चरण कमलके बीचने भागकी तरह सुगन्ध सुगन्, गरम, कम्प रहित श्वेद्वर्जित और समतल यानी यकसा तलपे गाले थे। मानो नम्र पुष्पकी पीडा छेदन करने के लिये ही हो इन्द्र तरह उसके अन्तर अन्तरा चिह्न था और लक्ष्मी रूपिणी हृषिनीको स्थिर करनेके लिए— बचकको अवल करनेके लिये माला, अङ्गुश और ब्रजाके भी चिह्न थे, अर्थात् भगवान्के पैरोंके तलवोंमें धन, माला, अङ्गुश और ध्रजा पताकाके चिह्न थे। लक्ष्मीके लीला भुजन जैसे प्रभु के चरणों के तलवोंमें शङ्ख और घडकी वव पडीमें स्वस्तिकका चिह्न था। प्रभुका पुष्ट, गोलाकार और सर्पके फण जैसा उन्नत अंगूठा

तिरकार करने वाली थीं। मास से भरे हुए गोरु घुटने रुईसे भरे हुए गोल तकियेके भीतर डाले हुए दर्पणके रूपको धारण करते थे। मृदु ममसे उत्तरोत्तर स्थूल और चिकनी जाघें बेलेके खमके घिलासको धारण करती थीं और मस्त—हाथीकी तरह गूढ़ और सम स्थितिवाली थी। क्योंकि घोड़ेकी तरह बुलीन पुरुष का शरीर चिह्न अतीव गुप्त होता है। उनकी गुह्य इन्द्रिय पर शिरायें नहीं दीपती थीं, वह न ऊँचा न नीचा, न ढीला न छोटा और लम्बाही था। उस पर रोम नहीं थे और आकारमें गोल था। उनके कोप या तैपोके भीतर रहने वाला पजर शीत प्रदक्षिणावर्त्त शक धारण करने वाला, अयोभत्स और आघर्त्ताकार था। प्रमुकी कमर विशाल, पुष्ट, स्थूल और अतीव कठोर थी। उनका मध्य भाग सूक्ष्मतामें घन्नके मध्य भाग जसा मालूम होता था। उनकी नाभि नदीके भँवर के घिलासको धारण करती थी। उसका मध्य भाग सूक्ष्मतामें घन्नके मध्य भागके जसा था। उनकी नाभिमें नदीके भँवर-जैसे भँवर पड़ते थे और कोष्ठके दोनों भाग चिकने, मांसल, कोमल, सरल और समान थे। उनका घक्ष्णल सोनेकी शिलाके समान विशाल उन्नत, श्रीधत्स रत्न पीठके चिह्नसे युक्त और लक्ष्मीकी ढीडा करनेकी वेदिकाकी शोभाको धारण करता था, अथान् उनकी छाती लम्बी चौड़ी और ऊँची थी। उस पर श्रीधत्सपीठका निशान था और वह लक्ष्मीकी ढीडा करनेकी वेदिका जैसी सुन्दर और रमणीय थी। उनके दोनों कंधे बेलके कर्धोंकी तरह मजबूत

पुष्ट और ऊँचे थे। उनकी दोनों घगलोंमें रोए अत्यन्त न थे और उनमें बदनू, पसीना और मैल नहीं था। उनकी दोनों भुजाए पुष्ट, बर रूपी पणवे छत्र चाली और घुटनों तक लम्बी थीं और चञ्चल लक्ष्मीको नियमम रखनेके लिये नाग पाश जैसी जान पड़ती थीं। उनके दोनों हाथोंके तलत्रे नवीन आमके पत्तों जैसे लाल, निष्कम होने पर भी बठोर, पसीना रहित, बिना छेदवाले और जरा नरा गम थे। पाँजोंकी तरह उनके हाथों में भी दण्ड, चक्र, घनुय कमाग मठली, श्रीगत्स, चक्र, अङ्कुर, धरजा पनाका, कमल चक्र, छाता, शंख, घडा, समुद्र, मन्दिर, मगर, पैल सिंह, घोडा, रथ, म्यस्त्रिक, दिग्गज—दिशाओंके हाथा, महल, तोरण, और द्वाप या द्वापू प्रभृतिके चिह्न थे। उनके अँगूठे और उँगलियाँ लाल हाथोंमें से पैदा होनेके कारण लाल और सरल थे तथा प्रान्त भागमें माणिक्यके फूल वाले बल्यनृक्षके थकुर जैसे मालूम होते थे। अँगूठे पोरजोंमें, यरा करी उत्तम घोडेका पुष्ट करने वाले, जौ के चिह्न स्पष्टरूपसे शोभा दे रहे थे। उँगलियोंके ऊपरके भागमें दक्षिणावस्थाके चिह्न थे। वे सब सम्पत्तिके कहने वाले दक्षिणावत्त शकपत्र करकी धारण करते थे। उनके बरकमल के मूल भागमें तीन रेखायें सुशोभित थीं। ये मानो कष्टसे शान्तों लोकोका उद्धार करनेके लिये हा बनी हैं, ऐसी मालूम होती थी। उनका बठ गोल किसी बद्ध लम्बा, नान रेखाओंमें परित्र गम्भात घ्वनिगला और शंखकी धरादरी करने वाला था, यानी उनकी गर्दन गोल और कुछ लम्बी थी। उक्षपर तीन रेखाओंके निगान

थे ; उनसे मेघ जैसी गम्भीर आवाज निकलती थी और वह शब्दके जैसी थी । निर्मल, पशुलाकार वान्तियोंकी तरह वाला उनका चेहरा कलङ्क रहित दूसरे चन्द्रमा-जैसा सुन्दर मालूम होता था, अर्थात् चन्द्रमामें कलङ्क बालिमा ही, पर उनका निर्मल और सुगोलचन्द्रमुख निष्कलङ्क था उसमें कलङ्क कालिमाका लेशमी न था, अतएव वह चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर था । उनके दोनों गाल नरम चिकने और मांससे भरे हुए थे । वे साथ निवास करने वाली घण्टी और लक्ष्मीके सुरणके दो आईनोंकी तरह दिप्राइ देने थे—सीनेके दो दपणोंकी तरह शोभा देने थे । उनके दोनों बान कंधों तक लम्बे और अन्दरसे सुन्दर आवत्तया आँ-घाले थे और उनके मुखकी कात्ति कृपी सिंधुके तीर पर रहने वाली, दो सीकों की तरह मालूम होते थे । चित्राङ्गके समान लाल उनके होठ थे । वृन्द पत्नी जैसे बर्तिस दाँत थे और मधुक-मसे विलार चाली और उन्नत घोंस जैसी उनकी नाक थी । उनकी दाढ़ी पुष्ट गोल, नरम और सत्यश्रु तथा उसमें सभश्रुका भाग श्यामघण, चिकना और मुहायम था । प्रभुकी जीम नवीन कल्पपुत्रके भूँगे जैसी लाल, कोमल, नाति छूल, और दृढशाङ्क आगम—शाब्दके अर्थ को प्रस्तुत करने वाली थीं, उनकी आँखें भीतरसे काली और धौली तथा प्रातभागमें लाल थीं इससे ऐसा जान पड़ता था, मानों वे नीलम, स्फटिक और माणिक से बनायी गयी हों । वे कानों तक पहुँची हुई थीं और उनमें श्याम बरीनिया या बाफनिया थीं, इस लिये, लीन हुए भीरेवाले बिलह्व

कमलों-जैसी जान पड़ती थीं। उनकी काली और याकी भीहें दृष्टि रूपी पुष्करणी के तीर पर पैदा हुई लतासी सुन्दर मालूम होती थीं त्रिशूल, मामल, गोल, कठोर, कोमल और एक समान ग्लाइ अष्टमीन चन्द्रमा जैसा सुन्दर और मनोहर मालूम होता था और मौलिनाम अनुक्रमसे ऊँचा था, इन्द्रिये नीचे मुख किये हुए छाताकी समता करता था। जगदीश्वरता को सूचना देनेवाला प्रभुके मौलि छत्रपर धारण किया हुआ गोल और उन्नत मुकुट कलशकी शोभाका आश्रय था और चुँघरवाले, कोमल चिकने और भीरे जैसे काले मन्तरुने उपरके धाल यमुना नदीकी तरङ्ग के जसे सुन्दर मालूम होते थे। प्रभुके शरीर का चमड़ा देपनेसे पैसा जान पड़ता था, मानो उसपर सुरजके रसका लेप किया गया हो। वह गोचन्द्रन जैसा गोरा, चिकना और साफ था। कोमल, भीरे जैसी श्याम, अपूर्व उदगमवाली और कमलके तन्तु ओंके जैसी पतली या सूक्ष्म रोमावलि शोभायमान थी। इस तरह रत्नोंसे रत्नाकर-सागर जैसे नाना प्रकारके असाधारण—गेर मामूली लक्षणोंसे युक्त प्रभु किसके सेवा करने योग्य नहीं थे? अथात् सुर, असुर और मनुष्य सबके सेवा करने योग्य थे। इन्द्र उनको हाथका सहारा देता था, यक्ष धँवर डोरता था, धरणीन्द्र उनके द्वारपालका काम करता था वरुण छत्र रखता था, 'आयु प्मन भव चिरजीवो हो' पैसा कहनेवाले असंख्य देवता उनको चारों तरफसे घेरे रहते थे, तोभी उन्हें जरा भी घमण्ड या गर्व न होता था। जगत्पति निरभिमान होकर अपनी मौजमें

विहार करते थे। वलि रत्नक्षी गोदमें पाँव रखकर और अमरेंद्र-के गोद रूपी पलंगपर अपने शरीरका उत्तर भाग रख, देवताओं द्वारा लाये गये धासनपर बैठ दोनों हाथोंमें कूमाल रखनेवाली अम्बराओंसे घिरे हुए प्रभु, अनासक्तता पूर्णक, कितनीही दफा दिव्य संगीतको देखते थे।

एक युगलिये की अकाल मृत्यु।

एकदिन बालकों की तरह, साथ खेलता हुआ युगलिये का एक जोड़ा, एक ताड़के वृक्षके नीचे खला गया। उस समय द्वेषदुर्निपाकसे ताड़का एक बड़ा फल उनमेंसे एक लड़केके सिरपर गिर पड़ा। प्रायःतात्पर्य-यावसे गिरपर चोट लगते ही वह बालक अकाल मौतसे मर गया। तेसी घटना पहलेही घटी। अल्प कषाय की घज़हसे वह बालक लगभग मर गया। कर्षोषि धोड़े बोझेंके कारण रुई भी आकाशमें चढ़ जाती है। पहले धड़े घड़े पक्षी अपने घोंसलेकी लकड़ी की तरह युगलियों की लाशों को उठाकर समुद्रमें फेंक देते थे; परन्तु इस समय उम अनुपमका नाशहोगया था, इसलिये वह लाश वहीं पड़ी रही, क्योंकि अवसर्पिणी काल का प्रभाव धीरे धड़ता जाता था। उस जोड़े में जो बालिका थी वह स्वभावसे ही मुग्धापन से सुशोभित थी। अपने साथी बालकका नाश हो जानेसे बिकते बिकते पकी हुई चीज़की तरह होकर वह घञ्जल लेंवनी वहाँ बैठी रही। इसके बाद, उसके माँ पाप उसे बहासे उतर ले गये और उसका लालन-

— करने लगे पर्यं उसका नाम सुनदा रख दिया।

सुनन्दा के शरीर की शोभा ।

नामिराज का सुनन्दा को पुत्रवधूरूप में स्वीकार करना ।

कुछ समय बाद उसके माता पिता भी परलोकगामी हुए क्योंकि सन्तान होनेके बाद युगलिये कुछ दिन ही जीने हैं । माँ यापकी मृत्यु होनेके बाद, वह चपलनयनी यालिका - "अप यथा करना चाहिये" इस विचारमें जडीभूत होगई और अपने भुएडसे बिल्लुडी हुई हिरनी की तरह जगलमें अयेली घूमने लगी । सरल अँगुली रूपी पत्तोंवाले चरणोंसे पृथ्वी पर कदम रखती हुई यह ऐसी भादूम होती थी, गोया खिले हुए फमलों को जमीन पर आरोपण करती हो । उसकी दोनों पिंडलियाँ सुवर्ण रचित तरबस जैसी शोभा देती थीं । अनुममसे विशाल और गोलाकार उसकी जाँघें हाथी की सूँड जैसी दीखती थीं । चलते समय उसने पुष्ट नितम्ब—चूतड कामदेयरूपी जुआरी द्वारा रिछाई हुई सोनेकी चीपडके तिलास की धारण करते थे । मुठीमें आनेवाले और कामने पींचने के आँकड़े जैसे मध्यभागसे पत्र कुसुमायुधके खेलनेकी वापिका जैसी सुन्दर नाभिसे वह बहुत अच्छी लगती थी । उसके पेटपर त्रिवर्गी रूपी तरंगें लहर मारती थीं । उसकी त्रिचली को देखने से ऐसा जान पड़ता था, मानो उसने अपने सौन्दर्यसे त्रिलोकी को जीतकर तीन रेखाएँ धारण की हैं । उसने स्तनद्वय रतिपीतिके दो ब्रीडा परतमे जान पड़ते थे और रति पीतिके हि डोले की दो सुवर्ण की इँडियोंके जैसी इसकी भजल

नार्ये शासनी थीं। उसका तीन रेखाओंवाला कंठ शंखके विलास को हरण करता था। वह अपने ओठोंसे पड़े हुए विद्याकल्पी कार्तिक का परामथ करती थी। वह अधर रूपी सीपीके गन्दर रहनेवाले दैन रूपी मोतियों तथा नेत्ररूपी कमल की माल जैसी नाकसे अतीव मनोहर लगती थी। उसके दोनों गाल ललाटकी स्पर्शा करनेवाले, अर्द्धचन्द्र की शोभा को चुरानेवाले ये और मुख कमलमें लीन हुए भौरोंके जैसे उमड़े सुन्दर बाल थे। सबगङ्गा-सुन्दरा और पुण्य लावण्य रूपी अमृतकी नदी मी घह बाला घन देवी की तरह जगल में घूमती हुई घनको जगमगा रही थी। उस अफेली मुग्धाको देख, कितनेही युगलिये कि कर्त्तव्य विमूढ, हो नाभिराजाके पास ले आये। श्री नाभिराजाने 'यह प्रथम की धर्मपत्नी हो,' ऐसा कहकर, नेत्ररूपी कुमुद की चाँदनीके समान उस बाला की स्वीकार किया।

सौधमैन्द्रका पुनरागमन ।

भगवान् से विवाह की प्रार्थना करना ।






इसके बाद, एक दिन सौधमैन्द्र प्रभुके विवाह समय को अथ धिगानसे जानकर वहाँ आया और जगत्पतिके घरणोंमें प्रणाम कर व्यादे की तरह सामने पड़ा हो, हाथ जोड़ कहने लगा—'हे नाथ ! जो अगानी भादमी ज्ञानके भ्रजाने स्वरूप प्रभुको अपने विचार या बुद्धिसे किसी काम में लगाता है, वह उपहास का पात्र होता है। लेकिन स्थामी जिनको सदा मिह्रवानी की

नजरसे देखने हैं, वे किसी किसी समय दिल खोलकर बात कह बैठते हैं। उनमें भी जो स्वामीके अभिप्राय—मालिक की मशा—को जानकर बात कहते हैं, वे सच्चे सेवक कहलाते हैं। हे नाथ ! मैं आपका अभिप्राय जाने याद कहता हूँ, इसलिये आप मुझसे नाराज न हुनियेगा। मैं जानता हूँ कि भाप गर्भजाससे ही धीतराग हैं—आप को किसी भी सासारिक पदार्थ से मोह नहीं है—किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं है। दूसरे पुरुषार्थों की अपेक्षा न होनेसे चौथे पुरुषार्थ—मोक्ष—के लियेही आप सज्ज हुए हैं, तथापि हे भगवान् ! मोक्ष मार्ग भी आपही से प्रकट होगा—लोक-व्यवहार की मर्यादा भी आपही धार्येंगे। अतः उस लोक-व्यवहार के लिये, मैं आपका पाणिग्रहण-महोत्सव करना चाहता हूँ। आप प्रसन्न हों ! हे स्वामिन् ! त्रैलोक्य सुन्दरी, परम मन्त्रवती थीर आपके योग्य सुनन्दा और सुमङ्गलाके साथ विवाह करे योग्य आप हैं।

भगवान् कर्मभोग को अटल समझ कर विवाह करने की स्वीकृति देते हैं।

विवाह की तैयारियों

विवाह-मण्डप की तैयारी

उस समय स्वामीने अधिपान में   
 पूर्वतक भोगने को दृढ भोग  

मके भोगे बिना पीछा नहीं छोटेगा—निर हिलाकर अपनी सभमति । कष्ट की और सध्याकालके कमलकी तरह नीचा मुँह करके रह गये । इन्होंने प्रभुका आन्तरिक अभिप्राय समझकर, विवाह के लिये उन्हें प्रस्तुत सम्भकर, विवाह कर्म आरम्भ करनेके लिए तत्काल उहाँ देवताओं की बुग्याया । इन्द्रकी आज्ञासे, उसके अभियोगिक देवताओंने सुधर्मा सभाके छोटे भाईके जैसा एक सुन्दर मण्डप तैयार किया । उसमें गगाने हुए सोने चादा और पद्मताम्रमणिने छत्रे—मेरु, रोहणाचल और वीताण्ड पद्म की मूलिका की तरह शोभा देते थे । उस मण्डपके अन्दर गले हुए सोनेके प्रकाशमान् कलश चक्रवर्तीके चाकणो रहने मण्डल की तरह शोभा देते थे और घड़ा सोने की वेदियाँ अपनी फैलती हुई किरणोंसे, मानो दूसरे तेजको सहन न करनेसे, सूर्यके तेजका आश्रय करती सी जान पड़ती थी । उस मण्डपमें घुमनेवालों का जो प्रतिमित्र या अक्षय मणिमय दीवारोंपर पड़ता था उससे वे बहुपरिचारवाले मालूम होत थे । रहोंके बने हुए स्वर्गोंपर बनी हुई पुतलियाँ नाचनेस धकी हुई नाचनेवालयोंकी तरह मनो हर जान पड़ती थी । उस मण्डप की प्रत्येक विशामें जा कर प वृक्षरु तोरण बनाये थे, वे कामदेवने बनाये हुए धनुषों की तरह शोभा देने थे और स्फटिक के द्वार की शाखाओं पर जो नीलम के तोरण बनाये थे वे शरदु मनुकी मेघमालाम रहनेवाली सूर्यों की पक्षियों समान सुन्दर और मनोमोहक लगते थे । किसी किसी जगह स्फटिक या विल्लीगी शाखे स बने हुए परापर निरन्तर

किरणें पड़नेसे वह मण्डप अमृत सरके विलास का विस्तार करता था। कहीं कहीं पद्मराग मणि की शिलाओं की किरणें फैलती थी। इस कारण वह मण्डप कसूमी और धड़े धड़े दिव्य उखरोंका सञ्चय करनेवाला जैसा मालूम होता था। कहीं कहीं नालम की पट्टियों की बहुत सी सुन्दर सुन्दर किरणें पड़नेसे वह मानो फिरसे थोड़े हुए मागलिक यवाकुर या जगारों जसा मनोहर मालूम होता था। किमी किस्ती स्थानमें मरकतमणि से बने हुए फरासे अखण्डित किरणें निकलती थीं, उनसे वह वहाँ टाये हुए हरे और मङ्गलमय वाँसों का झ्रम उत्पन्न करता था। अथवा हरे हरे वाँसोंका धोखा होता था। उस मण्डप में ऊपर की ओर सफेद दिव्य ध्वजाका धँदोरा था। उसके देखनेसे ऐसा मालूम होता था, गोया उसके मीपसे आकाश-गङ्गा नमोशा देखनेको आई हो और छत्रके चारों ओर परमोंपर जो मोतियों की मालायें लटकाई गई थीं व आठों दिशाओंके धर्पके शस्य जैसी मालूम होती थीं। मण्डपके बीचमें देवियोंने रतिके निधान रूप रत्न-खण्डों के आकाशतक ऊँची चार श्रेणियाँ स्थापन की थीं। उन चार श्रेणियोंके कलशोंको सहारा देनेवाले हरे वाँस जगत्को स्वामी के वश की वृद्धि की सूचना देते हुए शिखरों पर १

घी और दही ला । हे मंजुघोषा ! सखियोंसे घण्टा अच्छी तरह गया । हे सुगंधे ! सुगन्धित चीजे तैयार कर । हे तिलोत्तमा इरवाजेपा उत्तमोत्तम साधिये घना ; हे मैना ! तू आये हुए लोगोंका उचित पातचीतसे सम्मान कर । हे सुवर्शि ! तू बधू और घरके लिये केशामरण तैयार कर । हे सद्दजत्या ! तू घरात में आये हुए लोगोंको ठहरने को जगह यता । हे चित्रलेखा ! तू मातमन में विचित्र चित्र बना । हे पूर्णिमे ! तू पूर्णगात्रों को शीघ्र तैयार कर । हे पुण्डरीके ! तू पुण्डरीकों से पूर्ण बल्शों को सजा । हे अम्लोचा ! तू परमाची को उचित ध्यानपर स्थापित कर । हे हंसपादि ! तू बधूघर की पादुका स्थापन कर । हे पुत्रिकास्थला ! तू जन्मी जल्दी गोबर स घेदो को लीप । हे रामा ! तू इधर उधर क्या फिरती है ? हे हेमा ! तू मुषर्ण को क्यों देखती है ? ये द्रुतस्थला ! तू डीली सी क्यों भोगई है ? हे मारिचि ! तू क्या सोच रही है ? हे सुमुक्ति ! तू उमुक्ती सी क्यों धारही है ? हे गान्धर्वि ! तू आगे क्यों नहीं रहती ? हे दिव्या ! तू व्यर्ध क्यों खेल रही ह ? अब लग्न समय पास आगया है, इन्तिये अपने अपने विवाहोचित कामों में स्थ को हर तरहसे जन्मी करनी चाहिये ।” इस तरह अप्सराओं का परस्पर एक दूसरीका नाम ले जेकर सरस कीलादल होने लगा ।

अप्सराओं द्वारा दोनों कन्याओं का शृङ्गार किया जाना ।

इसके बाद कितनी ही अप्सराओं ने, मङ्गल स्नान कराने के लिये, सुन-दा और सुमङ्गला को आसन पर बिठाई । मधुर धवल मङ्गल गीत गाते हुए उनके सारे शरीर में तैल की मालिश की गई । इसके बाद, जिनके रत्नपुञ्ज से पृथ्वी पवित्र हुई है, ऐसी उन दोनों कन्याओं के सूक्ष्म पीठी से उद्यतन किया गया । उनके दोनों चरणों, दोनों, घुटनों, दोनों हाथों, दोनों कन्धों पर दो दो और सिर पर एक—इस तरह उनके अङ्गमें लीन हुए अमृत कुण्ड सदृश नौ ग्राम तिलक किये गये और तक्षुप में रहने वाले कस्मी सूतीसे वाय और दाहिने अङ्गों में मानो सम चतुरस्र सखान को जाचती हो, इस तरह उन्होंने स्पर्श किया । इस प्रकार अप्सराओंने सुन्दर चर्णवाली उन बालाओंके, धार्योंकी तरह उनकी चपलतासे नियारण करते हुए पीठी लगाई, अर्थात् धाय जिस तरह अपने बालकको दौडने भागनेसे रोकती है, उसी तरह उन्होंने उन बालाओंकी पीठी लगा कर बाहर भागनेसे रोकते हुए पीठी लगाई । हर्षो-मादसे मतवाली अप्सराओंने धणक का सहोदर भाई हो, इस तरह उद्वर्णक भी उसी तरह किया । इसके बाद मानो अपनी कुल-देवियाँ हों, इस तरह उनको दूसरे आसनपर बिठाकर सोनेके घड़ेके जलसे स्नान कराया । गन्धकपायी कपड़ेसे उनका शरीर पोछा और नर्म चर्र उनके

रेशमी कपड़े पहनाकर और उई बिठा कर उनके बालोंसे मोतियों की घर्षाका भ्रम करने वाला जल नीचे टपकाया । धूप रूपीलतासे सुशोभित उनके जरा जरा गीले बाल दिव्य धूपसे धूपित किये । सोने पर जिस तरह गेरूका लेप करते हैं, उसी तरह उन स्त्री-रत्नोंके अङ्गोंको सुन्दर अङ्गरागसे रञ्जित किया । उनकी गर्दनो, भुजाओंके अगले भागों स्तनों और गालों पर मानो कामदेवकी प्रशस्ति हो, इस तरह पत्र बल्लरी की रचना की । मानो रतिदेवके उतरनेका नवीन मंडल हो ऐसा चन्दनका सुन्दर तिलक उनके ललाटों पर किया । उनकी आँखोंमें नील कमलके धनमें आने वाले मौरिके जैसा काजल आँजा । मानो कामदेवने अपने शत्रु रूपनेके लिये शम्भुनागर बनाया हो, इस तरह बिले हुए फूलों की मालाओं से उन्होंने उनके स्त्रि किये । माथा चोटी और माँग पट्टी करनेके बाद चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करने वाले लम्बे-लम्बे पल्लेवाले कपड़े उन्हें पहनाये । पूरब और पश्चिम दिशाओंके मस्तकों पर जिस तरह सूरज और चाँद रहते हैं, उसी तरह उनके मस्तकों पर विचित्र रत्नोंसे देदीप्यमान दो मुकुट धारण कगये । उनके दोनों कानोंमें अपनी शोभा से रत्नोंसे अङ्कुरित हुई पृथ्वीके सारे गर्भको एतर्ध करने वाले मणिमय कर्णफूल और शूमके पहनाये । कर्णलताके ऊपर, नवीन फूलोंकी शोभाकी विडम्बना करने वाले मोतियोंके दिव्य कुण्डल पहनाये । कर्णमें विचित्र माणिककी कान्तिसे आकाशको प्रकाशमान करने वाले और सक्षेप किये हुए इन्द्र धनुषकी शोभाका निरादर

करने वाले पदक पहनाये । भुजाओंके ऊपर, कामदेवके धनुषमें बंधे हुए धीरपटके जैसे शोभायमान रत्नजडित धातुबन्द बांधे और उनके मस्तक शरी किनारों पर, उस जगह चढ़ती—उतरती नदीका झरम करने वाले द्वार पहनाये । उनके हाथोंमें मोतियोंके बहूत पहनाये, जो जल लताके नाचे जलसे शोभित कपारियोंकी तरह सुन्दर मालूम होते थे । उनकी कमरोंमें मणिमय कर्धनिया पहनाई, जिनमें लगी हुई घूंघरोंकी पंक्तियाँ झँकार करती थीं और यह कटि माला या कर्धनी रतिपतिकी मङ्गल पाठिका की तरह शोभा देती थी । उनके पाँचोंमें जो पायजमे पहनाई गई थीं, उनके घ घरू छमाछम करत हुए ऐसे जान पहने थे मानो उनके गुण कीशान कर रहे हों ।

पालिग्रहण उत्सव ।

इस तरह सनाइ हुई दोनों बालिकायें देवियोंके दुलावर मातृभुवनमें सोनेके आसन पर बैठ गईं । उस समय इन्द्रने आकर घृषम लाञ्छन वाले प्रभुको विवाहकेलिये तैयार होनेकी प्रार्थनाकी । “ लोगों की व्यवहार स्थिति बनानी उचित है और मुझे योग्य कर्म भोगने ही पड़ेंगे,” ऐसा विचार करके उन्होंने इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । तब विधिको जानने वाले इन्द्रने प्रभुको स्नान कराया और चन्दन, केशर, कस्तूरी प्रभृति सुगन्धित पदार्थोंकी लगाकर यथोचित आमूषण पहनाये । इसके बाद प्रभु दिव्य वाहन पर बैठकर विवाह मण्डपकी ओर चले । इन्द्र छत्रीवर्द्धाकी

तरह उनके आगे आगे चलने लगा। अप्सरायें धीतों और लघण उतारने लगीं। इन्द्राणियों मंगल गान करने लगीं। सामानिक देवियों बलैयों देने लगीं। गन्धर्व खुशीके मारे बाजे बजाने लगे। इस तरह दिव्य वाहन पर बैठकर प्रभु मण्डप द्वारके पास आये तो आपही विधिको जानने वाले प्रभु वाहनसे उतरकर मण्डप द्वारके पास उसी तरह पड़े होगये, जिस तरह मसुद्रकी बेला अपना मर्यादा भूमिके पास आकर रुक जाती है। इन्द्रने प्रभुको हाथका सहारा दिया इस कारण वे उस तरह शोभा पाने लगे जिस तरह वृक्षके सहारेसे लड़ा हाथी शोभा पाता है। उसी समय मंडप की छियोंमें से एक ने अन्दर नमक और आग होने के कारण तड तड आवाज करनेवाला एक शराय सम्पुट दरवाजेके बिच में रखवा; किसी छीने, पूर्णिमा जिस तरह चन्द्रमा को धारण करती है; उसी तरह दृय प्रभृति मंगल पदार्थों से लालित चौड़ी का एक घाल प्रभुके सामने रखवा। एक स्त्री कसूमी रंग के वस्त्र पहने हुए मानो प्रत्यक्ष मंगल ही इस तरह पञ्च शाखावाटे मधन दंड भी ऊँचा करके अर्घ्य देने के लिये पड़ी हुई। उस समय देवागनाय इस तरह धवल मंगल गा रही थीं—हे अर्घ्य देनेवाली! इस अर्घ्य देने योग्य घरको अर्घ्य देक्षण भर, माखण डण्डा जिस तरह मसुद्रमें से अमृत कैकता है उसी तरह घाल में मे दही फेंक, हे सुन्दरी! नइन धनमे लाये हुए चन्द्रम रस की तैयार कर, भद्रशाल घन से लार् हुर दृय को खुशी से लाकर दे, क्योंकि इकट्ठे हुए लोगों की नेत्रपक्तिसे

जगम तोरण बना है और त्रिलोकी में उत्तम ऐसे घर राज तोरण द्वार में पड़े हुए हैं। उनका शरीर उत्तरीय पल्लके यन्तर पटमे ढका हुआ है, इसलिये गङ्गा नदीकी तरंग में अन्तरीत युय राज हंसने समान शोभ रहे हैं। हे सुन्दरि ! हवासे फूल भङ्गे पड़ते हैं और ध्वन सुना जाता है, मन इत परराज को अथ द्वार पर बहुत देर तक न गेक। देवागतायेँ इस तरह मंगल गीत गारही थीं येमे समय में उस कसूमी रङ्ग क बपडे पहने हुए और मथन दण्ड लिये हुए खड़ा खीने त्रिजगन् को अथ्य देने योग्य घर राज को अर्थ दिया और सुन्दर लाल लाल होठों घाली उस देवीने घयल मङ्गल के जैसा शब्द बरने हुए अपने बगन पडे हुए हाथ से त्रिजगन्पति के भाग का तीन धार मथन दण्डसे चुम्बन किया। इसके बाद प्रभुन अपनी घाम पादुका से, हाम कर्पूर की लीटा से अग समेत शराय समुट का चूण बर डाला और वहाँ से अर्थ देनेवाली ललना छारा गये में कसूमी बपडा डाल कर पींच हुए प्रभु मातृमवन में गये। वहाँ कामदेवका बन्द हो ऐसे मिठोल से शोभायमान हस्त सूत्र धधू और घर क हाथों में बाँधे गये। जिस तरह कंसरी सिंह मेरु पर्यंत की शिखा पर बैठता है, उन्ही तरह परराज मातृ देवियोंके आगे ऊँचे सोने के सिंहासन पर बिठाये गये। सुन्दरियोंने शमी वृक्ष और पीपल वृक्षकी छालों के चूण का लेप दोनों कथाओंके हाथों में किया। यह कामदेव रुपी वृक्षका दोहद पूरा हो येना मातृम होता था।

तरह उनके आगे आगे चलने लगा। अप्सरायें धीनों ओर
 लयन उतारने लगीं। इंद्राणियों मंगल गान करने लगीं। सामा-
 निक देवियां बलैयों लेने लगीं। गंधर्ष रघुश्रीके मारे यात्रे पजाने
 लगे। इस तरह दिव्य वाहन पर बैठकर प्रभु मण्डप द्वाराके
 पास आये तो आपही विधिकोजानने घाले प्रभु वाहनसे उतरकर
 मण्डप द्वारके पास उसी तरह खड़े होगये, जिस तरह समुद्रकी
 वेला अपना मध्यांश भूमिके पास आकर दब जाती है। इन्द्रने
 प्रभुको हाथका सहारा दिया इस कारण वे उस तरह शोभा
 पाने लगे जिस तरह वृक्षके सहारेसे पड़ा हाथी शोभा पाता है।
 उसी समय मंडप की द्वारियोंमें से एक ने अन्दर नमक और भाग
 होने के कारण तड़ तड़ आवाज करनेवाला एक शराय समुद्र
 दरवाजेके बिच में रक्षया। किसी छीने, पूर्णिमा जिस तरह
 चन्द्रमा को धारण करती है, उसी तरह दृष्ट प्रभृति मंगल पदार्थों
 से लाहित चाँदी का एक धाल प्रभुके सामने रक्षया। एक ह्री
 कसूमी रग के वस्त्र पहने हुए मानो प्रत्यक्ष मंगल हो इस तरह
 पञ्च शापावाले मधन दंड भी ऊँचा करके अर्घ्य देने के लिये
 पड़ी हुई। उस समय देवांगनायें इस तरह धवल मंगल गा रही
 थीं—हे अर्घ्य देनेवाली! इम अर्घ्य देने योग्य घरको अर्घ्य दे
 क्षण भर माक्षण डण्डा जिस तरह समुद्रमें से अमृत फैकता है
 उसी तरह धाल में से दही फैक; हे सुदरी! नन्दन घनसे लाये
 हुए चन्दन रस को तैयार कर, भद्रशाल घन से लाई हुई दूध को
 खुशी से लाकर दे, क्योंकि इकट्ठे हुए लोगों की नेत्रपत्तिसे

जगम तोरण घना है और त्रिलोकी में उत्तम ऐसे घर राज तोरण द्वार में बड़े हुए हैं। उनका शरीर उत्तरीय घरके अन्तर पटसे ढका हुआ है, इसलिये गङ्गा नदीकी तरंग में अन्तरीय युव राग हंसके समान शोभ रहे हैं। हे सुन्दरि ! हृद्यासे फूट भङ्गे पड़ते हैं और चन्दन सूया जाता है, अत इन घरराज को अथ द्वार पर द्युत देर तक न रोक। देवागनायें इस तरह मंगल गीत गारही थीं ऐसे समय में उस कस्मी रङ्ग के बपड़े पहने हुए और मथन-दण्ड लिये हुए खड़ी स्त्रीने त्रिजगत् को धष्य देने योग्य घर राज को अर्घ्य दिया और सुन्दर लाल लाल छोटी घाली उस देरीने धरल मङ्गल के जैसा शब्द करते हुए अपने बगन पड़े हुए हाथ से त्रिजगत्पति के भाल का तीन बार मथन दण्डसे घुमन किया। इनके बाद प्रभुने अपनी घाम पादुका से, हीम कर्पूर की लीला से, आग समेत शराय समुद्र का घूर्ण कर डाला और वहाँ से अर्घ्य देनेवाली ललना द्वारा गले में कस्मी बपड़ा डाल कर खींचे हुए प्रभु मातृमथन में गये। वहाँ कामदेवों कन्द हो घेने मिढोल स शोभायमान हस्त मृत्त वधु और वर क हाथों में बाँधे गये। जिन तरह कस्मी सिंदू में कर्पा की शिखा पर बैठता है, उसी तरह घरराज ^{मन्दीरिंदी} आग ऊँचे स्तोत्र के सिंहासन पर बिठाये गये, ^{कर्मिणेश} वृक्ष और पीपल वृक्षकी छालों के घूर्ण का लेप ^{कर्मिणेश} हाथों में किया। यह कामदेव रुपी वृक्षका ^{कर्मिणेश} होता था।

जब शुभ लग्नका उदय हुआ, यानी ठीक लग्नकाल आया, तब सावधान हुए प्रभुने दोनों बालाओंके लेपपूर्ण हाथ अपने हाथ से पकड़ लिये। उस समय इन्द्रने जिस तरह जलके फवारे में साल का बीज बोते हैं, उसी तरह लेपवाले दोनों बालाओंके हस्त समुद्र में एक मुद्रिका डालदी। प्रभुके दोनों हाथ उन दोनोंके हाथोंके साथ मिलते ही द्वा शाखाओंमें इल्की हुई लताओंसे वृक्ष जिस तरह शोभता है, उस तरह शोभने लगे। जिस तरह नदियोंका जल समुद्र में मिलता है उसी तरह उस समय तारामेलक पर्व में धधू और घरकी दृष्टि परस्पर मिलने लगी। घिना हया के जलकी तरह निश्चल दृष्टि दृष्टिसे और मन मनके साथ आपसमें मिल गये और एक दूसरेकी पुतलियोंमें उनका अपस पडने लगा, यानी एक दूसरे की कब्रियोंमें वे परस्पर प्रतिबिम्बित हुए। उस समय ऐसा मालूम होने लगा मानो वे एक दूसरे के हृदयमें प्रवेश कर गये हों। जिस तरह विद्युत् प्रमादक मेढक पास रहते हैं, उसी तरह उस समय सामानिक देव भगवान् के निष्कट अनुचरों की तरह लड़े हुए थे। कन्यापक्षकी स्त्रियाँ, जो हसा दिल्लगी में निपुण थीं। अनुचरोंको इस भाँति कौतुक धवल गीत गाली गाने लगीं—ज्वर घाला मनुष्य जिस तरह समुद्र सोपान की इच्छा रखता है, उसी तरह यह अनुचर लडू, खानेको कैसा मन चला रहा है। कुत्ता जिस तरह मिठार पर मन चलाता है, उसी तरह माँडा पर अखण्ड दृष्टि रखने वाला अनुचर कैसे दिलसे उसे चाह रहा है। मानो जमसे कभी देवेही न हों इस

प्रवेश किया। किसी प्रायस्त्रिंशद् देवाताने, मानों तत्काल जमीन से निकला हो इस तरह, घेदी में अग्नि प्रकट की। उसमें समिध डालने से आकाशवारी मनुष्यों—विद्याधरों की स्त्रियों के कानों के अचरन्त रूप होने घाती धूर्ण की रेखा आकाश में छा गई। इस के बाद स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं और प्रभुने सुनन्दा और सुमंगला के साथ, अष्ट मंगल पूर्ण होने तक अग्नि की प्रदक्षिणा की। इसके बाद ज्योंही आशीर्वादात्मक गीत गाये जाने लगे, त्योंही इन्होंने उनके हथलेवा और पल्ले की गाठें छुड़ा दीं। पीछे प्रभुके लग्न उत्सव से उत्पन्न हुई गुरीसे, रंगाचार्य या सूत्रधारकी तरह आचरण करता हुआ, हस्तामित्यकी लीला घटाता हुआ इन्द्र इन्द्राणियों के साथ नाचने लगा। हवा से नचाये हुए वृक्षोंके पीछे जिस तरह उससे लिपटी हुई रताये नाचा करती हैं, उसी तरह इन्द्रके पीछे और देवता भी नाचने लगे। कितने ही देवता चारणोंकी तरह जय जय शब्द करने लगे। कितने ही भरतकी तरह अजय तरह के नाच करने लगे। कितने ही जमके गधर्वों हों इस तरह नाच करने लगे। कितने ही अपने मुखों से धाजों का धाम लेने लगे। कितने ही चन्द्रों की तरह संप्रम से कूदने फाँदने लगे। कितनेही हँसाने वाले विदूषकों की तरह लोगों को हँसाने लगे और कितनेही प्रतिहारी की तरह लोगों को दूर दूराने लगे। इस तरह भक्ति दिखाने वाले हर्ष से उत्सुक देवताओं से घिरे हुए और दोनों घालोंमें सुनन्दा और सुमंगला से सुशोभित प्रभु दिव्य घाहन में बैठ कर अपने स्थान की पधारें। जिस

तरह संगीत या तमाशे की पतम करके, रगाचाय अपने स्थानको चला जाता है, उसी तरह विवाह-उत्सव समाप्त करके इंद्र अपने स्थानको चला गया। प्रभुकी दिखलाई हुई रिवाज की रीति रस्म उस समय से दुनिया में चल गई। क्योंकि बड़े आदमियों की स्थिति दूसरों के लिये ही होती है। बड़े लोग जिस चाल पर चलते हैं, दुनिया उसी चाल पर चलती है। महापुरुष जो मर्यादा बांध देते हैं, ससार उसी मर्यादा के भीतर रहता है।

अब अनासक्त प्रभु दोनों पत्नियों के साथ भोग भोगने लगे, यानी प्रभु आसक्ति रहित होकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ भाग विलास करने लगे। क्योंकि बिना भोग भोगे पहलेके सतावेदनीय फर्मोंका क्षय न होता था। विवाह के बाद प्रभुने उन पत्नियोंके साथ कुछ कम छै लाख पूर्व तक भोग विलास किया। उस समय बाहु और पीठ के जीव सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर, सुमगला की कोखमें युग्म रूप से उत्पन्न हुए और सुपाहु तथा महा पीठ के जीव भी उसी सर्वार्थ सिद्धि विमान से च्युत कर, उसी तरह सुनन्दा की कोख से उत्पन्न हुए। सुप्रगलाने गर्भ के माहात्म्यको सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न देखे। देवीने उन सुपनोंका सारा हाल प्रभु से कहा, तब प्रभुने कहा—“तुम्हारे चतुर्वर्ती पुत्र होगा।” समय आने पर पूरव दिशा जिस तरह सूरज और संध्या को जन्म देती है, उसी तरह सुमगला ने अपनी कांति से दिशाओं को

प्रकाशमान करने वाले भरत और द्याही नामक दो यक्षों को जन्म दिया और यथा ऋतु जिस तरह मेघ और धिजली को जन्म देती हैं, उसी तरह सुतन्दाने सुन्दर धाट्टि वाले बाहुबलि और सुन्दरी नामक दो यक्षों को जन्म दिया। इसके बाद, विदूरपवत की जमीन जिन्म तरह रत्नों को पैदा करती है, उस तरह अनुकाम से उनचास जोड़ले यक्षों को जन्म दिया। विध्याचल के हाथियों के यक्षों की तरह ये महा पराक्रमी और उल्लाही बालक ऊपर उभर गेलें हूए अतृप्त मन से यदने लगे। जिस तरह मनेक शाखाओं से विशाल वृक्ष सुशोभित होता है, उसी तरह उन बालकों से धारों ओर स घिर कर ऋषभ स्वामी सुशोभित होने लगे।

उम्र समय जिस तरह प्रातः काल के समय दीपक तैजहीन हो जाता है उस तरह काल दोष के कारण कणवृक्षों का प्रमाद्य हान होने लगा। पीपल के पेड़ में जिस तरह लार के बण उत्पन्न होते हैं उस तरह युगलियों में मोघाधिक कषाय धीरे धीरे उत्पन्न होने लगे। सर्प जिस तरह तीन प्रयत्न विशेष की परवा नहीं करता, उसी तरह युगलिये भाकर, माकार और धिऊर—इन तीन नीतियों को उलट्टन करने लगे। इस बाग्ण युगलिये इकट्ठी होकर प्रभुके पास आये और अनुचित बातों के सम्बन्ध में प्रभु से निवेदन करने लगे। युगलियों की घाते सुनकर तीन ज्ञान के धारक भीर जाति स्मरणवात् प्रभु ने कहा "लोक में जो मर्त्याश का उलट्टन करते हैं, उन्हें शिक्षा देनेवाला

राजा होता है, अर्थात् जो नियम विरुद्ध काम करते हैं, उन्हें राजा नियमों पर चलाता है। जिसे राजा बनाते हैं, उसे ऊँचे आसन पर बिठाते हैं और फिर उसका अभिषेक करते हैं। उसके पास चतुरंगिणी सेना होती है और उसका शासन अखण्डित होता है।” प्रभुकी ये बातें सुनकर युगलियोंने कहा—“स्वामिन् ! आपही हमारे राजा हैं। आपको हमारी उपेक्षा न करनी चाहिए; क्योंकि हम लोगों में आपके जैसा और दूसरा कोई नजर नहीं आता।” यह बात सुनकर प्रभुने कहा—“तुम पुरुषोत्तम नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना करो। वही तुम्हें राजा दे गे।” युगलियोंने प्रभुकी आज्ञानुसार नाभिकुलकर के पास जाकर सारा हाल निवेदन किया, तब कुलकरोंमें अग्रगण्य नाभिकुलकर ने कहा—“ब्रह्मन् तुम्हारा राजा हो।” यह बात सुनते ही युगलिये खुश होते हुए प्रभुके सामने आकर कहने लगे—“नाभिकुलकरने आपको ही हमारा राजा नियत किया है।” यह कह कर युगलिये स्वामी का अभिषेक करने के लिये जल लाने चले। उस समय स्वर्ग पति इन्द्रका आसन हिला। अग्नि ज्ञानसे यह जानकर कि यह स्वामीके अभिषेक का समय है, वह क्षणभरमें वहाँ इस तरह आ पहुँचा, जिस तरह एक घरसे दूसरेमें जाते हैं। इसके बाद सौधर्म कल्पके उस इन्द्रने सोनेकी चेदी रचकर, उसपर अति पाण्डुकबला शिला (मेरु पर्वतके ऊपर की तीर्थङ्कर भगवान्के जन्म अभिषेककी शिला) के समान एक सिंहासन बनाया और पूरुदिशा के स्वामीने उसी समय स्वस्तिवाचक की तरह देवोंके लिये हुए

तीथाके जलसे प्रभुका राज्याभिषेक किया। फिर इन्द्रने निर्मलता में चन्द्रमाके जैसे तेजोमय दिव्य घख स्वामीको पहनाये और त्रैलोक्य मुकुट रूप प्रभुके अङ्गों पर उचित स्थानों में मुकुट आदि अलङ्कार पहनाये। इसी धीचमें युगलिये कमलके पत्तोंमें जल लेकर आये। वे प्रभुको गहने कपडों से सजे हुए देकर एक ओर इस तरह पड़े हो रहे, मानों अर्घ्य देनेकी छडे हों। दिव्य घख और दिव्य अलंकारों से अलङ्कृत प्रभु के मस्तक पर यह पानी डालना उचित नहीं है, ऐसा विचार करके उन्होंने यह लाया हुआ जल उनके चरणों पर डाल दिया। ये युगलिये सब तरह से विनीत हो गये हैं—ऐसा समझ कर, उनके रहने के लिए, अलकापतिको विनीता नामक नगरी निर्माण करनेकी आज्ञा देकर इन्द्र अपने स्थान को चले गये।

राजधानी निर्माण।

दुरेने अड़तालीस कोस लम्बी, छत्तीस कोस चौड़ी विनीता नामक नगरी तैयार की और उसका दूसरा नाम अयोध्या रखा। यक्षपति दुरेने उस नगरी को अक्षय घख, नेपथ्य, और धन धान्यसे पूर्ण किया। उस नगरीमें हीरे, इन्द्र नीलमणि और वहुतेरे मणिकी बड़ी बड़ी हवेलियाँ, अपनी विचित्र किरणों से, आकाशमें भीतके बिना ही, विचित्र चित्र क्रियाएँ रचती थीं अर्थात् उस नगरी की रहस्यमय हवेलियोंका बक्स आकाशमें पड़ने से, विभा दीवारोंके, अनेक प्रकार के चित्र घने हुए दिखाइ देते थे और मेरु पर्यंत की छोटीके समान सोनेकी ऊँची हवेलियाँ ध्वजा

ओके निपसे चारों तरफ से परालम्बन की लोला का विस्तार करती थीं। उस नगरी के किले पर माणिक के बंगूरों की पत्तियाँ थीं जो विद्याधरों की सुन्दरियोंको त्रिना यज्ञके दर्पण या आईने का काम देती थीं। उस नगरीमें, धरंकि सामने, मोतियों के साखिये पुराये हुए थे, इसलिये उनके मोतियों से बालिकायें इच्छानुसार पाचीका खेल खेलती थीं। उस नगरी के या गीचों से रात दिन मिडने घाले खेचरियों के त्रिमान क्षणमात्र पक्षियों के घोसलों की शोभा देते थे। वहाँ की अटारियों और हथेलियों में पडे हुए रत्नोंके ढेरों को देखकर, रत्न शिखर वाले रोहणाचल का खयाल होता था। वहाँ की गृह-घापिकायें, जल-म्रीडामें आसक्त सुन्दरियों के मोतियोंके हार टूट जानेसे, ताम्रपर्णी नदी की शोभाको धारण करती थीं। वहाँके अमीर और धनियों में से किसी एक भी व्यापारी के पुत्र को देखने से पैसा मालूम होता था, गोया यक्षाधिपति उपरैरस्त्रयध्यवसाय या तिजारत करने आये हों। वहाँ रातमें चन्द्रकान्त मणिनी दीवारों से झरनेवाले पानीसे राहकी धूल साफ होती थी। यह नगरी अमृत-सुन्दर जल धाले लारों कृष्ण, धावडी और तालावों से नवीन अमृत-हस्त वाले नाग लोकके समान शोभा देती थी।

राज्य प्रबन्ध ।

ज मसे बीसलक्ष पूर्व व्यतीत हुए, तत्र प्रमुञ्जयन्तः नरैः
 हुए। मन्त्रोंमें ओंकारके समान, सबमें पण्डित

श्वर अपनी प्रजाका अपने पुत्रके समान पालन करने लगे। उन्होंने दुष्टोंको शिक्षा देने और सज्जनोंका पालन करने को छोटा करने वाले, अपने अङ्ग के जैसे मन्दीमन्त्रणाकार्यके लिये चुने। महाराजा श्रुपभ देवने चोरी आदि से प्रजाकी रक्षा करने में प्रतीण, रत्नके लोकपालों-जैसे आरक्षक क्षेत्र चारों ओर नियत किये। राजद्विष्टि जैसे प्रभुने राज्यकी स्थिति के लिये, शरीर में उत्तमाङ्ग शिरकी तरह सेनाके उत्कृष्ट अङ्ग रूप हाथी ग्रहण किये। उन्होंने सूर्य के घोड़ों की स्पन्दा सी करने वाले और ऊँची ऊँची गर्दनों वाले घोड़े रये। उन्होंने सुन्दर लक्षडियों से ऐसे रथ बनवाये, जो पृथ्वी के विमान जैसे मादूम होते थे। जिनके सत्य बल की परीक्षा कर ली गई थी, ऐसे सैनिकों की पैदा सेना प्रभुने उसी तरह रखी, जिस तरह कि चन्द्रर्तु राजा रखवा करते हैं। मघीन साम्राज्य रूपी महलके स्तम्भ या दम्भ जैसे महा बलवान सेनापति प्रभु ने एकत्र किये और गाय, बैल, ऊँट, भैंस भैसे पय लघर प्रभृति पशु उनसे उपयोगको जानने वाले प्रभुने ग्रहण किये।

प्रभु द्वारा शिल्पोत्पत्ति।

अब, उस समय पुन-निहीन वश की तरह षट्प वृक्षों के नष्ट हो जाने से लोग बन्द मूल और फल प्रभृति परमुञ्जारा करते थे। उस समय शाल, गेहूँ, चने और मूँग प्रभृति औषधियाँ घास की तरह, बिना बोये अपने आप ही पैदा होने लगीं। लेकिन वे लोग उ हैं बर्षोंकी कच्ची ही—बिना पकाये पाले थे, उनकी घेन पर्वी तत्र

उन्होंने प्रभु से जाकर प्रार्थना की। प्रभुने उनकी बात सुनकर कहा—“उन अनाजोंको मसलकर छिलके रहित करो, तब खाओ।” वे लोग ठीक प्रभुके उपदेशानुसार काम करने लगे, किन्तु सख्ती और बर्दाईके कारण उन्हें यह अनाज इस तरह भी न पचे, इस लिये उन्होंने फिर प्रभुसे प्रार्थना की। इस बार प्रभुने कहा—“उन अनाजों को हाथोंसे रगड़ कर, जलमें मिगोकर और फिर दोनोंमें रखकर खाओ।” उन्होंने ठीक इसी तरह किया, तोभी उन्हें अजीर्ण की वेदना या बद्धजमी की शिकायत रहने लगी, तब उन्होंने ने फिर प्रार्थना की। जगत्पति ने कहा—“पहले कहीं हुई विधि करके, उस अनाज को मुट्टी या बगलमें कुछ देर तक रख कर खाओ। इस तरह तुमको सुख होगा।” लोगों की इस तरह अन्न खाने से भी अजीर्ण होने लगा, तब लोग शिथिल होगये। इसी बीचमें घृक्षोंकी शाखायें आपसमें रगड़ने लगी। उस रगड़न से आग उत्पन्न हुई और घास फूस एवं लकड़ी या काठ प्रभृति को जलाने लगी। प्रकाशमान रत्न के भ्रमसे—चमकते हुए रत्नके धोखेसे, उन्होंने उसे पकड़ने के लिये दौड़ कर हाथ बढ़ाये, परन्तु वे उल्टे जलने लगे। तब आगसे जलकर वे लोग फिर प्रभुके पास जाकर कहने लगे—“प्रभो ! जङ्गलमें कोई अद्भुत भूत पैदाहुआ है।” स्वामीने कहा “चिकने और रुखे कालके क्षीपसे आग उत्पन्न हुई है, क्योंकि पकावत रुखे समय में आग उत्पन्न नहीं होती। तुम उसके पास जाकर, उसके नजदीक की घास फूस आदिको हटादो और प्रहण करो। इसके बाद पहली कड़ी

तयारकी हुई औपधियों या धायकी उसमें डालकर पकाओ और खाओ ।” उन मूर्खोंने वैसा ही किया, तब आगे सारी औपधियाँ जग डालीं ; उन लोगोंने शीघ्र ही स्वामी के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया और कहा कि स्वामिन् ! यह भ्राम तो भुपमरे की तरह, उसमें डाली हुई सब औपधियोंको भरेली ही खा जाती है—हमें कुछ भी वापस नहीं देती ।” उस समय प्रभु हाथी पर बैठे हुए थे, इस लिये वहीं उन लोगोंसे एक गीली मिट्टीका गोला मँगवाया और उसे हाथीके गण्डस्थल पर रखकर, हाथ से फेला कर, उसी आकार का एक पात्र या चर्तन प्रभुने बनाया । इस तरह शिल्पकलाओंमें पहली शिल्पकला प्रभुने कुम्हारकी प्रकट की। इससे बाद प्रभुने कहा—“इसी तरह तुम और पात्र भी बालो । पात्रकी आगपर रखा कर उसमें अनाज की रखो और पकाकर खाओ ।” उन्होंने ठीक प्रभुकी आज्ञानुसार काम किया । उस दिन से पहले शिषी या कारीगर कुम्हार हुए । लोगोंके घर बनाने के लिये प्रभुने सुनार या बढ़ई तैयार किया । महा पुरखों की घनावट विश्वने सुख के लिये ही होती है । घर प्रभृति चीतने पाँच चित्र बनाने के लिये और लोगोंकी विचित्र पीडा के लिये प्रभुने चित्रकार तैयार किये । मनुष्यों के घास्ते कपड़े बुनने के लिये प्रभुने जुलाहों की सृष्टि की ; क्योंकि उस समय कल्पवृक्षों की जगह प्रभुही एक कल्पवृक्ष थे । लोग थाल और नाखून बढने के कारण दुखी रहते थे, इसलिये जगदीशने नाई बनाये । कुम्हार, बढ़ई, चित्रकार, जुलाहे और नाई—इन पाँच शिल्पियों में से एक

एकके बीस-बीस भेद होनेसे, वे लोगोंने नदी के प्रवाह की तरह सौ तरह से फैले ; यानी सौ शिल्प प्रकट हुए । लोगोंकी जीविके लिये घास काटना, लकड़ी काटना, खेती और ध्यापार प्रभृति कर्म प्रभुने उत्पन्न किये और जगत्की ध्वजसा रूपी नगरीके मानो चतुर्पथ या चार राहें हों, इस तरह साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायों की कल्पना की । सबसे बड़े पुत्रको ब्रह्मो पदेश करना चाहिये, इसे 'यय' से ही मानो भगवान्ने अपने बड़े पुत्र भरतको ७२ कलायें सिखाई । भरतने भी अपने अन्य भाइयों तथा पुत्रोंको वे कलायें अच्छी तरहसे सिखाई । क्योंकि पात्रको सिखायी हुई विद्या सौ शाखा वाली होती है, बाहुबलिको प्रभुने हाथो घोड़े, औरखो पुरुषोंके अनेक प्रकार के भेदवाले लक्षण बताये । ब्राह्मीको दाहिने हाथसे १८ लिपियाँ सिखाई और सुन्दरीको बाये हाथसे गणित सिखाई । वस्तुओंके मान, उमान, अयमान और प्रतिमान प्रभुने निपाये और रत्न प्रभृति पिरानेकी कला भी चलाई । उनकी आठासे यादो और प्रतिमादो अथवा मुहूर्त और मुद्रायलय का व्यवहार राजा, अयक्ष और कुलगुरुकी साक्षीसे चलने लगा । हस्ती आदिकी पूजा, धनुर्बंद और और घेयककी उपासना, संप्राम, अर्घशास्त्र, बंध घात, बंध और गोस्त्री आदि तबसे प्रवृत्त हुए । यह माँ है, यह बाप है, यह भाई है यह बेटा है, यह स्त्री है, यह धन मेरा है—ऐसी ममता लोगोंमें तबसे ही आरम्भ हुई । उसी समयसे लोग मेरा तेरा अपना या पराया समझ लगे । विवाहमें लोगोंने प्रभुको गहने कपड़ोंसे सजा हुआ देखा

तमीसे ये लोग अपने तई जेघर और कपड़ोंसे अलङ्कृत करने लगे। लोगोंने पहले जिस तरह प्रभुका पाणिग्रहण होते देखा था, उसी तरह आजतक पाणिग्रहण करते हैं; क्योंकि घटे लोगोंका चलाया हुआ मार्ग निश्चल होता है। जिनेश्वरने विवाह किया उसीदिनसे दूसरेकी ही हुई कन्याये साथ विवाह होने लगे और चूडा कर्म, उपनयन आदिकी पूछ भी उसी समयसे हुई। यद्यपि ये सब क्रियाएँ सावद्य हैं, तथापि अपने कर्त्तव्य या फर्जको समझने वाले प्रभुने, लोगों पर दया करके ये चलाई। उनकी ही करतूतसे पृथ्वीपर आजतक कला-भौशल आदि प्रचलित हैं। उनको इस समयके युद्धिमान विद्वानोंने शास्त्र-रूपसे ग्रथित किया है। स्वामीकी शिक्षासे ही सब लोग दक्ष—चतुर हुए; क्योंकि उपदेश बिना मनुष्य पशु तुल्य होते हैं।

प्रभु द्वारा प्रजापाजन ।

विश्व—ससारकी स्थिति रूपी नाटकके सूत्रधार—प्रभुने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय—इन चार भेदोंसे लोगोंके कुलोंकी रचना की। उग्र दण्डके अधिकारी भारक्षक पुरुष उग्र कुलवाले हुए; इन्द्रके प्रायस्त्रिंश देवताओंकी तरह प्रभुके मन्त्री आदि भोग कुल वाले हुए, प्रभुकी उग्रवाले यानी प्रभुके समयस्क लोग राजन्य कुल वाले हुए, और जो बाकी बचे थे क्षत्रिय हुए। इस तरह प्रभु ध्यवहार नीतिकी नवीन स्थिति की रचना करके, नवोदा

वेद्य या चिकित्सक रोगीकी चिकित्सा करके उचित औषधि देता है; उसी तरह दण्डित करने लायक लोगोंके उनको अपराध प्रमाण दण्ड देनेका कायदा प्रभुने चलाया। दण्ड या सजाके डरसे लोग चोरी जोरी प्रभृति अपराध नहीं करते थे; क्योंकि दण्डनीति सब तरहके अन्यायरूप सर्पको घरा करनेमें मन्वके समान है। जिस तरह सुशिक्षित लोग प्रभुकी आज्ञाको उल्लङ्घन नहीं करते; उसी तरह कोई किसीके खेत, घास और घर प्रभृतिकी मर्यादाको उल्लङ्घन नहीं करते थे। चर्पा मी, अपनी गरजनाके सहाने से, प्रभुके न्याय धर्मकी प्रशंसा करती हो, इस तरह धान्यकी उत्पत्तिके लिये समय पर बरसती थी। धान्यके क्षेत्रों, इसके षगीचों और गायोंके समूहसे ध्यात देश अपनी समृद्धि छम्ते थे और प्रभुकी ऋद्धिकी सूचना देते थे। प्रभु लोगोंको त्याग्य और ग्राह्यके विषयसे जानकारी किया, अर्थात् श्रुत लोगोंको क्या त्यागने योग्य है और क्या ग्रहण करने योग्य है, सब ज्ञान दिया— इस कारण यह भरतक्षेत्र बहुत करने सिद्ध-~~भक्त~~ म्ना हो गया। इस तरह नाभिनन्दन सृपमदेव स्वामीद्वारा मित्रके बाद, पृथ्वीके पालन करने में तिरैसठ लक्ष वृक्ष दिये।

वसन्त वर्षण।

एक दफा कामदेवका प्यारा ~~काम~~ माया।
परिवारके अनुरोधसे प्रभु यागमें ~~अं~~ ~~क~~ मानो
हो, इस तरह

जमान हुए। उस समय कूल और माण्डके मकर-दसे उभरत होकर भौंरे गूजते थे; इस लिये ऐसा मालूम होता था, मानो वसन्त लक्ष्मी प्रभुका स्वागत कर रही हो। पंचम स्वरको उधा रनेवाली कोकिलाओंने मानो पूर्ण रंगका आरम्भ किया हो— ऐसा समझकर, मलयाचलका पवन नट होकर लताओंका नाच दिखाता था। मृगायनी कामितियाँ अपने कामुक पुरुषोंकी तरह अशोक और वृक्ष आदि वृक्षोंको आलिङ्गन, धरणापात और मुखका आसय प्रदान करती थीं। तिलक वृक्ष अपनी प्रबल सुगन्ध से मधुकरोंको प्रमुदित करके, युवा पुष्पके भालखलकी तरह घनस्थलको सुशोभित करता था। जिस तरह पतली कमरवाली लता अपने उन्नत और पुष्ट पयोधरोंके भारसे झुक जाती है; उसी तरह लक्ष्मी वृक्षकी लता अपने कूलोंके गुच्छोंके भारसे झुक गई थी। घतुर कामी जिस तरह मन्द मन्द आलिङ्गन करता है; उसी तरह मलय पवन आमकी लताकी मन्द मन्द आलिङ्गन करने लगा था। लकड़ीवाले पुरुषकी तरह, कामदेव जामुन, कदम, धाम चम्पा और अशोक रूपी लकड़ियोंसे प्रवासी लोगोंकी धम काने में समर्थ होने लगा था। नये पाडलपुष्पके सम्पर्कसे सुगन्धित हुआ मलयाचलका पवन, उसी तरह सुगन्धित जलसे सत्रोंके हर्षित, त भरता था। मकरन्द रससे भरा हुआ महूपका पेड़ मनुष्यायके समान फैलते हुए भौंरोंके झोलाहलने आकुल हो रहा था। शौली और कामान चलानेके अभ्यासके लिये कामदेवने कदमके घटानेसे मानो गोलियाँ हींघार की हों, ऐसा जान पड़ता था, जिसे

इष्टापूर्ति प्रिय है, ऐसी वसन्त ऋतुने घासती लताको झररूपी पधिकषे लिये मकरन्द—रसकी प्याऊ लगाई थी। सिंधुघारके वृक्ष, जिन्हें फूलोंकी आमोदकी समृद्धि अत्यन्त दुर्घार है विषकी तरह नाक द्वारा प्रवासियों में महामोहकी उत्पत्ति करते हैं। वसन्त रूपी उद्यानपाल माली चम्पेके वृक्षोंमें लगे हुए मीरे—रक्षकोंकी तरह, निशङ्क होकर वेगटके घूमता था यौवन जिस तरह स्त्री पुरुषोंकी शोभा प्रदान करता है, उाका रूप लावण्य खिलाता है, उनकी खूबसूरती पर पालिश करता है इसी तरह वसन्त ऋतु बुरे भले वृक्ष और लताओंको शोभा प्रदान करती थी, उनको हरा भरा, तर्रो ताजा और सोहना बनाती थी। मतलब यह है, जिस तरह जगानी का दौरा होनेपर बुरे भले सभी स्त्री पुरुष सुन्दर दीखने लगते हैं, बुरूपसे बुरूप पर एक प्रकार का नूर टपकने लगता है उसी तरह वसन्त का राजत्व होनेसे बुरे भले वृक्ष और लताएँ सुन्दर, मनोमोहक और नेत्ररञ्जक दीखते थे। मृत्युनिर्णयोंको फूल तोड़ना आमम करते देव्य कर ऐसा खयाल होता था, मानों वे भारी पर्वमें वसन्तको अर्घ्य देनेको तैयार हुई हों। जान पड़ता था, फूल तोड़ते समय उन्हें ऐसा खयाल हुआ, कि हमारे मौजूद रहते कामदेवको दूसरे अन्न—फूलकी क्या जरूरत है? ज्योंही फूल तोड़े गये, वसन्ती लता उनकी वियोगरूपी पीडा से पीडित होकर, मीरेके गुंजनेकी आवाज से रोती हुई सी मालूम होती थी। दूसरे शब्दों

फूलोंके वियोग या जुदाई से दुखी हो उठी। मीरोंके गूँजनेके शब्द से ऐसा जान पड़ता था, मानो वह अपने साथी फूलोंकी जुदाई से दुखी होकर रो रही हो। एक स्त्री महिला के फूल तोड़कर जाना चाहती थी, इतनेमें उसका कपड़ा उसमें उलझ गया, उससे ऐसा मालूम होता था, यानीगोया महिला उससे यह कहती हो कि तू दूसरी जगह न जा, उसे अपने पाससे जाने की मनाही करती थी। उसे अपने पाससे अलग करना न चाहती थी, उसका कपड़ा पकड़ कर उसे रोकती थी। कोई स्त्री धरपों के फूल को तोड़ना चाहती थी, कि इतने में उसमें पहने वाले मीरों ने उसके होठपर काट लिया। मालूम होता था अपना आश्रय भङ्ग होने के कारण, मीरोंको मोघ छट आया और इसीसे उसने आश्रय भङ्ग करने वालीके होठ को इस लिया। कोई स्त्री अपनी भुजा रूपी लता को ऊँची करके, अपनी भुजाके मूल भाग को देखनेवाले पुरुषोंके मनोकें साथ रहने वाले फूलोंकी हरण करती थी। नये नये फूलोंके गुच्छे हाथोंमें होनेसे, फूल तोड़नेवाली रमणियाँ जड़ भगही जैसी सुन्दर मालूम होती थीं। वृक्षोंकी शाखा-शाखामें से खिपाँ फूल तोड़ रही थीं, इससे ऐसा मालूम होता था, गोया वृक्षोंमें स्त्री रुपी फल लगे हों। किसीने स्वर्य अपनी हाथों से महिला की कलियाँ तोड़ कर, मोतियों के हार के समान, अपनी प्रिया के लिये पुष्पाभरण या फूलोंके जेवर बनाये थे। कोई कामदेव के तरफस की तरह, इन्द्रधनुष के से पचरङ्गों फूलोंकी माला अपने हाथोंसे गूँथकर अपनी प्राणप्यारी को देता

और उसे सन्तुष्ट और राजी करता था। कीर्ति पुरुष अपनी प्राणजल भाँकी लीला या खेलमें फँकी हुई गेंदको, नीबर की तरह उठालाकर उसे देता था। गमनागमन के अपराधी पतियाँ पर जिस तरह लियीं पादप्रहार करती हैं, उसी तरह कितनी ही कुरंगलोचनी सुन्दरियाँ वृक्षों अग्रभाग पर अपनी पाँवों से प्रहार करती थीं। कोर झूले पर बैठी हुई हालकी व्याही हुई बहू या मयीदा कामिनी उसके म्यामीका नाम पूछने वाली सगियोंके लता प्रहार को शम के मारे मुप मुप्रित करके चुपचाप सहती थी। कोर पुरुष अपने सामने बैठी हुई मीरु कामिनीके साथ झूले पर बैठ कर, गाढ बालिङ्ग की इच्छासे, उसे जोर से छातीसे लगानेकी व्यादिशने झूले को खूब जोर से घटाता था। कितने ही नीजवान रसिये धागने दरप्टों में बँधे हुए झुगों को जय लीलासे ऊँचे घटाते थे, तब बन्दरों की तरह अच्छे मालूम हाते थे।

वसन्त क्रीड़ासे वैराग्योत्पत्ति ।

लोनातिर दमरा आगमन ।

उस शहरके लोग इस तरहक्रीड़ा और आमोद प्रमोदमें मग थे। उनको इस दशार्थे देखकर प्रभु मन ही-मन विचार करने लगे पया ऐसी क्रीड़ा ऐसा आमोद प्रमोद ऐसा खेल क्या किसी और जगह भी होता होगा ? ऐसा विचार आते ही अत्रधि आते, गभुको स्वयं पहले के भोगे हुए अलुत्तर विमान तब के स्वयं सुख याद आगये। उन्हे पहले जर्मों के भोगे हुए स्वर्ग-मुखोंका स्म-

रण हो थापर। इन पर विचार करने से उनके मोह का बांध टूट गया और वे मन ही-मन बहने लगे—“अरे इन विषय-भोगोंके फन्देमें फँसे हुए, निरर्थों की छपेटमें आये हुए, विषयों से आह्वान्त हुए अथवा उनके घशमें हुए लोगों को धिक्कार है, कि जो जो अपने हितको यातनी भी नहीं जानते— जो इतना भी नहीं जानते कि, हमारा हित—हमारी भलाई किस यात में है। अहो! इस संसार की कृपमें, अरघट्ट चट्टियन्त्र की तरह, प्राणी अपने अपने कर्मोंसे गमनागमन को निर्या करते हैं। कृपमें जिस तरह रहटके घड़े आते और जाते हैं; उसी तरह अपने पहले जन्म के कर्मों के फल भोगने के लिए प्राणी जन्मते और मरते हैं, अपने कर्मानुसार ही कभी ऊँचे आते और कभी नीचे जाते हैं, कभी उन्नत अवस्था को और कभी अवनत/अवस्थाको प्राप्त होते हैं, कभी सुखी होते और कभी दुखी होते हैं; पर मोहके कारण प्राणी इस यात को न समझ कर शोचे विषयोंमें लीन रहते हैं। मोहांध प्राणियोंके जन्म को धिक्कार है ॥ जिनका जन्म, सोने वाले की रातकी तरह, व्यर्थ बीता चला जाता है, यानी नींदमें सोनेवाले की रातका समय जिस तरह वृथा नष्ट होता है; उसी तरह मोहांध प्राणियों का जीवन वृथानष्ट होता है। चूहा जिस तरह वृक्षका छेदन कर डालता है, उसी तरह राग द्वेष और मोह उद्यमशील प्राणियोंके धर्मको भी जड़से छेदन कर डालते हैं। अहो! मूढ़ लोग बड़े धूर्त की तरह मोहको बढ़ाते हैं, कि जो अपने बढ़ाने वाले को समूल ही रग जाता है।

हाथी पर घेठा हुआ महावत जिस तरह सपको तुच्छ या भुनगा के समान समझता है, उसी तरह मान या अभिमान पर घेठे हुए पुरुष मर्यादा का उल्लङ्घन करके किसी को भी माल नहीं समझते जगत् को तुच्छ या हकीर समझते हैं। जो मानकी सपारी करते हैं जो अभिमानी या झटकारी होते हैं, वे मर्यादा भङ्ग करके, लोक, निन्दा और ईश्वर से न डर कर, दुनिया को द्विपारत की मज्जर से द्रपत हैं, सपको अपने मुखाघलेमें तुच्छ या नावीज समझते हैं। दुराशय प्राणी या दुर्जन लोग चौंचकी कळीचे समान अग्नि या भयङ्कर घेठना करने वाली माया को नहीं त्यागते। सुपोदक घे जिस तरह दूध थिगड जाना या फट जाता है, काजलसे जिम तरह साफ सफेद कपडा काला या मैला हो जाता है, उसी तरह लोम से प्राणी का निर्मल गुणग्राम दूषित हो जाता या वह ग्यय उसे दूषित कर लेता है। जत तक इस संसार करा पारणा या जेलखाने में जय तक वे चार कपाय पहरदार या सर्त्री की तरह जागते रहते हैं, तत तक पुण्यों की मोक्ष-मुक्ति या शुकारा हा नहा सकता। दूसरे शब्दोंमें इस तरह समन्वय, जिस तरह जेगमें जय तक चौंचीदार जागते रहते हैं, ईश्वर का जेगमें मुक्ति या रिहाई नहीं मिल सकता, यह कैद छू नहीं सकता : जेलसे मुक्ति पा नहीं सकता ; उसी तरह संसार की जेग जो प्राणी कैद है, जिन्होंने इस संघर्षमें ज्य लिया है, जगत् के बन्धनमें फँसे हुए हैं, संसार ईश्वरसे मुक्ति सकते, जय तक कि लोम मोद करे

हय यह है लीम मोह प्रभृति के त्यागने पर ही प्राणीको संसार से छूटकारा या मुक्ति मिल सकती है। इनके सोते रहने या इनके न होने पर ही प्राणी ससारबन्धन से छूटकर मोक्षपद लाभ कर सकता है। अहो! मानों भूल लगे हों इस तरह क्रियोंके घालि हूनमें मस्त हुए प्राणी अपनी क्षीण होती हुए आत्मा को भी नहीं जानते। सिद्धको आरोग्य करनेसे जिस तरहसिद्ध अपने आरोग्य करने वाले का ही प्राण लेता है, उसी तरह आहार प्रभृतिसे उपजा हुआ उन्माद अपने ही भय घमण या ससार बन्धन का कारण होता है। जिस तरह सिद्ध में किया हुआ आरोग्य आरोग्य करने वालेका काल होना है, उसी तरह अनेक प्रकारके आहार प्रभृति से पैदा हुआ उन्माद हमारी आत्मा में ही उन्माद पैदा करता, यानी आत्मा को भय बन्धन में फँसाता है। यह सुगन्धी है कि यह सुराधी! मैं किसे ग्रहण करूँ, ऐसा विचार करने वाला प्राणी उसमें लपट होकर, मुड बनकर, भौंरे की तरह घमनाफिरता है। उसे किसी दशमें भी सुख शांति नहीं मिलती। जिस तरह खिलाँने से घालक को ठगने हैं, उसी तरह फेरल उस समय अच्छी लगाने वाली रमणीय चीजोंसे लोंग अपनी आत्मा को ही ठगते हैं। चिन्य तरह नौदमें सोने वाला पुरख शास्त्र चिन्तनसे भ्रष्ट हो जाता है, उसी तरह सदा चाँसुरी और धीणाके ताद की जान लगाकर सुननेवाला प्राणी अपने स्वार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। एक साथ ही प्रबल या कुपित हुए घात, पिच्छ और कफकी तरह प्रबल हुए विषयों से प्राणीअपने चैतन्य या

आत्मा को लुप्त कर डालते हैं; अर्थात् घात पित्त और शफ—इन तीनों दोषों के एकसाथ बोध करने या प्रयत्न होनेसे जिस तरह प्राणी नष्ट हो जाता है, उसी तरह विषयों के यत्न होनेसे प्राणी का आत्मा नष्ट या तुष्ट हो जाता है, इसलिये विषयी लोगों को धिक्कार है। जिस समय प्रभुका हृदय इस प्रकार संसारी वैराग्य की चिन्ता सन्ततिके तन्तुओं से व्याप्त हो गया, जिस समय प्रभुके हृदयमें वैराग्य संघर्षी विचारोंका ताँता लगा, उस समय प्रह्ल नामक पाँचवें देवलोकके रहने वाले सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, भर्गतोष तुषिताश्व, अत्याश्व, भल्ल और रिष्ट नामके लोकान्तिक देवताओंने प्रभुके चरणोंके पास आ, मस्तक पर मुकुट जैसी पद्मकोपके समान अञ्जलि जोड़, इस तरह कहने लगे—
 “हे प्रभो! आपके चरण इन्द्रकी घुड़ामणिके कान्ति रूप जलमें मग्न हुए हैं, आप भरतक्षेत्रमें नष्ट हुए मोक्ष मार्गको दिखानेमें दीपकके समान हैं। आपने जिस तरह इस लोककी सारी श्ववस्था चलाइ, उसी तरह अत्र धर्म तीर्थकी चलाइये और अपने श्रुत्यको याद कीजिये” देवता लोग प्रभुसे इस तरह प्रार्थना करके ब्रह्मलोकमें अपने अपने स्थानोंको चले गये। और दीशाकी इच्छा वाले प्रभु भी तत्काल नन्दन उद्यानसे अपने राजमहलोंकी ओर चले गये।

तीसरा सर्ग ।

भरतसे राज्य सिंहासनासीन होनेको कहना

भरतका उत्तर ।

प्रभुने अपने सामने और भरत तथा वाहुवलि आदि
 पुत्र अपने पास बुलाये । उन्होंने भरतसे कहा—“हे
 पुत्र ! तू इस राज्यको ग्रहण कर, हमतो अब
 स्वयं-साम्राज्यको ग्रहण करेंगे ।” प्रभुकी ये बातें सुन
 कर क्षण भर तो भरत नीचा मुँह किये बैठा रहा, इसके बाद
 हाथ जोड़ नमस्कार कर गद्गादु खरसे कहने लगा—“हे प्रभो !
 आपने धरण कमलोंकी पीठके आगे लोठनेमें मुझे जो आनन्द
 आता है, यह मुझे रत्नजडित सिंहासनपर बैठनेसे नहीं आ
 सकता ; अर्थात् आपकी धरणमेवामें जो सुख है, यह रत्न
 भय सिंहासन पर बैठनेमें नहीं है ; हे प्रभो ! आपके सामने
 पदल दौड़नेमें मुझे जो सुख मिलता है, वह लीलासे गजेन्द्रकी
 पीठपर बैठनेसे नहीं मिलेगा । आपके धरण कमलों की

छायामें जो सुख और धानन्द है, यह उज्ज्वल छत्रकी छाया में भी नहीं है। यदि मैं आपका निरही हूँ, यदि आप मुझमें बल हिदा हों, अगर आपकी और मेरी जुदाई हो, तो फिर साम्राज्य लक्ष्मीका क्या प्रयोजन है? आपके न रहनेसे यह साम्राज्य लक्ष्मी निष्प्रयोजन है। इसमें कुछ भी सार और सुख नहीं है। क्योंकि आपकी सेवाके सुख रूपी क्षीर सागरमें राज्यका सुख एक घूँदके समान है; अर्थात् आपकी सेवाका सुख क्षीरसागर घट है और उसके मुकाबलेमें राज्यका सुख एक घूँदके समान है।

स्वामी का प्रत्युत्तर

भरत को राजगद्दी ।

भरतकी यातें सुनकर स्वामीने कहा—“हमने तो राज्यको त्याग दिया है। अगर पृथ्वी पर राजा न हो, तो फिरसे मत्स्य-याय होने लगे। सबसे बड़ी मछली जिस तरह छोटी मछलियों की निगल जाती है, उसी तरह बड़जान लोग निर्बलोंकी चटनी कर जायें, उन्हें हर तरहसे हीरान करे। जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत चरिताद्य होने लगे। संसारमें निबलोंके षडे होनेको भी तिल भर जमीन न मिले। इसलिये हे घटस ! तुम इस पृथ्वीका यथोचित रूपसे पालन करो। तुम हमारी आज्ञापर चलने वाले हो और हमारी आज्ञा भी बही है।” प्रभुका ऐसा सिद्धादेश होनेपर भरत उसे उल्लङ्घन कर न सकते थे, अतः उन्होंने प्रभुकी यात मंजूर कर ली, क्योंकि शुरूमें ऐसी ही चिन्तय स्थित

होती है। इसके बाद भरतने नम्रतापूर्वक स्वामीको सिर झुका कर प्रणाम किया और अपने उगत यश की तरह पिताके सिंहासनकी अलंकरण किया। जिस तरह देवताओंने प्रभुका राज्याभिषेक किया था, उसी तरह प्रभुके हुषमसे सामन्त और सेनापति आदिने भरतका राज्याभिषेक किया। उस समय प्रभुके शासनकी तरह, भरतके सिर पर पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान अखण्ड छत्र शोभने लगा। उनसे दोनों तरफ दौरे जाने वाले चँवर चमकने लगे। उनके देखनेसे ऐसा ज्ञान पडता था, मानो वे उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध दो भागोंसे भरतके यहाँ आने वाली लक्ष्मीके दूत हों। अपने अत्यन्त उज्ज्वलके गुण हों, इस तरह कपड़ों और मोतियोंके जेवरोंसे भरत शोभने लगे। बड़ी भारी महिमाके पात्र, उस नवीन राजाको, नये चाँद की तरह, अपने कल्याणका इच्छासे राज मण्डलीने प्रणाम किया।

सवत्सरी दान।

प्रभुने याहुदलि प्रभृति अथ पुत्रोंकी भी उाकी योग्यता-नुसार देश बाँट दिये। इसके बाद प्रभुने कल्पवृक्षकी तरह उाकी अपनी इच्छासे की हुई प्राथनाके अनुरूप, मनुष्योंको सौवत्सरिक दान देना आरम्भ किया, अर्थात् कल्प वृक्ष जिस तरह माँगने वालेको उसकी प्राधानुसार फल देता है, उसी तरह प्रभुसे जिसने जो माँगा उाहोंने उसे यही दिया। इसके सिवा उन्होंने शहरके चौराहों और दरवाजोंपर जोरसे ढींड़ी पिटवा दी

कि जिसे जिस चीजकी जरूरत हो, वह थाकर लेजाय । जिस समय प्रभुदान करने लगे उस समय इन्द्रकी आह्लासे, बलकापति बुधेर के मेने हुए जृम्भकदेव बहुकालसे भ्रष्ट हुए, नष्ट हुए, बिना मालिष के मय्यादाको उल्लङ्घन कर जाने वाले, पहाड, कुज, श्मसान धार घरमें छिपे हुए और गुप्त रूपमे रखे हुए सोने, चाँदी और रत्नोंको जगह-जगहसे लाकर वर्षाकी तरह बरसाने लगे । नित्य सूर्योदयसे भोजन कालतक प्रभु एक करोड आठ लाख सुवर्ण मुद्रायें दान करते थे । इस तरह एक सालमें प्रभुने तीन सौ अठ्ठासी करोड अस्सी लाख सुवर्ण या सुवर्ण मुद्राओंका दान किया । प्रभु दीक्षा ग्रहण करने वाले हैं, ससार से विरक्त होने वाले हैं यह जानकर लोगोंका मन भी विरक्त हो गया था, उनके मनमें भी वैराग्यका उदय हो आया था, इससे वे लोग सिर्फ जरूरतके माफिक दान लेते थे, यद्यपि प्रभु इच्छानुसार दान देने थे, तथापि लोग अधिक न लेते थे ।

प्रभुका दीक्षा महोत्सव ।

घाणिक दानके अन्तमें, अपना आसन चलायमान होनेसे इन्द्र, दूसरे भरतकी तरह, भगवान्के पास आया । जल-कुम्भ हाथमें रखने वाले दूसरे इन्द्रोंके साथ, उसने राज्याभिषेककी तरह जगत्पतिका दीक्षा-सम्पन्धी अभिषेक किया । उस कार्यका अधिकारी ही हो, इस तरह उस समय इन्द्र द्वारा लाये हुए दिव्य गहने और कपडे प्रभुने धारण किये । मानी अनुत्तर विमानके अन्दरका एक

विमान हो ऐसी सुदर्शना नामकी पालकी इन्द्रने प्रभुके लिए तैयार की। इन्द्रके हाथका सहारा देनेकर, लोकाप्र रूपी मन्दिरकी पहली सीढ़ीपर चढ़ते हों, इस तरह प्रभु पालकी पर चढ़े। पहले रोमाञ्चित हुए मनुष्योंने, फिर देवताओंने अपना भूँसिमान पुण्यभार समझकर पालकी उठाई। उस समय सुर और असुरों द्वारा बजाये हुए मंगल धाजों ने अपने नादसे, पुस्कराधस्त मेघकी तरह, दिशाये पूर्ण कर दीं, यानी उन धाजोंकी आवाज दशों दिशाओं में फैल गई। मानों इस लोभ और परलोककी भूँसिमान निर्मलता हों—इस तरह दो चँदर प्रभुके दोनों ओर चमकते थे। चन्दी गण या भाटोंकी तरह देवता लोग मनुष्योंके धानोंकी धृति करनी घाला भगवान्का जयजयकार उच्च स्वरसे करने लगे। पालकीमें घटकर जाते हुए प्रभु उत्तम देवोंके विमानमें रहने वाली श्लाघ्यत प्रतिमा जैसे शोभते थे। इस प्रकार भगवान्को जाते हुए देखकर, शहरके लोग उनसे पीछे इस तरह दौड़े, जिन तरह धात्रक पिताके पीछे दौड़ते हैं। कितने ही तो मेढ़को देखने घाले मोरकी तरह प्रभुकी देवनेके लिये ऊँचे ऊँचे वृक्षोंकी डालियों पर चढ़ गये। स्वामीने दशनाथ राह किनारेके मकानोंके छज्जों और छतोंपर चड़े हुए लोगोंपर सुरजका प्रबल आतप पड़रहा था—तेज धूप उनके शरीरोंको जलाये डालती थी—पर ये उस कड़ी धामको चन्द्रमाकी शीतल चाँदनीके समान समझते थे। कितनोंही को धोड़ों पर चढ़कर जानेतककी देर बदाप्त न होती थी, इसलिये वे धोड़ों पर न चढ़कर स्वयं घोड़े हों इस तरह राहमें दौड़ते थे। कितनेही

पानीमें मछलीकी तरह भीड़में घुसकर म्यामीके दर्शनकी आकांक्षा से आगे निकल जाने लगे। जगदीश्वारे पीछे-पीछे दौड़ने वाली कितनी ही स्त्रियोंके हार भागा दौड़में दूट जाने थे, इससे ऐसा जान पड़ता था, गोया वे प्रभुको लाजाञ्जलि पेशाती हों। यह सुनकर कि, प्रभु आते हैं, उनकी दर्शनाभिलाषिणी कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें बालक लिये बन्दों सहित लताओं सी सुन्दर दीवनी थीं। पीन पयोधरों या कुच कुम्भोंके भारके कारण मद् गतिसे चलने वाली कितनीही स्त्रियाँ—दोनों बानुओंमें दो पैर हों—इस तरह दोनों तरफ रदनेवाली दोनों स्त्रियोंकी भुजाओं का सहारा लेकर आती थीं। कितनीही स्त्रियाँ प्रभु के दर्शनों के आनन्दकी इच्छासे, गतिमग करने वाले—चलनेमें रुकावट डालने वाले भारी नितम्बोंकी निन्दा करती थीं, राहमें पड़नेवाले घरोंकी अनेक कुल कामिनियाँ सुन्दर कसूमी रंगरे बगड़े पद्मे हुए और पूणपात्रको धरण किये हुए खड़ा थीं। वे चन्द्र सहित मन्थाके समान मुहायनी लगती थीं। कितनीही चञ्चलनयनी प्रभुको देखने की इच्छासे अपने हस्त कमलोंसे चँवर-सदृश घड़ने पल्लेको चिराती थीं। कितनीही ललनायें नामिन इनके ऊपर धारी फैलती थीं। उन्हें देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वे अपने पुण्यके पीज पूज रूपसे खो रही हों। कितनी ही स्त्रियाँ भानों भगवान्के घरकी सुवासिनी हों इस तरह, चिरजीव चिरनन्द, आयुस्मन् आशा पाद देती थीं। कितनीही कमलनयनी नगर नारियाँ अपने नेत्रों को निश्चल और गति को तेज करके प्रभु के पीछे पीछे चलती और उन्हें

थीं।

अब अपने बड़े बड़े विमानोंसे पृथ्वीतलको एक छायावाला करते हुए चारों प्रकार के देवता आकाशमें आने लगे । उनमेंसे कितनी ही उत्तम देवता मद धूने वाले हाथियों को लेकर आये थे । इससे वे आकाश को मेघाच्छन्न करते हुए से मालूम होते थे । कितनी ही देवता आकाश रूपी महासागरमें नौका रूपी घोड़ों पर चढ़ कर, चानुक रूपी नौका के दण्डे सहित, जगदीश को देखने के लिये आये थे । कितनेही देवता मूर्त्तिमान पवन ही हो इस तरह अतीव घेगवान रथोंमें बैठकर नाभि कुमार के दर्शना को आ रहे थे । ऐसा मालूम होता था, मानों वाहनों की प्रीडा में उन्होंने परस्पर घाजी मारनेकी प्रतिज्ञा की हो । क्योंकि वे आगे निकलने में अपने मित्रों की राह को भी न देखते थे । अपने-अपने गाँवोंमें पहुँचने पर पचिस जिस तरह कहते हैं कि "यह गाँव ! यह गाँव !" और अपनी सवारी को रोक लेते हैं ; उस तरह देवता भी प्रभु को देखतेही "यह स्वामी ! यह स्वामी !" कहते हुए अपने-अपने वाहनों को ठहरा लेते थे । विमान रूपी हवेलियों और हाथी, घोड़े एव रथों से आकाशमें दूमरी विनिता नगरी बसी हुई सी मालूम होती थी । सूर्य और चन्द्रमासे घिरे हुए मानुषोत्तर पर्वत की तरह जिनेश्वर भगवान् अनेक देवताओं और मनुष्योंसे घिरे हुए थे । जिस तरह दोनों ओरसे समुद्र सुशोभित होता है ; उसी तरह वे दोनों सुशोभित थे । जिस तरह हाथियों का झुण्ड अपने वृषपति का अनुसरण करता है ; उसी तरह शेष ब्रह्मचर विनीत पुत्र प्रभु के पीछे-पीछे चल रहे थे । माता मरुदेवा, पत्नी सुनन्दा और सुमंगला

एव पुत्री प्राह्मी और सुन्दरी तथा अन्य स्त्रियाँ—हिमवर्ण सहित पद्मिनी या बरुं के कर्णों सहित कमलिनी भी तरह—मुखों पर माँसुओं की पूँडों सहित प्रभुके पीछे पीछे चल रही थीं । पूर्वजन्मके सिद्धि विमानके जैसे सिद्धार्थ नामके बागमें प्रभु पधारे, अर्थात् जिस बागमें प्रभु पधारे, उसका नाम सिद्धार्थ उद्यान था और वहाँ प्रभुके पूर्व जन्मके सगार्थ सिद्ध विमान जैसा मालूम होता था । ममता रहित मनुष्य जिस तरह संसारसे निवृत्त होता है उसी तरह नामिनन्दन पालकी रुगी रदा से वहाँ बरसोक घृक्षके नीचे उतरे और कपायाँ की तरह चल, माला और गहने उन्हेनि तत्काल त्याग दिये । उस समय इन्द्रन प्रभुके पास आकर, माता खन्द्रमा की किरणोंसे बना हो ऐसा उज्ज्वल और महीन देयदुश्य धर प्रभुके कंधे पर डाल दिया ।

प्रभुका चरित्र गृहण ।

इसके बाद चैतके महीनेमें छत्र पक्षकी मष्टमी को खन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्रमें जाया था । उस समय दिन के पिछले पहरमें जय जय शब्दके कोलाहल के मियसे इर्षाद्गार करते हुए वैश और मनुष्योंके सामने, गोया चारों दिशाओं को प्रसाद देनेकी इच्छा हो, इस तरह प्रभुने अपनी चरमुट्टियों से बने बाल मोच लिये । सौधर्मपति ने प्रभुके केश बनने वागके लिये, उससे ऐसा मालूम होने लगा मानो इस तरह के तुरे रंगके तन्तुओंसे मण्डित करता है । प्रभुने

धात्री के धारणों को उखाड़ने की इच्छा थी, क्योंकि इन्द्रने प्रार्थना की— "हे स्वामिन्! अब इतनी फेशगल्ली को रहने दीजिये, क्योंकि हवा से जब वह आपके सोने की सी कान्तिवाली कन्धे पर आती है, तब मरकत मणि की शोभा को धारण करती है। प्रभुने इन्द्रकी बात मान, वह फेशगल्ली घैसेही रहने दी, क्योंकि स्वामी लोग अपने अनर्थ या एकान्त मर्तोंकी याचना का पण्डन नहीं करते इसका बाद सोधर्मपतिने उन धारणों को क्षीरसागरमें फेंक आकर सूत्रधार की तरह मुड़ी सन्नासे धार्जा की रोंका इस समय छुटप करने वाले नामि कुमारने देव, असुर और मनुष्यों के सामने सिद्ध की ममस्कार करके 'समस्त सावध योगका प्रत्याख्यान करता हूँ, यह वह धर मोक्ष मार्ग के रथतुल्य चरित्र को गहन किया शब्द प्ररतुकी धूपमे नपेक्षुप मनुष्योंको जिस तरह वादलोंकी छाया से सुख होता है उसी तरह प्रभुके दीक्षा उत्सवसे नारकी जीर्णोंको भी क्षण मात्र सुख हुआ। माने दीक्षाके साध संकेत करके रहा हो, इस तरह मनुष्यक्षेत्र में रहने वाले सर्व सती पञ्चेन्द्रिय जीवोंके मनोद्रव्यको प्रकाश करने वाला मन पर्यवगत शीघ्रही प्रभुमें उत्पन्न हुआ। मित्रोंके निवारण करने बंधुओंके रोकने और भर्तेश्वरके धारणार निषेध करने पर भी कच्छ और महाकच्छ प्रभृति चार हजार राजाओंने स्वामीकी पहलैकी हुई बड़ी बड़ी ह्याओंको धाद करके भीरकी तरह उनके चरण कमलोंका चिरह या जुदाई न सह सकनसे अपने पुत्र कलत्र और राज्य पुभृतिको तिनके समान त्यागकर "जो स्वामीकी गति वही हमारी गति"

बहते हुए बड़ी प्रमत्ततासे प्रभुके साथ दीक्षा ली। नीकर चाकरों का प्रेम पेशाही होता है।

इन्द्रकी की हुई स्तुति ।

इनके बाद इन्द्र प्रभृति देवता आदि नाथको हाथ जोड़ पूजाम कर स्तुति करने लगे—“हे प्रभो ! हम आपके यथार्थ गुण कहनेमें असमर्थ हैं तथापि हम स्तुति करते हैं, आपके प्रभावसे हमारी बुद्धिका विकास होता है। प्रस और स्वाधर जन्तुओंको हिंसाका परिहार करनेसे अमय दान देनेवाली दानशाला रूप आपको हम नमस्कार करते हैं। समस्त मृगायादिका परिहार करने से हितकारी सत्य और मिय वचन रुपी सुधारसके समुद्र आपकी हम नमस्कार करते हैं। अदत्तादान का पाप करने से रुके हुए पहले पयिक हैं, अतः हे भगवान् हम आपको नमस्कार करते हैं। हे प्रभो ! कामदेव रुपी अधकार के नाश करने वाले और अक्षण्डित ब्रह्मचर्यरुपी महतीजस्वी मृत्युके समान आपको हम नमस्कार करते हैं। तिनके की तरह पृथ्वी प्रभृति सब तरह के परिग्रहों को एक दम त्याग देने वाले और निर्लोभिता रुपी आत्मा वाले आप को हम नमस्कार करते हैं आप पञ्च महा मतों का भार उठानेमें वृष्णके समान हैं और संसार सागर को पार करनेमें कछुए के समान हैं आप महा पुरुष हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। हे आदिनाथ ! पांच महाप्रतों की पाँच सहोदराओं जैसी पाँच समितियों को धारण करने वाले, आपको हम

नमस्कार करते हैं। आठमारांम में मन लगाये रखने वाले, यवन की स्तुतिसे शोमने वाले और शरीर की भारी वेषाओं से निवृत्त रहने वाले, अर्थात् इन तीन गुणियों को धारण करने वाले आपको हम नमस्कार करते हैं।”

प्रभु और उनके साथियों का भूख प्यास आग सहन करना ।

इस तरह प्रभु का स्तुति करके जामाभिषेक काल की भाँति देवता नदीध्वर द्वीपमें जाकर अपने अपने स्थानों को गये। देवताओं की तरह भरत और बाहुबलि प्रभृति भी प्रभुको प्रणाम करके, बड़े कष्टके साथ अपने अपने स्थानों को गये और दाक्षा लिये हुए बन्ध और महाफञ्ज प्रभृति राजाओंसे घिरे हुए पर्व मीन धारण किये हुए भगवान् ने पृथ्वी पर विहार करना आरम्भ किया। पारणोंके दिन भगवान् को कहींसे भी भोजन न मिली। क्योंकि उस समय योग शिक्षादान की नहीं समझते थे एक दम सरल स्वभाव थे। भिक्षार्थ माये हुए प्रभुको पहले की तरह राजा सम्भकर कर, कितने ही लोग उन्हें सूर्यके घोड़े उन्वैध्रमा को भी चालमें परास्त करने वाले घोड़े देते थे। कोई कोई उन्हें शौर्यसे दिग्गजों—दिशाओंके हाथियोंको जीतने वाले हाथी भेंट करते थे। कोई कोई रूप और लावण्यसे अस्तराओंको जीतने वाली कन्याएँ अर्पण करते थे। कोई कोई अण्डला की तरह चमकने वाले गहने

के समान चित्र विचित्र घन्तु या बपड़े देने थे। कोई मन्दार पुष्पोंकी मालासें स्पन्दा करनेवाले फूलोंकी मालायें देता था। कोई मेरु पर्यंत के शिखर जैसी बाहुन-राशि मेंढ करता था और कोई रोहणा चलके शिखर मट्टर रत्न समूह देता था। परप्रभु उनको दी हुई किन्नी चीन को न लेते थे। भिक्षा न मिलने पर भी अदीनमना प्रभु जङ्गम तीर्थकी तरह विहार करते हुए पृथ्वीनल को परित्र करते थे। मानो उनका शरीर रसरक्त और मांस प्रभृति सात धातुओं से बना हुआ नहीं था, इन तरह प्रभु भूख व्यास प्रभृति पत्थिहों को सहन करते थे। नाथ जिस तरह हवा का अनुसरण करती है—हवाके पीछे पीछे चलती है, उसी तरह अपनी इच्छासे दोक्षित हुए राजा भी स्वामी का अनुसरण कर विहार करते थे।

सहटीचित्तो की चिन्ता ।

अथ क्षुधा आदि से ग्लानि को प्राप्त हुए और तत्यज्ञान दीन वे तपस्वी राजा अपनी बुद्धिसे अनुसार विचार करने लगे—ये स्वामी मानो किंपाबके फल हों, इस तरह मधुर फलोंको भी नहीं पाते और गारी जन् हो इन तरह स्यादिष्ट जलको भी नहीं पीते। शरीर शुष्कता में अपेक्षा रहित हो जानेसे ये स्नान और विलेपन भी नहीं करते, यानी शरीर को, और से लापरवा हो जानेसे न स्नान करते हैं और न चन्दन केशर और कस्तूरी आदिका शरीर पर लेप करते हैं। बपड़े, गहने और फूलोंको भी भार समझ कर प्रदण

नहीं करते। पर्वत की तरह, हवासे उड़ाइ हुई राह की धूलसे आलिङ्गन होता है। मस्तक को तपा देने वाली धूपको मस्तक पर सहन करते हैं। सभी सोते नहीं तो भी थकते नहीं और श्रेष्ठ हाथीकी तरह उन्हें सरपी और गरमीसे तकलीफ नहीं होती। ये भूखकी कोई चीज समझते ही नहीं, व्यास क्या होता है, इसे जानते भी नहीं, और चैरवाले क्षत्रिय की तरह नींद लेते नहीं, यद्यपि अपन लोग उनके अनुचर हुए हैं, तथापि अपन लोग अपराधी हों इस तरह वे अपनी ओर देखकर भी अपनी सन्तुष्ट नहीं करते—फिर धोखे का तो कहना ही क्या ? इन प्रभुने अपने छोटे पुत्र आदि परिग्रह त्याग दिये हैं, ही भी ये अपने दिल में क्या सोचा करते हैं, इस बातको अपन नहीं जानते। इस तरह विचार करके वे सब तपस्वी अपनी मण्डली के अगुआ—स्वामीके पास संघक की तरह रहने वाले—कच्छ और महा कच्छ से कहने लगे—
 “कहाँ ये भूखको जीतने वाले प्रभु और यहाँ धूपको सहनेवाले प्रभु और कहा छायाके मकड़े जैसे अपन ? अपन अन्नके कीड़े ? कहाँ ये प्यास को जीतनेवाले प्रभु और कहाँ जलके मेंढक समान अपन ? यहाँ शीतसे पराभव न पाने वाले प्रभु और कहाँ अपन यन्दर के समान पापने वाले ? कहाँ निद्रा को जीतने वाले प्रभु और कहाँ अपन नींदके अजगर ? कहाँ रोज ही न बैठने वाले प्रभु और कहाँ आमनमें पंगुके समान अपन ? समुद्र लायने में कब्ये जिस तरह गरुडका अनुसरण करते हैं, उसी स्वामीने, व्रत धारण किया है उसके पीछे पीछे चलना या उनकी नकल करना अपन लीगोंने

आरम्भ किया है। क्या अपनी जीविकाके लिये अपनाको अपना राज्य फिर ग्रहण करना चाहिये ? अपने राज्य तो भरत ने ग्रहण कर लिये हैं, इसलिये अब आपन को वहाँ जाना चाहिये ? क्या अपने जीवनके लिये अपने को भरत की शरण में जाना चाहिये ? परन्तु स्वामी को छोड़कर जानेमें आपन को उमका ही भय है। हे भाव्यों ! हे श्रेष्ठ पुरुषो ! आपन लोग प्रभु के विचारों को जानने वाले और सदा उनके पास रहने वाले हो, एतया यताइये कि हम विषर्त्तव्यमूढ लोग क्या करे ?

उन्होंने कहा—“स्वयंभूरमण समुद्रका अन्त जो ला सक्ता है वही प्रभुके विचारों को जान सक्ता है। पहले तो प्रभु हमें जो आभा प्रदान करते थे, हम वही करते थे, लेकिन आजकल तो प्रभुने मीन धारण कर रखा है, इसलिये अब यह कुछ भी आशा नहीं करते। इस लिये जिस तरह तुम कुछ नहीं जानते उसी तरह हम भी कुछ नहीं जानते। आपन सबकी समान गति है। इसलिये आप लोग वहाँ घेसा करें। इसके बाद वे सब गङ्गानदीके निकटके घागमें गये और वहाँ स्यच्छन्दता पूर्वक बादमूठ फलादि पाने लगे तभी से घनवासी बन्द मूल फल फूल पानेवाले तपस्वी पृथ्वी पर फैले।

नमि और विनमिका आगमन ।

उन कच्छ महाकच्छके नमि और विनमि नामके दो विनीत और सुशील पुत्र थे। ये प्रभुके दीक्षा लेनेसे पहले उसकी आज्ञा

से दूर देशकी गये थे। यहाँसे लीटती हुए उन्होंने अपने पिताकी पनमें देखा। उनको देखकर वे विचार करने लगे— धृषभनाथ जैसे नाथके होने पर भी, हमारे पिता अनाथकी तरह इस दशाकी क्यों प्राप्त हुए। कहीं उनके पहनने योग्य महीन धरत्र भीर कहीं भीलोंके पहनने योग्य बटबल—धरत्र? कहीं शरीरपर लगाने योग्य उबटा और कहीं पशुओंके लोट भारने योग्य जमीनकी घूल मिट्टी? कहीं फूलोंसे गुथा हुआ देशपाश और कहीं घटशूल सङ्घस लम्बी जटायें,? कहीं हाथीकी मधारी और कहीं प्यादेवी तरह पैदल चलना? इस प्रकार विचार करके उन्होंने अपने पिताको प्रणाम किया और सब हाल पूछा। तब कच्छ और महाकच्छने कहा—“भगवान् प्रहणमभ्यजने राजपाट त्याग, भरत प्रभृति को पृथ्वी बाँट, शृत ग्रहण किया है। जिसतरह हाथी ईश को खाता है उसी तरह हमने साहससे उन के साथ व्रत ग्रहण किया था, परन्तु भूख, प्यास, शीत और घाम प्रभृतिके हेतुओंसे दुखी होकर, जिस तरह गधे और श्वशर अपने ऊपर लदे हुए भार को पटक देते हैं उसी तरह हमने व्रतको भंग कर दिया है। हम लोग प्रभुका सा धर्ताय कर नहीं सके और उधर ग्रहस्थाधम भी अंगीकार नहीं किया, इससे तपोधन में रहते हैं।” ये बातें सुनकर उन्होंने कहा—“हम प्रभुके पास जाकर पृथ्वी का माग माँगे।” यह बात कहकर नमि और विनमि प्रभु के चरण-बमलोंके पास आये। प्रभु निःसंग हैं। इस बात का वे न जानते थे, अतः उन्होंने कायीत्सर्ग ध्यान में स्थित प्रभु को

कि दो सरल स्वभाव वालक राज्य-लक्ष्मी मांगते और भगवान् की सेवा करते हैं। नागराजने अमृत समान मोठी याणीसे उनसे कहा—“तुम कौन हो और साम्रह दृढताके साथ क्या मांगते हो ? जिस समय जगदीशने एक वर्षतक मन चाहा महा दान हर किसीको जिना जरा भी रोकटोकके दिया था, उस समय तुम कहा थे ? इस वक्त स्वामी निभय, निष्परिग्रह, अपने शरीरमें भी आर्काक्षा रहित, और ग्रेय तोपसे विमुक्त हो गये हैं, अर्थात् इस समय प्रभु मोह ममता रहित, और जजालसे अलग हो गये हैं। उन्हें अपने शरीरकी भा आकाक्षा नहीं है। राग और द्वेषके उनका पीछा छोड़ दिया है।” यह भी प्रभुका सेवक है, ऐसा समझकर नमि विामिने मानपूर्वक उनसे कहा—“ये हमारे स्वामी—मालिक और हम इनके सेवक या चाकर हैं। इन्होंने आज्ञा देकर हमको किसी और जगह भेज दिया और भरत प्रभृति अपने पुत्रोंको राज्य घाट दिया। यद्यपि इन्होंने सर्वस्व दे दिया है, तथापि ये हमको भी राज्य न देंगे। उनके पास वह चीज है या नहीं, ऐसा चिन्ता करनेकी सेवकको क्या जरूरत ? सेवकका कर्त्तव्य तो स्वामी की सेवा करना है।” उनकी बातें सुनकर धरणेन्द्रने उनसे कहा—“तुम भरतके पास जाकर भरतसे मांगो। वह प्रभुका पुत्र है अतः प्रभुतुल्य है।” नमि और विामिने कहा—“इन विश्वेस की पाकर, अथ हम इन्हें छोड़ और दूसरेको स्वामी नहीं मानेंगे। क्योंकि कल्पवृक्षको पाकर करीलकी सेवा कौन करता है ? हम जगदीशको छोड़कर, दूसरे से नहीं मांगेंगे।

क्या चातक—परहिया मेनको छोड दूमरेम याचना करता है ? भरत
आदिष का कल्याण हो ! आप किसलिये चिन्ता करते हैं ? हमारे
स्वामी से जो होता हो सो हो, उममें दूसरको क्या मनः ? अघात
हम सेवक, ये स्वामी, हम याचक ये दाता, इनकी इच्छा हो मो
करे । इनके और हमारे बीचमें बोलने वाला दूसरा कौन ?

नमि विनमि को धरणेन्द्र द्वारा वैताद्व्य का राज दिया जाना ।

उन कुमारों की उपरोक्त युक्तिपूर्ण बातें सुनकर नागराजने
प्रसन्न होकर कहा—“मैं पातालपति और इन स्वामी का सेवक
हूँ । तुम धन्य हो, तुम भाग्यशाली और घटे सत्यजन हो जो
इन स्वामीके मित्रा दूमरेको सेवने योग्य नहीं समझे और इसकी
दृढ प्रतिज्ञा करते हो । इन भुवन पति की संज्ञसे कससे मंत्री
दुष्ट की तरह राज्य समनिर्यां पुरणके सामने बन्धर धडी हो
जाती हैं । अघात इन जगदीश की सेवा करने बढेके मामने अष्ट
सिद्धि और नयनिद्धि हाथ धांधे खडा रहने हैं । इतना हा नहीं
इन महात्मा की श्रयासे, लटकते हुए फलक गड्ड, वैताद्व्य पत्नके
ऊपर रहने वाले विचारकोंका स्वामिन्दर सङ्गमें मिल सकता
है । और इनकी सेवासे, पैरोंके मूँड धुलने की तरह सुवर्ण-
धिपति की लक्ष्मी भी विना सिद्धि बालके प्रदत्त और उमने
के मिल जाती है । मन्त्रसङ्गमें छिपे हुए कौनसे उमने
सेवासे ध्वन्तरेन्द्र की लक्ष्मी ही नदरे संरक्ष

रहती है। जो भाग्यशाली पुण्य इनकी सेवा करता है स्वयंवर
 बंधूके समान, ज्योतिष्यति को लक्ष्मी भी उसे धरती है—उसे
 अपना पति बनाती है। वसन्त ऋतुसे जिस तरह विचित्रविचित्र
 प्रकारके फूलों की समृद्धि होती है, उसी तरह इनकी सेवासे
 इन्द्रकी लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। मुक्तिकी छोटी महन जैसी
 ओर कठिन से मिलने योग्य भरमिन्द्र की लक्ष्मी भी इनकी सेवा
 करने वाले को मिलती है। इन जगदीश की सेवा करने वाले
 प्राणी को जन्म—मरण रहित सदा आनन्दमय परमपद
 की प्राप्ति होती है। अर्थात् इनका सेवक जन्म मरणके कष्ट
 से छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है। जियादा क्या।
 कहें, इनकी सेवासे प्राणी इस लोक में इनकी ही तरह तीन लोक
 का अधिपति और परलोकमें सिद्ध होता है। मैं इन प्रभुका दास
 हूँ और तुम भी इनके सेवक हो। अत इनकी सेवाके फल स्व
 रूप में तुम्हें विद्याधरोंका प्रेक्ष्यते देता हूँ। उसे तुम इनकी सेवा
 से ही मिला हुआ समझो। क्योंकि पृथ्वी पर जो वरुण का
 प्रकाश होता है वह भी तो सूर्यसे ही होता है ये पहकर पाठ करने
 भाष्यने सिद्धिके देने धारती यों ही और प्रज्ञानि प्रभृति बडतालिस
 हजार विद्यार्थ उन्हीं की ओर आदेश किया कि तुम घेतालय पर्वत
 पर जाकर दो श्रेणियों में नगर स्थापन करके अक्षय राज करो।
 इसके बाद वे भगवान्को नमस्कार करके पुष्पक विमान धरा,
 उसमें बैठ, नागराजके साथही वहाँसे चल दिये। पहले उन्होंने
 अपने पिता कच्छ और महाकच्छके पास जाकर, स्वामी-सेवा रूपी

रत्नमय नदीन कण्ठाभरण जैसी नौ चोटियाँ उस पहाड़ पर हैं। यहाँ देवता फ्रीडा करते हैं। दक्खन और उत्तर ओर १६० मील की ऊँचाई पर, मानो घस्र हों ऐसी ध्वन्तरों की दो निवास श्रेणियाँ उस पहाड़ पर मौजूद हैं। नीचे से थोड़ी तक मनोहर साने की शिलामोंवाले उस पर्वत को देखते से मादूम होता है मानों स्वर्गके एक पाँव का आभरण या गहना नीचे गिरा हुआ है। हवाके कारण से पहाड़ के ऊपर के दृश्यों की शापार्ये हिल रही थीं, उनके देखने ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वत की भुजायें दूरसे घुटा रही हों। उसी घैनाढ्य पर्वत पर नामि और विनमि जा पहुँचे।

नामि राजाने, पृथ्वी से अस्ती मील की ऊँचाई पर, उस पर्वत की दक्ष्यन श्रेणी में पवास शहर बसाये। किन्तु पुरुषों ने जहा पहुँचे गान किया है, ऐसे वाहुकेतु, पुण्डरीक, हरित्केतु, सेतकेतु, सर्पारिषेतु, धीषाहु, धीगृह, लोहारंगल, अरिजय, स्वर्ग, लीला, घज्जार्गल घज्जधिमोक, महोसारपुर, जयपुर, सुठतमुखी, चतुर्मुखी घहुमुखी रता, विरता, अलण्डलपुर, त्रिलासयोतिपुर अपराजिन, काँचीशाम सुविनय, नमपुर क्षेमकर सहचिहपुर कुसुमपुरी, संजयन्ती, शनपुर, जयती, वैजयन्ती, विजया, क्षेमकर्डी, चन्द्रभासपुर, रविभासपुर, समभूनलावास, सुविचित्र, महामपुर, चिनकूट, त्रिकूटक, धैधवणकूट, शशिपुर, रविपुर विमुखी, वाहिनी सुमुखी, नित्योद्योतिनी और धीरधनुपुर, चक्रालये उन नगर और नगरियोंके नाम रखे। इन नगरोंके धीर्धो

बीचमें थाये हुए रघुपुर चण्डाल नगरमें नामी ने निवास किया ।

धरणेन्द्र की आज्ञासे पर्वत की उत्तर श्रेणी में विनमिने उसी तरह पचास नगर बसाये । अजुनी, चारणी, वैसंहारिणी, वैलास चारणी, विद्युत्दीप, किलिकिल, चारुचूडामणि, चन्द्रमाभूषण, वशमत, कुसुम चूल, हन्सगर्म, मेघक, शङ्कर, लक्ष्मीहर्म्य, घामर, विमल, असुमल्लत, शिवमन्दिर, वसुमती, सर्वसिद्धस्तुन, सर्व शत्रु गय, केतुमालांक, इन्द्रकांत, महानन्दन, अशोक घीन शोक, विशोकक, सुपालोक, अलक तिलक, नमस्तिलक मन्दिर, वसुमुद कुन्द, गगनजलम, युवतीतिलक, अग्रनितिलक, सगंधा मुक्कहार, अनिमिय विष्ट अग्निज्वाला, गुरुज्वाला श्रीनिवेशपुर जयथी निवास, रत्नकुलिश शशिष्ठाधम, द्रविणाजय, समद्रक, भद्राशयपुर, फेन शिखर, गोक्षीरवर शिखर, वैर्यक्षोभ शिखर, गिरिशिखर, धरणी, चारणी, सुदर्शन पुर, दुर्ग, दुर्दर, माहेन्द्र, विजय, सुगन्धिनी सुरत नागर पुर, और रत्नपुर—ये उन पचास नगर और नगरियों के नाम रखे । इन नगर और नगरियों के बीचों बीच में जो गगन बल्लभ नाम का नगर था, उसीमें धरणेन्द्र की आज्ञा से विनमि ने निवास किया । विद्याधरोंकी महत् श्रद्धि वाली वे दोनों श्रेणियाँ अपने ऊपर वाली व्यन्तर श्रेणी के प्रतिविम्ब—अक्स की तरह सुशोभित थीं, यानी वे दोनों श्रेणी उनके ऊपरकी व्यन्तर श्रेणी के प्रतिविम्ब की जैसी मालूम होनी थीं । उन्होंने और भी अनेक गाँव और खेडे बसाये और स्थान की योग्यतानुसार कितने ही जनपद भी स्थापन किये । जिस देशसे लाकर जो लोग वहाँ

रक्षामय नवीन बरणाकरण जैमी नी चौटियाँ उस पहाड़ पर है। यहाँ देवता प्रीडा करते हैं। दक्षिण और उत्तर ओर १६० मील की ऊँचाई पर, मानो घाट हों ऐसी ध्यन्तरों की दो निपास धे णियाँ उस पहाड़ पर मौजूद हैं। नीचे से धोटी तक मनोहर साने की शिलाओंवाले उम पर्यंत की देवने से मादम होना है मागों स्वर्गके एक पाँच का आभरण या गहना नीचे गिरा हुआ है। हवाके कारण से पहाड़ के ऊपर के वृक्षों की शाखाएँ टिग रही थीं, उनके देगने ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्यंत की भुजाएँ दूरसे थुला रही हों। उरी घैताद्वय पर्यंत पर नामि और विनमि जा पहुँचे।

गमि राजाने, पृथ्वी से अम्नी मील की ऊँचाई पर, उस पवन की दक्षिण श्रेणी में पचास शहर बसाये। किन्तु पुरयों ने जहाँ पहले मान किया है, ऐसे षाडुवेतु पुण्डरीक, हरित्येतु सेतकेतु, सपरिकेतु, श्रीबाहु, श्रीगृह, लीदागल अरिजय, स्वर्ग। लीला, घमार्गल यमविमोक महीसारपुर, जपपुर, सुतमुषी, चतुर्मुषी घहुमुषी रता विरता, अण्डलपुर तिलासयोनिपुर अण्डाजिन, काँचीदाम सुयिनय, नमपुर, क्षेमकर, सहचिहपुर कुसुमपुरी, सजयन्ती शयपुर, जयन्ती वैजयन्ती, विजया, क्षेम-कर्टी, चन्द्रभासपुर, रविभासपुर, ससभूतलायास, सुयिचित्र, महाप्रपुर, चित्रकूट, त्रिकूटक, धेधवणकूट, शशिपुर, रविपुर त्रि मुषी, घाहिनी, सुमुषी नित्योद्योतिनी औरधीरघपुर घनगल ये उन नगर और नगरियोंके नाम रखते। इन नगरोंके धीचों

वीचर्म धाये हुए रघुपुर चमपालनगरमें नामी ने नियास किया।

धरणेन्द्र की आज्ञासे पर्वत की उत्तर श्रेणी में चिनमीने उसी तरह पचास नगर बसाये। गर्जुनी, चारणी, त्रैसहारिणी, बैलास चारणी, विद्युत्दीप, किलिकिल, चादचूडामणि, चद्रमामूरण, चशम्भु, कुसुम चूल, हन्सगर्भ, मेघक शङ्कर, लक्ष्मीहर्म्य, घामर, विमल, असुमल्लत, शिवमन्दिर, घातुमती, सूर्यसिद्धस्तुत, सूर्य शत्रु गण, केतुमालांक, इन्द्रकांत महानन्दन, अशोक घीत शोक विशोकक, सुधालोक, अलक तिलक, नमस्तिलक मन्दिर, कुमुद कुन्द, गगनजह्नम, युवतीतिलक, अघनितिलक सगंधन मुक्तदाद, अनिमिय विष्टप अग्निजाला, गुरुज्वाला, धीनिषेतपुर जयश्री निवास, रत्नकुलिश, वशिष्ठाश्रम, द्रविणाजय, समद्रक, भद्राशयपुर, फेन शिखर, गोक्षीरचर शिखर, धैर्यक्षोम शिखर गिरिशिखर, धरणी, चारणी, सुदर्शन पुर, दुर्गा, दुर्द्वर, माहेन्द्र, विजय, सुगन्धिनी सुरत, नागर पुर, और रत्नपुर—ये उन पचास नगर और नगरियों के नाम रखे। इन नगर और नगरियों के बीचों बीच में जो गगन चञ्चल नाम का नगर था, उसीमें धरणेन्द्र की आज्ञा से चिनमि ने निवास किया। विद्याधरोंकी महान् प्रार्थना वाली ये दोनों श्रेणियाँ अपने ऊपर वाली ध्यन्तर श्रेणी के प्रतिविम्ब—अक्स की तरह सुशोभित थीं। यानी ये दोनों श्रेणी उनके ऊपरकी ध्यन्तर श्रेणी के प्रतिविम्ब की जैसी मालूम होती थीं। उन्होंने और भी अनेक गाँव और खेडे बसाये और स्थान की योग्यतानुसार कितने ही जनपद भी स्थापन किये। जिस देशमें लाकर जो लोग वहाँ

वसाये, उस देशका उन्होंने वही नाम रक्खा । इन सत्र नगरोंमें, हृदय की तरह, समाफे अन्दर नमि और विनमि ने नामि नन्दन की मूर्ति स्थापित की । विद्याधर विद्या से दुर्मद होकर दुर्विनीत न हो जाय, अर्थात् विद्यासे मत घाले होकर उद्धण्ड और उच्छृङ्खल न हो जायँ इसलिये धरणेन्द्र ने ऐसी मर्यादा स्थापन की—“जो दुर्मद घाले पुरुष—जिनेश्वर, जिन चेत्य, चरमशरीरी, और कायोत्सर्गमें रहने वाले किसी भी मुनिका पराभव या उहड़न करेगे उन्हें विद्याएँ उसी तरह त्याग देंगी, जिस तरह आलसी पुरुषको लक्ष्मी त्याग देती है । जो विद्याधर किसी स्त्री के पति को मार डालेगा और स्त्री के बिना मरज़ी के उसके साथ भोग करेगा, उसको भी विद्याएँ तत्काल छोड़ देंगी” । नागराजने ये मर्यादा जोर से सुनाकर, वह यायत् चद्र रहें यानी जब तक चद्रमारहे तब तक रहें, इस गरज से उन्हें रत्नमिति की प्रशस्ति में लिख दीं । इस के बाद नमि और विनमि दोनों विद्याधरों का राजत्व प्रसाद सहित स्थापन कर पध और कई व्यवस्थाएँ करके नागपति अन्तद्दान होगये ।

नमि विनमि की राज्य स्थिति ।

अपनी अपनी विद्याओंके नामसे विद्याधरों के स्तोलह निवाय या जानिपाँ हुई । उन में गौरी विद्या से गौरिय हुए । मनु विद्या से मनु हुए, गान्धार विद्यासे गान्धार हुए, मानवी से मानव हुए, कीशिक्की विद्यासे कीशिक्की पूर्य हुए भूमितुण्ड विद्यासे भूमि-

सुएक हुए, मूलार्थ्य विद्यासे मूलत्रिप्यक हुये, शंभुका विद्यासे
 शंभुक हुए, पाण्डुकी विद्यासे पाण्डुक हुए, बाली विद्यासे कालि
 देय हुए, श्वशाकी विद्यासे श्वशाक हुए, मानगी से मातंग हुए
 वंशालया से वंशालय हुए, पासुमूठ विद्यासे पासुमूलक हुए
 और वृक्षमूठ विद्यासे वृक्षमूठक हुए। इन मोलह जातियों के
 दो विभाग करके नमि और विनमि राजाओंनि आठ आठ भाग
 ले लिये। अपने अपने निकाय या जाति में अपनी कायाकी
 तरह भक्ति से त्रिशाधिपति देवताओं की स्थापना की। नित्य
 ही ब्रह्मसुख स्वामी की मूर्ति की पूजा करने वाले थे लोग धर्म
 में बाधा न पहुँचे, इस तरह बालशेव करते हुए देवताओं की
 तरह भोग भोगने लगे। किसी किसी समय वे हीनों मानो दुमरे
 इन्द्र और ईशानेन्द्र हों इस तरह जम्बूद्वीप की जगति के जालेके
 पटव में खियों को लेकर मीड़ा करते थे। किसी किसी समय
 मेघ पर्यन्त पर नन्दन आदिब वनों में, हवा की तरह अपनी
 इच्छानुसार आनन्द पूरेक विहार करते थे। किसी समय
 आनककी सम्पत्ति का यही फल है, ऐसा धार कर, नदीश्वरादि
 तीर्थों में शाश्वत प्रतिमा की अर्चना करनेके लिए जाते थे। किसी
 एक विदेहादिक क्षेत्रोंमें, श्री बर्हन्त के समवसरण के अन्दर
 -जाकर, प्रभु के घाणी रूप अमृत का पान करते थे और हिरन जिस
 तरह कान ऊँचे करके संगीत ध्यनि सुना करते हैं, उसी तरह
 कभी कभी वे चारण मुनियों से धर्म-देशना या धर्मोपदेश सुनते
 थे। समकित और अश्लील भण्डार को धारण करनेवाले थे दोनों

भाई विद्याधरों से घिर कर, त्रिगुण—गम, अर्थ और काम—का बाधा न आये इस तरह राज्य करते थे ।

कच्छ और महाकच्छ की तपश्चर्या ।

कच्छ और महाकच्छ जो कि राज तापस हुए थे , गंगा नदी के दूहने किनारे पर, हिरनों की तरह, वनचर होकर फिरते थे और मानो जगम वृक्ष ही इस तरह छालों के कपड़ों से शरीरको ढकते थे । फल किये हुए अन्न की तरह, गृहस्थाश्रमी के आहार को वे कमी होने भी न थे । चतुर्थ और छठ वगैर तपसे से उनकी धातुय खूब गई थीं, अतः शरीर एक दम दुबले होगये थे और पाली पड़ी हुई धाम्मण की उपमा को धारण करते थे । पारणके दिन भी सटे हुए और जमीन पर पड़े हुए पत्र-आदि को खाकर हृदय में भगवान् का ध्यान करते हुए वहीं रहते थे ।

लोगों का प्रभुका आतिथ्य सत्कार करना ।

भगवान् ऋषभ स्वामी आप अनार्य देशों में मौन रहकर गुमते थे । एक घण्टे तक निराहार रहकर भुने प्रविचार किया कि, जिस तरह द्वीपक या चिराग तैलसेही जलता है और वृक्ष जलसेही सरसज्ज या हरेभरे रहते हैं उसी तरह प्राणियों के शरीर आहार से ही कायम रहने हैं, यह आहार भी बयालीस दीर्घोंसे रहित हो तो साधुकी मायुष्यी वृत्ति से निष्ठा करके उचित समय पर उसे खाना चाहिये । गये दिनों की तरह , अगर अन्न भी मैं

आहार न लेता हुआ अभिग्रह करके रहूँगा, तो मेरा शरीर तो ठहरा रहेगा, परन्तु जिस तरह वे चार हजार मुनि भोजन न मिलनेसे पीड़ित होकर भग्न होगये हैं, उसी तरह और मुनि भी भग्न होंगे। ऐसा विचार करके प्रभु मिश्रा के लिए, सब नगरों में मण्डन रूप, गजपुर नामक नगर में आये। उस नगर में वाहु पलिके पुत्र सोमप्रभ राजाके श्रेयास नामक कुमारने उस समय स्वप्न में देखा कि मैंने चारों ओर से श्याम रंग हुए सुधर्षगिरी-मेरु पर्वत की, दूधके घड़ेसे अभिषेक कर, उज्ज्वल किया। सु बुद्धि नामक सेठ ने ऐसा स्वप्न देखा कि सूर्यसे गिये हुए हजार किरण श्रेयासकुमारने फिर सूरज में लगा दिये उनसे सूर्य अतीव प्रकाशमान् हो उठा। सोमप्रभ राजाने स्वप्न में देखा कि, अनेक शत्रुओंसे चारों ओरसे घिरे हुए किसी राजाने अशु पुत्र श्रेयासकी सहायतासे विजय लक्ष्मी प्राप्त की। तीनों शत्रुओं ने अपने अपने स्वार्थों की बात आपस में कही, पर उनका मूल या तारीर न जान सकने के कारण अपनेही घरको घाटे गए। अन्त में उस स्वप्नका निर्णय प्रकट करने का निश्चयही कर लिया। इस तरह प्रभु ने उसी दिन मिश्रा के लिए, हस्तिनापुर में प्रव्रज किया। एक संवत्सर तक निराहार रहने पर भी शत्रुओं की लालच से घले आते हुए प्रभु हर्षके साथ लोगों की दृष्टिसे अग्र्ये।

श्रेयास को जाति स्मृता ।

प्रभु को देखतेही पुरवासी लोगोंने हृन्न से -



ले भाये हुए यन्त्र की तरह, उन्हें नारों और से घर लिया, और कहने लगे—हे प्रभो ! आप कृपाकरके, हमारे घर पर चलिये, क्योंकि वसन्त ऋतुने समान आप बहुत दिनों बाद दिखाई दिये हैं। किसीने कहा—“हे स्वामिन् ! स्नान करने के लिए उत्तम जल, घस्र और पीठिका आदि मौजूद हैं। इसलिये आप स्नान कीजिये और प्रमत्त हजिये” किसीने कहा—“मेरे यहाँ उत्तम चन्दन, कपूर, कस्तूरी और यक्षकदम तैयार हैं, उन्हें साथ में लाकर मुझे कृतार्थ कीजिये।” किसीने कहा—“हे जगन् रत्न ! कृपा कर हमारे रत्नमय अलङ्कारों की धारण करके शरीरकी अलङ्कृत कीजिये।” किसीने कहा—“हे स्वामिन् ! मेरे घर पधार कर, अपने शरीर में आने वाले रेशमों कपड़े पहनकर उन्हें पवित्र कीजिये।” किसीने कहा—“हे देव ! देवाङ्गना समान मेरी स्त्री की आप अपनी सेनामें स्वीकार कीजिये, आपके समागमसे हम धन्य है।” किसीने कहा—“हे राजकुमार ! खेलके मित्रसे भी आप पैदल क्यों चलते हैं ? मेरे पर्वत जैसे हाथी पर बैठिये।” किसीने कहा—“सूरके घोड़ोंके समान मेरे घोड़ों की ग्रहण कीजिये। आतिथ्य स्वीकार न करके, हमें नालायक—अयोग्य क्यों बनाते हैं ?” किसीने कहा—“मेरा जातिवन्त घोड़ोंसे जुता हुआ रथ स्वीकार कीजिये। आप मालिक होकर अगर पैदल चलते हैं, तब इस रथका रचना फिजूल है। इसकी क्या जरूरत है।” किसीने कहा—“हे प्रभो ! इस पक्षे हुए आमके फलको आप ग्रहण कीजिये। जोही जनोपा अपमान करना अनुचित है”

किसीने कहा—“आप पान सुपारी प्रमत्त होकर स्वीकार बाजिये”
 किसीने कहा—“प्रमो ! हमने क्या अपराध किया है, जो आप
 हमारी प्रार्थना पर कान मी नहीं देते और कुछ अयाय भी
 नहीं देते !” इस प्रकार नगर निवासी उनसे प्रार्थना करते थे,
 पर वे उन सब चीजोंको अकल्प्य समझ उनमें से किसी को भी
 स्वीकार न करते थे और चन्द्रमा जिन तरह नक्षत्र नक्षत्र पर
 फिरता है, उसी तरह प्रभु घर घर घूमने थे । पक्षियों के सघेरके
 समय के कोलाहल की तरह नगरनियवासियों का यह कोलाहल
 अपने घरमें बैठे हुए श्रेयासके कानों तक पहुँचा । उसने यह
 क्या है’ इस बातकी खबर लानेके लिये छडीदार को भेजा । यह
 छडीदार सारा समाचार जानकर, वापस महलमें आया और
 हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा —

श्रेयांस द्वारा भगवान का पारणा ।

राजाओं के जैसे अपने मुकुटों से जमीनका छूकर चरणके
 पोछे लोटनेवाले इन्द्र दृढ भक्तिसे जिनकी सेवा करते हैं;
 सूर्य जिस तरह पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी तरह
 जिन्होंने इस लोकमें मात्र अनुकम्पा—दया के वश होकर,
 सब को आजीविकाके उपाय रूप कर्म बतलाये हैं जिन्होंने
 मनुष्यों पर दया करके उहे आजीविका—रोजी के उपायोंके
 लिये तरह तरह के काम बतलाये हैं । जिन्होंने दीक्षा ग्रहण
 की इच्छा करके, अपनी प्रसादी की तरह, भरत प्रभृति और

तुमको यह पृथ्वी दी है। जिन्होंने ने समस्त साज्य वस्तुओं का परिहार करके, जष्ट फर्म की महापद्ध—गहरी कीचड़को सुखानेके लिये, गरमी के मौसमकी जलती हुई धूपके जैसे तप को स्वीकार किया है घोर तपश्चर्या करना मंजूर किया है वे ही ऋषभ देव प्रभु निस्स्वप्न, ममता रहित और निराहार अपने पाद सञ्चार से पृथ्वी को पवित्र करते हुए विचरते हैं। वे सूरज की घामसे दुखी नहीं होते और छायासे सुखी नहीं होते किन्तु पहाड़ की तरह धूप और छायाको बराबर समझते हैं। वज्रशरीरी की तरह, उन्हें शीतसे विरक्ति और उष्णता—गरमीसे जासकि नहीं होती, उन्हें शरदी बुरी और गरमी अच्छी नहीं लगती, वे सरदी और गरमी को समान समझते हैं, जहाँ जगद भूमिलती है वहाँ पड़ रहे हैं। ससार ली कुञ्जर में केमरा सिंहकी तरह वे युगमात्र दृष्टि करते हुए, एक चींटी को भी तकलीफ न हो—इस तरह जमीन पर कदम रखते हैं। प्रत्यक्ष निर्देश करने योग्य, बिलोकी के नाथ आपके प्रपितामह हैं। वे भाग्य योग्य से ही यहा आये हैं। जिस तरह ग्वालिये के पीठे गायें दौड़ती हैं, उसी तरह नगरके लोग प्रभुने पीठे दौड़ रहे हैं। वे उहाँका मधुर बोलाहूँ हैं। जिनीश्वर के नगरमें आनेकी पत्र पाते ही युवराज प्यादों का उद्बुद्धन कर, तत्काल दौड़ा। युवराज को रिना छाते और जूतों के दौड़ते देख, उसकी समाके लोग भी जूते और छाते छोड़कर, छाया की तरह, उसके पीछे दौड़े। उस समय युवराज के फुएडल हिलते थे, उनके देखने से केमरा मालूम होता था, गोया वह स्वामी के सामने

फिर बाल ब्राह्मी परता हुआ सुशोभित है। अपने घरके आगन में आये हुए प्रभु के चरण कमलों में लीटकर, वह अपने भारिके भ्रमको उत्पन्न करनेवाले वालों से उन्हें पोंछने लगा। इसके बाद उसने फिर उठकर जगदीश की तीन प्रदक्षिणाकी। फिर मानो हर्ष से धोताहो, इस तरह चरणोंमें नमस्कार किया। फिर पडे होकर प्रभु के मुखकमल को इस तरह देखने लगा, जिस तरह चकोर चन्द्रमाको देखते हैं। “ऐसी सुन्दर मैंने कहीं देयी है” यह विचार करने हुए, उसको विवेक वृक्षका घोज रूप जाति—स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे उसे मान्य हुआ कि पहले जन्म पूर्व विदेह क्षेत्र में भगवान् वज्रनाभ नामक चण्डालों थे। मैं उनका सारथी था। उस भगवान् जन्म में स्वामी के वज्रसेन नामक पिता थे, उनके चेहरे ही तीर्थङ्कर चिह्न थे। वज्रनाभने वज्रसेन तीर्थङ्कर के चरणोंके समीप दीक्षा ली। उस समय मैंने भी उन्हींके साथ दीक्षाली। उस वक्त वज्रसेन अर्हन्त के मुँहसे मैंने सुना था, कि यह वज्रनाभभरतखण्डमें पहला तीर्थङ्कर होगा। स्वयं प्रमादिके भयों में मैंने इनके साथ भ्रमण किया था। ये अथ मेरे प्रपितामह लगते हैं। इनको आज मैं भाग्य योग से ही देख सका हूँ। आज ये प्रभु साक्षात् मोक्षकी तरह समस्त जगत्का और मेरा कल्याण करने के लिये पधारे हैं। युवराज इस प्रकार से विचार कर ही रहा था कि इतने में किसीने गवीन ईश-रत्नसे भरे हुए घड़े प्रसन्नता पूर्वक युवराज श्रेयांस को भेंट किये। निर्दोष मिश्रा, देवकी विधि को जानने वाले कमार ने

कहा—“हे भगवन्! इस कल्पतीय रसको ग्रहण कीजिये।” प्रभुने अञ्जलि जोड़कर, हाथ रूपी वर्तनसामने किया, उसमें ईश्वर रस के घड़े भोज भोज कर वाली किये गये। भगवानके हस्त पात्रमें बहुत सा रस समा गया भगवानकी अञ्जलि में जितना रस समाया, उतना हर्ष श्रियास के हृदय में नहीं समाया। न्यामी की अञ्जलि में आकाश में जिसकी शिखारें लग रही हैं, ऐसा रस मानो टहर गया हो, इस तरह स्तम्भित हो गया; क्योंकि तीर्थाङ्कुरों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। प्रभु ने उस रससे पारणा किया। और सुर, असुर एवं मनुष्यों के नेत्रों ने उनके दशनरूपी अमृतसे पारणा किया। उस समय मानो श्रेयासके कल्याणकी व्याप्ति करने वाले चारण भाट हों, इस तरह आकाशमें प्रतिनाद से बड़े हुए दु-दुमी धाजे ध्वनि करने लगे। मनुष्यों के नेत्रोंके आनन्दाध्रुवों की वृष्टि के साथ आकाशसे देवताओंने रत्नों की वृष्टि की; मानों प्रभु के चरणों से पवित्र हुई पृथ्वी की पूजा के लिये हो इस तरह देवता उस स्थान पर आकाशसे पचरंगी फूलोंकी घषा करने लगे, सारे ही कल्प वृक्षों के फूलोंसे निकाला गया हो ऐसे गन्धीद्वर्षी धर्षा देवताओं ने की और मानो आकाश को त्रिचित्र मेघमय करते हों, इस तरह देव और मनुष्य उज्ज्वल उज्ज्वल कपड़े के कने लगे। वैशाख मानकी तृताया (तीज) को दिया हुआ वह दान अक्षय हुआ, इसलिये ब्रह्म पर्व अक्षय तृतिया या आषाढीन के नामसे अयनक चला जाता है। जगतमें दान धर्म श्रियाससे बड़े और धाकी सब व्यवहार और नीति सब भगवन्तसे चले।

राजा और नगर निवासियों का श्रेयास से प्रश्न करना ।

प्रभुके पारणेमें और उस समय की रत्न वृष्टि से विस्मित हो होकर राजा और नगर निवासी श्रेयास के महल में आने लगे । बच्छ और महाकच्छ आदि क्षत्रिय तपस्वी प्रभुके पारणे की यातें सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ आये । राजा और नगर निवासी तथा देशके लोग रोमाञ्चित प्रफुल्लित हो होकर श्रेयास से इस तरह कहने लगे—“हे कुमार ! आप धन्य हो और पुर्यों में शिरोमणि हो, क्योंकि आपका दिया हुआ रत्न प्रभु ने ले लिया और हम सगम्य दत्त थे, पर प्रभु ने उसे तृणयत् समझकर अन्वीकार कर दिया । प्रभु हम पर प्रसन्न नहीं हुए । ये एक साल तक गाँव, खदान, नगर और अंगल में घूमने रहे, तो भी हममें से किसीका भी आतिथ्य ग्रहण नहीं किया । इसलिये हम भक्त होन के अस्मिमानियों को धिक्कार है ! हमारे घरमें धाराम करमा एवं हमारी चीज लेना तो दूर की बात है । आज तक घाणी सेभी प्रभुने हमको सभावित नहीं किया, अथात् हम से दो दो धानें भी न की । जिन्होंने पहले लखों पूर्वतक हमारा पुत्रकी तरह पालन किया है, वे ही प्रभु माना हम से परिधय था जा पहचानही न हो, इस तरह व्यावहार करते हैं ।”

श्रेयासका नगर निवासियों को उत्तर देना ।

लोगोंकी यातें सुनकर श्रेयास ने कहा—“तुम लोग ऐसी यातें

क्यों कर रहे हो ? ये स्वामी मग पहले की तरह परिग्रह घारी राजा नहीं हैं, वे तो अब संसार रुपी भँवर से निकलन के लिए समग्र साधन व्यापार को त्यागकर यति हुए हैं। जो भोग भोगने की इच्छा रखते हैं, वेही स्नान, अंतराग, भाभूषण—गहने जेवर और कपड़े लेने और काममें लाते हैं। परन्तु प्रभुनो उन सब से विरक्त हैं उनसे सबत नफरत या घृणा होगई है। अत इहें इन सब की क्या जरूरत ? जो काम देव के धरी-भूत होते हैं, वही कर्माओं को स्वीकार करते हैं। परन्तु ये प्रभु तो काम को जीतन वाले हैं। अत सुन्दरी कामिनी इनके लिए पापाणवत पत्थरके समान हैं। जो राज्य भोगकी इच्छा रखते हैं, वेही हाथी घोड़ रथ वाहन आदि लेते हैं, परन्तु प्रभुने तो स्वप्नरुपी साम्राज्य ग्रहण किया है अत उहें तो ये सब जले हुए कपड़ोंके समान हैं। जो हिंसक होते हैं वेही सजीव फलादिक ग्रहण करते हैं, परन्तु ये प्रभु तो समस्त प्राणियोंको अमर्यदान देने वाले हैं अत ये उहें फर्षों लेने लगे ? ये तो केवल पपणीय, कल्पनीय और प्राप्तुक अन्न आदिकको ग्रहण करते हैं, लेकिन तुम मूढ लोग इन सब धारोंको नहीं जानते।”

उन्होंने कहा—“हे युवराज ! ये शिल्पकला या कारीगरोंके जो काम आत्रकल होते हैं, ये सब पहले प्रभु ने ही घताये थे—स्वामीने सिखाये-बताये थे, इसीसे सब लोग जानते हैं और आप जो घातें कहते हैं, ये तो स्वामीने घताइ नहीं, इसी लिये हम कैसे जान सकते हैं ? आपने ये घात कैसे जानी ? आप इस घातके कहने लायक हैं, अत कृपया बताइये।”

युधराजने कहा--“प्रथम धनलोचन या शास्त्र देवनेसे जिस तरह बुद्धि पैदा होती है, उसी तरह भगवानके दर्शनोंसे ज्ञान—स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिस तरह सेवक एक गायसे दूसरे गाँवको जाता है; उसी तरह स्वर्ग भीर मृत्युलोकमें घारी घारीसे आठ भयों या जन्मों तक मैं प्रभुके साथ साथ रहा हूँ। इस भवसे तीसरे भवमें यानी अपने पहले हुए तीसरे जन्ममें विदेह क्षेत्रमें भगवानके पिता यज्ञमेव नामक तीर्थङ्कर थे। उनसे प्रभुने दीक्षा ली प्रभुके पाद मेंने भी दीक्षा ली। उस जन्मकी घाते पाद आने से मैं इन सब घातोंको जान गया। गत रात्रिमें मुझे मेरे पिता और सुबुद्धि सार्यघाद को जो स्वप्न दीखे थे उसका फल मुझे प्रत्यक्षमिल गया। मैं स्वप्नमें श्याम मेरु पर्वतकी दूधसे घोया हुआ देखा था, उसी से आज ही प्रभुको जो तपस्यासे दुबले हो गये हैं, मैंने ईश्वरसे पारणा कराया थीर उससे ये शोमने लगे। मेरे पिताने उन्हें दुःमनोंसे लड़ते हुए देखा था, मेरे पारणेकी सहायतासे उन्होंने परीपह रूपी शत्रुओंका पराभव किया है। सुबुद्धि सार्यघाद या सेठने स्वप्नमें देखा था, कि सूर्यमण्डलसे हजारों किरणें गिरती थीर मैंने ये फिर लगादीं, इससे दिवाकर खूब सुन्दर मालूम होने लगा। उसका यह अर्थ है, कि सूर्य समान भगवान्का सहस्र किरणरूपी फेवल ज्ञान झट्ट हो गयाथा उसे मैंने आज पारणे से जोड़ दिया। और उससे भगवान् शोमने लगे; अथान् प्रभुको आहारका अन्तराय था, आहार बिना शरीर ठहर नहीं

सकता। शरीर बिना केवल ज्ञान हो नहीं सकता अथ मैंने प्रभुका पारणा करा दिया—ईपरस पिला दिया इससे प्रभुके शरीरमें बलमाया और घट्ट का तिमान हो गया। अर प्रभुको केवल ज्ञान हो सकेगा, यह सब मेरे द्वारा हुआ इसीसे स्वप्नमें मेरे द्वारा सूर्यकी गिरी हुई सदस्य किरणें फिर सूर्यमें जोड़ी हुई और सूर्य तेजवान बंधा गया। खुलासा यह है, स्वप्नमें जो सूर्य सेठको दीया, यह वह भगवान् है। उसकी सदस्य किरणें गिरी हुई देखी गई, यह आपका केवल ज्ञानसे भ्रष्ट होना है। मैंने किरणें फिर सूर्यमें जड़दी, यह मेरा प्रभुकी पारणा करा देना है। सूर्यका तेज जिस तरह स्वप्नमें मेरे किरण जड़ देने पर बढ गया उसी तरह पारणा कराने से भगवान्का तेज बल बढ गया और उनमें केवल ज्ञानका सम्भव है। युवराजसे ये बातें सुनकर ये सब "बहुत ठीक है, बहुत ठीक है" कहते हुए खुशीके साथ अपनी अपने घर गये।

श्रेयासके घर पारणा कर जगत्पति यहाँसे दूमरी जगहको विहार कर गये, यानी चले गये। क्योंकि छत्रस्य तीर्थद्वार एक जगह नहीं उठते। भगवान्के पारणेके स्थानको कोई उलटि नहीं, इसलिये श्रेयासने यहाँ रत्नमय पीठ यावा दी। मानों साक्षात् भगवान्के चरण कमल ही हों, इस तरह गाढ भक्तिसे चिन्म हो, यह उस रत्नमय पीठकी त्रिकाल, अर्थात् तीर्था समय पूजा करने लगा। "यह क्या है?" जब लाग इस तरह पूछते थे तब श्रेयास यह कहते थे—'यह आदित्यसाक्षा मण्डल है।' इससे

बाद प्रभुने जहाँ जहाँ मिश्रा ग्रहण की, वहाँ वहाँ लोगोंने इसी तरह पीठें धनया दीं। इससे अनुक्रमसे “आदित्य पीठ” इस तरह प्रवृत्त हुआ।

भगवान् का तत्र शिला गमन।

एक समय जिस तरह हाथी बुधमें प्रवेश करता है उस तरह प्रभु संध्या समय, बाहु बलि देशमें बाहुबलिकी तक्षशिला पुरीके निकट आये और नगरीके बाहर एक बगीचेमें कायोत्सव में रहे। बागके मालाने यह समाचार बाहुबलिको जा सुनाया। खबर पातेही बाहुबलिने फौरन हीनगर।—रक्षक बुलाये और उन्हें हुषम दिया कि नगरके मजानात और दूकानोंको लूथ अच्छी तरह सजा कर नगरको अलंकार करो। यह हुषम निकलते ही नगरके प्रत्येक स्थानमें लटकने वाले घड़े घड़े भूमरोंसे राहगोरोंके मुकुटोंको चूमने वाली फेलेके धर्मोंकी तोरण मालिकायें शोभा देने लगीं। मानों भगवान्के दर्शनोंके लिए देवताओंके घिमान आये हों, इस तरह हरेक मार्गे रत्नपात्रसे प्रकाशमान मंचोंसे शोभायमान दीपने लगा। वायुसे हिलती हुई उद्दाम पताक्षामों की दंतियोंसे घट नगरी हजार भुजाओं वाली होकर भाचती हो ऐसी शोभने लगी। नवीन वैशरपे तलपे छिडकावसे सारे नगरकी जमीन ऐसी दीपने लगी, मानों मंगल अंगराग किया हो। भगवान्के दर्शनोंकी उदकण्ठा रूपी चन्द्रमाके दर्शनसे यह नगर शुभदृषे पण्डके समान प्रफुल्लित हो उठा, यानी सारा शहर

सकता। शरीर बिना केवल ज्ञान हो नहीं सकता, अब मैंने प्रभुका पारणा करा दिया—इपरस पिला दिया, इससे प्रभुके शरीरमें बल आया और वह कान्तिमान हो गया। अब प्रभुको केवल ज्ञान हो सकेगा, यह सब मेरे द्वारा हुआ इसीसे स्वप्नमें मेरे द्वारा सूर्यकी गिरी हुई सहस्र किरणें फिर सूर्यमें जोड़ी हुईं और सूर्य तेजयान देखा गया। खुलासा यह है, स्वप्नमें जो सूर्य सेठको दीया, वह वह भगवान् है। उसकी सहस्र किरणें गिरी हुईं देपी गईं, वह आपका केवल ज्ञानसे भ्रष्ट होना है। मैंने किरणें फिर सूर्यमें जड़दी, वह मेरा प्रभुको पारणा करा देना है। सूर्यका तेज जिस तरह स्वप्नमें मेरे किरण जड़ देने पर बढ गया उसी तरह पारणा कराने से भगवान्का तेज बल बढ गया और उनमें केवल ज्ञानका सम्मन है।” युवराजसे ये बातें सुनकर वे सब “बहुत ठीक है, बहुत ठीक है” कहते हुए खुशके साथ अपने अपने घर गये।

श्रेयांसके घर पारणा कर जगत्पति वहाँसे दूसरी जगहको विहार कर गये यानी चले गये। क्योंकि उन्नत तीर्थङ्कर एक जगह नहीं ठहरते। भगवान्के पारणके स्थानको कोई उलधि नहीं, इसलिये श्रेयांसने वहाँ रत्नमय पीठ बनवा दी। मारों साक्षात् भगवान्के चरण कमल ही हों, इस तरह गाढ भक्तिसे त्रिनम्र हो, वह उस रत्नमय पीठकी त्रिकाल, अर्थात् तीनों ममय पूजा करने लगा। “यह क्या है?” जब लाग इस तरह पूछते थे, तब श्रेयांस यह कहते थे—‘यह आदिपुत्राका मण्डल है।’ इसने

बाद प्रभुने जहाँ जहाँ भिक्षा ग्रहण की, वहाँ वहाँ लोगोंने इ तरह पीठें धनया दीं। इससे अनुक्रमसे "आदित्य पीठ" इस क प्रवृत्त हुआ।

भगवान् का तक्ष शिला गमन।

एक समय, जिस तरह हाथी बुझमें प्रवेश करता है, उ तरह प्रभु संध्या समय, गड्डु बलि देशमें, बाहुबलिकी तक्षशिल पुरीके निकट आये और नगरीके बाहर एक बगानमें कायोन्म में रहे। बागके मालने यह समाचार बाहुबलिको जा सुनाया परपर पातेही बाहुबलिनै फौरन ही नगर।—रक्षक बुलाये और उन्हे हुषम दिया कि नगरके मकानात और दूकानोंको बंध बन्धी तरह सजा कर नगरको अलङ्कृत करो। यह हुकम निकलते ही नगरके प्रत्येक स्थानमें लटकने वाले बड़े बड़े झूमरोंसे राहगोर्गे मुकुटाको चूमने वाली बेलके घमोंकी तारण मान्त्रियायें इस देने लगीं। मानों भगवान्के दर्शनोंके लिए देवतायेंके विमान आये हों, इस तरह हरेक मार्ग रत्नराशये प्रकरमान मंत्रोंसे शोभायमान दीखने लगा। वायुसे हिलती हुई अद्भुत पद्मशायों की पक्षियोंसे यह नगरी हजार मुद्राओं बन्ना हुआ लक्ष्मी हों ऐसी शोभने लगी। तबाने पहरके बन्द छिडकाने सत्र नगरकी जमीन ऐसी दीप्तिमान, ननों प्रकाश मीरपय चिन्ता है। भगवान्के दर्शनोंकी लक्ष्मी हों अद्भुत दे देल्लेसु यह कर सुमुदने बहल्ले कवन प्रकल्पि हा ग्य, यनों मारत मार

निद्रा रहित हो गया। सारी रात आँखसे आँख न लगी। नगर निवासी रात भर जागते रहे। मैं स्वयं ही स्थानीके दरानोंसे अपनी आत्मा और लोगोंको पवित्र करूँगा,—ऐसे विचार धाले बाहुबलिको यह रात महोनाके परापर हो गई। इधर रातके प्रभातमें परिणत होते ही, प्रतिमान्विति समाप्त होते ही, प्रभु धायु की तरह दूसरी जगहको विहार कर गये अर्थात् अन्यत्र चले गये।

बाहुबलि का प्रभुके पास वन्दना करने को जाना

सवेरा होते ही बाहुबलिके उस बागकी ओर जानेकी तैयारी थी, जिसमें रातको भगवान्के टहरनेकी यात सुनी थी। जिस समय वह चलनेको उद्यत हुआ उस समय अनेक सूर्यके समान बड़े बड़े मुकुटधारी मण्डलेश्वरोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया; उसके साथ अनेकों विद्यावुशल, शुक्राचार्य्य प्रभृति की शराथरी करने वाले भूत्तिमान अर्ध शास्त्रसदृश मन्त्री थे। गुप्त पंखों धाले, गरुडके समान जगन्को उल्लंघन करनेमें घेगघान्, लातों घोड़ोंसे धिरा हुआ वह बहुतही शोभ्यमान दीखता था। धरते हुए मद्बल की वृष्टिके मानी भरने धाले पर्वत हों, ऐसे पृथ्वीकी रजको शान्त करने धाले हाथियोंसे वह शुशोभित था। पाताळ बन्धाओं के जैसी, सूर्यको न देखने धाली वसन्त थी प्रभृति अन्त पुरकी रमणियाँ उसके आस पास तैयार खड़ी थीं; उसके दोनों ओर चमर धारिणी गणिकार्ये खड़ी थीं। उनसे वह राजहंस सहित

गंगा जमुनासे सेवित प्रयागराज जैसा दीखता था। उसके सिर पर मनोहर सफेद छत्र फिर रहा था। इसलिये पूर्णमासीके आधी-रात के चन्द्रमासे जिस तरह पर्यंत सोहता है, उसीतरह वह सोह रहा था। देवनन्दी—इन्द्रका प्रतिहार जिस तरह इन्द्रकी राह दिखाता है; उसी तरह सोनेकी छडी वाला प्रतिहार उसके आगे आगे राह दिखाता चलता था। लक्ष्मी-पुर्षोकी तरह, रत्न जडित गहने और जेवरोंसे सजकर शहरके शाहूकार घोड़ों पर चढ़ चढ़कर उसके पीछे पीछे चलानेकी तयार बढे थे। जवाम सिंह जिस तरह पयतकी शिला पर चढ़कर बैठता है; उसी तरह इन्द्रके सदृश बाहुबलि राजा भद्र जातिके सर्वोत्तम गजराज पर सवार हो गया। जिस तरह चूलिकासे मेरुपर्यंत शोभता है, उसी तरह मस्तक पर तरंगित कान्ति वाले मुकुटसे वह सुशोभित था। उसके दोनों कानों में जो दो मोतियोंके कुण्डल पड़े हुए थे, उनके देखनेसे ऐसा मालूम होता था मानो उसके मुखकी शोभासे पराजित हुए जम्बू दीपके दोनों चन्द्रमा उसकी सेवा करनेके लिये आये हों। लक्ष्मीके मन्दिर स्वरूप हृदय पर उसने बड़े बड़े फार मोतियोंका हार पहना था, वह हार उस मन्दिरका किला सा जान पड़ता था। भुजाओं पर उसने सोनेके दो भुजरंघर पहने थे, उनके देखने से ऐसा जान पड़ता था, गोया भुजा रुषी वृक्ष नयी लताओंसे घेरकर हूढ किये गये हैं। हाथोंके पहुचों या कलाश्यों पर उसने मोतियोंके दो बढे पहने थे, वे लावण्य रुषी नदीके तीर पर रहने वाले फैनके जैसे मालूम होते थे।

अपनी कान्तिसे आकाशको पलकित करने वाली दो अमूर्तिपूर्ण उसने पहनी थीं ; वे स्त्रियोंके कण जैसी शोभा वाले हाथोंकी मणियोंकी तरह सुन्दर मालूम होती थीं । शरीर पर उसने सफेद रंगके महीन कपड़े पहने थे जो शरीर पर लगाये चन्दनसे बरग न मालूम होते थे । पूणिमाका चन्द्रमा जिन तरह चन्द्रिका को धारण करता है, उसी तरह उसने गंगाके तरङ्ग समूहकी स्पर्शा करते बाल सुन्दर घट्ट घाटों ओर धारण किया था, विचित्र धातुमय पृथ्वीसे जैसे पर्वत शोभाते हैं, उसी तरह विचित्र वर्णके सुन्दर बादरके कपड़ोंमें यह शोभता था । मानों लक्ष्मीको आकर्षण करने वाली प्रीडा करनेका तीक्ष्ण शस्त्र हो, इस तरह यह महापादु घञ्जको अपने हाथमें पेरता था और यदि जन जयजय शब्दमें दिशाओंके गुणोंको पूर्ण करते थे । इस प्रकार बाहुवलि राजा उत्सव पूर्वक—घटे टाट घाट और आग शासे स्वामीके धरण कमलोंसे पवित्र हुए पागके पास आया । इसके बाद आकाशसे जैसे पक्षिराज उतरते हैं, उसी तरह हाथीसे उतर, छत्र प्रभृति त्याग बाहुवलि बागमें दाखिल हुआ । यहाँ उसने चन्द्रविहीन आकाश और सुधारदित अमृत कुण्डकी तरह बागीचा देखा, अर्थात् उन्ने बागमें प्रभुको न देखा । उन्ने उनके दर्शनोंकी बड़ी उन्बण्डा थी । उसने मालियोंसे पूछा—
 “मेरे नेत्रोंका आनन्द बढाने वाले जिनेश्वर कहाँ हैं ?” मालियोंने उत्तर दिया—“रात्रिकी तरह प्रभु भी कुछ आगे चले गये । जब हमें यह बात मालूम हुई कि स्वामी पधार गये । सभी

हम लोग आपकी सेवामें घर देनेको आना चाहते ही थे, कि इतने में आपही यहाँ पधार गये” मालियोंकी बात सुनते ही तक्ष शिलाधीश बाहुबलि हाथोंसे ढाली पकड़, आँसुओंमें आँसू डबडबा, दुःखित होकर चिन्तामग्न हो गया। वह मन ही-मन विचार करने लगा—“अरे! मैंने विचार किया था, कि ज्ञान में परिजन सहित स्वामीकी पूजा करूँगा—मेरा यह विचार मरुस्थली में घोये हुये धाँजकी तरह घूसा हुआ। लोगोंके अनुग्रह की इच्छा से मैंने बहुत देर करदी। अतः मुझे धिक्कार है। “वेसे स्वार्थके कारण मेरी मूर्खता ही प्रगट हुई। प्रभुके चरण कमलोंके दर्शनों में विघ्न बाधा उपस्थित करनेवाली इस पैरिन रातको और अग्रम बुद्धिको धिक्कार है ॥ इस समय स्वामी मुझे नहीं दीपते, अतः यह प्रभात प्रभात नहीं, यह यह सूर्य—सूर्य नहीं और ये नेत्र—नेत्र नहीं हैं। हाय! त्रिभुवन पति रातको इस जगह प्रतिमा रूप से रहे और घेहया—वे शर्म—निर्लज्जा बाहुबलि अपने महलमें आनन्द पूत्र्यक सांता रहा।” बाहुबलिको इस तरह चिन्ता सागरमें गोते लगात देख, उसका प्रधान मन्त्री शोक रुपी शय्य को विशय्य रूप करने वाली घापी से यों बोला—“हे देव! आपने यहाँ आकर स्वामीके दर्शन नहीं पाये इस लिये शोक क्यों करते हो? रज्जीदा क्यों होते हो? क्योंकि प्रभु तो निरंतर आपके हृदयमें बसते हैं। यहाँ जो उनके धन अद्भुत चक्र कमल ध्वजा और मरुस्थसे ललित चरण चिह्न देवते हैं इनसे आप यही समझिये कि हम साक्षात् प्रभुको ही देख रहे हैं। मन्त्री की बातें सुनकर, मन्त पुर और परिवार सहित

सुमन्दानन्दन बाहुबलि ने प्रभु के धारण चिन्हों की यक्षना की। इन धारण-चिन्हों को बौद्ध-उल्लास न सके, इस लिये उसने उनके ऊपर रत्नमय धर्म चक्र स्थापना करा दिया। शीमठ मार्गल के विस्तार-घाला, पचीस मील ऊँचा और हजार भारे घाला यह धर्मचक्र मानो विकुल सूर्य विषय ही हो—इस तरह सुरोभित होने लगा। त्रिलोकी नाथ के जयर्दस्त प्रमापसे, देवताओं से भी न हो सकने योग्य चक्र, बाहुबलिने तत्काल तैयार पाया। इसके बाद उसने सब जगहों से लाये हुए फूलों से उसकी पूजा की। इससे यह फूलों का ही पहाड़ हो-पेसा दीखने लगा। नन्दीश्वर द्वीपमें जिस तरह इन्द्र उड़ाई महोत्सव करना है, उसी तरह उत्तम सङ्गीत और नाटक आदि से अष्टाह महोत्सव किया। शीपमें पूजा करने वाले और रक्षा करनेवाले आदमी वहाँ छोड़ और सदा रहने का हुषम दे तथा चक्र को नमस्कार कर बाहुबलि राजा अपनी नगरी को गया।

भगवान् को केवल ज्ञान ।

इस प्रकार हजा की तरह आजादी से रहने वाले, अस्खलित रीतिमें विहार करने वाले, विविध प्रकार के तपों में निष्ठा रखने वाले जुदे जुदे प्रकारके अभिग्रह करने में उद्युक्त, मौनवत धारण करने के कारण यक्षनाडय प्रभृति अनेक देशोंमें रहने वाले, अनार्य प्राणियों की भी दर्शन मात्र से भद्र या आर्य करनेवाले और उत्सर्ग तथा परिपह आदिकी सहन करने

घाटे प्रभुने एक हजार वर्ष एक दिनके समान यिता दिये । कुछ दिन बाद वे महानगरी अयोध्याके शाला नगर पुरि भतालमें आये । उसकी उत्तर दिशामें, दूसरे नन्दनवनके जैसा शकट मुख नामक घागीवा था । प्रभुने उसमें प्रवेश किया, अष्टम तप कर, एक बटवृक्षके नीचे प्रतिमारूप से स्थित प्रभु, अग्रमत्त नामक अष्टम गुण स्थानको प्राप्त हुए इसके बाद अपूर्ण करण, यानी शुक ध्यान के पहले पाये पर आरुढ हो, सविचार पृथक्त्व यितक युक्त शुकध्यानके पाये को प्राप्त हुए । इसके बाद अतिवृत्ति गुण स्थान एवं सूक्ष्म संपराय—सातवें गुण स्थान को प्राप्त हो, क्षण भरमें ही क्षीण कपायत्व को प्राप्त हुए । उसी ध्यानसे क्षणमात्र में कूर्ण किये हुए लोभका नाश कर, कतक या निर्मली चूर्ण से जलके समान उपशान्त कपाय हुए । इसके पीछे ऐक्य श्रुत अविचार नामके शुद्ध ध्यान के दूसरे पायेको प्राप्त हो अन्तिम क्षणमें पलभर में ही क्षीणमोहक बारहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए । फिर पांच ज्ञानावर्णों चार दर्शनावर्णों और पांच तरहके अतराय कर्मोंका नाश करने से समस्त घाति कर्मोंका नाश किया । इस तरह व्रत लेनेके पीछे एक हजार वर्ष धीतने पर, फागुनके महीने के कृष्ण पक्षकी एकादशी के दिन, चन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्र में आया था, उस समय, प्रातः काल में, मानों हाथमें ही रखे हों—इस तरह तीन लोकों को दिखाने वाला त्रिकाल समयन्धी केवल ज्ञान हुआ । उस समय दिशायें प्रसन्न हुईं । सुप्तदायी हवा चलने लगी और नारकीय लोगों को भी ज्ञान प्राप्त होने लगे ।

भगवान् के पास इन्द्र का आगमन ।

अब मानों स्वामीके वैराग्य ज्ञान उत्सवके लिये प्रेरणा करते हों इस प्रकार समस्त इन्द्रोंके आसन काँपने लगे । मानों अपने अपने लोक के देवताओं को घुत्राकर इकट्ठा करनी चाहती हों, इस तरह देवलोक में सुन्दर शब्दावाली ध्वनियाँ बजने लगीं । ज्योंही सौधमपति ने स्वामी के चरण कमलोंमें जाने का विचार किया, कि त्योंही अहिराधण द्वैधगजरूप होकर उनके पास आ छड़ा हुआ । स्वामीके दर्शन की इच्छा से मानों चलता हुआ मेरुपर्वत हो, इस तरह उस गजरत्ने अपना शरीर चार लाख कोस या आठ लाख मील के विस्तार का बना लिया । शरीरकी चर्फके समान सफेद कान्ति से वह हाथी ऐसा दिखता था, गाया चारों दिशाओं के चन्दन का धोप करता हो । अपने गण्डस्थलों से भरने वाले अत्यन्त सुगन्धित मद्जल से वह स्वयंको अङ्गण भूमिको कस्तूरी की तहोंसे अङ्कित करना था मानों दोनों तरफ पड़े हों, ऐसे अपने चपल घञ्जठ कर्णताल से, कपोलों से भरने वाले मद् की गन्ध से अर्धे हुए भौरोंको दूर हटाता था । अपने कुम्भाघञ्ज के तैजसे उसने धाल सूर्यके मण्डल का परामत्र किया और अनुक्रम से पुष्ट और गालाकार खूँडस चहनागराज का अनुसरण करता था । उसके नेत्र और दाँत मनु की सी काटितवाले थे । ताम्रके पत्तर जक्षा उसका तालू था । धम्मेके समान गोल और सुन्दर उसकी गर्दन थी और शरीरक भाग विशात्र थे । प्रणयज्ञा चढ़ाये हुए धनुष के जैसा उसकी पीठका भाग था ।

उसका पेट या उदर वृथा था और चन्द्र मण्डल के जैसे नख मण्डल से मण्डित था। उमका निश्वास दीर्घ और सुगन्धि पूर्ण था। उसकी सूँडका अगला भाग लम्बा और चञ्चल था। उसके होठ, गुण इन्द्रिय और पूँछ—ये तीनों बहुत लम्बे लम्बे थे। जिस तरह दोनों ओर रहने वाले सूर्य और चन्द्रमा से मेघ पर्यंत अड्डित होता है; उन्ही तरह दोनों ओर पेघण्टों से यह अड्डित था। कल्प-वृक्षके फूलों से गुँधी हुई उसके दोनों ओर की झोरियाँ थीं। मानों आठ दिशाओं की लक्ष्मीकी विभ्रम भूमि हो, इस तरह सोने के पट्टों से अङ्कित किये हुए आठ ललाटों और आठ मुखों से यह सुशोभित था। बड़े भारी पर्यंत के शिखरों की तरह, मजबूत, किसी कदर टेढ़े और उँचे प्रत्येक मुखमें आठ आठ दाँत थे। प्रत्येक दाँत पर सुन्घादु और निर्मल जङ्की एक एक पुष्करिणी थी। जो वर्षापर पर्यंतके ऊपर के मरोवर की तरह शोभायमान थीं। प्रत्येक पुष्करिणी में आठ आठ कमल थे। उनके देखने से ऐसा ज्ञान पड़ता था, गोया जलदेवी ने जलके बाहर अपने मुख निकाल रखे हों। प्रत्येक कमलमें आठ आठ विशाल पत्ते थे। ये मीठा करती हुई द्यादूनाओं के विग्रह लेने के छीपोंकी तरह सुशोभित थे। प्रत्येक पत्ते पर चार चार प्रकार के अभिगय हाथ मात्रस युक्त जुड़े जुड़े आठ आठ नाटक शोभते थे। और हरेक नाटक में मानों स्वादिष्ट रसके बहोल की सम्पत्ति वाले सोते हों ऐसे उत्तीस अत्तीस पाग नाटक करने वाले थे। ऐसे उत्तम गणैन्द्र पर अगाडी के आत्मन में परिवार समेत इन्द्र मवार हुआ।

हाथी के कुम्भस्थलों से उसकी नाक टक गई। परिवार सहित इन्द्र ज्योंही गजपति पर बैठा, त्यों ही सारा सौधर्म लोक हो, इस तरह वह हाथी वहाँसे चला। पालक विमान की तरह अनुक्रम से अपने शरीर को छोटा करता हुआ वह हाथी क्षणभर में प्रभु द्वारा पवित्र किये हुए घागमें धा पहुँचा। दूसरे अच्युत प्रभृति इन्द्र भी 'मैं पहले पहुँचूँ, मैं पहले पहुँचूँ' इस तरह जल्दी जल्दी देवताओं को साग लेकर वहाँ आन पहुँचे।

समवसरण की रचना।

उस समय वायुकुमार देवताने मान को त्याग कर, समग्र-णके लिये, आठ मील पृथ्वी साफ की। मेघ कुमार के देवताओं ने सुगन्धित जलसे जमीन पर छिड़काव किया। इससे मानो पृथ्वी, यह समझकर कि प्रभु स्थये पधारेंगे, सुगन्धि पूर्ण आँसुओं से धूप और अर्घ्य को उडाती हुई सी मालूम होती थी। ध्यन्तर देवताओंने भक्तिपूवक अपनी आत्माके समान ऊँची ऊँची किरण वाले सोने, मानिक और रत्नों के पत्थर जमीन पर बिछा दिये। मानों पृथ्वी से ही निबले हों ऐसे पत्थरगे सुगन्धित फूल वहाँ बिचेर दिये। चारों दिशाओंमें मानों उनकी आभूषणाभूत कण्डियाँ हों इस तरह रत्न, माणिक और सोने के तोरण बाँधे। वहाँ पर लगाई हुई रत्नमय पुतलियों की देहके प्रतिविम्ब एक दूसरे पर पड़ते थे। उनके देखने से ऐसा मालूम होता था, गीया सखियाँ परस्पर आलिङ्गन कर रही हों। चिकनी चिकनी इन्द्रनीलमणि

से बनाये हुए मगर के चित्र नाशको प्राप्त हुए कामदेव द्वारा छोड़े हुए अपने चिन्ह रूप मगर के भ्रमको करते थे। भगवान् के वैश्व ज्ञान कल्याण से उत्पन्न हुई दिशाओं की हँसी ही, इस तरह सफेद सफेद छत्र वहाँ शोभायमान थे। मानों अत्यन्त हर्ष से पृथ्वीने स्वयं नाच करने के लिये अपनी भुजायें ऊँची की हों, इस तरह ध्वजा पताकायें फड़कती थीं। तोरणोंके नीचे जो स्वस्तिकादिक अष्ट मङ्गलिकक श्रेष्ठ चिह्न किये गये थे, वे वलिपद् जैसे मालूम होते थे। समग्रमरण के ऊपरी भागका गढ़ विमान पतियों या वैमानिक देवताओं ने रत्नों का बनाया था। इससे रत्नगिरी की रत्नमय मेखला वहा लार् गई हो, ऐसा जान पड़ता था। उस गढ़ पर नाना प्रकार की मणियों के कगूरे बनाये थे। वे अपनी किरणों से आकाश को विचित्र रङ्गोंके कण्डों वाला बनाते थे। धीचमें ज्योतिस्पति देवताओं, मानों पिण्डरूप अपने अङ्गकी ज्योति हो, इस तरह का सोनेका दूसरा गढ़ रचा था। उन्होंने उस गढ़पर रत्नमय कगूरे लगाये थे वे सुर असुर पक्षियों के मुँह देखने के दर्पण या आईने से मालूम होते थे। भुवन पतियों ने बाहर की ओर एक चाँदीका तीसरा गढ़ बनाया था, उसके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया बैतार्य पर्वत भक्तिसे मण्डल रूप हो गया है। उस गढ़ पर जो सोनेके कगूरे बनाये थे, वे देवताओं की चापडियों के गले में सोने के कमलसे मालूम होते थे। यह तीनों गढ़वाली पृथ्वीभुवनपति, ज्योतिस्पति और विमानपति की लक्ष्मी के एक एकगोलाकार कुण्डल से शोभे इस तरह शोभती थी। पताका

ओंके समूह वाले मणिमय तोरण अपनी किरणों से मानों दूसरी पताकाये बनाते हों इस तरह दीखते थे। उनमें से प्रत्येक गडमें चार चार दरवाजे थे। ये चार प्रकारके धर्म की मीठा परतों को खड़े हों, ऐसे मान्दूम होते थे। प्रत्येक दरवाजे पर ध्यन्तरों के रखे हुए धूपपात्र या धूपदानियाँ इन्द्रनीलमणि के धर्मों के जैसी धूमलता या धूप की बेलनी छोड़नी थीं। अर्थात् धूपदानियोंमें रखी हुई धूपसे जो धर्माँ उठता था, यह नीलम या धाम्मा सा मान्दूम होता था। उन समयसरणके प्रत्येक द्वारमें गडकी तरह, चार चार दरवाजोंवाली, सोनेके कमलों सहित पायडियाँ बनायी थीं। दूसरे गडमें, प्रभुके आराम करने के लिए एक देव छन्द बनाया था। भीतरके पहले बोटके द्वार पर, दोनों ओर, सोनेके से बर्णे वाले, दो धैमाणिक देवद्वार पालनी ट्यूनी बजाने को खड़े थे। दक्षिण द्वारमें, दोनों तरफ, मानों एक दूसरे के प्रतिविम्ब या अन्व हों, इस तरह उज्ज्वल व्यन्तर देवद्वारपाल हुए थे। पच्छिमी द्वारपर, सध्या समय जिस तरह सूर्य और चन्द्रमा आमने सामने हो जाते हैं, इस तरह लाल रङ्ग वाले ज्योतिरुख देव द्वारपाल बनकर खड़े थे। उत्तर द्वार पर मानों उन्नत मेघ हों, इस तरह काले रङ्गके भुवनपतिदेव दोनों ओर द्वारपाल बने खड़े थे। दूसरे गडके चारों ओरों के दोनों तरफ अशुभसे भाय, पास अशुभ और मुद्गर धारण करने वाली—श्वेतमणि, शीण मणि स्वर्णमणि और नीलमणि की जैसी कान्ति वाली पहले की तरह, चार निकायकी जया, विजया, भजिता और अपराजिता

नामकी दो दो देवियाँ प्रतिहारी के रूपमें खड़ी थीं। अन्तिम बाहर क कोटके चारों दरवाजोंपर तुभ्यम पाटकी पाटी, मनुष्य मुण्डमाली, और जटाजूट मण्डित— इन नामोंके चार देवता द्वारापाल होकर पड़े थे। समयसरण के बीच में ध्यतरोंने छै मील ऊँचा एक ध्वज धराया था। यह रक्षत्रयके उदय का उपदेश देता था मान्य होता था। उस ध्वजके नीचे अनेक प्रकार के रत्नोंसे एक पीठ धनाई गई थी। उस पीठ पर अप्रतिम मणिमय एक छन्दक बनाया गया था। छन्दकके बीचमें पूर्य शिशाबी धोर, मानों सारी लक्ष्मीका सार हो ऐसा, पादपीठ समेत रक्ष-जटित सिंहासन बनाया था और उस के ऊपर तीन लोक के आधिपत्य के चिह्न स्वरूप तीन छत्र बनाये थे। सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष हाथों में दो उज्ज्वल वज्रधर धार लिये खड़े थे, जिनसे ऐसा जान पड़ता था मानों भक्ति उनके हृदयों में न समाकर बाहर निकली पड़ती है। समयसरण के चारों दरवाजों पर अद्भुत कानि-समूह घाले धर्म चक्र सोनेके कमलोंमें रखे थे। और भी जो करने योग्य काम थे वे सब ध्यतरोंने किये थे क्योंकि साधारण समयसरण में वे अधिकारी हैं।

अथ प्रातः कालके समय चारों तरफ के, करोड़ों देवों के संघिरकर, प्रभु समयसरण में प्रवेश करने को बड़े-बड़े देवों के हजार हजार पक्षेवाले मोनेके नौ कमल रचकर देवों के आगे रखने लगे। उनमें से दो दो कमलों पर देवों के आगे करने लगे और देवता उन कमलों को धरने करने लगे।

जगत्पति ने समयसरण के पूर्वी दरवाजे से घुस कर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा की और इसके बाद तीर्थ को नमस्कार कर, सूर्य जिस तरह पूजाचलपर चढ़ता है, उन्ही तरह जगन्का मोहा न्यकार नाश करने के लिये, प्रभु पूरव मुज्रवाले सिंहासन पर चढ़े । तब द्यन्तरोंने दूपरी तीन दिशाओं में, तीन सिंहासनों पर, प्रभुके तीन प्रतिविम्ब बनाये । देवता प्रभुके अंगूठे जैसा रूप बनानेकी भी सामर्थ्य नहीं रखते तथापि जा प्रतिविम्ब बनाये, वे प्रभुके भावसे वैसे ही होंगये । प्रभुके हरेक मस्तक के फिरने से शरीर की कान्तिके जो मण्डल—भामण्डल प्रकट हुए, उनके सामने सूर्य मण्डल पद्योत—पट्टीजना या जुगनू सा मालूम होने लगा । प्रति शब्दों से चारों दिशाओंको शदायमान करती हुई—मेघवत् गभीर स्वर वाली दु-दुमि आवाशमें बजने लगी । प्रभुके पास एक रत्नमय ध्वजा थी वह मानो अपना एक हाथ ऊँचा करके यह कहती हुई शोभा दे रही थी, कि धर्ममें यह एक ही प्रभु है ।

इन्द्र द्वारा भगवान की स्तुति ।

अब त्रिमान पतियों की स्त्रियाँ पूरवी द्वार से घुसकर, तीन परित्रमा दे ताधङ्कर और तीर्थ को नमस्कार कर, पहले गढ़में साधु साधुओं का स्थान छोड़, उनके स्थानके बीच अग्निकोण में खड़ी हो गई । भुवनपति, ज्योतिष्पति और द्यन्तरों की स्त्रियाँ दक्षपन द्वारसे घुस पहले चालियों की तरह नमस्कार प्रभृति कर नैऋत कोणमें खड़ी हो गई । भुवन पति, ज्योतिष्पति और

व्यतर देवता पञ्चम दिशाके दरवानेसे घुस, नमस्कार कर, परि
 क्रमा दे घायल्य कोण में बैठ गये । वैमानिक देवता मनुष्य और
 मनुष्यों की स्त्रियाँ उत्तर दिशाके द्वारसे घुस पहले आने वालों
 की तरह नमस्कारादि कर ईशान दिशामें बैठगये । यहाँ पहले
 आये हुए अन्य ऋद्धिवाले, जो बड़ी ऋद्धि वाले भाते उनको नम
 स्कार करते थे । और आने वाले पहले आये हुएों को नमस्कार
 करके आगे बढ़ जाते थे । प्रभु के समयसरणमें किसी को रोक
 टोक नहीं थी, किसी तरह की विषया नहीं थी । ऐतियों में
 भी आपसका घेर नहीं था और किसी को किसी का भय न था
 दूसरे गढ़में आकर तिर्यञ्च बैठे और तीसरे गढ़में सब आने वालों
 के याहन या सवारियाँ थीं । तीसरे गढ़ के बाहरी हिस्सेमें कितनेही
 तिर्यञ्च, मनुष्य और देवता आते आते दिग्वाइ देते थे । इस प्रकार
 समयसरणकी रचना हो जाने पर सौधर्म कल्पका इन्द्र हाथ
 जोड़ नमस्कारकर इस तरह स्तुति करने लगा—“हे स्वामी! कहीं में
 बुद्धिका दरिद्र और कहीं आप गुणोंके गिरिराज ? तथापि भक्ति
 से अत्यन्त घाचाल हुआ में आपकी स्तुति करना हू । हे जगत्पति
 जिन तरह रत्नोंसे रत्नाकर—सागर शोभा पाता है उसी तरह
 आप एकही अनन्त ज्ञान दशन और धीर्य—मानन्दस शोभा पान है
 हे देव ! इस भरतक्षेत्रमें बहुत समयसे नष्ट हुए धर्म-वृक्षको
 फिर पैदा करनेमें आप धीजये समान हैं । हे स्वामी ! आपके
 महात्म्यकी कुछ भी अवधि नहीं, क्योंकि अन्ते अन्तमें रहने
 वाले ॐ ॐ ॐ देवताओंके सन्देशको आप

हे और उस सन्देहको दूर भी करते हैं। यही सृष्टि वाले और कान्तिसे प्रकाशमान देवता जो स्वर्गमें रहते हैं यह आपकी भक्तिसे लेशमात्र फल है। जिस तरह मुर्तियोंको प्रणयना अभ्यास केशके लिये होता है, उसी तरह आपकी भक्ति बिना घोर तप मी मनुष्योंको कौरी मिहनतके लिये होता है; अर्थात् आपकी भक्ति बिना घोर तपध्वज्यां घृषा कष्ट देने वाली है। आपका भक्ति ही सर्वोपरि है। हे प्रभा! जो आपकी स्तुति करते हैं, जो आपमें श्रद्धा भक्ति रखते हैं और जो आपमें होंव रगते हैं उन दोनोंको ही आप समदृष्टि या एक नजरसे देखते हैं परन्तु उनको शुभ और अशुभ—सुरा और भला कत्र अलग अलग मिलता है इसलिये हमें आश्चर्य होता है।* हे नाथ! मुझे स्वर्गकी लक्ष्मीमें भी सन्तोष नहीं है—मेरी कृष्णाकी सीमा नहीं है। अतः मैं विनीत भावसे प्रार्थना करता हूँ, कि आपमें मेरी अक्षय और अपार भक्ति हो।" इस प्रकार स्तुति और नमस्कार कर, इन्द्र स्त्री, मनुष्य, नरदेव और देवताओंके अगले भागमें अञ्जलि जोड़ कर बैठ गया।

मरुदेवा माता का विलाप ।

भरत का समाधान ।

इधर तो यह हो रहा था, उधर अयोध्या नगरीमें विनयी भरत चक्रवर्ती, प्रातः समय, मरुदेवा माताको प्रणाम करनेको गया। अपने पुत्रकी जुद्धार्थके कारण, अत्रिथान्त आँसुओंकी धारा गिरने

सै जिम्मेके नेत्र कमल जाते रहे हैं ऐसी पितामही—दादीको “यह थापका घड़ा पोता धरणकमलोंमें प्रणाम करता है।” यह कह कर भरतने प्रणाम किया। स्वामिनी मछ्देवाने पहले तो भरतको आशीर्वाद दिया और पोडे हृदयमें शोक न समाया हो, इस तरह दाजीका उद्गार बाहर निकाला।—“हे पौत्र भरत ! मेरा येटा प्रथम मुझे, तुझे, प्रथीको पूजाकी और लक्ष्मीको तिनपेकी तरह भजेला छोड़ कर चला गया तोमी यह मछ्देवा न मरी। कहां नो मेरे पुत्रके मस्तक पर चन्द्रमाके धानप काति जैसे उत्रवा रहना और कहां सारे भगोंको जलानेवाले सूर्यके तापका लगना। पहले तो यह लालासे चलने वाले दाघी घगेर जानवरोंपर सवार होकर फिरता था और आजकल पधिक—राहगीरकी तरह पैदल चलता है ! पहले मेरे उस पुत्र पर धारागनाथे चँवर ढोरती थीं और आजकल यह डाँस और मच्छरोंके उपद्रव सहन करता है। पहले यह देवताओंके लाये हुए दिव्य आहारोंका भोजन करता था और आजकल यह बिना भोजन जैसा भिक्षा भोजन करता है। बडी श्रद्धि वाला यह पहले रत्नमय सिंहासन पर बैठता था और आजकल गेडेकी तरह बिना आसन रहता है। पहले यह पुररक्षक और शरीर-रक्षकोंसे घिरा हुआ नगरमें रहता था और आजकल यह सि ह प्रभृति हिंसक-जानवरोंके निवास स्थान बनमें रहता है। पहले यह कानोंमें भमृन रसायनरूप दिव्यागनाओंका गाना सुनता था और आजकल यह उमत्त सर्पके कानमें सूखी तरह फुट्टारें सुनता है। कहां उसकी पहलेकी स्थिति और कहां

उत्तमान स्थिति ! हाथ ! मेरा पुत्र कितनी तकलीफें उठाता है कितने कष्ट भोगता है कि वह स्वयं पद्मसखण्ड समान कोमल होने पर भी घषाकाटमें जलके उपद्रव सहता है । हेमन्त काल या जाड़ेमें जंगली मालतीके स्तम्भकी तरह हमेशा बर्फगिरनेके झंशको लाचारीसे सहता है और गरमीकी प्रदतुमें जंगली हाथीकी तरह सूरजकी अनीज तेज धूपको सहता है । इस तरह मेरा पुत्र घनमें घनप्रासी होकर त्रिना आश्रयके साधारण मनुष्योंकी तरह अथेला फिरता हुआ दुःखका पात्र हो रहा है । ऐसे दुःखालि व्याकुल पुत्रको मैं अपने सामने ही इस तरह देखती हूँ और ऐसी ऐसी बातें कहकर तुझे भी दुःखी करती हूँ ।

मरुदेवा माताको इस तरह दुःखों से व्याकुल देख, भरतराजा हाथ जोड़, अमृत तुल्य वाणीसे बोला—“हे देवि ! स्वर्ग्यके परंत रूप, चक्रके सार रूप और महासत्त्वजनोंमें शिरोमणि मेरे पिताकी जननी होकर आप इस तरह दुःखी क्यों होती हो ? पिताजी इस समय संसार सागरसे पार होनेकी भरपूर चेष्टा कर रहे हैं उद्योग कर रहे हैं। इसलिये कण्ठमें घँधी हुई शिलाकी तरह उन्होंने अपन लोगोंको त्याग दिया है । घनमें विहार करने वाले पिताजीके सामने उनके प्रभावसे हिंसक और शिकारी प्राणी भी पत्थरके से हो जाते हैं और उपद्रव कर नहीं सकते । भूल, व्यास और धूप आदि दुःसह परिपद कर्म रूपी शत्रुओंके नाश करनेमें उन्हे पिताजी के मद्दगार है । अगर आपको मेरी बातों पर यकीन न आता हो, मेरी बातें विश्वास योग्य न मालूम होती हों, तो थोड़ेही समय

में आपको आपके पुत्रके वैचल्य ज्ञान होनेसे उत्सवकी छबर सुन कर प्रतीति हो जायगी ।

भरत का भगवान की घण्टना को चलना ।

मन्त्र्या की मोज़ ।

इधर दादी पोतेमें यह बातें हीही रही थीं, कि इतनेमें प्रतिहारीने महाराज भरतसे विवेदन किया कि महाराज ! द्वार पर दो पुरुष आये हुए हैं । उनके नाम यमक और शमक हैं । राजाने अन्दर आनेकी आज्ञा दी । उनमेंसे यमकने महाराजसे प्रणाम कर कहा—
 “ह देव ! आज पुरिमता नगरके शकटानन यगीचेमें युगादिनाथ की वैचल्य ज्ञान हुआ है । ऐसी कल्याण कारिणी बात सुनाते मुझे गालूम होता है —” कि भाग्योदयसे आपकी वृद्धि हो रही है । शमकने कहा—“महाराज ! आपकी आयुधशाला या शय्यागार में अमी चक्र पैदा हुआ है ।” यह बात सुनकर भरत महाराज क्षण भरके लिये इस चिन्तामें डूब गए, कि उधर पिताजीके वैचल्य ज्ञान हुआ है और इधर चक्र पैदा हुआ है मुझे पहले किसकी अर्चना करनी चाहिए । यहाँ तो जगतको अभयदान देने वाले पिताजी और कहीं प्राणियोंका नाश करने वाला चक्र ? इस तरह विचार कर, अपने आत्मियोंको पहले स्वामीका पूजा की तैयारीका हुक्म दिया और यमक तथा शमकको यथोचित इनाम देकर विदा किया । इसके बाद मछदेवा माँ —
 देवी !
 स्वरसे कहा करती थीं

मागकर गुजर करने वाला पुत्र दु लोका पात्र है; परन्तु आप त्रिलोकीके आधिपत्यको भोगने वाले अपने पुत्रकी सम्पत्तिको देखिये।” यह कह कर उन्होंने माताजीको गजेन्द्र पर सवार कराया। इसके बाद मूर्त्तिमान लक्ष्मी हो इस तरह सुवर्ण और माणिकके गहने वाले घोड़े, हाथी, रथ और पैदल लेकर ब्रह्मासे कूच किया। अपने आभूषणोंसे जगम—चलते हुए तोरणकी रचना करने वाली कौजके साथ चलने वाले महाराज भरतने दूरसे ऊपरका रत्नमय गढ़ देखा। उन्होंने माता मरुदेवास कहा—“हे देवि! देखो देवी और देवताओंने प्रभुका समवसरण बनाया है। पिताजीके चरण कमलोंकी सेवामें आनन्द भग्न हुए देवोंका जय-जय शब्द सुनाई दे रहा है। हे माता! मानो प्रभुका घड़ी हो, ऐसे गम्भीर और मधुर शब्दसे आकाशमें बजता हुआ दु दुभीका शब्द आनन्द उत्पन्न कर रहा है। स्वामीके चरण कमलोंकी चन्दना करने वाले देवताओंके त्रिमानीमें उत्पन्न हुए अनेक घुँघरुओंकी आवाज आप सुन रहीं है। स्वामीके दर्शनोंसे आनन्दित देवताओंका मेघकी गरजनाके समान यह सिंहनाद आकाश में हो रहा है। ब्राम और रागसे पवित्र ये गन्धर्वाका गाना मानो प्रभुकी चापीके सेवक हो इस तरह अपनेको आनन्दित कर रहा है।” जलके प्रवाह से जिस तरह कीच धुल जाती है, उसी तरह भरतकी बातोंसे उत्पन्न हुए आनन्दके आसुओंसे माता मरुदेवा की आँखोंमें पड़े हुए पटल धुल गये। उनकी गर्ई हुई आँखें लौट आइ—उन्हें नेत्रज्योति फिर प्राप्त होगई। इसलिये उन्होंने अपने पुत्रकी अतिशय सहित ती-

धँकरपने की लक्ष्मी अपनी आँखों से देखी। उसके देखने से जो आनन्द उत्पन्न हुआ उससे मरुदेवा देवी तमय हो गई। तत्काल समकाल में अपूर्व कारण के फलसे क्षयक श्रेणी में आरूढ हो श्रेष्ठ कर्मको क्षीण कर केवल ज्ञान को प्राप्त हुई और उसी समय आयु पूरी हो जाने से अन्तःकृतकेवली हो, हाथीके बन्धे पर ही अययपद—मोक्ष पद को प्राप्त हुई। इस अजसर्विणी कालमें मरुदेवा पहली सिद्ध हुई। उनके शरीरका सत्कार कर देवनाओंने उसे क्षीर सागरमें फेंक दिया। उसी समय से इस लोकमें मृतक पूजा आरम्भ हुई। क्योंकि महात्मा जो कुछ करते हैं, वही आचार होजाता है। माता मरुदेवाकी मुक्ति हो गई यह जानकर मेघ की छाया और सूरज की धूपसे मिले हुए शब्द ऋतुके समयके समान हर्ष और शोकसे भरत राजा घ्यात हो गये। इसके बाद, उन्होंने राज्य चिह्न-त्याग, परिचार सहित पैदल अन्तः-उत्तर के दरवाजे से समयानुरण में प्रवेश किया। वहाँ चरों निकायके दयनाओंसे घिर हुए, दृष्टि रूपी घकोर के अन्तःकृत के समान प्रभु को भरत राजने देखा। भाग्य के अन्तःकृतना दे, प्रणाम कर, मस्तक पर अञ्जलि जाड, अन्तःकृतना अन्तःकृतने स्तुति करना आरम्भ किया।

भरत द्वारा की हुई प्रभु स्तुति ।

“ हे अखिल जगन्नाथ ! हे विश्वेश्वर ! हे अन्तःकृतना दे ! हे प्रथम तीर्थङ्कर ! हे जगन्नाथ ! हे अन्तःकृतना दे ! हे अन्तःकृतना दे !

इस अत्रसर्पिणी कालमें जमे हुए लोग रुपी पन्नाकर को सूर्य स मान आपके दर्शनीसे भैरा अन्धकार नाश होकर प्रभात हुआ है। हे नाथ ! भय जीवोंके मनरूपी जलको निर्मल करने की क्रिया में निर्मली जैसी आपकी थाणी की जय हो रही है। हे करुणा के क्षीरसागर ! आपके शासन रुपी महारथमें जो घड़ते हैं, उनके लिए लोषात्र—मोक्ष दूर नहीं है। निस्कारण जगत्बन्धु ! आप साक्षात् देखने में आते हैं इस लिये हम इस संसारको मोक्ष से भी अधिक मानते हैं। हे स्वामी ! इस संसार में निश्चल नेत्रों से आपके दर्शन के महानन्द रुपी भरने में हमें मोक्ष मुखफे स्वाद का अनुभव होता है। हे नाथ ! रागद्वेष और कषाय प्रभृति शत्रुओं द्वारा रुँधे हुए इस जगत् को अभयदान देने वाले आप रुँधन से छुड़ाते हैं। हे जगदीश ! आप तत्व धताते हैं राह दिखाने हैं आप ही इस संसार की रक्षा करते हैं, अतः मैं इससे अधिक और क्या माँगूँ ? जो अनेक प्रकार के युद्ध और उपद्रवों से एक दूसरे के गावों और पृथ्वी को छीन लेने वाले हैं, वे सब राजा परस्पर मित्र होकर आपकी सभामें बैठे हुए हैं। आपकी सभामें आया हुआ यह हाथी अपनी सूँड से केसरी निह की सूँड को र्पाव कर अपने कुम्भस्थलों को धारदार घुजाता है। यह भैस दूसरी भैस की तरह, मुहव्यत से, धारभ्यार इस दिनदि नाते हुए घोड़े को अपनी जीभ से साक करती है। लीला से अपनी पूँछ को हिलाता हुआ यह हिरन कान पटे करके और मुपको नीचा करके अपनी नाक से इन्द्र व्याघ्र के मुहको सूँघता

है। यह जयान चिल्ली भरणे आगे पीछे घड़े की तरह चिन्ने वाले घूँदों की मालिहून करती है। यह सब भरणे शरीरको कुण्ड लाकर करके इस "घोले के पास मित्र का तरह घेठा है। हेदेय। ये निरन्तर घैर रखने वाले भी दूमरे प्राणी यहाँ निरपेक्ष होकर घेठे हैं। इन सब धारों का कारण थापका अनुत्पत्त प्रभाव है।"

महापति भरत इस तरह जगत्पतिकों स्तुति करके, अनुत्पत्तसे पीछे सरक कर स्वगपति इन्द्र के पीछे घेठ गये। तीर्थनाथ के प्रभाव से उत्त धार कोस के क्षेत्र में करोड़ों प्राणी बिना किसी प्रकार की निर्वाधता या दिक्कतसे घेठ गये। उस समय समस्त भाषाओं की स्पर्श करने वाली और पेंतीस अतिशय धागी पर योजन-भामिनी घाणी से इस तरह देशना—उपदेश देना आरम्भ किया।

भगवान् की देशना।

महापति भरत इस भाँति त्रिलोकी नाथकी स्तुति कर, अनुत्पत्त से पीछे हट स्वगपति इन्द्रके पीछे घेठ गया। यह मैदान क्षेत्रल ८ मीठके विस्तार का था पर तीर्थनाथ के प्रभाव से करोड़ों प्राणी उसी मैदानमें बिना किसी प्रकार की सुकडा सुकड़ी और अड्डास के घेठ गये। उस समय समस्त भाषाओं का स्पर्श करने वाली, पेंतीस अतिशयवाली और भाठ मील तक पहुँचनेवाली भाषाजसे प्रमुने इस प्रकार देशना—उपदेश देना आरम्भ किया—
"आधि—ध्याधि, जरा और मृत्यु से ध्याहुँत यह संसार समस्त

प्राणियों के लिये देदीयमान और प्रखलित अग्नि के समान है। इसलिये विद्वानोंको उसमें लेशमात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं क्योंकि रातमें उल्लङ्घन करने योग्य मद्देश—मारवाड में अज्ञानी के सिवा और कौन प्रमाद करें ? अनेक जीवयोनि रूप भँवरों से आकुल ससार सागरमें, उत्तम रत्न समान मनुष्य-जन्म प्राणियों को घड़ी कठिनार्थ से मिलता है। दोहद या पाद पूरने से जैसे वृक्ष फल युक्त होता है, उसी तरह परलोक साधना करने से प्राणियों को मनुष्य जन्म सार्थक होता है। इस जगत् में दुर्जनों की घाणी जिस तरह सुनने में पहले मधुर और मनोमुग्धकर और शेषमें अतीव भयङ्कर विपत्तियों का कारण होती है, उसी तरह विषय भोग भी पहले मधुर और परिणाम में भयङ्कर और जगत् को उगने वाले हैं। विषय पहले घटे मधुर और मनको मोहने वाले मादूम होते हैं; प्राणी विषयों में बड़ा सुख आनन्द समझते हैं; पर अन्तमें उन्हें उठने विषम विषमय फल भोगने पड़ते हैं। वे उनसे धुरी तरह उगे जाते हैं। उनके धोपे में आकर वे अपने मनुष्य-जन्म को वृथा नष्ट करते और शेषमें उन्हें नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकारके घोरतिघोर कष्ट उठाने पड़ते हैं। जिस तरह अधिक उँचाईका अन्त पतन होने या पड़ने में है, उसी तरह संसार के समस्त पदार्थों के संयोग का अन्त वियोगमें है। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं, अत्यधिक उँचाईका परिणाम पतन है और संयोग का परिणाम त्रियोग है। जो बहुत ऊँचा चढ़ता है, वह नीचा गिरता है और जिसका संयोग होता है, उसका वि

ऐशमात्र सुख नहीं तथापि जल जिस तरह नीची जमीन की ओर जाता है, उसी तरह प्राणी, अज्ञानवश, चारभ्यार इस संसार की ओर जाते हैं। अतएव चेतनाधाले मध्य जीयो। दूरसे सर्प को पोषण करने की तरह तुम अपने मनुष्य जन्म से संसार को पोषण मत करो। हे धिवेकी पुरुषो। इस संसार निवास से पैदा होने वाले अनेकानेक दुःख और झेशोका विचार करके, सब तरह से मोक्ष लाभ की चेष्टा करो। नरक के दुःखों के जैसा गर्भ में रहने का दुःख संसार की तरह मोक्षमें हरगिज नहीं होता। कुम्भीमें से पीचे हुए नारकीय जीवों की पीडा जैसी प्रसव वैदना मोक्षमें कदापि नहीं होती। यादर और भीतर से लगे हुए तीरोंके तुल्य पीडा की कारण रूप धाधि व्याधि उसमें नहीं होतीं। यमराज की अप्रगामिनी दूती सब तरहके तैजको चुराने वाली और पराधीनता को पैदा करने वाली धृद्धावस्था भी उसमें नहीं है। और नारकीय तिर्य्यञ्च मनुष्य और देवताओं की तरह चारभ्यारके भ्रमण का कारण रूप "भरण" भी मोक्षमें नहीं है। यहाँ तो महा धानन्द, धर्मेत और अध्वय सुख, शाश्वत रूप और वैचल्यरूप सूर्य से शलण्डित ज्योति है। निरन्तर ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी तीन उज्ज्वल रत्नोंका पालन करने वाले पुरुष ही मोक्ष लाभ कर सकते हैं। उनमें से जीवादिक् तरवों के संक्षेप से अध्या विस्तार से अभ्योध को सम्यक् ज्ञान समझना चाहिये। मति श्रुति अधधि, मन पर्याय और वैचल्य, इस तरह अवय सहित भेदोंसे यह ज्ञान पाँच तरह के होते हैं। उनमें से अवग्रह आदिक भेदों

चाला एव बहुप्राही और अल्पप्राही भेदोंवाला तथा जो इन्द्रिय और अन्द्रिय से उत्पन्न होता है उसे "मतिज्ञान" जानना चाहिये। पूर्वजन्तु उपाग और प्रकीणक सूत्रों—प्रथमोंसे अनेक प्रकार के विस्तार की प्राप्ति हुआ और स्यात् शब्दसे लालित "धृत ज्ञान" अनेक प्रकारका होता है। देवता और नारकी जीवों को जो भयसम्बन्ध से उत्पन्न होता है, वह "अवधिज्ञान" कहलाता है। यह क्षय उपशम लक्षणों वाला है, और मनुष्य तिव्यञ्ज के आश्रयसे उसके छ भेद है। मन पय्यायज्ञान ऋद्धमती और विपुलमती— इस तरह दो भाति का है। उनमें विपुलमती में विशुद्धि अप्रति पादत्व से विशेषता है। समस्त पय्याय के विषय वाला विश्व लोचन-समान, अनन्त, एक और इन्द्रियों के विषयोंसे रहित ज्ञान "वेदल ज्ञान" कहलाता है।

समकित वर्णन।

शास्त्रोक्त तत्त्वोंमें रुचि—सम्यक् श्रद्धा कह गती है। यह श्रद्धा समकित स्वभाव और गुरुके उपदेश से प्राप्त होती है। इस अनादि अनन्त ससार के भँवरों में पड़े हुए जीवोंको ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी वेदनी और अन्तराय नामके कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटानुकोटि सागरोपम की है। गोत्र और नामकरण की स्थिति बीस कोटानुकोटि सागरोपम की है। धार मोहनीय कर्म की स्थिति सत्तर कोटानुकोटि सागरोपम की है। अनुभव से, फलसे अनुभव से, वे सत्र कर्म—पहाडस निकली हुई नदामें

लुब्धकता-लुब्धकता पत्थर गोल हो जाता है—उस न्यायकी तरह—स्वयं क्षय हो जाते हैं। इस प्रमाण से क्षय होते हुए कर्म की अनुग्रह से उन्तीस उन्तीस और उनहत्तर कोटानुकोटि सागरोपम की स्थिति क्षय को प्राप्त होती है। और किसी कदर कम कोटानुकोटि सागरोपमकी स्थिति जब याकी रह जाती है, तब प्राणी यथा प्रवृत्ति चरण से प्राची दिशाको प्राप्त होते हैं। राग द्वेषको भेद सके, ऐसे परिणाम को प्राची कहते हैं। यह लकड़ी की गाँठ की तरह मुश्किल से छेदी जाने योग्य और बहुत ही मजबूत होती है। हवाके भोके से बिनारे पर आई हुई नाव जिस तरह फिर समुद्र में चली जाती है; उसी तरह रागादिक से प्रेरित किये हुए कितने ही जीव प्राची या गाँठ को छेदे बिना ही प्राचीके पास आकर घापस चले जाते हैं। कितनेही प्राणी राहमें फिसल कर, नदीके जलकी तरह, किसी प्रकारके परिणाम विशेष से, वहाँ ही बिराम को प्राप्त होते हैं। कोई कोई प्राणी जिनका भविष्यमें—आगे चलकर कल्याण होने वाला होता है—मला होने वाला होता है अपूर्व करण से, अपना धीरे प्रकट करके, लम्बी चौड़ी राहको तय करने वाले मुसाफिर जिस तरह घाटी को लाँघते हैं; उसी तरह दुर्लभ्य प्राची—गाँठको तत्काल भेद डालते हैं। कितने ही चार गति वाले प्राणी अनिवृत्तिकरण से अन्तरचरण करके मिथ्यात्व का विरल कर, अन्तमुद्गत मार्गमें सम्यक् दर्शन पाते हैं। वे नैसर्गिक—स्वाभाविक सम्यक् श्रद्धान कहलाते हैं। गुरुके उपदेश के अवलम्बन से भय प्राणियों को

जो समकित उत्पन्न होता है, वह गुरुके अधिगमसे हुआ समकित कहलाता है।

समकित के औपशमिक सास्वादन क्षायोपशमिक वेदक और क्षायिक—ये पाच प्रकार या भेद हैं। जिसकी कर्म ग्रन्थ मिश्री हुई है, ऐसे प्राणी को जो समकित का लाभ प्रथम अन्त मुद्गर्त्स में होता है, वह औपशमिक समकित कहलाता है। उसी तरह उपशम श्रेणी के योग से जिसका मोह शान्त हुआ हो ऐसे देही प्राणी को मोह के उपशम से उत्पन्न हो वह भी औपशमिक समकित कहलाता है। सम्यक् भावना त्याग करके मिथ्यात्व के समुज्ज्वल हुए प्राणी को, अनन्तानुबन्धी धर्माय का उदय होने पर, उत्कर्षसे छ आचली तक और जघन्य से एक समय समकित का परिणाम रहता है, वह सास्वादन समकित कहलाता है। मिथ्यात्व मोहनी का क्षय और उपशम होने से उत्पन्न हुआ—तीसरा क्षयोपशमिक समकित कहलाता है। वह समकित मोहनी के उदय परिणाम वाले प्राणी को होता है।

समकित दर्शन गुणसे रोचक, दीपक और कारक—इन नामों से तीन प्रकार का है। उनमें से शास्त्रोक्त तत्त्वों में—हेतु और उदाहरण के बिना—जो वृद्ध प्रतीति उत्पन्न होती है वह रोचक समकित। जो दूसरों के समकितको प्रदीप्त करे वह दीपक समकित, और जो संयम और तप आदि को उत्पन्न करता है, वह कारक समकित कहलाता है। वह समकित—शम, संवेग, निर्वेद और अनुकम्पा एवं आस्तिक्य—इन पाँच लक्षणों से अच्छी तरह पद-

ज्ञाना जाता है। अनन्तानुगन्धी कपाय का उदय न हो, उसे शम कहते हैं, अथवा सम्यक् प्रकृति से कपायों के परिणाम के देखने को भी शम कहते हैं। कर्मके परिणाम और संसार की बसारता को विचारने वाले पुरुष को जो वैराग्य उत्पन्न होता है, उसे संवेग कहते हैं। संवेग वाले पुरुष को संसारमें रहना जेलखानेके समान है, अर्थात् यह संसार को कारागार समझता है और स्वजनों को बंधन मानता है। जिसके ऐसे बंधन होते हैं, उसे निर्वन्द कहते हैं। एकेन्द्रिय आदि प्राणियों को संसार में डूबते जो क्लेश होना है, उसे देखकर दिलका पसीजना, उनके दुःखों से दुःखी होना और उनके दुःख दूर करने की यथा साध्य चेष्टा करना—अनुकम्पा है, दूसरे तत्वों को सुनने पर भी, अर्हत तत्त्वमें प्रतिपत्ति रहना—'आस्तिष्य' कहलाता है। इस तरह सम्यक् दर्शन वर्णन किया है। इसकी क्षणमात्र भी प्राप्ति होने से बुद्धि में जो पहले का अज्ञान होता है, उसका पराभव होकर भक्तिज्ञान की प्राप्ति होती है। और श्रुत अज्ञानका पराभव होकर श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है और विमंग ज्ञानका नाश होकर अवधि ज्ञान की प्राप्ति होती है।

चारित्र वर्णन ।

समस्त साधन योगके त्याग करने को "चारित्र" कहते हैं। यह अहिंसा प्रभृति के भेद से पाँच तरह का होता है। अहिंसा सत्य, अर्चीष्य, प्रज्ञाचर्य्य, और परिग्रह—ये पाच्यत पाच पाँच

भात्रनाशों से युक्त होने से मोह के कारण होते हैं। प्रमाद के योगसे श्रस और स्थावर जीवोंके प्राण नाशन करनेको "अहिंसा" व्रत कहते हैं। प्रिय, हितकारी और सत्य धचन बोलने को "सुनृत" व्रत या सत्यव्रत कहते हैं। और अहितकारी सत्य धचन भी असत्य के समान हैं। अदत्त वस्तु को ग्रहण न करना यानी बिना दी हुई चीज न लेना "अस्तेय" व्रत कहलाता है, क्योंकि द्रव्य मनुष्य का बाहरी प्राण है। इसलिये उसको हरण करने वाला—उसे चुराने वाला उसके प्राण हरण करने वाला समझा जाता है। दिव्य और औदारिक शरीर से अप्रद्वर्च्य सेवनका—मन, धचन और कायासे, करना, कराना और अनुमोदन करना—इस तीन प्रकारों का त्याग करना "ब्रह्मचर्य" व्रत कहलाता है। उसके अठारह भेद होते हैं। सब पदार्थों के ऊपर से मोह दूर करना "अपरिग्रह" व्रत कहलाता है, क्योंकि मोहसे असत् पदार्थ में भी चित्तका प्रिभूव होना है। यतिधर्मके प्रती यतीन्द्रोंको इस तरह सर्वसे धारित्र कहा है और गृहस्थों को देशसे धारित्र कहा है।

समकित मूल पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, और धार शिक्षा-व्रत—इस तरह गृहस्थों को धारह व्रत बहै हैं। बुद्धिमान् पुरुषों को लगडे, तूने, कोढा और कुणित्त्र आदि हिंसा के फल देखकर निरपराधी श्रस जीवों की हिंसा सकल्प से छोड देनी चाहिये। भिनभिनापन, मुप्राचनि रोग गू गापन, और मुखरोग—इनको असत्यका फल समझ कर, कन्या बलीक धरैर पांच बडे बडे असत्य छोडने चाहिये। कन्या, गाय और जमीन के सम्बध में

भूट बोलना, परार्थ धरोहर हजम कर जाना, और भूटी गयाही देना—ये पाँच स्थूल अस्तव्य त्याग देने चाहिये । दुर्भाग्य कासिदपना—दूतपना, दासत्व अङ्गच्छेदन और इरिद्रता—इनको चोरीके फल समझ कर, स्थूल चोरीका त्याग करना चाहिये । नपुसकता नामर्दों और इन्द्रिय छेदनको अत्रहाचर्यका फल समझ कर, सुयुद्धिमान् पुरुषको अपनी री में सतोप ररतकर पर छी का त्याग करना चाहिये ।

अस-तोप, अत्रिशास आरम्भ और दुःख— इन सब को परिग्रह की मूर्च्छा के फल जानकर, परिग्रह का प्रमाण करना चाहिये । दशों दिशाओंमें निर्णय की हुई सीमा या उल्लङ्घन न करना, दिग्विरति नामक पहला गुणग्रत कहलाता है । जिस में शक्ति पूर्वक भोग उपभोग की मर्यादा की जाती है, उसे भोगोपभोग प्रमाण नामका दूसरा गुणग्रत कहते हैं । आर्त्त रौद्र—ये दो अपध्यान, पापकर्म का उपदेश, हिंसक अधिकरण का देना तथा प्रमादाचरण—ये चार तरह के अनर्थ दण्ड कहलाते हैं । शरीर आदि अर्थ दण्ड की शयुता से रहनेवाला अनर्थदण्ड का त्याग करे, यह तीसरा गुणग्रत कहलाता है । आर्त्त और रौद्र ध्यान का त्याग करके तथा सावध कर्म को छोड़कर मुहूर्त्त, यानी दो घड़ी तक समता धारण करना सामायिक ग्रत कहलाता है । दिन और रात-सम्बन्धी दिग्ग्रत में परिमाण किया हुआ हो, उसे संक्षेप करना देशावकाशिक ग्रत कहलाता है । चार पर्यंके दिन उपवास आदिषु तप प्रभृति करना, कुव्यापार त्यागना, यानी

रक्षाकरो ! रक्षाकरो ! पिता, भाई, भतीजे एवं अन्य स्वजन—
 नातेदार, जो इस संसार भ्रमण के एक हेतु रूप हैं, और इसी से
 अहितकारी या अनिष्ट करने वाले हो रहे हैं, उनकी क्या जरूरत
 है ? हे जगत्शरण्य ! हे संसार सागर से तारनेवाले—पार
 लगाने वाले ! मैंने तो आपका आश्रय ले लिया है आपकी शरण
 में आगया हूँ । इसलिये मुझे दीक्षा दीजिये और मुझ पर प्रसन्न
 होइये । इस प्रकार कहकर ऋषभसेन ने भरत के अथ पाँचसौ
 पुत्र और सात सौ पौत्रों के साथ घृत ग्रहण किया । सुर-असुरों
 द्वारा की हुई प्रभुके वैचल्य ज्ञान की महिमा देखकर, भरतके पुत्र
मरीचि ने भी घृत ग्रहण किया । भरत के आशा देने से ग्राह्णी ने
 भी घृत ग्रहण किया ; क्योंकि लघुकर्म करने वाले जीवों को बहुत
करके गुरुका उपदेश साक्षी मात्र ही है, याहुयलि से मुक्त की गई
मुन्दरी भी घृत ग्रहण करने की आकांक्षा रखती थी, पर जब
 भरत ने निषेध किया—घृत ग्रहण करने की मनाही की, तब यह
 पहली धाविका हुई । भरतने प्रभुके समीप श्रावकपना अंगीकार
 किया, यानी उसने श्रावक होनेका घृत अङ्गीकार किया, क्योंकि
 भोग कर्मोंके भोगे बिना घृत या चारित्र्य की प्राप्ति नहीं होती । मनुष्य
 निर्यश्च और देवताओं की मण्डलियों में से किसी ने घृत ग्रहण
 किया, किसोने श्रावकपना अङ्गीकार किया और किसीने सम
 क्त धारण किया । पहले के राजतपस्वियों में से कच्छ और
 महाकच्छके सिया और समीने स्वामीके पास आकर फिर रुशी
 से दीक्षा ग्रहणकी । ऋषभसेन—पुण्डरीक प्रभृति साधुओं, ग्राह्णी

घोर साध्वियों, भरत आदि श्रायकों और सुन्दरी प्रभृति श्रात्रि
 काओं से उस समय चार तरह के संघकी व्यवस्था आरम्भ हुई
 जो धर्मके एक श्रेष्ठ प्रहरेके रूप में आजतक चली जाती है। उस
 समय प्रभुने गणधर नाम कर्मनाले प्रथमसेन आदि चौरासी सद्
 बुद्धिमान् साधुओं को, जिनमें सारे शास्त्र समाये हुए हैं, ऐसी
उत्पात विगम और धौल्य नामकी त्रिपदी का उपदेश दिया।
 उन्होंने उस त्रिपदी के अनुसार अनुक्रम से चतुर्दश पूर्व और
 द्वादशाङ्गी रची। इसके बाद देवताओं से घिरा हुआ सुरपति
 इन्द्र, दिव्यचूर्ण से भरा हुआ एक थाल लेकर, प्रभुके चरणोंके पास
 आकर पाडा हुआ, तब प्रभुने पड़े हो कर अनुक्रम से उनके
 ऊपर चूर्णश्लेष कर—चूर्ण फेंक कर, सूत्र से अर्थ से सूत्रार्थ से
 द्रव्य से, गुण से, पर्याय से, और नय से उन को अनुयोगकी
 अनुज्ञा दी तथा गुणकी अनुमति भी दी। इसने बाद देवता,
 मनुष्य और उनकी त्रियोंने, दु दु भि की ध्वनिके साथ उन पर
 चारों ओर से वासश्लेष किया। मेघके जलको ग्रहण करने
 वाले वृक्ष की तरह प्रभु की घाणी को ग्रहण करने वाले सब
 गणधर हाथ जोड़े खड़े रहे। तब प्रभुने पहले की तरह पूर्वा-
 भिसुख सिंहासन पर बैठ कर, फिर शिक्षापूर्ण धर्म-देशना या
 धर्मोपदेश दिया। उस समय प्रभु रूपी समुद्र में से उत्पन्न हुई
 देशना रूपी उद्दामवेलाकी मर्यादा के जैसी पहली पौरुषी
 पूरी हुई।

बलिउत्क्षेप ।

उस समय अखण्ड, तुप रहित और उज्वल शाल से बनाया हुआ चार प्रस्थ जितना बलि थाल में रखकर, समयसरणके पूर्व द्वार से, अन्दर लाया गया ; अर्थात् उस समय बिना टूटे हुए साफ और सफेद चाँवलों की चार प्रस्थ प्रमाण बलि थाल में रख कर, समयसरण के पूर्व दरवाजे से भीतर लाई गई । देवता होने उसमें सुगन्धी डालकर उसे दूनी सुगन्धित कर दिया था, प्रधान पुष्य उसे उठाकर लाये थे और भरतेश्वरने उसे बनवाया था । उसके आगे आगे यजने वाली दुःसुमि से दक्षों दिशाएँ गुँज रही थीं । उसके मंगल गीत गाती गाती स्त्रियों चल रही थीं । मानो प्रभुके प्रभाव से उत्पन्न हुई पुण्यराशि हो, इस तरह वह पौर लोगों से चारों ओर से घिर रहा था । मानों घोने के लिए कन्याएँ रूपी धान्यका बीजहो, इस तरह वह बलि प्रभु की प्रदक्षिणा कराकर उछाल दिया गया । जिस तरह मेघ के जलको घातक—पपहिया ग्रहण करता है, उसी तरह आकाश से गिरनेवाले उस बलि के आधे भाग को आकाश में ही देवताओं ने लपक लिया । जो भाग पृथ्वी पर गिरा उसका आधा भरत राजाने लेलिया और जो बाकी रहा उसे राजाके गोती भार-योंने आपस में बाँट लिया । उस बलिका पेसा प्रभाव है, कि उस से पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और छै महीने तक नये रोग पैदा नहीं होते । इसके बाद उत्तर के दरवाजेकी राहसे प्रभु बाहर निकले । जिस तरह पद्म अण्ड के फिरने से भीरा फिरने

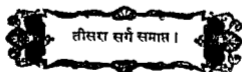
लगता है उसी तरह सब इन्द्र प्रभुके पीछे—पीछे चलने लगे। वहाँ से चलकर प्रभु सोने के कोट के बीच में, ईशान कोन के देवउद्देशमें विश्राम लेने या आराम करने को बैठे। उस समय गणधरों में प्रधान ऋषमसेन ने भगवान् के पाद पीठ पर बैठकर धर्म-देशना या धर्मोपदेश देना आराम किया, क्योंकि स्वामी के खेद में विनीत, शिष्योंका गुणदीपन और दोनों ओर से प्रती-ति ये गणधर की देशनाके गुण हैं। ज्योंही गणधर ने देशना समाप्त की, कि सब लीग प्रभुको प्रणाम कर करके अपने अपने घरों को गये।

इस प्रकार तीर्थ वेदा होते ही गोमुप नामका एक यक्ष प्रभुके पास रहनेवाला अधिष्ठायक हुआ। उसके दाहिनी तरफ के दोनों हाथों में से एक वरदान चिह्नवाला था और एकमें उत्तमधम्ममाला सुशोभित था। उसके बायीं तरफ के दोनों हाथों में रिजौरा और पाश थे। उसके शरीरका रंग सोनेका सा था और हाथी उसका वाहन था। ठीक इसी तरह प्रभुके तीर्थ में उनके पास रहनेवाली एक प्रतिचक्रा—यक्षेभ्यरी नामकी शासनदेवी हुई। उसकी कान्ति सुवर्णके जैसी थी और गरुड इसका वाहन था, उसकी दाहिनी ओर की भुजाओं में वरप्रदचिह्न थाण, चक्र, और पाश थे और बायीं ओर की भुजाओं में धनुष, घन्न, चक्र और बड्डुश थे।

युच और यज्ञिणी की स्थापना

क्षत्रों—सितारों से घिरे हुए

महार्जियों से घिरे हुए प्रभु वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये, अर्थात् किसी दूसरी जगह चले गये। उस समय जब प्रभु राह में चलते थे, भक्ति से वृक्ष नमते थे—भुङ्कते थे, काँटे नीचा मुझ करते थे और पक्षी परिक्रमा देते थे। विहार करने वाले प्रभुको शत्रु, इन्द्रियार्थ और घायु अनुकूल होते थे। उनके पास कम से कम एक कोटि देव रहते थे। मानो भवान्तर-जमान्तरमें उत्पन्न हुए कर्मों को नाश करते देख, डर गये हों इस तरह जगदीशके बाल डाढी, नापुन नहीं घटते थे। प्रभु जहाँ जाते थे, वहाँ घेर, महा मरी, मरी, भकाल-दुर्मिश्र, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, स्थवन्न और पर-धन्न से होनेवाला भय ये नहीं उत्पन्न होते थे। इस प्रकार जगत् को विस्मित करने वाले अतिशयों से युक्त संसार में भ्रमण करनेवाले जीवों पर अनुग्रह करने की बुद्धिवाले नाभेय-नाभि-मन्दन भगवान् पृथ्वी पर घायुकी तरह येरोक टोकके—येपटके ही कर विहार करने लगे।



तीसरा सर्ग समाप्त ।

कपूर मय उत्तम धूप जलाई । इसके बाद चमधारी महाराज भरतने चक्रकी तीन प्रदक्षिणा की, और गुरु की तरफ अचग्रह से सात आठ कदम पीछे हट गये । जिस तरफ अपने तर्क कोई स्नेही—मुहुरत से चाहने वाला नमस्कार करता है, उस तरफ महाराज ने धार्यां घुटना नीचे दबाया, सुपेड कर और दाहने से पृथ्वी पर टिक कर चक्र को नमस्कार किया । दोपमें मूर्तिमान हर्ष ही हो, इनतरह पृथ्वीपतिने घर्दा ठहरकर चक्रका भष्टान्तिका उत्सव किया । उनके अलाव शहरके धनीमानी लोगोंन भी चक्र की पूजा का उत्सव किया, क्योंकि पूजित या माननीय लोग जिसको पूजा करते हैं उसे दूसरा कौन नहीं पूजता ?

भरतद्वारा कीर्गई चक्र की पूजा ।

इसके बाद उस चक्रके दिग्चिजय रूप उपयोग को ग्रहण करने की इच्छा वाले भरत महाराज ने मंगल खानके लिए खाना गार या खान घरमें प्रवेश किया । गहने कपडे उतार कर और खान के समय कपडे पहन कर, महाराज पूरवकी ओर मुह करके खान सिंहासन पर बैठे । ठीक इसी समय, मर्दन करने योग्य और न करने योग्य—मालिश करने लायक और न करने लायक खानोंको जाननेवाले मर्दनकला निपुण सधादक पुरुषोंने, देववृक्ष के पुण्य मकरन्द के जैसी सुगन्धी घाला सहस्रपाक प्रमुख तेल महाराजके लगाया । मांस, हड्डी, चमड़ा और रोमोको सुख देने वाली—चार प्रकारकी संवाहनासे और मृदुत्तमध्य और दृढ—तीन प्रकारके

हस्तलाघव से राजाको सय तरहसे संग्राह्न किया । इसके पीछे, आदर्श की तरह अम्राव कान्तिसे वात्ररूप उस राजा के दिव्य चूर्णका उषटन मला । उस समय ऊँची डगड़ीगाले नये कमलकी घाघडी की तरह शोभायमान किनती ही खियाँ सोनेके जठ—कलश लेकर खड़ी थीं । कितनी ही खियाँ मानो जल, धन रूप होकर कलशको आधार मय हुआ हो इस तरह दिखाती हुई चाँदीके कलश लेकर खड़ा थीं, कितनी ही खियाँ अपने सुन्दर हाथोंमें लीलामय सुन्दर नील कमल की झान्ति करने वाले इन्द्रनीलमणि के घटे लिये हुए थी, और कितनी ही सुभ्रु वालाओं—कितनी ही सुन्दरी पोडशी रमणियोनि अपने नख—रत्नकी कान्ति रूपी जलसे भी अधिक शोभावाले दिव्य रत्नमय घटे ले रहे थे । जिस तरह देवता जिनेन्द्र भगवान् को स्नान कराते हैं, उसी तरह इन वालाओं ने अनुक्रम से सुगन्धित और पवित्र जल धारामों से धरणी पति को स्नान कराया । इसके बाद राजाने दिव्य विलेपन लगवाया और दिशाओंके आभाष—जैसे उज्ज्वल धव्य पहने । फिर मानो यश रूपी नवीन अङ्कुर हो, येना मगल मय चन्दन का तिलक उसने ललाट पर लगाया । जिस तरह आकाश मार्गयदे घटे तारों के समूह को धारण करता है उसी तरह यशपुञ्जके समान उज्ज्वल मोतियों के अलंकार—गहने पहने । जिस तरह कलशसंमहल शोभा देता है, उसी तरह अपनी किरणोंसे सूर्य को लज्जाने वाले मुकुट से घट सुशोभित हुआ । धारागताओंके कर कमलों से बारम्बार उठने वाले कानों के कर्णफूल जैसे दो चँवरोंसे घट

शोभित होने लगा । जिस तरह लक्ष्मी के धारूप कमलों को धारण करने वाले पद्म—सरोवर या कमलमय सरोवर से हिमालय पर्वत शोभायमान लगता है ; उसी तरह सोनेके कलश धारण करने वाले सफेद छत्रसे वह शोभने लगा । मानो सदा पास रहने वाले प्रतिहारी—भर्दली हों, इस तरह सोलह हजार यज्ञ भक्त होकर उसे घेर कर पडे हो गये । पीठे इन्द्र जिस तरह पेरघत पर चढ़ता है ; उसी तरह ऊँचे कुम्भ स्थल के शिखर से दिशामुख को ढकने वाले रत्नकुञ्जर पर वह सवार हुआ । तब उत्कट मद की धाराओंसे मानों दूसरा मेघ हो, उस तरह उस आनिवान हाथीने बड़े जोर से गर्जना की, मानो आकाश को पहुँचित करता हो, इस तरह हाथ ऊँचे करके बन्दगीण एक साथ “जय जय” शब्द करने लगे । जिस तरह घाचाल गवैया दूसरी गाने वालियों से गाना कराता है, उस तरह ऊँचा नाद करने वाला नगाडा दिशाओं से नाद कराने लगा, और सब सैनिकों को बुलाने में दूत जैसे अन्य श्रेष्ठ मंगल मय धाजे भी बजने लगे । मानो धातु समेत हो, ऐसे सिन्दूर को धारण करने वाले हाथियों से, अनेक श्यको धारण करने वाले सूरज के घोड़ोका धोखा करने वाले अनेक घोड़ोंसे और अपने मनोरथ जैसे विशाल रथोंसे और मानो वशीभूत किये हुए सिंह हों—ऐसे पराक्रमी पैदलों से अलङ्कृत होकर महाराजा भरतेश्वर मानो अपनी सेना के चलनेसे उड़ी हुई धूल से दिशाओं को घल्र पहनाते हुए पूर्य दिशाकी तरफ चलदिये ।

भरतचक्री की दिग्विजय के लिये तैयारी ।

उस समय आकाश में फिरते हुए सूर्य विषय की तरह, हजार यक्षोंसे अधिष्ठित चक्र रत्न सेना के आगे चला । दण्डरत्न को धारण करने वाला सुषेण नामक सेनापतिरत्न अश्वरत्न के ऊपर चढ़कर चक्रकी तरह आगे आगे चला । मानो सारी शान्ति कराने वाली त्रिधियों में देहधारी शान्ति मन्त्र हो, इस तरह पुरोहितरत्न राजाके साथ चला । जङ्गम अतशाला जैसा, फौजके लिए हर मुकाम पर दिव्य भोजन कराने में समर्थ गृहपतिरत्न, विध्वक्कमा की तरह, शीघ्रही पहाय आदि करने में समर्थ वर्द्धकी रत्न और चक्रचर्तों के सब स्कन्धाधारों पहायों के प्रमाण और विस्तार की शक्ति वाला होने में अपूर्व चर्मरत्न और छत्ररत्न महाराजा के साथ चले । अपनी कान्ति से सूरज और चन्द्रमा की तरह अंधेरे को नाश कर सकने वाले मणि और काष्णिणी नामक दोरत्न भी चलने लगे और सुर असुरोंके सारसे बनाया गया हो, ऐसा प्रकाशमान पद्मरत्न भी नरपति के साथ चलने लगा ।

गंगा तटपर पड़ाव ।

जिस समय चक्रचर्तों मरुतेश्वर प्रतिहार की तरह चक्रका अनुसरण करते हुए राहमें चले, उस समय ज्योतिषियोंकी तरह अनुकूल दृष्टा और शकुनों ने सब तरह से उनको दिग्विजय की सूचना दी । किसान जिस तरह ऊँची नीची जमीन को हलसे

हमज़ार—घौरस करते हैं, उसी तरह सेनापे आगे भागे चलने वाला सुपेण सेनापति दण्डरत्न से विशम या नायरावर रास्तों को समान करता चलता था। सेनापे चलने से उड़ी हुई धूलिपे कारण दुर्दिन बना हुआ आकाश रथ और हाथियों के ऊपर की पताका रूप धगलों से शोभित हो रहा था। चमरतीं की सेना जिसका अन्त दिखाई नहीं देता था अस्त्रलित गतिवाली गङ्गा दूसरी गङ्गा नदी सी मालूम होती थी। दिगधिजय उत्सव के लिये रथ चितकारों से घाटे दिनदिनाने से और हाथी चिह्नाडोंसे परस्पर शीघ्रता करते थे। सेनापे चलने से धूल उडती थी, तो भी सवारों के भाले उसके भीतर से चमकने थे, इससे वे ढकी हुई सूर्य की किरणों की हँसी करते हों ऐसा मालूम होता था। सामानिक देवों से घिरे हुए इन्द्रकी तरह मुकुटधारी भक्ति भावपूर्ण राजाओंसे घिरा हुआ राजकुंजर भरत यीवमें सुशोभित था। पहले दिन चक पक योजन या चारकोस चलकर पड़ा होगया। उस दिनसे उस प्रयाण के अनुमान से ही योजन या माप आरम्भ हुआ। हमेशा एक एक योजन के मान से प्रयाण करते हुए चार चार कोस रोज चलते हुए और पढाय करते हुए महाराजा भरत कितनेही दिनोंमें गङ्गा नदीके दक्षिणी किनारे पर आ पहुँचे। महाराजा भरतने, गङ्गा नदीकी विशाल भूमिको भी, अपनी सेनाके लुदे लुदे पढाये से संकुचित करके, विश्राम किया। उस समय गङ्गाके किनारे की जमीन पर, हाथियोंपे भरते हुए मदसे, वर्षा काल की तरह काचड होगई। जिस तरह मेघ समुद्र से जल

प्रहण करते हैं, उसी तरह उत्तमोत्तम गजराज गङ्गा के निर्मल प्रवाह से इच्छानुसार जल ग्रहण करने लगे। अतएव चपयनासे धारम्भार कृत्रुने घाले घोड़े गङ्गा किनारे पर तरंगों का भ्रम उत्पन्न करने लगे और यही मिहानत से गङ्गा के भीतर घुसे हुए हाथी घोड़े भैसे, और साड पेसा भ्रम उत्पन्न करने लगे मानों उस उत्तम नदी में नये नये प्रकारके मगर मच्छ प्रभृति जल जीव हों। अपने किनारे पर डेटा डालने वाले राजाके अनुकूठ हो, इस तरह गङ्गा नदी अपनी उछलने वाली लहरों की बूदो या छोटों से राजा की फौज की धकान को जन्दी जल्दी दूर करने लगी। महाराज की अग्रदस्त फौज या यही भारी सेना से सेवित हुई गङ्गा नदी शत्रुओंकी कीर्ति की तरह वृश होने लगी अथात् महाराज का सेना इनकी यही थी कि उसने गङ्गाके किनारे टहरने और उसका जल काममें लाने से गङ्गा क्षीणकाय होने लगी—उडका डट कम होने लगा। भागीरथी के तीर पर उगे हुए देवदारु के वृक्ष सेना के गजपतियों के लिये प्रयत्नसिद्ध धन्यतस्मान इन्द्र अपनी गन्तव्य पर लगे हुए देवदारु के वृक्ष, विनाप्रयत्न इन्द्र के वृक्षों के छूटों का काम देने लगे।

हाथियोंके महायत हाथियोंके लिये इन्द्र, सुन्दरी, और गूलर के पत्ते कुल्हाड़ियोंसे काट दे। पत्तियोंके अडे हुए हजारों घोड़े अपने ऊँचे इन्द्रके वृक्षों से हुए शोभायमान थे, अथवा इन्द्रके वृक्षों से थे, उनके ऊँचे ऊँचे कानों के लिये वे ठोकर

अश्वपाल या घोड़ों की खयरगिरी करने वाले सर्पस, यधुओं की तरह, मोँठ,मूँग, और चने वगैर, लेकर घड़ी तेजी से घोड़ोंके सामने रखते थे। महाराजकी छावनीमें विनिता नगरी की तरह क्षण भर में ही, घौष, तिराहे और हुकानोंकी पक्तियाँ लग गईं। गुप्त, बड़े बड़े और स्थूल तमबुओं में सुखसे रहने वाले सेनाके लोग अपने पहलेमे महलों की भी याद न करते थे। खेजड़ी, दर.और यबूलके काँटेदार वृक्षों को खाने वाले ऊँट सेनाके कण्टक शोधन या कमा करते से जान पड़ते थे। स्वामी के सामने सेवकों की तरह, पशर, जाइयी के रैतीले किनारे पर, अपनी चाल चलायमान करते,हुए लोटते थे। कोई लकड़ी लाता था कोई नदी या जल लाता था, कोई दूध की भारी लाता था कोईसाग सब्जी औरफल प्रभृति लाता था, कोई चूल्हा ज्वादता था, कोईशाल खाँडता था कोई भाग जलाता था, कोई भात राधता था कोई घरकी तरह एकान्त में निर्मल जल से स्नान करता था कोई स्नान करके सुगन्धित धूपसे शरीर को धूपित करता था। कोई पहले पैदलप्यादों को खिलाकर, पाँछे स्वय इच्छा मत भोजन करता था। कोई छिरियों सहित अपने अङ्ग चन्दनादिका विलेपन करता था। उन चमचर्ती राजाकी छावनी में सारे जरूरी सामान लीलासे अनायासही मिल सकते थे, अत कोई भी आदमी अपने तद कण्टक में आया हुआ न समझता था अर्थात् वहाँ जरूरियातकी समी चीजें बड़ी हो आसानी से मिल जाती था। अत घरकी तरह ही आराम था, इससे कोई यह न समझता था कि, हम घर छोड़ कर सेनाके साथ आये हैं।

मागधतीर्थ पर भरतचक्रो का आना ।

वहाँ एक दिन रात बिनाकर—२४ घण्टे ठहर कर—सवेरे ही कूच किया गया । उस दिन भी एक योजन चार कोस चलने वाले चक्र के पीछे चक्रवर्ती भी उतनाही चले । इस तरह सदा चार कोस रोच चलने वाले चक्रवर्ती महाराज मागध तीर्थ में आ पहुँचे । वहाँ पूरे समुद्र के किनारे महाराज ने ३६ कोसकी चौड़ाई और ४८ की लम्बाई में सेनाका पड़ाव किया; यानी ३६ सेना १७०८ कोस या ३४५६ वर्गमाल भूमिमें ठहरी । धर्मकिरत्न ने वहाँ सारी सेना के लिये आवास—प्यात बनाये । और धर्मरूपी हाथी की शालारूप पीपलशाला भी बनाई । जिस तरह सिंह पर्वत से उतरता है, उसी तरह महाराजा भरत उस पीपलशालामें अनुष्ठान करने की इच्छा से हाथी से उतरे । संयमरूपी साम्राज्य लक्ष्मी के सिंहासन—जैसा दूबका नूतन संघारा भी चक्रवर्ती ने वहाँ बिछाया । हृदय में मागध तीर्थ कुमार देवको धारण करके, अर्थसिद्धि का आदि द्वार रूप मष्टममक, यानी अष्टमका तप किया । पीछे निर्मल वस्त्र पहन, फूलों की माला और मिलेपन को त्याग कर, शस्त्र को छोड़कर, पुण्यको पीपण करने के लिये, पीपल के समान पीपलवन ग्रहण किया । अध्ययन पद में जिस तरह सिद्धि नियास करनी है, उसी तरह उस दूबके संघारे पर पीपलवती महाराज ने जागते हुए पर किया रहित हो कर निवास किया । शरदु ऋतु के मेघोंमें जिस तरह सूर्य निकलता

है उसी तरह या वैसी ही कान्तिके साथ महाराजा पीपघागर में से निकले। पीछे सर्व अर्थ को प्राप्त हुए राजा ने स्नान करके बिलविधान किया क्योंकि यथार्थ विधि को जानने वाले पुरुष विधि को नहीं भूलते।

मागध तीर्थ के अधिपति देवको साधन करने का यत्न।

इसके बाद पवन के जैसे वेग आले और सिंहके समान धैर्य धारी घोडोंके रथमें उत्तम रथी भरतराय सवार हुए। मानों चलता हुआ महल हो, इस तरह उस रथके उपर ऊँची पताका वाला ध्वजस्तम्भ था। शत्रुागार की तरह अनेक धोणियों से यह विभूषित था और मानो चारों दिशाओं की विजय लक्ष्मी के बुलाने के लिये रखी हों, ऐसी टन टन करने वाली चार घण्टियाँ उस रथके साथ बंधी हुई थीं। शीघ्र ही इन्द्र के सारथी मातलि की तरह राजा के भागको समझने वाले सारथी ने रास हाथोंमें लेकर धोड़े हारि। महा हस्ती रूपी गिरियाला बड़े बड़े शकट रूपी मकर समुह वाला, घपल शब्द रूपी बह्लोल वाला, विचित्र शस्त्र रूपी भयङ्कर सर्पों वाला, पृथ्वी की उछलती हुई रज रूपी धेला वाला और रथों के निर्घोष रूपी गरजना वाला—दूसरे समुद्र के जजा यह राजा समुद्र के किनारे पर थापा। (यहाँ रुपक थापा है, महाराजा भरत की तुलना समुद्रसे की है, समुद्र में पवत होते हैं, महाराज के पास पर्वत समान हाथी थे, समुद्र में बड़े

बड़े प्राह और मगर मच्छ होते हैं, राजाके पास मगर मच्छ जैसे शकट या गाडे थे, समुद्रमें बहोली होती हैं, राजा के पास बहोली के बजाय खपल घोडे थे, समुद्र में सर्प रहते हैं, उनके बजाय राजाके यहाँ विचित्र विचित्र अस्त्र शस्त्र थे। समुद्र में किनारा होता है, राजाकी सेनाके चलने से जो धूल उडनी थी, घड़ी घेला या किनारा था, समुद्र गर्जना करता है, महाराजा के रथ गर्जना करते थे -- अग महाराजा दूसरे समुद्र के समान थे, फिर मच्छों की आधाजों से जिसकी गर्जना बड़गर है, ऐसे समुद्रमें रथकी धुरी तक रथको प्रविष्ट किया। पीछे एक द्वाय धनुषके मध्य भाग में रथ, एक द्वाय प्रत्यक्षा के अन्त में रथ, प्रत्यक्षा को चलाकर पञ्चमीक चन्द्रमाके आकार धनुष को घनाया, और अपने द्वायसे धनुषकी प्रत्यक्षा धींचकर, मानों धनुषके का आदि ओंकार हो—इस तरह ऊँची आवाजसे टंकार किया। पीछे पतल डर में से निकलते हुए नागके जैसा अपने नामसे अद्विज इन्द्र के द्वाय तरकस में से निकाला। सिंहके कण जैसी मुण्ड हैं, सूँडे अगले भागसे उसे पकड कर, शशुनों में बसदरदके अस्त्र इन्द्र के को प्रत्यक्षाके साथ जोड दिया। सोने के बल्लूके इन्द्र के की तुलना करने वाला यह सुवर्ण मय शय चक्रके बने थे धींचा। महाराज के नख रत्नोंसे प्रमार दत्त मुँह के अन्त में रथ को धाण मानों अपने सहोदरों से घिरा हो इन्द्र के अन्त में धींचे हुए धनुष के अन्तिम भागमें लक्ष्मण के अस्त्र के धुले हुए मुँहके मानर घञ्जट के अन्त में रथ को धींचा।

यानी ऐसा जान पड़ता था गोया मौत मुँह खोलकर अपनी चञ्चल जीम लपलपा रही हो। उस धनुषके घेरे में से दीखने वाले लोकपाल महाराज भरत, मण्डलमें रहने वाले सूर्य की तरह, महा भय डूर मालूम होते थे। 'उस समय यह राजा मुझे स्थान से धलाय मान करेगा, अथवा मेरा निग्रह करेगा' ऐसा समझ कर लयण स समुद्र क्षुभित होने लगा। फिर पृथ्वी पतिने बाहर, बीचमें, मुख में और पंख पर नाग कुमार, असुर कुमार और सुवर्ण कुमारादिक देवताओं से अधिष्ठित किये हुए दूतकी तरह आक्षाकारी और शिक्षाभक्षर से भयडूर उस घाण को मागध तीर्थके अधिपति पर छोडा। उत्कण्ठ पड़ोके सन सनाहट से साबाशको गुञ्जाता हुआ यह घाण तत्काल गरुड के जैसे वेगसे चला। मेघसे जिस तरह रिजली, आकाश से जिम तरह उद्व्याग्नि, अग्नि से जिस तरह तिनक, तपस्वीसे जिस तरह तेजोलेश्या सूर्यका तमणि से जिस तरह अग्नि और इन्द्र की मुञ्जासे छुटकर जिस तरह घग्ग शोभा पाता। उसी तरह राजाके धनुषसे निकला हुआ यह घाण शोभा पाने लगा, क्षण भरमें बारह योजन—४८ कोस उलघ कर यह घाण, हृदयके मीनर शून्य के समान मागधपति की समा में जा गिरा। जिस तरह लाठी या दण्डे की घोट लगने से सर्प ऋद्ध होता है उसी तरह घाण के गिरने से मागधपति ऋद्ध हुआ। भयडूर धनुष की तरह उसकी दोनों भाँपें नडकर गोल होगई, जलनी हुए आग की समान उसके नेत्र लाठ होगये। धोंकनी की तरह उसकी नाक फूलने लगी और तक्षक सर्पका छोटा भाई हो इम तरह यह

अधर दल-होटोंको फड़काने लगा । आकाश में धूमकेतुके समान लल्लाटमें रेवामों को घड़ा, बाजीगर जिस तरह सर्प का पकड़ता है, उसी तरह अपनी दाहिने हाथसे आयुध की ग्रहण कर थायें हाथ से, शत्रुके गाल की तरह, आसन पर ताड़न कर, विषम्याला जैसी थाणी से यह बोला ।

मागधतीर्थपति का कोप ।

अप्रथित वस्तु की प्रार्थना करने वाले भविचारी विशेष शून्य और अपने तर्क धीर मानने वाले बिम्ब कुसुद्धि पुरय ने मेरी समामें यह याण कैका है ? ऐसा कौन पुरय है, जो पेरगयत हाथी के दौल तोड कर अपने जानों का गहना बनाना चाहता है ? ऐसा कौन पुरय है जो, गरुड के पंखों का मुकुट बनाना चाहता है ? शेष नाग के मस्तकके उपर की मणिमाला को ग्रहण करने की कौन आशा करता है ? कौन पुरय है, जो सूर्यके घोड़ों की हरने की इच्छा करता है ? ऐसे पुरय के प्राणो को मैं उसी तरह हरण करता हूँ, जिन तरह गरुड सर्पके प्राणोंको हरण करता है ।” यह कहता हुआ मागध पति बड़े जोर से उठकर खड़ा हो गया और बिलमें से सर्प की तरह म्यानसे तलवार खींचा और आकाश में धूमकेतु का झम करने वाली तलवार को चम्काने लगा । समुद्र बेलके समान उसका सारा दुःखार परिवार भी एक दम कोपटोप सहित तत्काल खड़ा होगया । कोई अपने सङ्गों से आकाशको मानो दृष्ण विद्युत्तमय करते हों, इस तरह करने लगे । कोई

अपने उज्ज्वल वसुतन्द नामक शायुध से मानों अनेक घन्ट्र घाना लो—इस तरह करने लगा । कोई मृत्युची दन्त—पंक्तिसे घनाप गये हों ऐसे अपने तीक्ष्ण भालोंको घागे और उछाट्य लगे । कोई अग्निची जीम जैसी फरसियों को फेरने लगे , कोई राहुये समान मयङ्कर पर्यन्त भाग घाले मुद्गर फेरने लगे । कोई वज्रची उरकट धार जैसे त्रिशूल की प्रहण करने लगे, [और] कोई यमराज के दण्ड जैसे प्रचण्ड दण्ड को ऊँचा करने लगे । कितने ही शत्रुको विस्फोट करने में कारणरूप अपने भुजदण्डों को अस्फोट कराने लगे । कितने ही मेघनाद जैसे उर्जित सिंहनाद करने लगे, कितने ही 'मारो मारो' इस तरह कहने लगे , कितने ही 'पकड़ो पकड़ो' इस तरह कहने लगे । कितने ही 'बड़े रहो, छोड़े रहो' और कितने ही 'चलो घनो' इस तरह कहने लगे । मागध पतिका सारा परिवार इस तरह विचित्र कोपकी श्रेष्ठा करने लगा । इससे बाद प्रधान—मन्त्रीने आकर घाण को अच्छी तरह देखा । इतने में उसे उसके ऊपर मानो दिव्य मन्वाक्षर हों ऐसे उदार और घटे सारघाले नीचे के मुताबिक अक्षर दाखे —

“साक्षात् सुर असुर और नरों के ईश्वर
 ऋषभ स्वामी के पुत्र भरत चक्रवर्ती तुम्हे ऐसा
 आदेश करते हैं, कि यदि राज्य और जीवन की
 कामना हो तो हमें अपना सर्वस्व देकर हमारी
 सेवकाई करो ॥”

इसका गुलासा यह है कि, उस तीर पर यह लिखा हुआ था

जि देवना, राक्षस और मनुष्यों के साक्षान् ईश्वर प्रारूपन भगवान् हैं। उन्हीं के पुत्र महाराज भरत चक्रवर्ती आपकी यह हुयम देने हैं, कि अगर आप अपने राज्य और जानमाल की खेरियत चाहते हो तो अपना स्वस्थ हमारी भेंट करके हमारी टहल चन्दगी करो। अगर आप इस आज्ञा को न मानोगे—हुयम अटूठी करोगे, तो आपका राज्य छीन लिया जायगा और आपका जीवन समाप्त कर दिया जायगा।

मागधतीर्थपतिका सेवक होना।

ऐसे अक्षरों को देखकर मंत्री ने अग्रधिज्ञान से सारा मामला समझ लिया और यह घण सचको दिखाया और ऊँची आवाज से बोला—“अरे समस्त राजा लोगों! सादस करने वाले, मतलब की बात न समझने वाले, अपने मालिक का मतलब कराने वाले, और फिर अपनी जाती को स्वामिक माननेवाले आप लोगों को धिक्कार है। इस भरत क्षेत्रमें पहले तीर्थद्वार, श्री भूपत स्वामीके पुत्र महाराज भरत पहले चक्रवर्ती हुए हैं। वे अपने लोगों से दण्ड माँगने हैं और इन्द्रके समान प्रचण्ड शासन वाले वे हम सचको अपनी आज्ञा या अधीनता में रखना चाहते हैं। कदाचिन समुद्र सोखा जा सके, गेरु पर्वत उखड़ जाय यमराज मारा जाय, पृथ्वी उल्ट जाय, चक्र पीसा जाय, और यह जग्गि बुझ जाय, पर पृथ्वी पर चक्रवर्ती की पराजय हो नहीं सकती, चक्रवर्ती को कोई जीत नहीं सकता, चक्रवर्ती अजेय है

मतपद्य हे बुद्धिमान राजा । इन ओली बुद्धियालों का मनाकर, और वण्ड नैवार करके, चक्रवर्ती को प्रणाम करनेके लिये कृष घोळ्हे । गंधदस्ती का घुँघकर जिस तरह दूसरे दापी शान्त हो जाते हैं—कान पूछ नहीं दिलाते—उत्पात नहीं करते, उसी तरह मंत्री को घातें सुनकर और घाण पर लिये अक्षर देखकर मगधाधिपति शान्त हो गया—उसका क्रोध दया हो गया । शेष में, यह घाण और मंड को लेकर भरत चक्रवर्ती के पास आया और प्रणाम करके इस भाँति कहने लगा —“पृथ्वीनाथ । तुमुद खण्डको पूर्णभासी के चन्द्रमा की तरह, भाग्य योगसे मुझे आप के दशनमिले हैं । मगधान् ऋषभ स्वामी जिस तरह पहले तीघे डूट होकर विजयी हुए हैं उसी तरह आप भी पहले चक्रवर्ती होकर विजयी हों, जिस तरह पैराघत हाथो का कोई प्रतिदस्ती नहीं, घायुके समान कोई घलवान नहीं और आकाश से बढ़कर कोई मानवाला नहीं, उसी तरह आप की धराधरी करने वाला भी कोई नहीं हो सकता । कान तक गींचे हुए आपके धनुष में से निकले हुए घाण को, इन्द्र धनुषकी तरह, कौन सह सकता है ? मुझ प्रमादी पर ट्टपा बरसे, आपने कस्तव्य जनाने के लिये, छड़ी दार की तरह, यह घाण फेंका, इसलिये हे नृपशिरोमणि ! आज से मैं आप की आज्ञा को शिरोमणि की तरह, मस्तक पर धारण करूँगा । हे स्वामिन ! मैं आपके आरोपित किये—स्थापित किये जयस्तम्भ की तरह, निष्कपट भक्ति से, इस मागधतीर्थ में रहूँगा । यह राज्य, यह सब परिवार, स्वयं मैं और अन्य

सब थापका ही है, अपने सेवक की तरह, मुझे आज्ञा कीजिये ।

इस तरह बहकर उसने यह घाण मागध तीर्थ का जल मुकट और दोनों कुण्डल अर्पण किये । भरतरायने उन सब चीजों को स्वीकार करके उसका सत्कार किया, क्योंकि महात्मा लोग सेवकों के लिए नम्र हुए मनुष्यों पर कृपा ही करते हैं ।—अर्थात् बड़े लोगों की शरणमें जो कोई नम्र हो कर, उनकी सेवकाई के लिये, जाता है उस पर वे दया किया करते हैं । इसके बाद इन्द्र जिस तरह अमरावती में जाता है, उसी तरह चक्रवर्ती रथ को वापस लौटाकर, उसी राह से छावनी में आये । रथ से उतर, स्नानकर, परिवार समेत उन्होंने अष्टम का पारणा किया । पीछे, आये हुए मागधाधीशका भी चक्र की तरह, चक्रवर्तीन वहाँ बड़ी श्रद्धाके साथ अष्टान्दिक, उत्सव किया । मानो सूर्यके रथ में से ही निकल कर आया हो इस तरह तेज से भी तीक्ष्ण घन अष्टाद्विका उत्सव के पीछे आकाश में चला और दक्षिण दिशा में यरदान तीर्थ की आरंभ रख किया । प्रादि उपसर्ग जिस तरह धातु के पीछे जाते हैं । उसी तरह चक्रवर्ती भी उसके पीछे पीछे चलने लगे ।

भरत चक्रि का वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण ।

वरदाम पति का कोप और अचिन होना ।

सदा योजन मात्रप्रयाण से चलते हुए—नित्य चार कोस

की मञ्जिल तप करते हुए, अतुल्य से जैसे राजहंस मान सरोवर पहुँच जाता है, उसी तरह सन्नयतीं दक्षिण समुद्रके नगदीक भा पहुँचे। इलायची लौंग, चिरींजी और कंकोल के वृक्षों की जहाँ बहुतायत या इफरात है, उसी दक्षिण सागरके निकट सन्नयतीं ने अपनी सेना का निवास कराया, महाराजकी आज्ञा से, पहले ही की तरह, चर्द्धकिरदने सैन्यके निवास गृह और पीपधशालाकी वहाँ रचनाकी। उस घरदा तीर्थ के देवता को हृदय में धारण करके, महाराज ने अष्टमका तप किया और पीपधशाला में पीप धमत ग्रहण किया। पीपध पूर्ण होने पर, पीपध घर में से निकल कर, धनुर्दारियों में अग्रसर, महाराजने कालपृष्ठ रूप दण्ड ग्रहण किया और फिर सारे ही स्त्रोने से घनेदुप और करोड़ों रत्नों से जडे हुए, जयलक्ष्मी के निवास गृह उस रथ में सवार हुए। मनु—कूल पवन से चपल—हिंस्त्री हुई ध्वजा पताकाओं से आकाश मण्डल को भूयित करता हुआ वह रथ, नाव की तरह समुद्र में जाने लगा। रथको उसकी नाभि या धुरी तक समुद्र में ले जाकर, आगे बैठे हुए सारथि ने घोड़े रोके। रांकने से रथ खड़ा हुआ; फिर आचार्य जिस तरह शिष्य या चेले को नमाते हैं, उसी तरह पृथ्वीपति ने धनुष को नमा कर प्रत्यक्षा चढाई, और संग्रामरूपी नाटक के आरम्भ में नान्दी जैसा, और कालके आव्हान में मन्त्र—जैसा टंकार किया। फिर लालट पर किए हुए निलक की शोभा को घुरानेवाला घाण तरकश से निकाल कर धनुष पर चढाया। चन्नरूप किये हुए धनुष के मध्य भाग में धुरी का मम

करने वाले उस घाण की महाराज ने कान तक चींथा । कान तक आया हुआ घाण—“मैं क्या करूँ ?” इस तरह प्रार्थना करता हुआ सा दिवर्द्ध देता था । चमरती ने उसे घरदामपति की ओर छोड़ा । आकाश में प्रकाश करने वाले उस घाण का पर्यंत, घन, सपने गरुड और समुद्र दूसरा बह्मजानल समझकर मय से मीत हो गये ; अर्थात् परतों ने उसे घन समझा, सपों ने उसे गरुड समझा और समुद्र ने दूसरा बह्मजानल समझा और इस कारण डर गये । बारह योजन या छियानवे मील उल्टाय कर, वह घाण, उत्कापनन की तरह घरदामपति की सभा में गिरा । शत्रुके भेजे हुए घात करने वाले मनुष्य की तरह, उस घाणकी गिरा हुआ देख, घरदामपति कुपित हुआ और तूफानी समुद्रकी तरह, वह उदुन्नत भ्रुकुटियों में बल डालकर, उलकट घाणी से नीचे लिखे अनुसार बोला—

“पाँच से छूकर आज इस पेशरी सिंहकी बिसरन क्यारदा ? आज मृत्युने किस का पन्ना पोला ? षोढीकी ठाड़ अपने अंत्यन में आज किसे वैराग्य हुआ कि जिसने अपने मरत्य से भंग सभा में यह घाण फेंका ? इस घाण के फेंकनेवाले को इस दण्ड से ही मारूंगा ।” यह कहकर, और मोघ में लकर उड़ने लगे उठाया । मागपति की तरह घरदामपति ने दण्ड के उतर पूछाँक अक्षर देखे । जिस तरह कलकलते हँसनेवाले के कप शान्त होता है उसी तरह उन अक्षरों के दण्डर से सब शान्त हो गया, और कहने लगे—

काले साँपको घण्ड मारनेको तैयार हो, मैदा जिस तरह अपने सींगों से हाथी को मारने की इच्छा करे और हाथी अपने दाँतोंसे पर्वत को टाहने की चेष्टा करें ठीक उसी तरह मन्दबुद्धि से मैंने भी भरत चक्रवर्ती से युद्ध करने की इच्छा की।" खैर, अभी तक कुछ भी नहीं बिगडा, यह निश्चय करके उसने अपने नौकरों को भेंटका सामान जुटाने की आज्ञा दी। फिर घाण और अपूर्व भेंटों को लेकर, यह उसी तरह चक्रवर्ती के पास जानेको तैयार हुआ जिस तरह इन्द्र धृषभध्वज के पास जाता है चक्रवर्ती के पास पहुँचकर और नमस्कार करके वह थोँ थोला—हे पृथ्वी के इन्द्र! इनकी तरह, आपके घाण द्वारा घुगये जाने पर मैं आज यहाँ हाजिर हुआ हूँ। आपके स्वयं पधारने पर भी, मैं सामने नहीं आया, मेरी मूर्खता के इस दोष को आप क्षमाकरें! क्योंकि अज्ञता दोषको आच्छादन करती है। अर्थात् मूर्खता दोष को ढकती है। हे स्वामिन! थका हुआ आदमी जिस तरह आश्रयस्थल रहने का स्थान पाता है और प्यासोंको जिस तरह जलपूर्ण सरो-घर मिलता है, उसी तरह मुझ स्वामी रहित को आज आपने समान स्वामी मिला है। हे पृथ्वीनाथ! समुद्र में जिस तरह घेलेघर पर्वत होते हैं, उसी तरह आज से मैं आपका नियता किया हुआ, आपकी मर्यादा में रहूँगा।' यह कहकर भक्तिभावसे पूर्ण वरक्षामपति ने पहले की धरोहर रखी हो इस तरह वह घाण घापस साँप। सूर्यकी कान्ति से गुथे हुए के जैसा और अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला एक रत्नमय

कटिसूत्र या कमर में पहनने की बद्धनी तथा यश के समूह—जैसी बहुत दिनों की सञ्चित की हुई मोतियों की राशि उसने महाराज भरतका भेंट की इनके मिया अपनी उज्ज्वल कान्ति से प्रकाशमान रत्नाकर-सागर के सम्यग् जैसा रत्ना का ढेर भी महाराज को अर्पण किया। ये सब स्वीकार करके महाराज ने धनदापमति को अनुग्रहीत किया और उसे वहाँ अपने कीर्तिहर की तरह मुफ्तर किया। इसके बाद धरदामपतिकी कृपापूज्यक धूलाकर विश्व किया और विजयी महाराज स्वयं अपने बटुक में पधार।

रथ में से उतर कर राजचन्द्रने परिचनोके साथ अष्टम भक्त का पारणा किया और इसके बाद धरदाम पतिका अष्टान्तिक उत्सव किया। महात्मा लोग आरामीय जनां को लोभ में मान्य प्रदान करने के लिये मान्य नै है।

प्रभास तीर्थ की ओर प्रयाण ।

प्रभास पति का अधि होना ।

इसके पीछे, पराक्रममें मानी दूसरा इन्द्र हा, इस तरह घञ्चयर्त्ती घञ्चये पीछे-पीछे, पश्चिम दिशामें प्रणामतीर्थकी ओर चले। सेनाके चलने से उड़ी हुई धूल से पृथ्वी और आकाश के बीचके भाग को भरते हुए, कितने ही दिनोंमें वे, पश्चिम समुद्रके ऊपर पहुँचे। सुपारी, ताम्बूली और मात्पिक वन से श्यान पश्चिम समुद्रके किनारे पर उन्होंने अपनी सेनाका पड़ाव किया। स्व-सपतिके उद्देश से अष्टमभक्त को किया और

शालामें पीपघ लेकर बैठ । पीपघके अन्तमें मानो दूसरे घरण हो, इस तरह चक्रवर्तीनि रथमें बैठ कर सागरमें प्रवेश किया । रथको पहियेकी धूरी तक पानी में ले जाकर उहोंने अपने धनुष की प्रत्यं चा चढाई, इसके बाद जय-लक्ष्मी की प्रीहा करनेकी धीणारूप धनुर्घण्टिकी तंत्री जैसी प्रत्यंवाकी आपने हाथ से शश्यायमानु कर, ठंकार देकर, मानो समुद्रका छडी-दण्ड देना हो, समुद्रको घेरा घातकी सजा देनी हो, समुद्रके येत लगाने हों इस तरह तरकशमें से तीर निकाल कर, आसन पर बत्तिधि को बैठानेकी तरह उसे धनुष-आसन पर बिठाया । सूर्यबिम्बमें से प्रौची हुई किरण के जैसे उस घाणको उहोंने प्रभास देवकी ओर चलाया । वायु घेग से, धारह योजन—छियानचे मील समुद्रको पार करके, आकाश में घाँदना करता हुआ यह तीर प्रभामपतिके सभास्थानमें जा पडा । घाणको देखते ही प्रभासेश्वर बुपित हुए ; परंतु उस पर लिखे हुए अक्षर देखकर, अन्य रसको प्रकट करने वाले नटकी तरह, तत्काल शान्त हो गया । फिर घाण और भेंडकी दूसरी चीजें लेकर प्रभासपति चक्रवर्तीके पास आये और इस प्रकार कहने लगे —

‘हे देव ! आप स्वामीके द्वारा प्रकाशित हुआ, मैं आज ही सच्चा प्रभास हुआ हूँ । क्योंकि कमल सूरजकी किरणों से ही कमल-पानीकी सुशोभित करने वाला होता है । हे प्रभो ! मैं पश्चिममें सामन्त राजाकी तरह रह कर, सदा, पृथ्वीके शासक आपकी आज्ञा पालन करूँगा यह कह कर महाराजका फेंका हुआ घाण, युद्धमें फेंके हुए घाणको उठाकर लाने वाले सेवककी तरह भरते

भरकी सपना किंग उमरे माथही भाने मुरीमान तेज जेने बड़े
 कीधती, मुकुट, हात तथा अन्याय द्रव्य धनयत्ती को भेट किये ।
 उसे भाव्यासन देने के लिये - राजी करने के लिये—उसकी दिल
 शिकनीका शयाल करके महाराजने भेटके समस्त द्रव्य ले लिये ।
 क्योंकि भेट लेना स्थायीकी कृपा का पहला निहू है । यपारीमें
 जिस तरह वृक्षको स्थापन करते हैं, उसी तरह उसे यहाँ स्थापन
 करके—मुर्खरे करके शयुनशान महाराज अपने बटखमें पधारे ।
 बल्यवृक्षके समान गृहिरदा हाग लाये गये दिव्य भाजनोंने उन्होंने
 अष्टमन्त्र का पारणा किया और प्रभास देयका अष्टान्द्रिका उत्सव
 किया । यद्यपि पहली धार तो सामन्त जैसे राजाकीभी सत्पूति
करती उचित है ।

सिन्धु देवि प्रभृति को साधना ।

जिस तरह दीपकके पीठे पीठे प्रकाश चलता है, उसी तरह
 वृक्षके पीठे पीठे चलने वाले धनयत्ती मगराज समुद्रके दक्षजन
 किनारेके नजदीक, मिशधनकीके किनारे पर आ पहुँचे । उनके
 किनारे किनार पूर्वाभिमुख चलकर सिन्धुदेवी के सदनके समीप
 उन्होंने पहचान डाला । वहाँ अपने मनमें सिन्धुदेवी का स्मरण
 कर उन्होंने अष्टमन्त्र किया । इससे, वायुने ताडित
 लहरोंकी तरह सिन्धुदेवी का आसन ध्वजयमान हुआ ।
 अथविज्ञान से धनयत्ती को भाग्य रूप समझ, उत्तमोत्तम
 दिव्य धनुष भेट में देने के लिये लेकर, उनके समानार्थ यह

उनके सामने आई। देवीने आकाशमें ठहरकर 'जय जय' कहते हुए भाशी गंध पूज व कहा—“ह चक्रयत्तीं। मैं यहाँ भागकी टहलुगी होकर रहती हू आप आशा दें घड़ी काम करू।” यह कहकर लक्ष्मी देवीके मन्त्र और निधानकी स्तुति जैसे रत्नोंसे भरे हुए १००८ मूत्र या घड़े, कीर्ति और जय लक्ष्मीके एक भाग बैठनेको बो हों ऐने रत्नमय दो मद्रासन शेष नामक मस्तक पर रहने वाली मणियोंसे बने हों ऐने प्रदीप्त रत्नमय पादुरक्षक—पाजूदन्द बीच में सूर्यम्बिका कान्ति रखी बो ऐसे कड, और मुहमें समा जान घ ले सुकोमल गर्मानर्म दिव्यरत्न उसने चक्रयत्तींको भेंट किये। सिन्दुराजकी तरह उहों। घ सय चोर्जे स्वोचार कर लीं। और मसुर आलाप—मीठी मीठी बातोंसे देवीको प्रसन्न करके उहो। उसे विद किया। ठीके पूर्णमासीके चन्द्रमा जैसे सुवर्णके-पात्रमें भष्टमभक्त का पारणा किया अर देवीका अष्टादिका उत्सव करके चक्रकी यनाई हुई राहस आगे चले।

उत्तर—पूर्व दिशाके मध्य ईशाकोण—की तरफ चलते हुए, अनुक्रमसे दोनों भरतारुके बीचों बीचमें सीमा रूप से स्थित, घन द्य पर्यंतके पास आये। उस पर्वतके दक्षिण भागके ऊपर मानो कोई लम्बा चाँडा द्रोप हो, ऐसा पड़ाव महाराजने डाला। वहाँ ठहरकर महाराजने अष्टम तप किया, इतनेमें ही घंताड्यादि कुमार का भासन काँपा। उसने अत्रि ज्ञानसे जान लिया कि मन्त्र क्षेत्रमें यह पहला चक्रयत्तीं हुआ है। इन्व थाद उसने चक्र यत्तींके पास आकर, अकाशमें ही उहर कर कहा—‘हे

प्रमो! आपको जय हो। मैं आपका सेवक हूँ। मुझे जो आज्ञा देनी हो सो दीजिये। मैं आपकी आज्ञापालन या हुक्म को तामीर करने के लिए तैयार हूँ।' यह कहकर बड़ा भारी सजाना खोल दिया हो, इस तरह मूल्यवान—कीमतीकीमती रत्न रत्न और अवाहिरों के गढ़ने ऊँघर दिव्य धर—सुन्दर सुन्दर कपड़े और प्रताप मयसिद्धा मोड़ा स्थान जैसा मद्रामन उसने महाराज को भेंट किया। पृथ्वीपतिने उसकी दी हुई सारी चीजें लेली क्योंकि निर्लोक स्वामी भी संघकों पर अनुग्रह करने के लिये उनकी भेंट स्वीकार कर लेते हैं। इनके बाद महाराज ने उसे इन्द्रके साथ पुष्कर, गोरवके साथ विदा किया। महापुरुष अपने आश्रय में रहे हुए साधारण पुरुषों की भी अज्ञाना नहीं करते। अष्टम भक्त का पारणा करके, वहीं घैनाल देव का अष्टान्हिका उत्सव किया।

वहाँ से चकरात तमिन्ना गुफा की तरफ चला। राजा भी पदनेयो या खोजों के पीछे पीछे चलनेवाले की तरह चकरात पीछे पीछे चले। अनुक्रम से तमिन्ना के निकट, मानो विद्याधरों के नगर घैनाल्य पर्यंत से नीचे उतरते हों इस तरह प्रमो सेनाका वडाय कराया। उस गुफा के स्वामी कृष्णानन्देश्वरों म्म में याद करके, उन्होंने अष्टम तप किया। इन से देवता क्रमन चलाय मान हुआ। अग्रविज्ञान से चक्रवर्ति को अज्ञ हुआ समस्त ब्रह्म दिनोंके बाद आये हुए गुफ की तरफ, चक्रवर्ति करी अज्ञान की पूजा-अर्चना करनेके लिये वह वहाँ गया और कहने

हे स्वामिन् ! इस तमिस्रा गुफाके द्वार में, मैं आपके द्वारपाल की तरह रहता हूँ। यह कह कर उसने भूपति की सेवा अगी कार की। खी रत्न के लायक अनुत्तम सर्वश्रेष्ठ चौदह तिलक और दिव्य आभरण समूह उसने महाराज व भेंट किये। उसके साथ ही मानो महाराज के लिपनी पहले से रख छोड़ी हों ऐसी उनके योग्य मालाएँ और दिव्य वस्त्र भी अर्पण किये। चमचती ने उन सब को स्वीकार कर लिया, क्योंकि वृत्तार्थ हुए राज भी दिग्प्रिजय की लक्ष्मी के चिह्नरूप ऐसे दिशादेश को नहीं छोड़ते। अध्ययन के बाद उपाध्याय जिम तरह शिष्यको आशा देता है—सबफ पढलेने बाद उस्ताद् जिस तरह शागिर्द् को सुट्टी देता है, उनी तरह भरतेश्वर ने उस से अच्छी मीठी मीठी बातें करके उसे विदा किया। इसके बाद मानो गलग किये हुए अपने अंश हो और जमीन पर पात्र रखकर सदा साथ जीमने वाले राज कुमारों के साथ उन्होंने पारणा किया। फिर वृत्तमाल-देव का अष्टाभिहका उत्सव किया। नघ्नतासे वश बिये हुए स्वामी सेवक के लिये क्या नहीं करते ?

दक्षिण सिंधु निष्कूट साधने के लिये सेनानी को भेजना।

दूसरे दिन इन्द्र जिम तरह नैगमेपी देवता को आशा देता है महाराज ने सुपेण सेनापति को बुलाकर आशा की—
से सिन्धु नदी को पार करके, सिंधु समुद्र और

चेताग्र पर्वत के बीच में रहने वाले दक्षिणसिन्धु निष्कूट को सा
भो और यदरी वन की तरफ यहाँ रहने वाले मलेच्छों को आयुध
वृष्टि से ताड़नकर, चर्मरत्नके सूर्यस्व फलको प्राप्त करो, अपना
मलेच्छों को अपने अधीन करो। यहाँ पैदा हुएसे समान, जल
मल के ऊँचे-नाचे मय भागों और किलों तथा दुर्गम स्थानों
में जाने का राहों के जाननेवाले, मलेच्छ भाषा में निपुण,
परामर्श में निह तेज में सूर्य, बुद्धि और गुण में बृहस्पति के
समान, सब लक्षणा में पूरा सुयेण सेनापतिने शत्रुयुद्धों की आज्ञा
को शिरोधार्य की। फीरत ही म्यामी को प्रणाम कर यह
अपने डेरे में आया। अपने प्रतिविम्ब-ममान सामन्त राजाओं
का कूच के लिये नेवार होने की आज्ञा दी फिर स्वयं स्नानकर,
यत्रिंशे पर्वतसमान ऊँचे गजरत्न पर सवार हुआ, उस समय
उसने कोमनी कीमती थोले जेवर भी पहन लिये। कवच पहना,
प्रायश्चित्त और कौतुक मङ्गल किया। बँट में जयलक्ष्मी को
आश्रित करने के लिये अपनी मुजठता डाली हो इस तरह
निष्प हार पहना। प्रधान हाथी की तरह यह पद से सुरोमित
था। मूर्ध्निमान शक्ति की तरह एक छुरी उसकी कमर में रखी
हुई थी। पीठ पर सरल भाटुनिवाले सीने के दो तरंगश थे
जो पीठ पीछे भी युद्ध करने के लिये दो वैश्विय हाथ-जैसे दीखते
थे। गणनायक, दण्डनायक, सैठ सार्यवह, सधिपाल और
नीकर-चाकरों से यह युवराज की तरह घिरा हुआ था। माना
आसन ही के साथ पैदा हुआ हो, इस तरह उसका अग्रगण्य

निम्बल था। सफेद छत्र और घंघर से सुशोभित देवतुय उस सेनापति ने अपने पाँवके अंगूठे से हाथी को चलाया। चक्रवर्ती की आधी सेनाके साथ वह सिन्धु नदीके किनारे पर पहुँचा। सेनाके चलने से उड़नेवाली धूल से मानो पुल बंधिता हो, ऐसी स्थिति उसने करदी। जो बारह योजन—छियानवे मील तक बड़ा मकता था जिस पर सबेरा का घोया हुआ बना। संध्या समय उग सकता था, जो नदी द्रव तथा समुद्रके पार उतार सकता था उस चर्मरत्न को सेनापति ने अपने हाथ से छुआ। स्वाभाविक प्रभाव से उसके दोनों तिरों किनारे तक बढ़कर उठे गये। तब सेनापति ने उसे तेल की तरह पान पर डाला। उस चर्मरत्न के ऊपर होकर वह पैदल सेना सहित नदीके परले किनारे पर जा उतरा।

दक्षिण सिंधु निष्कृत की साधना।

निम्बलके समस्त दक्षिण निष्कृत की राधने की इच्छा से वह प्रलय काल के समुद्र की तरह फैल गया। धनुषके त्रिपेय शत्रु से दारुण और युद्ध में कौतुक वाले उस सेनापति ने सिंह की तरह सिंहल लोगों को लीलामात्र से परानित कर दिया। घर्ष लोगों को मोल खरीदे हुए विद्धरों—क्षीत दासों या गुगामों की तरह अपने अधीन किया और अकणोंकी घोड़ों के समान राज चिह्न से उसने अङ्कित किया। रत्न और मार्णकों से भरे हुए जगद्दीन रत्नाकर सागर जैसे घघाहीयको उस नरकेशरीने लीला

मात्र से जीत लिया उसने कालमुख जातिके ग्लेच्छों को जीत लिया इससे वे भोजन न करने पर भी मुँहमें पाँच ऊगलियाँ डालने लगे । उसके फैलने से जोनक नामके ग्लेच्छ लोग वायुसे वृक्षके पत्तों की तरह पराङ्मुख होगये । धात्रीगर या सपेरा जिस तरह मज तरह के साँपों को जीत लेता है उसी तरह उसने घैतालय पर्वत के पाम रहने वाली सब जातियाँ उमने जीत लीं । अपने प्रौढ प्रताप को घेरोक टोक फैलाने वाले उस सेनापति ने पहासे आगे चलकर, जिस तरह सूर्य सारे आकाश को आक्रान्त कर लेता है, उसी तरह उसने कच्छ देश की सारी पृथ्वी आक्रान्त करली । जिस तरह सिंह सारे वनको दबा लेता है, उसी तरह उसने सार निष्कूट को दबा कर, कच्छ देश की समतल भूमिमें आनन्दसे डेरा डाला । जिस तरह दिय्याँ पतिने पाम आती है उसी तरह ग्लेच्छ देशके राजा लोग भक्ति से मँट ले लेकर, सेनापति के पास आने लगे । किसी ने सुरज गिरिके शिखर या दुर्ग की छोटी जिनता सुवर्ण और रत्नराशि दी । किसीने चट्टे चट्टे विभ्याचल जैसे हाथी दिये । किसीने घुरज दुर्गको दहन करने वाले - चाल और तेजीमें परास्त करने वाले दुर्ग दिये और किसीने भजन से रचे हुए वैद्यक जेम गद दिये । दुर्ग मिया और भी मार रूप पदाथ उन्होंने दिये । दुर्ग पहाडों के से नदियों द्वारा पींचे हुए रत्न भी दुर्ग के राजा दुर्ग आने हैं । इस तरह भेटें देकर उन्होंने सेनापति से

“आज से हम लोग तुम्हारी आज्ञा करने लगे”

होकर, आपके नौकरों की तरह, अपने अपने देशों में रहेंगे।" सेनापति ने उनका यथोचित सत्कार करके उन्हें विदा किया और आप पहले की तरह सुषसे सिन्ध नदीके पार घापस भागया। मानों कीर्ति रूपी पहलिका दोहद ही इस तरह म्लेच्छों के पास से लाया हुआ सारा दण्ड उसने चक्रवर्त्तों के सामने रख दिया। कृतार्थे चक्रवर्त्तानि उसे अनुग्रह पूर्वक सत्कार करके विदा किया। वह भी खुशी खुशी अपने डैरे पर आया।

तमिस्रा गुफा को खोलना।

यहा भी भरतराज अयोध्याकी तरह सुख से रहने थे, क्योंकि सिंह जहाँ जाता है वहाँ उसका म्यान हो जाता है। एक रोज महाराजने सेनापतिको धुलाकर आदेश किया—तमिस्रा गुफाके द्वार खोलो। नरपतिको उस आम्हाको मालाकी तरह सिर पर चढ़ाकर सेनापति शीघ्रही गुफाद्वारके पास आ रहा। तमिस्राके अधिष्ठायक देव एतमालको मनमें याद करके उसने अष्टम तप किया, क्योंकि सारी सिद्धियाँ तपोमूल हैं याना सिद्धियों की जड़ तप है। इसके बाद सेनापति स्नान कर श्वेतवस्त्ररूपी पत्र को धारण कर, जिस तरह सरोवरमें से हंस निकलता है उस तरह स्नान भुवनसे निकले। और स्नाने के लीला कमलको तरह, सोनेकी धूपदानी हाथमें ली, तमिस्राके द्वारके पास आये। वहाँके किण्ड देव उन्होंने पहले प्रणाम किया क्योंकि शक्तिमान् महापुण्य पहले सामभेद्रका ही



मनुष्य सम्बन्धी उपद्रव नहीं होते उस रत्नके प्रमायसे सार दुःख
 अन्धकार की तरह नाश हो जाते हैं तथा शास्त्रके घाघकी तरह
 रोग भी निवारण हो जाते हैं। सोने के घड़े पर जिस तरह
 सोनेका ढक्कन रखते हैं, उसी तरह त्रिपुनाशक राजा ने हाथीके
 दाहिने कुम्भखल पर उस रत्नको रक्खा। पीछे पीछे चलनेवाली
 चतुरगिणी पहिले चक्रको अनुसरण करने वाले, वैशरी सिंहके
 समान गुफामें प्रवेश करने वाले नारकेशरी चक्रवर्तीने चार अगुल
 प्रमाणका दूसरा फाकिंणी रत्न भा ग्रहण किया। यह रत्न सूर्य,
 चन्द्र और अग्नि के जैसा कान्तिमान् था आकाशमें अधिकारणी
 के पराधर था हजार वृक्षोंसे अधिष्ठित था। ये घजनमें आठ
 तोले था। छ पत्ते और बारह कोने वाला तथा समतल था,
 और मान उ मान पर्व प्रमाणसे युक्त था। उसमें आठ चणिकायें
 थीं और यह बारह योजन; यानी छियानवे मील तकके अन्धकार
 को नाश कर सकता था। गुफाके दोनों ओर, एक योजन या
 चार चार कोसके फासले पर, उस फाकिंणी रत्नसे, अनुक्रमसे गो
 मुत्रिके सदृश मण्डल लिखते हुए चक्रवर्ती चलने लगे। प्रत्येक
 मण्डल पाँच सौ धनुषके विस्तार वाला एक योजन—चार कोस
 तक प्रकाश करने वाला था। वे सब गिन्नीमें उनचास हुए। जहाँ
 तक महीनठ—पृथ्वी पर क्याणचन्त चक्रवर्ती जीते हैं, वहाँतक
 गुफाके द्वार खुले रहते हैं।

तमोद्धा गुफामें प्रवेश ।

चक्रवर्ती पीछे पीछे चलने वाले चक्रवर्तीके पीछे चलनेवाली

उनकी सेना, मण्डलके प्रकाशसे अन्धकारितासे—येपटके चलने लगी। संचार करने वाली चक्रवर्तीकी सेना से यह गुफा असुरादिककी सेनासे रक्षाप्रभाके मध्य भाग जैसी शोभने लगी। मथनदण्ड या रूमे मथनीमें जैसी आगाज होती है, उस संचार करने वाली सेना से यह गुफा उद्दाम घोष—घोर शब्द करने लगी अर्थात् सेनाके चलने से गुफामें घोर रव होने लगा।

जिस गुफामें किसी भी सञ्चार नहीं किया था उस गुफाके मार्गमें रथोंके कारण लीकें बन गई और घोड़ोंकी टापोंसे कंकर उड़ गये, अतः वह नगर मार्गके जैसा हो गया सनाके लोगोंके चलने से यह गुफा लोखनालिका या पगडण्डीके समान ट्रेडी तिगुड़ी होगई। चलते चलते तमिन्ना गुफाके मध्य भागमें—अथो चलने ऊपर रहने वाली बट्टिमेखला या बर्द्धनीके समान—उमग्रा या निमग्रा नामकी दो नदियोंके निकट चक्रवर्ती जा पहुँचे। ये नदियाँ पेशी क्षीणती थीं गोया दक्षिण और उत्तर भरताईसे आने वाले गेगोंके लिये, येनाट्य पर्यंतने नदियोंके बहाने से दो आक्षा रेखायें खींच रखी हों। उनमें से उमग्रा नदीमें पत्थरकी शिला तूथीकी तरह तैरती है, और निमग्रामें तूथी भी पत्थरकी शिलाकी तरह डूब जाती है। ये दोनों नदियाँ तमिन्ना गुफाकी पूर्व भित्तिमें से निकलती हैं और पश्चिम भित्ति के बीचमें होकर, सिन्ध नदीमें मिलती हैं। उन नदियोंके ऊपर मानो बेंतालकुमार देवकी विशाल एकांत शय्या हो पिसी—एक निर्दोष यह पुलिया चाडिकिरत्तने

नियार कर दी, क्योंकि गुहाकार कल्पयुक्षकी जितनी देर भी उसने नहीं लगती। उस पुलियाके ऊपर अच्छी तरहसे जोड़े हुए पत्थर इस तरहसे लगाये गये थे, जिससे सारी पुलिया और उपरकी राह एकही पत्थरसे बनी हुई, की तरह शोभती थी हाथके समान समतल और घजूवत् मजबूत होने के कारण से वह पुलिया और राह गुफाद्वारके दोनों किवाड़ोंसे बन्द हुई सी जान पड़ती थी। पदविधि या समासविधिकी तरह, समर्थ चक्रवर्ती सेना सहित उन दोनों दुस्तर नदियोंके पार उतर गये। सेनाके साथ चलने वाले महाराज, अनुक्रमसे उत्तर दिशाके मुख जसे गुफाके उत्तर द्वारके पास आ पहुँचे। उसके दोनों किवाड़ मानों दृक् बनी दरवाजेके किवाड़ोंका शब्द सुन कर भयभीत हो गये हों इस तरह—आपसे आप घुल गये। वे किवाड़ खुलते वक्त “सर सर” शब्द करने लगे। उस “सर सर” शब्दसे ऐसा जान पड़ता था मानो वे चक्रवर्तीकी सेनाको गमन करनेकी प्रेरण करते हों—आगे बढ़नेकी कहते हों। गुफाकी दोनों ओर की दीवारोंसे वे दोनों किवाड़ इस तरह चिपट गये कि गोया पहले वे ही नहीं थीर दो भोगलों से दीखने लगे। पीछे सूर्य जिस तरह बादलों में से निकलता है, इस तरह पहले चक्रवर्तीके आगे आगे चलने वाला स्वर्ग गुफामें से निकला और पातालके छेदमें से जिस तरह बलिन्द्र निकलने है उस तरह पीछे पृथ्वीपति भरत महाराज निकले। पीछे विध्याचलकी गुफा का तरह उस गुफामें से निःशंक होकर मौजके साथ चलते हुए गजेन्द्र निकले।

समुद्र में से निकलनेवाले सुयके घोंड़ोंका अनुसरण करते हुए सुन्दर घोड़े अच्छी चालोंसे चलते हुए निकले। घनाढ्य लोगोंके घरों में से निकलते हैं इस प्रकार अपनी अपनी आवाजोंसे भाकाशको गुंजात हुए निकले। स्फाटिक मणिके धीमठे में से जिन तरह सर्प निकलता उस तरह वंताढ्य पर्वतकी गुफा में से बलवान पैदल भा निकले।

तमिस्रा गुफा से बाहर निकलना।

इस प्रकार पचास योजन अथवा चार सौ मील लम्बी गुफा को पार करके, महाराज भरतेशने उत्तर भरतार्द्धको विजय करने के लिये उत्तर खण्डम प्रवेश किया। उस खण्डम "अपात" नामक भील रहते थे। वे पृथ्वी पर रहने वाले दानवों जैसे घनाढ्य पराक्रमी और महातेजस्वी थे। अनेक घड़ी बड़ी हथेलियों शयन, आसन, और धाहन एवं बहुतसा सोना चांदी होने के कारण—कुचेरफे गोती भाइयोंसे दीखते थे। वे बहु कुटुम्बी और बहुतसे दास परिवार वाले थे और देवताओंके षगीचके वृक्षोंकी तरह कोई भी उनका परामव कर न सकता था। घड़े गाड़े के भारको खींचने वाले घड़े घड़े बेलोंकी तरह, वे अनेक युद्धोंमें अपनी शक्ति और पराक्रम प्रकाशित करते थे। निरन्तर जब यमराजके समान भरतपतिने उन पर बलात्कार से—
दंस्ती चढाई की, तब अनिष्ट सूचक श्रुतसे उत्पात हो
चलती हुई घक्रघत्तोंकी सेनाक भार से मानो पीड़ित ५

तैयार कर दी, क्योंकि गुहाकार कल्पवृक्षकी जितनी देर भी उसे नहीं लगती। उस पुलियाके ऊपर अच्छी तरहसे जोड़े हुए पत्थर इस तरहसे लगाये गये थे, जिससे सारी पुलिया और उपरकी राह एकही पत्थरसे घनी हुई, की तरह शोभती थी हाथके समान समतल और घञ्जुत् मजबूत होने के कारण से यह पुलिया और राह गुफाद्वारके दोनों किनाडोंसे बनाई हुई सी जान पड़ती थी। पदविधि या समासविधिकी तरह, समर्थ चक्रवर्ती सेना सहित उन दोनों दुस्तर नदियोंके पार उतर गये। सेनाके साथ चलने वाले महाराज, अनुक्रमसे, उत्तर दिशाके मुख जस गुफाके उत्तर द्वारके पास आ पहुँचे। उसके दोनों किनाड मानों क्षणिकी दरवाजेके किवाडोंका शब्द सुन कर भयभीत हो गये हों, इस तरह—आपसे आप खुल गये। वे किवाड खुलते वक्त “सर सर” शब्द करने लगे। उस ‘सर सर’ शब्दसे ऐसा जान पड़ता था मानो ये चक्रवर्तीकी सेनाको गमन करनेकी प्रेरण करते हों—आगे बढ़नेको कहते हों। गुफाकी दोनों ओर की दीवारोंसे ये दोनों किवाड इस तरह छिपट गये कि गोया पहले ये ही नहीं और दो भौंगलों से दीखने लगे। पीछे सूर्य जिस तरह घादलों में से निकलता है, इस तरह पहले चक्रवर्तीके आगे आगे चलने वाला चक्र गुफामें से निकला और पानालके छेदमें से जिस तरह बलिन्द्र निकलने है उस तरह पीछे पृथ्वीपति भरत महाराज निकले। पीछे विध्याचलकी गुफा की तरह उस गुफामें से निःशंक होकर मीनके साथ चलते हुए गजेन्द्र निकले।

समुद्र में से निकलनेवाले सूयके घाड़ोंका अनुसरण करते हुए सुन्दर घोड़े अच्छी चालोंमें चलने हुए निकले । घनाढ्य लंगोंके घरों में से निकलते ही इस प्रकार अपनी अपनी भायाजोंमें भाकाशको गुंजात हुए निकले । स्फटिक मणिके धीमते में से जिन तरह मय निकलता उन्म तरह उन्मत्ताध्य पर्यन्तकी गुफा में से बटवान पैदल भा निकले ।

तमिस्त्रा गुफा से बाहर निकलना ।

इस प्रकार पचाम योजन अथवा चार सौ मील लम्बी गुफा को पार करके, महाराज भरतेशने उत्तर भरतार्द्धकी विजय करने के लिये उत्तर खण्डमें प्रवेश किया । उन्म खण्डमें "भरत" नामक मील रहते थे । ये पृथ्वी पर रहने वाले दानवों जैसे घनाढ्य पराक्रमी और महातेजस्वी थे । अनेक बड़ी बड़ी हथेलियों, शयन, भासन, और घाहन एवं घट्टनसा सोना चाँदी होने के कारण—बुचेरके गोता भाइयोंसे दीखने थे । ये बहु पुट्टुम्भी और घट्टनसे दास परिवार वाले थे और देवताभोंके बगीचोंके वृक्षोंकी तरह कोई भी उनका पराम्रय कर न सकता था । बड़े गाड़े के भारको धाँचने वाले बड़े बड़े घेलोंकी तरह, ये अनेक युद्धोंमें अपनी शक्ति और पराक्रम प्रकाशित करते थे । निरन्तर जब यमराजके स्वप्नान भरतपतिने उन पर घराहकार से—जय दस्ती खट्वाई की, तब अनिष्ट सूचक घट्टनसे उत्पात होने लगे । चलती हुई घत्रघर्षोंकी सेनाक भार से माना पीड़ित हुई इस

तत्काल गृहद्वयानका कपाती हुई पृथ्वी धूमने लगी, चक्रवर्ती दिगन्त व्यापी प्रौढ प्रतापसे हुआ ही, इस तरह दिशाओंमें दावानल जैसा दाह होने लगा। उड़ती हुई यदुनसी धूँसे दिशाएँ पुष्पिणी-रजशरग छो की तरह अनालोकपात्र—न देखने योग्य हो गई। दुष्ट और दुश्मन निर्घोष करने वाले मगर जिस तरह समुद्रमें परस्पर टकराते हैं इस तरह दुष्ट पवन परस्पर टकराने लगे। आकाशमें से चारों तरफ, मशालोंके समान समस्त स्लेख्याओं के हृदयोंको भुमिन करने वाला उत्कापात होने लगा अर्थात् आकाशसे तारे टूट टूट कर गिरने लगे, जिसको देख कर स्लेख्यों के हृदय अहला लगे। क्रोध बरके उठे हुए यमराजके हस्ताघात पृथ्वी पर पड़ने हों इस तरह भयङ्कर शब्दोंके साथ घनपात होने लगा। अर्थात् भयङ्कर गर्जनाके साथ पृथ्वी पर विजलियाँ पड़ती थीं, उनमें पैना जान पड़ता था मानो यमराज क्रोधमें भर कर पृथ्वी पर अपने भयङ्कर हथ मार रहे हों।

मृत्यु—लक्ष्मी के क्षत्र हों, इस तरह षष्ठों के मण्डल आकाश में जगद जगद घूमने लगे।

इस ओर सोने के कणक फर्षी और प्रासकी किरणों से, आकाश चारों मद्रस्र किरण सूर्यको कोटि किरणवाला करनेवाले, उड़ेंड दड कदड और दुर से आकाशको उगत करने वाले घनपातों में गिरे और लिखे हुए व्यग्र, सिंह और सर्पों के चित्रों से आकाशगरी—आकाश में रहनेवाली स्त्रियोंको भयभीत करनेवाले और बड़े बड़े हाथियों के घाटाकृपी मेघों से

दिशाओं का अन्धकारमय चरनचाले महाराज भरत आगे बढ़ने लगे। उनके रथ के आगे जो मगरों के मुख लगे हुए थे, वे यमराज के मुख की स्पर्शा करते थे। वे घोड़ोंकी टापों की आवाजों से धरती को और जय बाजों के घोर शब्द से आकाश को फोड़ते हों, येने जान पड़ते थे और आगे आगे चलनेवाले मंगल ग्रह से जिस तरह सूर्य भयङ्कर लगता है उसी तरह आगे आगे चलनेवाले चन्द्र से वे भयङ्कर दीबते थे।

श्लेच्छों के साथ युद्ध करना।

उतको आते हुए देखकर किरान लोग अत्यन्त क्रुणित हुए और मूरप्रदकी मैत्रीका अनुसरण करने वाले वे इकठे हो कर, मानो चन्द्रपत्नी को हर्षण करने की इच्छा करते हों, इस तरह प्रोत्र सहित बोलने लगे—“साधारण मनुष्य की तरह लक्ष्मी लज्जा धोग्ज और कीर्ति से यजित यह भीन पुरुष है, जो बालक की तरह अल्प बुद्धि से मृत्युको कामना करता है? हिमन जिस तरह सिंह की गुहा में जाता है, उन्ही तरह यह कोई पुण्यचतुर्दशी क्षीण और लक्षणहीन पुरुष अपने देश में अग्या मालूम होता है। महा परत जिन तरह मेर्वा को इतर उधर फेंक देता है, उसी तरह इस उद्धत आकार वाले और फैलते हुए पुरुष को अपनलोग दशों दिशाओं में फेंक दे। इस तरह जोर चोर से लीबते चिह्नाते हुए इकठे हाकर, शरमवष्टाव जिन तरह मैघ के सामने गर्जना करता और दीड़ता है उसी तरह युद्ध करने के लिये

भरत के सामने उद्यत हुए। किरातपतियोंने कशुओंकी पीठोंकी हड्डियों से घनाये हों ऐसे दुर्भेद्य वस्त्र—जिरह घण्टर पहने। उन्होंने मस्तक पर लंबे लंबे बाल बाले निशाचरों की शिरलक्ष्मी को घताने वाले एक तरह के बालों से ढकेहुये शिरछाण धारण किये। रणोत्साह से उन की देह इम तरह फूलों लगी कि, उस से उनके फयवों के जाल दूटने लगे। उनके ऊने ऊँचे केश वाले मस्तकों पर शिरछाण रहते न थे, इसलिये मानो हमारी रक्षा कोई दूसरा कर नहीं सकता, इस तरह मस्तकों को अमर्ष करते हों—ऐसे मालूम होते थे। कितने ही फुपित किरात यम राज की भृकुटो जैसे धाके और सींगों से घने हुए धनुषों को लीला से सजा सजाकर धारण करने लगे। कितने ही जयलक्ष्मी की लीला की शय्या की जैसी रणमें दुर्जर और भयदूर तलघारों को म्यानों से निकालने लगे। यमराजके छोटे भाई जैसे कितने ही किरात डण्डों को ऊचा करने लगे। कितने ही घघ्रयैतु जैसी भालों को आकाश में नचाने लगे। कितने ही रणोत्सव में आमंत्रित किये हुए प्रेतराज को धुश करने के शत्रुओं को शूली पर चढ़ानेने हों ऐस त्रिशूणों को धारण करने लगे। कितने ही शत्रुकी चक्रपेक्षियों के प्राणनाश करने वाले बाज पक्षी जैसे लोहे के शल्यों को हाथों में धारण करने लगे। कोई मानो आकाश में से तारामण्डल को गिरनेकी इच्छा करने हों इस तरह अपने उद्यत हाथों से तत्काल मुद्गर फिरने लगे। जिस तरह बिना विषये कोई सर्प नहीं होता, इस तरह उनमें से कोई भी हथियार

विना न था । युद्ध रस की इच्छावाले थे, मानो एक आत्मावाले हों इस तरह, एकदम से भरतकी सारी सेना पर टूट पड़े । ओलों की घर्षा करने वाले प्रलयकाल के मेघों की तरह, शस्त्रों की षड्डी लगाते हुए श्लेच्छ भरत की आगेकी सेना से बड़े जोरों के साथ युद्ध करने लगे । मानो पृथ्वी में से, दिशाओं के मुखों से और आकाशमें से, पड़ते हों इस तरह, चारों ओर से शस्त्र पड़ने लगे । दुर्जनों के वचन जिस तरह सभी के दिलों में लगते हैं, इस तरह किरात लोगों के घाणों से भरत की सेना में कोई भी ऐसा न रहा जिसके शस्त्र न छिदा हो घाणों से कोई भी बछूता न बचा । श्लेच्छों के आक्रमण से चक्रवर्तीके आगे वाले घुड़सवार-समुद्रकी घेला से नदीके पिछले हिस्से की तरंगके समान—पीछे हट कर खड़ायमान होने लगे, अर्थात् समुद्र की लहरों से जिस तरह नदी के पिछले भागकी तरंग पीछे को हटती है, उसी तरह श्लेच्छों के हमलों से राजा के आगे के घुड़सवार पीछे को हटने को मजबूर हुए । श्लेच्छ-सिंहों के घाण रूपी सफेद नाधुनों से घोट छाकर चक्रवर्ती के हाथी बुरी तरह से चिढ़ा देने लगे । श्लेच्छ यीरों के प्रचण्ड दण्डायुधों की मार से पैदल सिपाही सैदोंकी तरह जमीन पर लुढ़कने लगे । घञ्जाघात से पर्वतों की तरह यवन-सेनाने गदा के प्रहारों से चक्रवर्ती की बगली सेना के रूप घूर्ण कर डाले । संग्राम रूपी सागर में, निर्मिगल जलके स्थलों से जिस तरह मछलियाँ प्रस्त और श्लेच्छ होती हैं इस तरह श्लेच्छ लोगों से चक्रवर्ती की सेना प्रस्त और श्लेच्छ हुई ।

अनाघकी तरह अपनी सेना को पराजित हुई देखकर, राजा की आत्मा का तरह क्रोध में सेनापति सुपेण को जोश आगया। उसके नेत्र और मुँह लाल होगये और क्षणभर में मनुष्य रूप में जैसे अग्निहो, इस तरह वह दुर्निरीक्ष्य हो गया; अर्थात् क्रोध पे मरि वह ऐसा लाल हो गया, कि उसकी तरफ कोई देख न सकता था। राक्षस पति की तरह समस्त पराई सेना के प्राप्त करने के लिये स्वयं तैयार हो गया। अग में उत्साह—जोश—आ जाने से, उसका सोनेका कवच शरीरमें सटकर दूसरी बमड़ी के समान शोभा देने लगा। कवच पहनकर, साक्षात् जयरूप हो, इस तरह, वह सुपेण सेनापति कमलापीड नामक घोड़े पर सवार हुआ। यह घोड़ा अस्सी अंगुल ऊँचा और नवाणु अंगुल विशाल था तथा एक सौ आठ अंगुल लम्बा था। उसका मस्तक भाग सदा बत्तीस अंगुल की उँधार पर रहता था। चार अंगुल के उसके घाहु थे, सोलह अंगुलकी उसकी जाँघें थीं चार अंगुल के घुटने थे, चार अंगुल ऊँचे खुर थे, गोलाकार और घूमा हुआ उसका धोचला भाग था; विशाल, किसी कदर नर्म और प्रसन्न करनेवाले पिछले भाग से वह शोभायमान था, कपड़ेके तंतु जैसे नम-नर्म रोम उसके शरीर पर थे। उस पर थोष्ट बारह आवर्त्त था भौरे थे। यह शुद्ध लक्षणों से युक्त था, जवान तोते के पंखों जैसी उसकी कान्ति थी। कमी मी उसने चातुककी चोट न खाई थी, यह सवार के मनके माफिक चलनेवाला था, रत्नजडित सोने की लगाम के बहाने से मानो लक्ष्मी ने निज

उसे म्यानसे बाहर निकाल रखा था, इसलिये वह बाँधली से निकले हुए सर्प जैसा दिखाई देता था। उस पर तेज धार थी और वह दूसरे वज्रकी तरह मजबूत और अजीब था। विचित्र कमलोंकी पंक्ति जैसे साफ अक्षरोंसे वह शोभता था। इस खड्गके धारण करने से वह सेनापति पंप घाले गरुड और बब्रु धारी वेशरी सिंह सा क्षीयने लगा। आकाशमें चमकने वाली रिजली की सी चपलतासे खड्गको फिराते हुए उसने रणक्षेत्रमें घोड़ेको हाँका। जलकान्त मणि जिस तरह जलको जुदा करती है उसी तरह शत्रु सेनाको काँई की तरह फाड़ता हुआ वह सेनापति रणभूमि में दाखिल हुआ।

जब सुयेण ने शत्रुओं को मारना आरम्भ किया, तब कितने ही शत्रु तो हिरनों की तरह डर गये, कितने ही पृथ्वी पर पड़े हुए अरगोश की तरह आँसु बन्द करके वहीं बैठ गये। कितने ही रोहित की तरह दुःखित होकर वहीं खड़े रहे, कितने बन्दरों की तरह दण्डतो पर चढ़ गये, घृक्षों की पसियों की तरह कितनों ही के हथियार गिर गये; यशकी तरह कितनों ही के छत्र गिर पड़े; मन्व से वश किये हुए सर्पकी तरह कितनों ही के घोड़े निश्चल या अचल होगये और मिट्टीके बने हुआँ की तरह कितनों ही के रथ दूट गये। अनजाना की तरह कोई किसी की राह देखने को खडा न रहा। सब स्लैच्छ अपने अपने प्राण लेकर जहाँ जिसके हाँग समाये भाग गया। अल्के प्रयाह से जिस

तरह घृष्ट नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह सुरेण कृपी जलकी यादसे निर्बल हो, किरात कोसों दूर भाग गये। फिर बच्चों की तरह इबट्टे हाँ, क्षणमात्र में विचार कर धरराया हुआ शालक जिस तरह मरि पाम आता है, उसी तरह महातदी के नजदीक भापे और मृत्यु खान करनेके लिये तैयार हो इस तरह उमके किनारों पर बिछौने बिछाकर घंठ गये। वहाँ उन्होंने नङ्गे और उतान हो मँघ मुख आदि नाग कुमार निकाय अपने कुल देयताओं की याद कर अष्टम तप करने लगे। अष्टम तप करने में, मानों शययत्तों के नेत्र में भीत हुए हों इस तरह नाग कुमार प्रभृति देयताओं के आत्मन करि। अवधिमानसे स्नेहों की इस तरह दुस्ती दग्ध कर दुखित हुए पितायें समान उनके सामने आकर प्रकट हुए और आकाश में उड़ कर उन्होंने किरानों से कहा “तुम्हारे मनमें किस यातशी चाहना है? तुम क्या चाहने हो?” आकाश में रहने वाले मेघ मुख नागकुमार की देव, प्रसित हुए या करे की तरह मिर पर हाथ रख कर उन्होंने कहा—“आज्ञ तब हमारे देव पर किसीने भी भावमण या हमरा नहीं किया; लेकिन अभी कोई आया है, आप ऐसा उपाय कीजिये कि यह यहाँ से वापस चला जाय।”

किरानों की प्रार्थना सुन कर देयताओंने कहा—“किरानो! यह भग्न नामिका चरपत्तों राजा है इन्द्र की तरह यह देव असुर और मनुष्यों से भी अनेक है; अर्थात् इमे सुग, असुर और नर कोई भी जीत नहीं सकते। टांकिया से जिस तरह पहाड के

पत्थर नहीं टूटते उसी तरह पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा मंत्र, तन्त्र विद्या, भस्त्र और विद्याओं से पराम्त और अधीन किया जा नहीं सकता ; तथापि तुम्हारे आग्रह से हम कुछ उपद्रव करेंगे ।” यह कहकर देवता अन्तर्धान होगये ।

म्लेच्छों का किया हुआ उपद्रव ।

क्षणमात्र में मानों पृथ्वी पर से उछल कर समुद्र आकाशमें आगबे हों, इस तरह काजल जैसी श्याम कन्ति घाले मेघ आकाश में छागये । वे बिजली रूपी तर्जनी अंगुली से चक्रवर्ती की सेना का तिरस्कार और उत्कट गर्जनासे धारम्यार आश्रय कर उसका अपमान करते हुए से दीखते थे । सेना को चूर्ण करने के लिये, बज्रशिला जैसे महाराजा की छावनी पर तत्काल चढ़ भाये और लोहेके अग्रभाग, बाण और डण्डों जैसी धाराओं से बरसने लगे । पृथ्वी चारों ओर से मेघ-जलसे भर उठी । उस जलमें रथ नाथों की तरह तथा हाथी घोड़े मगर मच्छों से दीखने लगे । सूरज मानों कहीं भाग गया हो, पर्वत कहीं घटे गये हों, इस तरह मेघों के अन्धकार से कालरात्रि या प्रलयका सा दृश्य होगया । उस समय पृथ्वी पर जल और अन्धकारके सिवा कुछ न दीखता था । इस कारण मानो एक समय युग्म धर्म वर्तते हों, ऐसा दीखने लगा । इस तरह अरिष्टकारक वृष्टि को देख कर चक्रवर्ती ने प्यारे सेवकके समान अपने हाथों से चर्म रत्न को स्पर्श किया । जिस तरह उत्तर दिशा की हवासे मेघ बढ़ता है, उस

तरह चक्रवर्ती के हलम्पर्श या हाथसे छू देने से चर्मरत्न बाराह
 योजन या छियात्रने मील बढ़ गया। समुद्र के बीचमें ज़मीन हो
 इस तरह जलके ऊपर रहने वाले चर्मरत्न पर महाराज सेना स
 में रहें। फिर; प्रवाल या मूँगों से जिस तरह क्षीरसागर
 शोभता है, उस तरह सुन्दर कान्तिमयी सोने की नवाणु हज़ार
 शलाकियों से शोभित, नालसे कमल की तरह, छेद और गाँठों
 रहित मरलना से सुशोभित, सोने के ढण्डे से सुन्दर और जल,
 धूप, हवा और धूपसे रक्षा करने में समर्थ छत्ररत्न राजाके सून
 माथ से चर्मरत्न की तरह बढ़ गया। उस छत्रद एड्डे ऊपर
 मन्धकार नाश करने के लिए, सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी
 मणिरत्न स्थापित किया। छत्ररत्न और चर्म रत्न का घट संपुट
 तैरने वाले भण्डे की तरह झीलने लगा। उन्नी समय से
 दुनियाँमें प्रह्लाण्ड की बख्यना हुई। गृहिरत्न के प्रभाव से उस
 चर्मरत्न पर, जैसे अच्छे खेतमें घेरे ही बोये हुए बनावज शाम
 को पैदा हो जाते हैं। चन्द्र-सम्यन्धी महलों की तरह उसमें
 प्रान बालको लगाये हुए कोहले, पालक और मूली प्रभृति साय
 बाल को उत्पन्न होने हैं और मन्दिरे के घट के लगाये हुए केल्ले
 आदिके फल-वृक्ष भी महान् पुरुषोंके आरम्भ के समान सन्ध्या
 समय फल खाते हैं। उसमें रहने वाले लोग पृथ्वीके धान्य, साग
 और फलों को खाकर सुखी होते हैं और बगीचों में फीडा करने
 को जाकर रह गये हों, उस तरह कटक का श्रम भी न जानते थे
 मानों महलों में रहते हों उस तरह मर्त्य लोकके पति महाराज

भरत छत्ररत्न और चर्मरत्नके बीचमें परिवार सहित सुखसे रहने लगे। इस भाँति उसमें रहने पर, कल्पान्तकालकी तरह, अन्ध्रात घर्षा करने वाले नागकुमार देवताओं ने सात अहोरात्र—दिन-रात बिता दिये।

इसके बाद, 'यह कौन पापी मुझे ऐसा उपसर्ग करनेके लिए तैयार हुआ है' राजाके मनमें आये हुए ऐसे विचार को जानकर महापराक्रमी और सदा पास रहनेवाले सोलह हजार यक्ष तैयार हुए, तरकश बाँधकर अपने धनुष सजाये और क्रोध ऋषी मन्त्रिते शत्रुओं को जलाना चाहते हों, इस तरह होकर नाग कुमारों के पास आये और कहने लगे—“अरे शोष करने योग्य नाग कुमारो तुम अज्ञानों की तरह क्या पृथ्वीपतिमहाराज भरत को नहीं जानते ? यह राजा सारे संसार के लिये अजेय है इस राजा पर किया हुआ उपद्रव घड़े पर्वत पर दौतों की चोट करने वाले हाथियों की तरह तुम्हारे ही विपत्ति का कारण होगा। अच्छा हो, यदि तुम छटमलों की तरह यहाँ से फौरन नौ द्रो ग्यारह हो जाओ, नहीं तो तुम्हारी जैसी पहले कभी नहीं हुए हैं, वैसी ही अपमृत्यु होगी।”

म्लेच्छों का अधीन होना ।

ये बातें सुन कर आकुल व्याकुल हुए मेघमुख नागकुमारों ने ऐन्द्रजालिक जिस तरह अपने इन्द्रजाल का संहार करता है, बाजोगर अपनी माया का संहार करता है उसी तरह क्षण भरमें ही मेघजल का संहार कर दियो। और 'तुम महाराज भरत की

शरण जाओ इस तरह किरात लोगोंसे कहकर अपने अपने स्थानों को चले गये। देवताओंके वचन से भग्न मनोरथ होकर, दूसरी शरण नहाने से, शरण के योग्य मरत महाराज की शरण में वेगये मेरु पर्वत के सार जैसी सुवर्ण राशि, और अश्वरत्नके प्रतिविम्ब सदृश लाखों अश्व या घोड़े, उन्होंने भरतराजकी भेंट किये। फिर मस्तक पर अञ्जलि जोड़, सुन्दर वचन गर्भित धार्मीसे बन्दीजनों के सहोदरों की तरह, ऊँचे स्वर से कहने लगे - हे जगत्पति ! हे अलण्ड प्रचण्ड पराक्रमी ! आपकी विजय हो, आपकी फतह हो, छ स्रण्ड पृथ्वी मण्डल में आप इन्द्र के समान होओ। हे राजन् ! हमारी पृथ्वी के किले जैसे घैताद्वय पर्वतके बड़े गुफा द्वार को आपके सिपाय दूसरा कौन ढोल सकता है ? हे विजयी राजा ! आकाश में ज्योतिश्चन्द्र की तरह, जल के ऊपर सारी सेनाका पड़ाव रखनेमें आपके सिवा दूसरा कौन समर्थ हो सकता था ? हे स्वामिन् ! अद्भुत शक्ति होनेके कारण आप देवताओं से भी भजेय हो, यह बात हमें अथ मालूम हुई है, इसलिये हम मूर्खों का अपराध क्षमा करें। हे नाथ ! नया जन्म देने वाले अपने हाथ हमारी पीठ पर रखें। आजके दिन से हम आपकी आज्ञा में चलेंगे।' शत्रु महाराज ने उनको अपने अधीन कर, उनका सत्कारकर विदा किया, उत्तम पुरुषके क्रोध की अवधि प्रणाम नमस्कार तक ही होती है ; अथात् उत्तम पुरुष चाहे जैसे क्रुपित व्योम न हो, प्रणाम करते ही शान्त हो जाते हैं, उनका क्रोध काफूर हो जाता है। स्वयंसेवी की आत्मा से सेनापति सुषेण पर्वत और

समुद्र की मर्ष्यादा घाले सिन्धुके उत्तर निष्कृत को विजय करके आया ; और अनाथ लोगों को अपनी संगति या सुहृदत से आर्य बनाने की इच्छा करते हों इस तरह सुद्योपमोग करते हुए चक्र-घर्षीं वहाँ बहू काल तक रहे ।

हिमाचल कुमार देव को साधना ।

एक दिन दिग्विजय करने में जमानत-स्वरूप तेजसे विशाल चक्ररत्न आयुधशाला से निकला और क्षुद्र हिमालय पर्वत पर की थोर, पूर्य दिशाको राहसे चला । जलका प्रवाह जिस तरह मीककी राहसे चलता है, उसी तरह चक्रघर्षीं भी चक्रके मार्गसे चले । गजेन्द्रकी तरह लीलासे चलते हुए महाराज कितनी ही कृषोंके घाद क्षुद्र हिमाद्रिके दक्षिण नितम्ब या दृष्वजन भागके निकट आये । भोजपत्र तगर और देवदारुके घनसे आकूल उस भागके एक भाग पाण्डुक घनमें इन्द्रकी तरह महा राजा भरतने अपनी छावनी डाली । वहाँ क्षुद्र हिमाद्रि कुमारदेव को उपदेश करके महाराजा भरतने अष्टम तप किया, क्योंकि कार्यसिद्धिमें तपही आद्रि मंगल है । रातका अचसान या अन्त होने पर, जिस तरह सूर्य पूर्य समुद्रके बाहर निकलता है, उसी तरह अष्टममत्तके अन्तमें तेजस्वी महाराज रथ पर चढ़कर कटक—क्षुद्र हिमालय पर्वतको रथके अगले भागसे तीन धार तडित किया । धनुर्घरकी वैशाय आकृतिमें रह कर तीरन्दाज के से पेंतरे बदल कर, महाराजने अपने नात्रसे अङ्कित धाण हिमाचल

कुमार पर छोड़ा। पक्षीकी तरह आकाशमें बहकर योजन वा पाँच सौ छिहत्तर मील चक्कर बह बाण उसके सामने गिरा। अङ्गुश को देखकर मतयाल्य हाथी जिस तरह बुपिन होता है, उसी तरह शत्रु के बाणको देखकर उसके नेत्र लाल हो गये, परन्तु बाण को हाथमें लेते ही उसपर सर्पके समान भयकारक नामाक्षर पढ़कर, वह दीपकके समान शान्त हो गया, उसके क्रोध जाना रहा, गुस्ता दूना हो गया। इस कारण प्रधान पुरुषकी तरह उस बाणको साथ रख, भेंट ले वह भरतराजके पास भाया। आकाशमें रह कर उग्रस्वरसे "जय जय" कह, बाणबाण्य पुरुष की तरह, उसने चक्रवर्तीको उनका बाण सोंपा और पीछे देव वृक्षके फलोंकी माला, गोशीर्ष घन्दन, सर्वोपधि और पद्मद्रहका जल—ये सब महाराजको भेंट किये, क्योंकि उसके पास यही चीजें मार थीं। इनके सिवा कढ़े, याजुषन्द और दिव्य वस्त्र भेंटके मिससे दण्डमें महाराजको दिये और कहा—“हे स्वामिन्! उत्तर दिशाके अन्तमें, आपके चाकरकी तरह मैं रहूँगा।” इस प्रकार कह कर जय यह ध्रुप हो गया तब महागजने उसका सत्कार कर उसे जिवा किया। इसके बाद शूद्र हिमालयके शिखर और शत्रुओंके मनोरथ जैसा अपना रथ वहाँसे घापस लीटाया। इनके बाद ऋषभनन्दन ऋषभकूट पर्वत पर गये और हाथी जिस तरह अपने दाँतोंसे पर्वत पर प्रहार या चोट करता है, उसी तरह रथ शीघ्र से तीन बार ताड़न किया। पीछे सूर्य

विरणवेशकी महण

वहाँ ठहराकर, हाथमें काकिणी रत्न ग्रहण किया। उस काकिणी रत्नसे उस पर्वातकी पूरबी चोटी पर उन्होंने लिखा—

‘अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेके प्रान्त भागमें, मैं चक्रवर्ती हुआ हूँ, ये शब्द लिखकर चक्रवर्ती अपनी छावनीमें आये और इसके लिए बिये हुए अष्टम तपका पारणा किया। फिर हिमालय कुमारकी तरह उस श्रृपभकूटपतिका, चक्रवर्तीकी सम्पत्तिके योग अष्टान्हिका उत्सव किया।

नमि और विनमि के साथ युद्ध करना।

गंगा और सिन्धु नदीके बीचकी जमीनमें मानो समाते न हों इस कारण आकाशमें उछलने वाले घोड़ोंसे, सेनाके घोड़से ग्लानिको प्राप्त हुई पृथ्वी पर छिड़काव करना चाहते हों ऐसे पदजलके प्रवाहको भराने वाले गन्धहस्तिषोंसे, उत्कट चक्र धार से पृथ्वीको सीमान्तसे भूषित करने वाले उत्तम रथोंसे, और मानो नराहूँतको बनाने वाले अद्वैत पराक्रमशाली भूमिपर फैलने वाले करोड़ों पैदलोंसे घिरे हुये चक्रवर्ती महाराज सवारो का अनुसम्पण करके चलने वाले जात्यगजेन्द्रकी तरह, चक्रके अनुगत होकर, वैताल्य पर्वात पर आये। जहाँ शरर स्त्रियाँ—भील रमणियाँ आदीश्वरके आनन्दित गीत गाती थीं वहाँ पर्वतके उत्तर भागमें महाराजने छावनी डाली। वहाँ रह कर भी उन्होने नमि विनमि नामके विद्याधरों पर दण्ड मागने वाला बाण फेंका। बाणको देखते ही दोनों विद्याधरपति कोपाटोप कर—मयङ्कर क्रोधके आवेशमें आ, इस प्रकार विचार करने लगे

“जम्बूद्वीपके भरतखण्डमें यह भरतराज पहले चक्रवर्ती हुए हैं। श्रृंगमकूट पर्वत पर चन्द्रत्रिम्य की तरह अपना नाम लिख कर, वापस लौटते हुए वे वहाँ आये हैं। दायीके आरोहक या चढ़ने वाले की तरह उन्होंने इस वैताढ्य पर्वत के पार्श्वभाग या बगल में डेरे डाले हैं। सर्वत्र विजय लाभ करने या सब जगह फतहप्राप्ति हासिल करने की धजह से उन्हें अपने भुजबल का गर्व हुआ है, अतः यह अथ अपने से भी जय प्राप्त करने की लालसा करते हैं—अपने ऊपर भी विजयी होना चाहते हैं। मैं समझता हूँ, इसी कारणसे उन्होंने यह उद्ध डहण्डरूप बाण अपने ऊपर छोड़ा है। इस तरह विचार कर दोनों ही युद्धके लिये तैयार हो, अपनी सेनासे पर्वत शिखर या पहाड़की चोटीको आच्छादित करने—ढकने लगे, अर्थात् पहाड़की चोटी पर जोगसे फौजें इकट्ठी करने लगे। सीधमें और ईशानपतिकी देव सेनाकी तरह, उन दोनों की आज्ञासे निगाधरोंकी सेना आने लगी। उनके किन्नरिका शब्दोंसे या किलकारियोंसे वैताढ्य पर्वत हँसता हुआ—गरजता हुआ और फटता हुआ सा जान पड़ता था। विद्याधरेन्द्रके सेवक वैताढ्य गिरिकी गुफाकी जैसी सोनेकी विशाल डु डुमि या नगाडा बजाने लगे। उत्तर और दक्षिण घेणीकी भूमि, गौव और शहरके स्वामी या अधिपति रत्नाकरके पुरोंकी तरह विचित्र-त्रिचित्र रत्नाभरण धारण करके गरुड की तरह अस्वलित गतिसे आकाशमें चलने लगे। नदि विनमिडे लथ चन्ते हुए वे उनकी तीसरी मूर्तिसे शीकावे।

माणिक्योंकी प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करने वाले विमानों में बैठ कर वैमानिक देवोंसे अलग न हो जायँ, इस तरह चलने लगे। कोई पुष्करावर्त्त मेघ जैसे मद् जिन्दुओंको धरमाने वाले और गर्जना करने वाले गन्धहस्ती पर बैठ कर चले। कोई सूर्य और चन्द्रके तेजसे व्याप्त हों ऐसे सोने और जवाहिरातसे बने हुए ग्धों पर सवार होकर चले। कितने ही आकाशमें सुन्दर छात्र से चलने वाले और अत्यन्त वेगवान, धायुकुमार देव जैसे घोड़ों पर बैठ कर चलने लगे और कितने ही हाथोंमें हथियार ले, वज्र के कवच पहन, यन्द्रोंकी तरह कूदते उछलते पैदल ही चलने लगे। इस तरह विद्याधरोंकी सेनासे घिरे हुए नमि विनमि बैनाट्य पथसे उतर कर, महाराज भरतके पास आये।

नमि और विनमि का अधीन होना।

आकाशमें से उतरती हुई विद्याधरोंकी सेना मणिमय विमानों से आकाशको बहुसूर्यमय प्रज्वलित तथा प्रकाशमान् अस्त्र शस्त्रों से विद्युत्तमय और उद्दाम तुदुमि ध्वनिसे घोषमय करता हुई स्त्री मालूम होती थी अर्थात् विद्याधर सेनाको आकाश से नीचे उतरती हुई देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया आस्मानमें अनेक सूरज प्रकाश कर रहे हैं विजलिया चमक रही हैं और गरजना हो रही है। 'अरे दण्डार्थि' ओ दण्ड माँगनेवाले ! तू हम लोगोंसे दण्ड लेगा ?' यह कहते हुए, विद्यासे उमत्त और गर्वित उन दोनों विद्याधरोंने भरतपतिको युद्धके लिये ललकारा।

आकृति थी; त्रिलोकीके माणिक्योंके तेजपुत्र जैसी उसकी कान्ति थी हृत्क सेवकोंसे घिरी हुई की तरह यह यौवनायस्था तथा नित्य स्थिर रहने वाले शोभायमान केशों और नाधूनोसे अतीव सुन्दरी मालूम होती थी, दिव्य औषधिकी तरह यह समस्त रोगोंको शान्त करने वाली थी और दिव्य जलकी तरह यह इच्छानुरूप शीत और उष्ण स्पर्श वाली थी। यह तीन ठौरसे श्याम, तीन ठौरसे सफेद और तीन ठौरसे ताम्र, तीन ठौरसे उन्नत, तीन ठौर से गम्भीर, तीन ठौरसे विस्तीर्ण तीन ठौरसे दीर्घ और तीन ठौरसे कृशा थी। अपने केश कलापसे यह मयूरके कलापको जीतती थी और ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाका पराभव करती थी। रति और प्रीति की मीठा वापिका सी उसकी सुन्दर दृष्टि थी। ललाटके हावण्य-जल की धारा सी उसकी दीर्घ और मनोहर नाभ थी। नवीन दर्पके जैसे उसके मनोहर गाल थे। दो झूलोंके जैसे कन्धों तक पहुँचने वाले उसके दोनों कान थे। एक साथ पैदा हुए से विम्बोफल सदृश उसके दोनों होठ थे। हीरे की कनियोंकी शोभा को पराभव करने वाले उसके दाँत थे। पेटकी तरह उसके कण्ठमें तीन रेखायें थी। कमलनाल जैसी सरल और धिपके समान कोमल उसकी भूजायें थी। कामदेव के कल्याण कण्ठ जैसे दो स्तन थे। स्तनोंके उदरको सारी पुष्टता हरली थी इसलिये उसका उदर कृशा और कोमल था। नदीके भँवरोंके समान उसका नाभिमण्डल था। नाभि कृपी वापिकाके किनारेके ऊपरकी दूर्वावली—दृश्य हो—ऐसी उसकी

रोमावली थी। कामदेवकी शय्याके जैसे उमके विशाल नितम्ब थे। हिडोलेने सुन्दर घम्रोंके जैसे उमके दोनो उरुदण्ड थे। हिरनीकी जाँघोंका तिरम्कार करने वाली उसकी दोनों जाँघें थीं। मोथोंकी तरह उसके चरण भी कमलोंका निरस्वार करने वाले थे। हाथों और पावोंकी अंगुलियोंसे यह पहचिन लता सी दीपता थी। प्रकाशमान नखरूपी रत्नोंमें यह रत्नाचलका तरासी मालूम होती थी, विशाल स्त्रच्छ, कामल और सुन्दर चन्द्रोंसे यह मन्द मन्द घायुमें तरगिन सरिताके समान दीवनी थी। स्त्रच्छ, कान्तिमें तरङ्गित सुन्दर सुन्दर अग्रयणोंमें यह अपने सोने और जवाहिरानके गहनोंकी धूसूरतीको बढ़ाती थी। छायाकी तरह उमने पीछे पीछे छत्रधारिणी स्त्रियाँ उसकी सेवा के लिये रहती थीं। दो हसोंके बीचमें कमल जिस तरह मनोहर मालूम होता है उसी तरह दो चोंचोंके अगल बगल फिरनेसे यह मनोमुग्धकर जान पड़ती थी। अप्सराओंसे लक्ष्मी की तरह और नदियोंसे जाहवी—गंगाकी तरह यह मुन्दरी बाला, समान उम्र वाली हजारों स्त्रियोंसे घिरी रहती थी।

नमि रानाने भी महामूल्यवान रत्न चन्द्रचत्तीको भेंट किये। क्योंकि स्वामी घर आये तब महात्माओंको क्या आदेय है ? इसके बाद महाराज भक्तसे विश्वा होकर नमि त्रिनमि अपन राज्यमें आये और अपने पुत्रोंके पुत्रोंको राज्य सौंप, विरक्त हो, ऋषभदेव भगवानके चरण घम्रमें जा, घन प्रहण किया।

गंगा देवीका साधना करके उसके यज्ञ रक्षा ।

वहाँसे चन्द्ररत्नके पीछे चलने वाले तीर्थ तेजस्वी भरत महा राज गङ्गा तटके ऊपर आये । गंगा तटके पाम्बही महाराजने अपनी सेना सहित पडाय किया । महाराजाधी आश्रासे सुयेण सेनापतिने सिन्धकी तरह गङ्गोत्तरीके उत्तर निष्पुष्टको अपने अधीन किया । फिर चन्द्रवर्त्तनि अष्टम भक्तसे गङ्गा देवीकी साधना की । समर्थ पुरुषोंका उपचार तत्काल सिद्धिके लिये होता है । गंगा देवीने प्रसन्न होकर महाराजको दा रत्नमय सिंहासन और एक हजार आठ रत्नमयकुम्भ—घटे दिये । गङ्गा-देवी रूप और लायण्यसे कामदेवको प्री विंकर तुल्य करने वाले महाराजको देखकर क्षोभका प्राप्त हुई ; अघातू घह महाराजका कामदेवको शमाने वाला रूप लायण्य देकर उन पर आश्रित हो गए । गङ्गादेवीने मुखचन्द्रको अनुसर्गण करने वाले मनोहर तारागण जैसे मोतियोंके गहने सारे शरीरमें पहने थे । केलेके अन्दरका त्वचा या गाभे जैसे घस्र उहोंने शरीरमें पहने थे । जो उसके प्रवाह जलके परिणामको पहुंचे जान पड़ते थे । रोमाञ्च रूगी कचुकि या आँगीसे उसकी स्तनोंके ऊपरकी कचुकि तडातड फटनी थी और स्वयम्बरकी मालाकी तरह वे अपनी धवलदृष्टि महाराज पर फेंकती थीं । इस दशाको प्राप्त हुई गङ्गादेवीने कीड़ा करनेकी इच्छासे प्रमपूरित गदगदु धाणीसे महा राज भरतको बहुत कुछ धुशामद और प्रार्थना की और उन्हें

अपने रतिगृहमें ले गई । वहाँ महाराजने उनके साथ नाना प्रकारके मोग प्रियास किये और एक हजार वर्ष एक दिनकी तरह बिता दिये । शेपमें महाराजने गङ्गादेवीको समझा बुझा कर उनसे विदा ली और रतिगृहसे बाहर आये । इसके बाद उन्होंने अपनी प्रबल मैनाके साथ खण्डप्रपाता गुफाको ओर कूच किया ।

स्वप्न प्रपाता तोलकर निकलना ।

जिस तरह केशरी सिंह एक घनसे दूसरे वनमें जाता है इसी तरह अखण्ड पराक्रमशाली चक्रवर्ती महाराज उस स्थानसे खण्डप्रपाताके नजदीक पहुँचे । गुफासे थोड़ी दूर पर इस बलिष्ठ राजान अपनी छावनी डाली । वहाँ उस गुफाके अधिपति नाट्यमाल देवको मनमें याद कर उन्होंने अष्टम तप किया । इससे उस देवका आसन काँपने लगा । अचधिज्ञान में मरतचक्रवर्तीको आये हुए जान, जिस तरह कर्जदार साहूकारके पास आता है, उसी तरह वह भेंट लेकर महाराजके सामने आया । महत् भक्तिजाले उस देवने छे खण्ड पृथ्वीके आभूषणरूप महाराजको अर्पण किये और उनकी सेवा बन्दगी स्वीकार की । नाटक कर चुके हुए नटकी तरह, नाट्यमाल देवको विचारशील चक्रवर्तीने प्रमत्त होकर बिदा किया । और फिर पारणा कर उस देवका अष्टाह्निका उत्सव किया । इसके बाद चक्रवर्तीने सुपेण सेनापतिको खण्ड

प्रयाता गुफा खोलनेका हुक्म दिया। सेनापतिने मंत्रके स मान, नाट्यमाल देखकी मनमें याद करके, अष्टमकर पौषशाल्य में पौषघयन ग्रहण किया। अष्टमके अन्तमें पौषभागारसे निकल कर प्रतिष्ठामें श्रेष्ठ आचार्य्य जिस तरह यलि विधान कर ता है, उसी तरह यलि विधान किया। फिर प्रायश्चित्त और कौतुक मंगलकर, थोड़ेसे फीमती कपड़े पहन हाथमें धूप दानी ले गुफाके पास जा उसे देखते ही पहले नमस्कार कर, उसके द्वारकी पूजा की और वहाँ अष्टमंगलिक लिखे। इसके बाद किचाड खोलनेके लिये सात भाठ कदम पीछे हटा। इसके बाद मानो किचाड खोलनेकी सुवर्णमय कुजी हो, इस तरह दण्डस्त्र ग्रहण किया और उससे द्वारपर प्रहार किया—चोटें मारी। सूर्यकी किरणोंसे जिस तरह कमल खिलता है, उसी तरह दण्डस्त्रकी चोटोंसे दोनों द्वार खुल गये। गुफाका द्वार खुलनेकी खबर महाराजको दी गई। सनाचार मिलते ही हाथीके कंधे पर सवार हो हाथीके दाहने कुम्भस्थलके ऊँचे स्थान पर 'मणिरत्न' रखकर महाराजने गुफामें प्रवेश किया। आगे आगे महाराज और पीछे पीछे फौज चलती थी। गुफामें अँधेरा था, इसलिये महाराज पहलेकी तरह काँकिणी रत्नसे मडल घनाते हुए गुफामें चले। जिस तरह दो सर्दियाँ तीसरीसे मिलती हैं, उसी तरह गुफाकी पश्चिम ओर की दीवारमें से निकल कर, पूरुथकी दीवारके नीचे होकर डमग्रा और निमग्रा नामकी दो नदियाँ गंगामें मिलती हैं। वहाँ

पहुँचते हैं, पढ़ते भी तरह-दोनों नदियों पर पुलिया और पग
 हण्डी बना, चत्रपती सेना समेत पार हो गये। सेनाके
 शस्त्रसे युक्ति हो येनालय पर्यन्तने प्रेरणा की हो इस तरह गुला
 व दफलनी द्वार तत्काल आप से-आप गुल गये। पंजारी सिंहके
 समान तटदेशी भरत महाराज गुराके बाहर निकले भी
 र गाके पश्चिमी किनारे पर उहोने पचाय डमरा।

नौ निधानकी प्राप्ति।

यहाँ नौनिधानको उद्देश्य करके पृथ्वीपतिन पाठके लक्ष्ये
 उपार्जन को हुई लक्षियोंसे हीनयाले नामके मागका दिनके
 घाला भयम तप किया। भयमके शेषमें नौनिधि प्रकट हुए
 और चत्रपतीर पास आय। उनमेंसे प्रत्येक दिन एक एक
 हजार यक्षोंसे भविष्टित थे। उन मीऊनिधियोंके नाम, चन्द्र,
 पिगल, सर्पस्तम्भ, महापद्म, काल, महाकाल, महाकाल, महाकाल
 य नाम थे। आठ चत्रों पर थे प्रतिष्ठित थे। चन्द्र पात्र-
 चौसठ मील ऊँचे, नौ योजन—चन्द्र चन्द्र चन्द्र चन्द्र चन्द्र
 योजन—अस्मा मील उभे थे। चन्द्रचन्द्र चन्द्रचन्द्र चन्द्र
 मुँह ढके हुए थे। ये एक समान रूप से हीनयाले लक्ष्ये
 थे परं उनपर चत्र, चन्द्र और मूल के थे। उन चन्द्रोंके
 नामानुसार पत्रोपयम आयुष्य एवं लक्ष्ये नाम
 उनके भविष्टायक होकर रहत हैं।

उनमेंसे नैमगो नामके चन्द्रचन्द्र,

द्रोणमुख, मंडप और पत्तन आदि स्थानोंका निर्माण होता है, यानी ये सब स्थान तैयार होते हैं। पाडुक नामकी निधिसे मान उमान और प्रमाण—इन सबकी गणित और बीज तथा धान्य या अनाजकी उत्पत्ति होती है। पिगल नामकी निधिसे नर, नारी, हाथी और घोड़ोंके सब तरहके आभूषणोंकी विधि जानी जा सकती है। सर्जरत्नक नामकी निधिसे चन्द्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय और सात पंचन्द्रिय रत्न पैदा होते हैं। महापद्म नामकी निधिसे सब तरहके शुद्ध और रंगीन घस्त्र तैयार होते हैं। काल नामकी निधिसे भूत, भविष्यत और वर्तमान कालका ज्ञान, खेती प्रभृति कर्म एवं अन्य शिल्प—कारीगरीके कामोंका ज्ञान होता है। महाकालकी निधिसे प्रवाल—भूँगा चाँदी सोना, मोंती, लोहा तथा लोह प्रभृति धातुओंकी ज्ञान उत्पन्न होती है। माणव नामक निधिसे योद्धा आयुध हथियार और कवच—जिरहवस्त्रकी सम्पत्तियों तथा सब तरहकी युद्ध नीति और दण्ड नीति प्रकट होती हैं। नवा शंखक नामकी महानिधिसे चार प्रकारके कायोंकी सिद्धि, नाट्य—नाटककी विधि और सब तरहके वाजे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारके गुणोंवाली नौ निधियाँ आकर कहने लगी कि “हे महाभाग! हम गंगाके मुखमें मार्गशरीरकी निवासिनी हैं। आपके भाग्यके वश होकर, आपके पास आई हैं इसलिये अपनी इच्छानुसार—अत्रिगन्त होकर—हमारा आप भोग लीजिये और जीजिये। कदाचित् समुद्र भी क्षयको प्राप्त हो जाय, समुद्र भी

घट जाय, पर हम कभी भी शयको प्राप्त नहीं होतीं। हममें कभी नहीं आती।” यह कह कर मारी निधियाँ—नीऊ निधियाँ महाराजके अधीन हो गई। इसके बाद प्रिकार रहित गजाने पारणा किया, और वहीं उनका अष्टाङ्गिका उत्सव किया। महाराजकी आज्ञासे सुपेण सेनापति भी गंगाके दक्षिण निम्कूट को, छोटे भीरोंके गाँवकी तरह, लीलामात्रमें जीतकर आ गया। पूरापर ममुद्रको गीतसे आज्ञात करने रहनयाग मानों दूसरा ताड्य पर्यंत हो इस तरह महाराज भी यहाँ बहुत समय तक रहे।

अयोध्याकी ओर प्रयाण

एक दिन सारे भारत क्षेत्रका साधन करने वाला भग्न पतिका चक्र अयोध्याकी ओर चला। महाराज भी स्नान कर कपड़े पहन, यत्किर्म प्रायश्चित्त और कौतुक मंगल कर इन्द्रके समान गजेन्द्र पर सवार हुए। बल्यवृक्ष ही हों ऐसी त्रिनिधियोंसे पुष्ट भण्डार घाले सुमंगलके चौदह स्वप्नोंके अलग अलग फल हों ऐसे चौदह रत्नोंसे निर्गन्तर युक्त, राजाओंकी कुल रक्षणी जैसी जिन्होंने कभी सूरज भी आँवोंसे नहीं देखा ऐसी अपनी व्याहता यत्तीस हजार राजन्याओं सहित मानों अप्सरा हों ऐसी यत्तीस हजार देशासे व्याही हुए त्रय पचास हजार सुन्दरी स्त्रियोंसे सुशोभित, सामंत जैसे अपने आश्रित यत्तीस हजार राजाओं तथा धिन्याचल जैसे चीरामी लाख हाथियोंसे निर्गजित और मानों

नमस्त्र जगतमें इकट्ठे किये हो ऐसे घोरामी लाग घोटों उतने ही रयो और पृथ्वीको ढक देने वाल छियानवे करोड योद्धा जोसे घिरे हुए भरत चक्रवर्ती रवान होनेके पहले दिनसे साठ हजारवें परस चक्रके मार्गको अनुसरण करते हुए अयोध्या की ओर चले। इसका पुराना यह है, कि महाराज जब अयोध्याको चले, तब नयनिधियोंसे भर भण्डार, चौदह रत्न, बत्तीस हजार राजकन्यायें अथ बत्तीस हजार सुन्दरी स्त्रियाँ, चौरासी लाख हाथी चौरामी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छियानवे करोड योद्धा और बत्तीस हजार सामन्त राजा— ये सब उनके साथ थे। वे प्रयाणके दिनसे ६० हजारवें वर्ष फिर अयोध्याकी वापस लौटे।

रास्तेमें चलते हुए चक्रवर्ती सेनासे उड़ी हुई धूलके स्पर्श से मलिन हुए खेचरोंको पृथ्वी पर लेटाये हो पैसा कर देने से पृथ्वीके मध्य भागमें रहने वाले भवनपति और धरतियोंको— सेनाके भारसे—पृथ्वीके फट पडनेकी आशङ्कासे भयभीत कर देते थे। गोकुलमें विकस्वर दृष्टिवाली गोपाङ्गनाओंका मातृन रूप अर्घ्य अमृत्य हो इस तरह भक्तिसे ग्रहण करते थे। धन धनमें हाथियोंके कुम्भस्थलमें से पैदा हुए मोंतियोंकी मीलोंद्वारा दी हुई भेंटको ग्रहण करते थे, पर्वत पर्वतके राजाओं द्वारा आगे रसे हुए रत्न और सोनेकी पानोंक महत् सार का अनेक बार स्वाकार करते थे। मानों गाँव गाँवमें उत्कण्ठित वाञ्छन हों, ऐसे गाँवके बड़े बूढ़ोंके नजराने प्रसन्नतासे

स्वीकार करती और उन पर हृष्या करते थे, दोनोंमें पड़ने वाली गायोंकी तरह गायोंमें चारों ओर फैलने वाले खैतिकोंका अपने आकारकी उपद्रुण्डले रोकने थे, बन्दरोंकी तरह वृक्षोंपर चढ़ कर अपने तर्ङ (महाप्राज्ञने तर्ङ) हर्ष-शुषंभ देखने वाले गाँवके बालकोंको पिनाकी तरह प्रमत्ते देखते थे, धन, धान्य और जीवतमे निर्याद्री गाँवोंकी सम्पत्तिको अपनी नीतिरूपा लता के फलरूपमे देखते थे, नदियोंको कीचड़युक्त करते थे, सरोवरों सोखने थे और याचडी तथा कुओंको पाताल विवरकी तरह खाली करत थे। दुर्गिनीन शत्रुओंको शिक्षा देनेवाले महा राज भग्न इन् तर्ङ मलय-पवनकी तरह लोगाको मुछ देते हुए और घीरे घार चलने हुए अयोध्यापुरीर समीप आ पहुँच। मानों अयोध्याका अनिधिकरूप महादर हो इन् तर्ङ अयोध्याके पामकी जमीनमें महागजने पडाय डाय। फिर राज शिगमणि भरतने राजधानीको मनमें यादकर उपद्रय रहित प्रातिदायक भयम तप किया। अष्टम मकर अन्तमें पौरुषात्पमे पाहट निरुक्त अन्य राजाओंके साथ दिव्य भोजनमे पारणा किया।

अयोध्याकी विशेष शोभा ।

इस अयोध्यामें स्थान स्थान पर मानों दिग्दिगन्तम आई हुई लक्ष्मीके खेलनेके झूले हो, येम ऊँचे खूबे भोग्य वैधाने भगवानके जन्म समयमे
 ॥ करते हैं उसी तरह नगरके

राह घाटमें बैशरके जलसे त्रिडकाव करने लगे । मानों निधियाँ अनेक रूपसे जागे हो भागई हों, इस तरह मंच सोनेके खम्भोंसे बनवाने लगे । उत्तर कुच देशमें पाच नदियोंके दोनों ओर रहने वाले दशदश सुवर्णगिरि शोभते हैं इसी तरह राहनी दोनों ओर आमने सामनेके मंच शोभने लगे । प्रत्येक मंचमें बाँधे हुए रत्न मय तोरण इन्द्रधनुषकी श्रेणीकी शोभाका परामय करने लगे और गन्धर्व्याकी सेना विमानोंमें बैठती हों, इस तरह गानेवाली स्त्रियाँ मृदंग और धीण बजानेवाले गन्धर्वोंके साथ, उन मंचों पर बैठने लगीं । उन मंचोंके ऊपरके चन्द्रबोंके साथ बँधी हुई मोतियोंकी झालरें, लक्ष्मीके निवास गृहकी तरह धान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करने लगीं । मानो प्रमोदको प्राप्त हुई नगरदेवीका हास्य हो इस तरह चँवरोंसे, स्वर्गमण्डनकी रचना के चित्रोंसे, कौतुकसे आये हुए नक्षत्र—तारे हों ऐसे दर्पणोंसे, खेचरोंके हाथोंके रुमाल हों ऐसे वस्त्रोंस और लक्ष्मीकी मेखला विचित्र मणिमालाओंसे नगरके लोग ऊँचे किये हुए खम्भोंमें हारकी शोभा करने लगे । लोगों द्वारा बांधी हुई घुघ्रुओं वाले पताकार्ये, सारस पक्षीके मधुर शब्द वाले शब्द ऋतुके समय को बताने लगीं । व्यापारी लाग हरेक दूकान और मन्दिरोंको यक्ष कदमके गोबरसे लीपने लगे और उनके आँगनोंमें मोतियोंके साधिये पूजने लगे । जगह जगह अगारके चूर्णकी धूपका धूआँ ऊँचा उठ रहा था इससे ऐसा जान पड़ता था, गोया स्वर्गको भी धूपित करनेकी इच्छा करत हैं ।

इस तरह नगरके लोगोंकी सजाया हुआ नगरीमें प्रवेश करने की इच्छासे पृथ्वीन्द्र चक्रवर्ती शुभ मुहूर्तमें मेघम् गर्जना करनेवाले हाथों पर चढ़े। आकाश जिस तरह चन्द्रमण्डलसे शोभना है, उसी तरह कपूरके घूर्ण जैसे सफेद छत्रोंसे वे शोभते थे। दो चंवरोंके मियसे अपने शरीरोंको छोटा बनाकर, आइ हुई गंगा और सिन्धने उनकी सेवा की हो ऐसा मालूम होता था। स्फटिक पर्यंतोंकी शिलाओंमें से सार लेकर बनाये हों, ऐसे उज्ज्वल, अति सूक्ष्म, कोमल और घन—ठोस कपडोंसे वे शोभते थे मानों रत्नप्रभा पृथ्वीने प्रेमसे अपना सार अर्पण किया हो ऐसे विचित्र रत्नालङ्कारोंसे उनके सारे अंग अलंकृत थे। कर्णों पर मणिको धारण करनेवाले नागकुमार देवोंसे घिरे हुए नागराजकी तरह, वे माणिक्यमय मुकुटवाले राजाओंसे घिरे हुए थे। जिस तरह चारण देवराज इन्द्रके गुणोंका कीर्तन करते हैं, उसी तरह जय जय शब्द बोलकर आनन्दकारी चारण और भाट उनके अद्भुत गुणोंका कीर्तन करते थे और मंगल शब्द प्रति शब्दके मियसे, आकाश भी उनकी मंगल ध्वनि करता हुआ भा जान पड़ता था। इन्द्रके समान तेजस्वी और पराक्रमके भण्डार महाराज चलनेके लिए गजेन्द्रको प्रेरणा कर आगे चलने लगे। मानों स्वर्गसे उतरे हों अथवा पृथ्वी में से निकले हों, इस तरह बहुत समयके बाद आनेवाले राजाके दर्शन करनेकी इच्छासे दूररे गावोंसे भी आदमी आये थे। महाराजकी सारी सेना और दूर्य आये हुए लोग—

इन दोनोंके इकट्ठे होनेसे, सारा मृत्युलोक एक स्थानमें पिण्डा भूत हुआ सा जान पड़ता था। सेना और आये हुए लोगों की भीड़से उस समय तिलका दाना भी फेंकनेसे जमीन पर न पड़ता था। कितने ही लोग भाटोंकी तरह खड़े होकर खुशीसे स्तुति करते थे। कोई कोई चंचल भँवरोंकी तरह अपने घरवाञ्छलसे हवा करते थे। कोई मस्तक पर अञ्जलि जोड़ कर सूर्यकी तरह नमस्कार करते थे। कोई मालाकार रूपमें फल और फूल अर्पण करते थे। कोई कुलदेवकी तरह उनकी वन्दना करता था और कोई गोत्रके बूटे आदमीकी तरह उन्हें आशीर्वाद देता था।

अयोध्या नगरीमें प्रवेश ।

जिस तरह ऋषभदेव भगवान् समवशरणमें प्रवेश करते हो, इस तरह महाराजने चार दरवाजेवाली अपनी नगरीमें पुरखी दरवाजेसे प्रवेश किया। लग घड़ीके समय एक साथ बाजोंकी आवाज हो, इस तरह उस समय प्रत्येक मञ्च पर संगीत होन लगा। महाराज आगे चले, तब राजमार्गके घरोंमें रहनेवाली स्त्रिया हर्षसे दृष्टिके समान धानी उड़ाने लगीं। पुरवासियों द्वारा फूलोंकी धर्पासे ढका हुआ महाराजका हाथी पुष्पमय रथ-जैसा बन गया। उत्कण्ठित लोगोंकी अत्यन्त उत्कठा देखकर चक्रवर्ती राजमार्गमें धीरे धीरे चलने लगे। लोग हाथीसे न डर कर, महाराजके पास आकर फल वगैरह

भेंट करने लगे। क्योंकि हर्ष ऐसा ही बलवान् है। राज-
हस्तीके कुम्भस्थलमें अंकुशकी ताडना करके उस हर नरके
सामने पड़ा रखते थे। उस समय दोनों तरफ से दो
आगे खड़ी हुई सुन्दरी गमणियाँ एक साथ कूपमें खड़े
की आरती उतारती थीं। दोनों तरफ आरती करने के
राज दोनों ओर सूर्य-चन्द्र धारण करने वाले मंद कर्ण-होत्र
को हरण करते थे। अतएव साय मोनियों ने ही सब
ऊँचेकर चक्रवर्तीको यथाई देनेके लिए इन्द्रके कोट
हुए धनिक लोग उनको दृष्टिसे आनन्दित करने हेतु
की यही यही हवेलियोंके दरवाजोंमें बस ही इन्द्रके
के किये हुए माँगलिकको महापत्र अत्रे करने के विद्वान्
माँगलिककी तरह मानते थे। इन्द्रके अत्रे होने के
ने ही लोगोंको देपकर, वे अत्रे करने हुए इन्द्रके
छडीदारोंसे उनकी रक्षा करवाने हैं। इन सब कर्ण-होत्र
महाराजने अपन पिताके सन्तानके अत्रे होने के लिए। उम
महलके आगेकी जमानमें राजाके अत्रे होने—उम दो
हाथी धरे थे। दो चक्रवर्त अत्रे हुए उम-अत्रे होने
है, उसी तरह दो मानक कुम्भोंमें उम महलका विष्णु वार
सुरोमित था और इन्द्रके अत्रे होने के लिए अत्रे होनेकी तरह,
आमके पत्तोंके अत्रे होने ठाने अत्रे होनेसे यह रात्रमहल
शोभता था। उसमें कितनी ही जगद मोनियोंसे, कितनी ही
जगद कूपसे और कितनी ही जगद अत्रे होनेके अत्रे होने

और मंगलिक किये गये थे। कहीं चोनी कपड़ोंसे, कहा रेशमी कपड़ोंसे और कहीं दिव्य वस्त्रोंसे लगाई हुई पताकाओंकी पंक्तियोंसे वह महल शोभायमान था। उस महलके आंगनमें कहीं कपूरके पानीसे, कहीं फूलोंके रमसे और कहीं हाथियोंके मूत्र-जलसे छिड़काव किया गया था। उसके ऊपर जो सोनेके कलश रखे थे उससे ऐसा मालूम होता था गोया उनके मिश्र से वहाँ सूर्यने विश्राम किया है। उस राजगृहके आंगनमें अग्र वेदी पर अपने पैर जमाकर छडीदारने हाथका सहारा देकर महाराजको हाथीसे उतारा और प्रथम आचार्यके समान अपने सोलह हजार अग्रक्षक देवोंका पूजन कर महाराजने उन्हें विदा किया। इसी तरह बत्तीस हजार राजे, सेनापति, प्रोहित गृहपति और बर्द्धकिको भी महाराजने विसर्जन किया। हाथियोंको जिस तरह आलान—स्तम्भसे बाँधनेकी आज्ञा देते हैं, उसी तरह तीनसौ निरेसठ रसोइयोंको अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। उत्सवके अन्तमें अतिधिकी तरह सठोंको, श्रेणी प्रश्रेणियोंको दुर्गपालों और साथवाहोंको भी जाने की छुट्टी दी। पीछे इन्द्राणी के साथ इन्द्रका तरह स्त्रीरत्न सुमद्राके साथ बत्तीस हजार राज कुलमें जमी हुई रानियोंके साथ उतनी ही यानी बत्तीस हजार देशके आगेयानोंकी कन्याओंके साथ बत्तीस-बत्तीस पात्रवाले उतने ही नाटकोंके साथ मणिमय शिलाओंकी पक्तिपर दृष्टि

ॐ मास्त्री वरुणः नौ जातियाँ श्रेणी कहलाता है और घांची प्रभृति नौ जातियाँ प्रश्रेणी कहलाती हैं।

कैसे हुए महाराजने यक्षपति कुबेर जिन तरह कैलाशमें प्रवेश करते हैं; उसी तरह उत्सवों साथ राजमहलमें प्रवेश किया। वह क्षणभंग पूरवकी तरफ मुँह करके सिंहासन पर बैठे और कितनी ही मन्त्रघण्ट करके स्नानागार या शुशाल् खानेमें गये। हाथी जिस तरह सरायमें स्नान करता है, उमा तरह छान करके परिजनोंने साथ अनेक प्रकारके रसोंवाले आहारका भोजन किया। पीछे योगी जिस तरह योग में काल निर्गमन करता है—समय बिताता है उमा तरह राजा ने नवरत्न पूर्ण नाटको और मनोहर संगीतमें कितनाही समय बिताया।

चक्रवर्तीका राज्याभिषेकात्सय ।

एक समय सुरारोंने आकर प्रार्थना की कि महाराज ! आपने विद्याधरपति समेत पट्टखण्ड पृथ्वीका साधन किया है—छटा खण्ड मही जीत ली है; इस कारण हे इन्द्रके समान पराक्रमशाली ! अगर आप हमें आज्ञा दें तो हम स्वच्छन्दता पूर्वक आपका महाराज्याभिषेक करें। महाराजने आज्ञा दे दी, - तब दयनाओने शहरके बाहर ईशान कोणमें सुधमा मभाके एक खण्ड जैसा मण्डप बनाया। वे सरोवर, नदियाँ समुद्र और अन्याय तीर्थोंसे जल औषधि और मिट्टी लाये। महाराजने पीपघालयमें जाकर अष्टम तप किया क्योंकि तपसे मिला हुआ राज्य तपसे ही सुखमय रहता है। अष्टम तप पूर्ण होनेपर

अन्त पुग और पग्नारसे घिर कर हाथो पर बैठे और उस मण्डपमें गये। फिर अन्त पुग और हजारों नाटकोंके साथ उन्होंने उच्च रूपसे बनाये हुए अमिपेक मण्डपमें प्रवेश किया। यहाँ स्नान पीठमें सिंहासन पर चढ़े, उन समय हाथीके पर्वत शिपर पर चढ़नेका सा दृश्य हुआ। मानों इन्द्रकी प्रीतिके लिये हो इस तरह वे पूर्य दिशाकी और मुह करके रत्नसिंहासन पर बैठे। थोड़ेही हों इस तरह बत्तीस हजार राजा लोग उत्तर ओरका सीढ़ियोंसे स्नान-पीठ पर चढ़े और चक्रवर्तीके पास भद्रासनोपर हाथ जोडकर उसी तरह बैठे, जिस तरह देवता इन्द्रके सामने हाथ जोडकर बैठते हैं। सेनापति, गृहपति, बर्द्धकि, पुरोहित और सेठ साहूकार प्रभृति दयलनकी सीढ़ियोंसे स्नान पीठ पर चढ़े। मानों चक्रवर्तीसे प्रार्थना करनेकी इच्छा रखते हों, इस तरह अपने योग्य आशनों पर हाथ जोडकर बैठ गये। पीछे आदिदेवका अमिपेक करनेके लिये इन्द्र आये हों उस तरह इस नगदेवका अमिपेक करनेके लिये उनके आमियोगिक देव निकट आये। जलपूर्ण होनेसे मेघ जैसे, मानों चकवा पक्षी हो इस तरह मुख भाग पर कमल चाले और भीतरसे जल गिरते समय धाजेकी सी आवाज करने चाले स्वामाधिक और वैश्विक रत्न कलशोंसे वे सय महा राजका अमिपेक करने लगे। मानों अपने ही नेत्र हों ऐसे जल से भरे हुए कलशोंसे बत्तीस हजार राजाओंमें, शुभ मुहूर्त्तमें उनका अमिपेक किया और अपने सिरपर कमल कोपकी तरह

हाथ जोड़े और "आपकी जय हो, आप विजयी हों" कहकर चक्रवर्तीकी वधाने लगी। इसके बाद सेनापति और सेठ प्रभृति जलसे अभिषेक करके उस जलके जैसे उज्ज्वल राक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने पवित्र रोष वाले कोमल गंध कयायी उत्ससे, माणिक्यकी तरह, उनका शरीर पोंछ कर साफ किया तथा गेरू जिस तरह सोनेकी कान्तिको पोषण करता है उसकी कान्तिको बढ़ाता है उस तरह शरीरकी कान्तिको पोषण करनेवाले गोशोप चन्दनका लेप महाराजने अंगमें किया। इन्द्रने जो मुकुट ऋषभ म्यामाको दिया था, देवताओंने वही मुकुट अभिषिक्त और राजाओंमें श्रेष्ठ चक्रवर्तीके सिर पर रखा। उनके मुख चन्द्रके पास रहने वाले चित्रा और स्वाती नक्षत्र जैसे रत्नोंके कुण्डल उनके ठोनों कानोंमें पहनाये। जिसमें धारा नहीं दीपता जो मानों हारके रूपमें ही पैदा हुआ हो ऐसा सीपके मोनियोंका हार उनके गलेमें पहनाया। मानों सभ अलङ्कारोंका हार रूप राजाका युवराज हो ऐसा एक सुन्दर अङ्गहार उनके उरस्थल या छाती पर पहनाया मानों कान्ति मान अन्नकके मण्डप हों ऐसे उज्ज्वल कान्तिसे शोभने वाले देवदूष्य घञ्ज महाराजको पहनाये। और मानों लक्ष्मीके उगम्य-रूपी मन्दिरका कान्तिमय किले जैसी एक सुन्दर फूगोंकी माला उनके कण्ठमें पहनाई। इस प्रकार कल्पवृक्षके जैसे अमूल्य कपड़े और माणिक्यके गहने पहन कर महाराजने स्वर्गछण्डकी तरह उस मण्डपको सुशोभित किया। फिर समस्त पुरुषोंमें

अग्रणी और महा बुद्धिमान् महाराजन छडीदार द्वारा सेरक पुरुषोंको बुगवा कर हुषम दिया—“हे अधिकारा पुरुषों! तुम हाथी पर बैठ और सब जगह घूम घूम कर इन चिनीता नगरी को चारह घरसके लिए किसी भी प्रकारको जकात-चुगी, मह सूल, बर, दण्ड, कुदण्ड और भयसे रहित घर खुली करो।” अधिकारियोंने तत्काल उसी तरह उद्घोषण कर, द्विंदोरा पीठ, महाराजके हुषमकी तामील की। कार्यनिद्रिमें चक्रवर्त्तियोंकी आशा पन्द्रहवाँ रत्न है।

इसके बाद महाराजा रत्नमय सिंहासनसे उठे। उनके साथ उनके प्रतिधिम्यकी तरह और सब लोग भी उठे। पर्यंतके जसीछान पीठ परमे भगत्तेश्वर अपने आगे मागसे नीचे उतरे। साथ ही और लोग भी अपने अपने रास्तेसे उतरे। फिर मानों अपना भसह्य प्रताप हो, ऐसे उत्तम हाथी पर बैठ चक्रवर्त्तियों अपने महलमें पधारे। वहाँ स्नानघर या गुशालगानेमें जाकर निर्मलजलसे स्नान कर उहाँने अष्टम भक्तका पारणा किया। इस तरह चारह वर्षमें अभिषेकोत्सव समाप्त हुआ। तब चक्रवर्त्तोंने स्नान, पूजा, प्रायश्चित्त और कौतुक भगत कर, याहरके समास्थानमें आ, सोलह हजार आत्मरक्षक देवोंका सत्कार कर उनको विशा किया। फिर विमानमें रहने वाले इन्द्रकी तरह महाराजा अपने उत्तम महलमें रह कर विषय सुख भोगने लगे।

महाराजकी आयुधशाला या अस्त्रागारमें स्वर्ण, छत्र खड्ग और दण्ड—ये चार शक्रेन्द्रिय रत्न थे। जैसे रोहणान्वष्टमें मा पिवय भरे रहते हैं, वैसेही उनके लक्ष्मीगृहमें काकिणीरत्न चर्म

रत्न, मणिरत्न और नवों निधिया वर्तमान थीं। उन्हींकी नगरी में उत्पन्न हुए सेनापति गृहपति, पुरोहित और वर्द्धकि—ये चार नर रत्न थे। वेतादृश पद्यतके मूलमें उत्पन्न होनेवाले गजरत्न और मन्धरत्न तथा विद्याधरोंकी उत्तम श्रेणीमें उत्पन्न स्त्री रत्न भी उन्हें प्राप्त थे। उनकी मूर्ति नेत्रोंको आनन्द देनेवाली तथा चन्द्रमाकी तरह शोभायमान थी। अपने असहनीय प्रतापक कारण से सूर्यके समान चमक रहे थे। जैसे समुद्रके मध्यभागमें क्या है यह कोई जड़ी नहीं जान पाता, वैसे ही उनके हृदयमें क्या है, यह बात कोई शीघ्र नहीं मालूम कर पाता था। उन्हें कुघेर की तरह मनुष्यों पर स्वामिता मिली हुई थी। जम्बूद्वीप, जैसे गङ्गा और सिन्धु आदि नदियोंसे शोभा पाता है वैसेही वे भी पूर्वोक्त चौदहों रत्नोंसे शोभित थे। विहार करते हुए भ्रमप्रमुखे चरणोंके नीचे जैसे नग सुवर्ण कमल रहते हैं वैसे ही उनके चरणों के नीचे नवों निधिया निरन्तर पड़ी रहती थीं। वे सदा सोलह हजार पारिपाश्र्वक देवताओंसे घिरे रहने थे जो दीक बड़े दामों पर खरीदे हुये आत्मरक्षकमे मालूम पड़ते थे। बत्तीस हजार राजकन्याओंकी भांति बत्तीस हजार राजागण निर्भर मत्तिये साथ उनकी उपासना करते रहते थे। बत्तीस हजार नाटकों की तरह बत्तीस हजार देशोंकी, बत्तीस हजार राजकन्याओंके साथ वे रमण किया करते थे। सत्सारेके ये श्रेष्ठ राजा तीन सौ तिरेसठ दिनोंके वषकी भांति तीन सौ तिरेसठ रमोद्धारों से सेवित थे। अठारह लिपियोंका प्रचलित करनेवाले अठारह

ऋषभदेवकी भाति उहोंने भा संसारमें अठारह श्रेणा-प्रश्रेणियोंका व्यवहार चलाया था। चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ, छियानवे करोड़ अशिक्षितों तथा इतने ही पैदल सिपाहियोंसे वे शोभित थे। बत्तीस हजार देशों और बहत्तर हजार बड़े-बड़े नगरोंके वे अधिपति थे। निजानवे हजार द्रोणमुख और अड़तालीस हजार किलेगन्द शहरोंके अधिपति थे। आडम्बर युक्त लक्ष्मोजाले चौबीस हजार करबट, चौबीस हजार मण्डप और बीस हजार खानोंके वे मालिक थे। सोलह हजार खेडों (जिलों) के वे शासनकर्त्ता थे। चौदह हजार सवाद तथा छप्पन द्वीपोंके वे ही प्रभु थे। उनकास छोटे छोटे राज्योंके वे नायक थे। इस प्रकार वे इस समस्त भरत क्षेत्रके शासन कर्त्ता स्वामी थे।

इस प्रकार अयोध्या नगरीमें अखण्डित आधिपत्य चलानेवाले महाराजने अभिषेकोत्सव समाप्त हो जानेपर एक दिन अपने सम्बन्धियोंका स्मरण किया। तत्काल ही अधिकारी पुरुषोंने साठ हजार वर्षसे महाराजके दशनोंने लिये उदसुक बने हुए सब सम्बन्धियोंको उन्हें ला दिखलाया। उनमें सबसे पहले बाहुबलीके साथ जमा हुई, गुणोंसे सुन्दर बनी हुई सुन्दरीका नाम पहले बतलाया। वह सुन्दरी गरमीके दिनोंमें पतला धारवाली नदीकी तरह दुबली पालेकी मारी कमलिनी की तरह कुम्हलायी हुई, हेमन्त ऋतुकी चन्द्रकलाकी तरह नष्ट लक्ष्म्यवती थी और शुष्क पत्रोंवाली कदलीकी तरह उसके गाल

फोंके और वृश हा गये थे। सुन्दरीकी यह बदली हुई सूरत देख कर महाराजने क्रोधके भाव अपने अधिकारियोंके कहा,—
 “ये ! यह क्या ? क्या मेरे घरमें अच्छा अनाज नहीं है ? लवण समुद्रमें लवण नहीं रह गया ? सब रसोंके जानने वाले गन्धोइये नहीं हैं ? अथवा तुम लोग निरादर युक्त और कामके चोर हो गये हो ? क्या दाख और खजूर आदि खाने लायक मेरे अपने यहां नहीं हैं ? सुवर्ण पत्रमें सुवर्ण नहीं रह गया ? यागीन्नोंके वृक्ष क्या अब फल नहीं देते ? क्या नन्दा वनके वृक्ष भी अब नहीं फलते ? घड़ेके ममान धनोंवाली गायें क्या अब दूध नहीं देती ? क्या कामधेनुके स्तनोंका प्रवाह भी सूख गया ? अथवा इन सब खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थोंके रहते हुए भी सुन्दरी किन्नी रागसे पांडित होनेके कारण खाता ही नहीं है ? यदि इस के शरीरमें ऐसा कोई रोग हो गया है जो कायाके सान्द्र्यका नाश करने वाला है तो क्या हमारा यहाँक सब वैद्य मर गये हैं ? यदि अपने घरमें दिव्य औषधि नहीं रही, तो क्या आजकल हिमाद्रि पर्वत भा औषधि रहित हो गया है ? अधिकारियों ! मैं इस दरिद्रीकी पुत्राकी तरह दुयल बनी हुई सुन्दरीको देख कर बहुत ही दुःखित हुआ। तुम लोगोंन मुझे शत्रुका तरह धोखा दिया।”

भरत-पतिजा इस प्रकार क्रोधसे बोलते देव अधिकारियों-
 ने प्रणाम कर कहा,—“महाराज ! स्वर्ग पतिकी तरह आपके घर
 में सब कुछ मौजूद है। परन्तु जयमे आप दिग्विजय करने चले

गये, तबसे यह सुन्दरी केवल प्राणरक्षणके निमित्त आम्ब्रिल तप कर रही है। आपने इसे दीक्षा लेनेको मना कर दिया था इसलिये यह भावदाक्षित होकर रहती आयी है।”

यह सुन, राजाने सुन्दरीकी ओर देखकर पूछा,—“हे कल्याणो ! क्या तुम दीक्षा लेना चाहती हो ?”

सुन्दरीने कहा,—“हाँ !”

यह सुन, भरतरायने कहा —“ओह ! केवल प्रमाद और सरलताके कारण मैं अतब इसके घतमें विघ्नकारी बनता आया। यह घेटी तो ठीक पिताजाके ही समान निकली और मैं उर्हींका पुत्र होकर सदा त्रिपयोमें आसक्त और राज्यमें अतृप्त बना रहा। यह आयु समुद्रका जलतरंगकी तरह नाशवान् है, परन्तु विषय-भोगमें पड़े हुए मनुष्य इसे नहीं जानते। देखते हो-देखते नाश को प्राप्त हो जानेवाली विजळीके सहारे जैसे रास्ता देख लिया जाता है वैसे ही इस चंचल आयुमें भी साधु-जनोंको मोक्षकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये। मांस, विष्टा, मूत्र, मल, प्रस्येद और व्याभियोंसे भरे हुए शरीरको सँवारना—सिगारना क्या है, घरकी मोरैका शृङ्गार करना है। प्यारी धहन ! शावाश ! तुम धन्य हो, कि इस शरीरके द्वारा मोक्षरूपी फलको उत्पन्न करनेवाले घतको ग्रहण करनेकी इच्छा तुम्हारे मनमें उत्पन्न हुई। चतुर लाभ खारी समुद्रमेंसे भी रत्न निकाल लेते हैं।” यह कह महा

ले एक धार्मिक घत जिममें लड़ करपर गरम और भारी पगथ नईं खाये जात।

राजने हृषिक हृदयसे सुन्दरीको दीक्षा प्रदण करनेका आज्ञा दे
दा। इम आज्ञाको पाकर यह सुन्दरी, जो तपसे पृथ हो रह
थी, ऐसी हर्षित हुई, कि आनन्दसे उच्छ्वासके मारे यह हृष्ट
पुष्ट मालूम पाने लगी।

इसी समय जगत्कूपी मयूरको मेघसे समान हर्ष देनेवाले
भगवान् प्रथम-भवामो विहार करते हुए अष्टापद गिरिपर आ पहुँ
चे। उस पर्वतके ऊपर देवताओंने रत्न सुवर्ण और चाँदीका
मानों दूसरा पर्वत ही हो, ऐसा उत्तम समवशरण बनाया। उसी
में बैठ कर प्रभु देशना देने लगे। गिरिपालकोंने तत्काल भगत
पतिसे आ कर यह बात कही। यह श्रुत्वात्त श्रवण कर मदिनी
पतिको उमने भी अधिक आनन्द हुआ, जितना उन्हें भरत क्षेत्रसे
छत्रों छत्रों पर विजय प्राप्त करनेसे होता। भगामीके आग
मनका समाचार सुनाने वाले सेवकोंको उन्होंने माटे
धारक करोड मुहरें इनाममें दी और सुन्दरीसे कहा—“क्षेत्रो
तुम्हारे मनोरथके मूर्त्तिमान् म्बरुप जगद्गुरु विहार करते हुए वहीं
आ पहुँचे हैं।” इसके बाद चक्रवर्त्तीन दासीजनोंकी तरह
अन्तपुरकी लियोंसे सुन्दरीका निष्कमणाभिषेक कराया।
सुन्दरीने स्नान कर, पवित्र विलेपन लगा, मानों दूसरा विलेपन
किया हो ऐसी उज्जल किनारीदार साड़ी तथा उत्तम रत्नालङ्कार
पहन लिये। यद्यपि उसने शीलकूपी सर्वोत्तम अङ्गुलार धारण
कर ही रखा था तथापि आचारकी रक्षाके लिये उसने अन्य अल-
ङ्कार भी पहन गिये। उस समय रूप सम्पत्तिसे सुशामित सुन्दरी

के सामने खीरदा सुमित्रा दासी स्त्री मालूम पड़ती थी। शीलमे सुन्दर बनी हुई वह बाला चलती फिरती कल्पलताकी भाँति याचकोंको मुँह माँगो चीजें दे रही थी। मार्गो हंसनी कमलिनीने ऊपर बठी हुए हो, इसी प्रकार वह कर्पूरकी रजकी भाँति स्फेद घल्लसे सुशोभित हो वह एक पालकामें बैठ गई। हाथी, घोड़े, पैदल और रथोंसे पृथ्वीको आच्छादित करते हुए महाराज मय देवीने समान सुन्दरीके पीछे पीछे चले। उनसे दोनों आर धंवर दुल रहे थे, माथे पर श्वेत छत्र शोभित हो रहा था और माट—
 कारण उसके घन-मन्यधी गाढ मन्थयकी स्तुति कर रहे थे। उसकी भाँति उमङ् दीक्षोत्सवसे उपरभमें माङ्गलिक गीत गाती तथा उत्तम स्त्रियाँ पग-पग पर उस पर राई लोन धारनी चली जाती थीं। इस प्रकार अनेक पूर्ण पात्रोंके साथ साथ चलती हुई वह प्रभुके चरणोंसे पवित्र बन हुए अष्टपद पर्यंतके ऊपर आई। चन्द्रमाके साथ उन्वाचलकी जो शोभा होती है वैसही प्रभुसे अधिष्ठित उस पर्यंतकी देव पर भजन तथा सुन्दरीको बड़ा हय हुआ। स्वर्ग और मातृकी ले जाने वाली सीढ़ीके समान उस विशाल शिवायुक्त पथ पर वे दोनों चढ़े और संसारसे मय पाये हुए प्राणियोंसे लिये शरण तुल्य चार द्वार युक्त सशित्त किये हुए जम्बूद्वीपके दुर्गकी तरह उस समयशरणमें आ पहुँचे। वे लोग समयशरणसे उत्तर द्वारके मागसे यथाविधि उसके भीतर आये। इसके बाद हर्ष तथा विनयसे अपने शरीरको उच्छ्वसित तथा संकुचित करते हुए उन्होंने प्रभुकी तीनधार

प्रवृत्तिणा की और पञ्चाङ्गसे भूमिको स्पर्श कर नमस्कार किया। उस समय ऐसा मालूम हुआ मानों वे रत्नों पर पड़े हुए प्रभुका प्रतिविम्ब देखनेकी इच्छासे ही गिर पड़े हों। इससे याद सत्र चत्तीनि भक्तिसे पवित्र घनी हुई बाणीके द्वारा प्रथम धर्म चत्री की (तीर्थङ्कर की) इस तरह स्तुति करनी आरम्भ की।

“ हे प्रभु! अविद्यमान गुणोंको घनलानेवाले मनुष्य, भय जनोंकी स्तुति कर सक्ते हैं पर मैं तो आपके विद्यमान गुणोंको भी कहनेमें असमर्थ हूँ, फिर मैं कैसे आपकी स्तुति कर सकूँगा हूँ? तथापि जैसे दरिद्र मनुष्य भी धनवानोंको नजराना देने हैं, वैसे ही मैं भी, हे जगन्नाथ! आपकी स्तुति करता हूँ। हे प्रभु! जैसे चन्द्रमाकी चिरणोंको पावर शोभालाके पूल छूट जाते हैं, वैसे ही आपके चरणोंके दशन करते ही मनुष्योंके पाप जलोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामी! जिनकी चिकित्सा नहीं हो सकती ऐसे महामोहरूपी सन्निपातसे पीडित प्राणियोंके लिये आपकी घाणी घसी ही फलप्रद है जैसी अमृतकी सी रसायन। हे नाथ! जैसे घषाकी यूँ चक्रवर्ती और मिशुक पर एक समान पड़ती हैं, वैसे ही आपकी दृष्टि सबका प्रीति सम्पत्तिका एकसाँ कारण होती है। हे स्वामी! प्रभु कर्म रूपो बर्फके टुकड़ोंको गला देने वाले सूर्यकी तरह आप हम जैसोंके बड़े पुण्यसे इस पृथ्वीमें विहार करते हैं। हे प्रभु! शब्दानुशासनमें (ध्याकरणमें) कहे हुए मन्त्रा सूत्रकी तरह आपकी त्रिपदी जो उत्पाद, ध्यय और धीयमय है, सदा जययन्ती है। हे भगवन्! जो

आपकी स्तुति करते हैं, वे आवागमनके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, फिर जो आपकी सेवा और ध्यान करते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ?”

इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करनेके बाद नमस्कार कर, भरतेश्वर इशान कोणमें योग्य स्थान पर जा बैठे। तदनन्तर सुन्दरी, भगवान्‌ धृपमध्वजको प्रणाम कर हाथ जोड़े, गद्गद वचनोंसे बोली,—“हे जगत्पति ! इतने दिनों तक मैं मन ही मन आपका ध्यान कर रही थी, पर आज बड़े पुण्योंके प्रमादसे मेरा ऐसा भाग्योदय हुआ, कि मैं आपको प्रत्यक्ष देख रही हूँ। इस सृगतृष्णाके समान झूठे सुखोंसे भरे हुए संसार रूपी मरुदेशमें आप अमृतकी झीलोंके समान हम लोगोंके पुण्यसे ही प्राप्त हुए हैं। हे जगन्नाथ ! आप मर्मरहित हैं, तो भी आप जगत पर वात्सल्य रखते हैं, नहीं तो इस विषम दुःखके समुद्रसे उसका उद्धार क्यों करते हो ? हे प्रभु ! मेरी बहन ब्राह्मी, मेरे भतीजे और उनके पुत्र—ये सब आपके भागका अनुसरण कर चलाए हो चुके हैं। भरतके आग्रह से ही मैंने आज तक व्रत नहीं ग्रहण किया, इसलिये मैं स्वयं ठगी गयी हू। हे विश्वतारक ! अथ आप मुझ दीनाको तारिये। सारे घरको प्रकाश करने वाला दीपक, क्या घड़ेको प्रकाश नहीं करता ? अथशय करता है। इसलिये हे विश्व-रक्षा करनेमें प्रीति रखने वाले ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो और मुझे ससार-समुद्रसे पार उतारने वाली नौकाके समान दीक्षा दीजिये।

सुदरीकी यह बात सुन कर प्रभुने " हे महासत्ये ! तू धन्य है, " ऐसा कह सामायिक सूत्रोच्चार पूर्वक उसे दीक्षा दी। इसके बाद उन्होंने उसे महाप्रत रूपी घृशोंके उद्यानमें अमृत की नहरके समान शिक्षा मय देशना सुनाई, जिसे सुनकर वह महामना साध्वी अपने मनमें ऐसा मान कर मातों उसे मोक्ष प्राप्त ही होगया हो बड़ी यही साध्वियोंके पीछे अन्य प्रतिनी-गण के बीचमें जा बैठी। प्रभुकी देशना सुन उनके धरण कमलोंमें प्रणाम कर, महाराज भरतपति हर्षित होते हुए अयोध्या-नगरी में चले आए।

यहाँ आते ही अधिकांशोंने अपने सब सज्जनोंको वेपने की इच्छा रखने वाले महाराजकी उन लोगोंको दिखाना दिया जो आये हुए थे और जो लोग नहीं आये थे उनकी याद दिला था। तब महाराज भरतने उन भाइयोंको बुलानेके लिये अलग-अलग दूत भेजे जो अमियेक उत्सवमें नहीं आये हुए थे। दूतोंने उनसे आकर कहा — "यदि आप लोग राज्य करनेकी इच्छा करते हैं, तो महाराज भरतकी सेवा कीजिये।" दूतोंका बात सुन उन लोगोंने विचार कर कहा — "पिताने भरत और सब भाइयोंके बीच राज्यका बँटवारा कर दिया था। फिर यदि हम उसकी सजा करे तो, यह हमें अधिक क्या दे देगा ? क्या वह फिर पर आर्या हुए मृत्युकी टाल सक्ता ? क्या यह देहको अजर करने वाली जरा राक्षसोंकी दया सक्ता है ? क्या यह पाडा देने

गाली व्याधि रूपी व्याधियोंको मार सकेगा ? अथवा उचारोत्तर बढ़ती हुई तृष्णाको घुण कर सकेगा ? यदि हमारी सेवाएँ बढ़नेमें वह इस तरहका कोई फल हमें नहीं दे सकता, तो फिर इस संसारमें, जहाँ सब मनुष्य समान है, कौन किसकी सेवा करे ? उनको बहुत बड़ा राज्य मिल गया है, तो भी यदि उन्हें सन्तोष नहीं होता और वेबल पूर्वक हमारा राज्य छीन लेना चाहते हैं, तो हम भी एक हाथ आपके बेटे हैं, पर चूँकि तुम्हारे स्वामी हमारे बड़े भाई हैं, इसलिये हम जिना पिताजीकी यह सब हाल सुनाये उनके साथ युद्ध करनेकी नहीं तैयार हैं। दूतोंसे ऐसा कह कर, ऋषभदेव जी के वे ६८ पुत्र अष्टापद-पर्वतके ऊपर समग्रशरण के भीतर विराजते वाले ऋषभ स्वामीके पास आये। वहाँ पहुँचते ही प्रथम तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर उठे। परमेश्वरकी प्रणाम किया। इसके बाद हाथ जोड़े हुए वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे।

“हे प्रभो ! जय देवता भी आपके गुणोंको नहीं जान सकते तथा दूसरा कौन आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सकता है ? तो भी अपनी बाल चपलताके कारण हम लोग आपकी स्तुति करते हैं। जो सदा आपको नमस्कार किया करते हैं, वे तपस्त्रियोंसे बढ कर हैं और जो तुम्हारी सेवा करते हैं वे तो योगियोंसे भी अधिक हैं। हे विश्वको प्रकाशित करने वाले सूर्य ! प्रति दिन आपको नमस्कार करने वाले जिन पुरवोंके मस्तक पर आपने चरण नखकी किरणें आभूषण रूप होकर

चमकती हैं, वे धन्य हैं। हे जगत्पति ! आप किसीसे कुछ भी साम या बलके द्वारा ग्रहण नहीं करते तो भी आप त्रैलोक्य चक्रवर्ती हैं। हे स्वामिन् ! सारे जलाशयके जलमें रहने वाले चन्द्रश्मिषकी तरह आप एक समान सारे जगत्के लोगोंके चित्तमें तिवास करते हैं। हे देव ! आपकी स्तुति करने वाला पुरुष सबको स्तुति करने योग्य हो जाता है, आपकी पूजा करने वाला सबसे पूजा पात्र योग्य हो जाता है, आपको नमस्कार करने वाला सबके द्वारा नमस्कृत होने योग्य हो जाता है इसीलिये आपकी भक्ति उत्तम फलोंकी देने वाली कही जाती है। दुःखरूपी दायानलमें जलते हुए जनोंके लिये आप मेघके समान और मोह-रूपी अन्धकारमें मूर्ख बने हुए लोगोंके लिये दीपक-स्वरूप हैं। पथके छायायुक्त वृक्षका भाँति आप राजा, रड्ड, मूख और गुणवान् सबके लिये समान उपकारी हैं।” इस प्रकार स्तुति कर वे सबके सब प्रभुके चरणकमलोंमें अपनी दृष्टिको झमर बनाये हुए एक मत होकर बोल,—“हे स्वामिन् ! आपने हमें और भरतको योग्यताके अनुसार अलग अलग देश के राज्य बाँट दिये हैं। हम तो आपके दिये हुए राज्यको ले-कर संतुष्ट हैं, क्योंकि स्वामीको निश्चिन्त की हुई मर्यादाको पिनयी मनुष्य नहीं मङ्ग करते पर हे भगवन् ! हमारे बड़े अर्थ भरत अपने और दूसरोंके धीने हुये राज्योका दबकर नोकर तक घेसे ही असंतुष्ट है, जैसे अन्नको दबकर नो सन्तोष नहीं होता। उन्होंने जैसे अन्नके राज्य

उह दोना ऊपर आते १ आते उमका मारा जल यह गया । तो मी जैसे भिभुक तेलसे भीगे हुए कपड़ेको निचोड कर लाता है, घेमे ही यह दोनाको निचाड कर पीने लगा । परन्तु जो तृषा समुद्रका जल पा कर मा नहीं मिटा यह दोनेके निचोडे हुए ऊर से कसे मिट सकती थी ?” इसी तरह तुम्हारी स्वर्ग्य सुखोंस भी नहीं मिटने थानो तृष्णा राजन्डश्रीम ही क्योंकि मिट सकती है ? इसलिये पुरा । तुम जैसे विठेशी मनुष्योंको चाहिय कि अमन्द आनन्दके भरनेके समान और मोक्ष प्रातिके कारण स्वरूप सयमके राज्यको ग्रहण करो ।”

स्वामीजी यह बात सुन उनके उन ६८ पुत्रोंको तत्काल वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने उसी समय भगवानसे दर्शा ले ला । “अहा ! इनका धैर्य, सत्य और वैराग्य बुद्धि मी कैसी अपूर्व है ।” ऐसा विचार करते हुए वे दून लौट गये और उन्होंने चक्रवर्तीसे यह सब हाल कह कर सुनाया । इसके बाद जैसे तारापति चन्द्रमा सब ताराओंकी ज्योतिकी स्वीकार कर लेता है, सूर्य जैसे सब अग्नियोंके तेजको स्वीकार करता है और समुद्र साते नदियोंके जलको स्वाकम्प कर लेता है वैसे ही चक्रवर्तीने उन सबके राज्योंको स्वीकार कर लिया ।

पञ्चम सर्ग

एक दिन भरतेश्वर सुव्रत स्वामी घेठे हुए थे। इसी समय सुपेण सेनापतिने उन्हें नमस्कार कर कहा,—“हे महाराज! आपने द्विग्विजय किया, तो भा जैसे मनवाला हाथीआलान समझ के पास नहीं जाता, वैसे ही आपका शत्रु अमीतक नगरीमें प्रवेश नहीं करता।”

भरतेश्वरने कहा,—“सनापति! क्या हम उ खएहोंवाले भरतक्षेत्रमें आज भी ऐसा कोई धीर है जो मेरी आज्ञाको नहीं मानता?”

तब मन्त्रीने कहा,—“हे स्वामिन्! मैं जानता हूँ कि महाराज ने शुभ्र हिमालय तक सारा भरत क्षेत्र जीत लिया है। अब आप द्विग्विजय कर आये, तब आपने जीवन योग्य कौन बाकी रह गया? क्योंकि चलती हुई चक्रोंमें पड़े हुए वनोंमें से एक भी दाना बिना पिते नहीं रहता। तथापि आपका शत्रु जो नगरीमें प्रवेश नहीं कर रहा है, उससे यदा सूचित होता है कि अथवा कोई ऐसा उमसत पुरुष जबर बाकी रह गया है जो आपकी आज्ञाको नहीं मानता और आपसे चीतने योग्य है। हे प्रभु! मुझे तो देयनाओंमें भी ऐसा कोई नहीं दिखलाता, जो बुजैय हो और जिसे आप हरा न सके। परन्तु नहीं—अब मुझे याद आयी।

इस जगत्में एक दुर्जेय पुरुष आपके जीती योग्य थाकी रह गया है। वह है, ऋषभस्वामीका पुत्र और आपका छोटा भाई बाहुबली। वह महाबलवान है और धड़े धड़े बलवानोंका बल तोड़ देनेवाला है। जैसे एक ओर सारे भस्त्र और दूसरी ओर अकेला चक्र बराबर होता है, वैसेही एक ओर समस्त राजागण और दूसरी तरफ बाहुबली बराबर है। जैसे आप श्रीऋषभदेवके लोकोत्तर पुत्र हैं वैसेही वह भी है। यदि आपने उसे नहीं जीता, तो समझ लीजिये, कि किसीको नहीं जीता यद्यपि इस समय इस भरतखण्डमें आपके समान कोई पुरुष नहीं दिखलाई देता, तथापि उसे जीत लेनेसे आपका घडा उद्वर्ष होगा। वह बाहुबली आपकी जगत् भरसे मानी जाने वाली आज्ञाओंको नहीं मानता, इसी लिये वह चक्र उसके पराजित होनेके पहले शर्मके मारे नगरमें जाना नहीं चाहता। रोगकी तरह धन्य शत्रुकी भी उपेक्षा करनी उचित नहीं इस लिये आप बिना विलम्ब उसे जीत लेनेका बल काजिये।”

मन्त्रोंके ऐसे घचन सुन, दावानल और मेवोंकी वृष्टिमें पृथक् की तरह एकही समय क्रोध और शान्तिसे युक्त होकर भरतेश्वर ने कहा, -“एक ओर तो यह बात बड़ी लज्जाकी मालूम पड़ती है, कि अपना छोटा भाई मेरो आज्ञा नहीं मानता और दूसरी ओर छोटे भाईके साथ लड़नेको मेरा जी नहीं चाहता। जिसका हुयम अपने घर वाले ही नहीं मानते उसकी आज्ञा बाहर भी उपहासजनक ही होती है। उसी प्रकार मेरे छोटे भाईको इस

अचिन्तयती असह्यता भी मेरे लिये अपवाद रूप है। अमिमानसे भरे हुए लोगोंका शासन करना राजधर्म अवश्य है पर भाइयों में परस्पर मेल-जोल रहना चाहिये यह भी तो व्यवहारकी बात है ? इस लिये मैं तो इस मामलेमें बड़ी दुर्घिघामें पड़ गया ।”

मन्त्रीने कहा —“महाराज ! आपका यह सङ्कट आपके महस्व को देखकर आपका छोटा भाई ही दूर कर सकेगा। सामान्य गृहस्थोंमें भी यह बाल है, कि बड़ा भाई जो आगा देता है, उसे छोटा भाई मान लेता है। अतएव आप भी अपने छोटे भाईके पास लोक रीतिके अनुसार दूत भेजकर उन्हें आज्ञा दें। महाराज ! जैसे केशरी (सिंह) अपने कन्धेपर खोगीर नहीं सहन कर सकता, वैसे ही यदि आपका यह छोटा भाई, जो अपनेको बड़ा वीर समझता है, आपकी जगमान्य आगाको नहीं माने, तो आप को भी उसे उचित शिक्षा देनी ही पड़ेगी क्योंकि आपमें इन्द्रका सा पराक्रम भरा हुआ है। ऐसा करनेसे न तो लोकाचारका ही उल्लंघन होगा न आपकी लोकमें बदनामी होगी ।”

महाराजने मन्त्रीका यह धचन स्वीकार कर लिया, क्योंकि शास्त्र और लोकव्यवहारके अनुसार कही हुई बातें मानही लेनी चाहिये। इसके बाद उन्होंने नीतिज्ञ, दृढ और धाक्चतुर दूत सुदेगको सिखा पढ़ाकर याहुपलीके पास भेजा; अपने स्वामी की यह उत्तम शिक्षा दीक्षाका भाँति अङ्गीकार कर यह दूत रय कर आरुढ़ हो, तक्षशिलाकी ओर चल पड़ा।

* सब सैन्योंको साथ लिये हुए, अत्यन्त वेगयत्न रथमें बैठा

हुआ वह दूत जब विनीता नगरीके बाहर निकल आया तब ऐसा मालूम पडने लगा, मानों वह भरतपतिकी शरीरधारिणी आशा ही हो । मार्गमें जाते जाते उसका धार्यां नेत्र फडकने लगा, मानों कार्यके आरम्भमें ही उसे धार-धार देवकी वामगति दिखाइ देने लगी । अग्नि मण्डलके मध्यमें नाडीको घोंकनेवाले पुरुषकी तरह उसकी दक्षिण नाडी जिना रोगके ही बारम्बार चलने लगी । तोतली बोली बोलनेवालोंकी जीभ जिस प्रकार असयुक्त वर्णोंका उच्चारण करनेमें भी लडखडाने लगती है, उसी प्रकार उसका रथ धरावर रास्तेमें भी बार बार फिसलने लगा । उस के घुडसवारोंने आगे बढ़कर रोका तो भी मानों किसीने उलटी प्रेरणा कर दी हो उसी प्रकार कृष्णसार मृग उसकी दाहिनी ओरसे धार्यां ओर चला आया । सूरे हुए कटिदार वृक्षपर बैठा हुआ कौआ अपनी चोंबरूपी हथियारको पाषाण पर घिसता हुआ कटुस्वरमें बोलने लगा । उसकी यात्रा रोक देनेकी इच्छासे ही देवने मानों अड्डा लगा दिया हो, ऐसा एक काला नाग लम्बा पडा हुआ उसके आड़े आया । पीछेकी यातका विचार करनेमें पण्डित उस सुवेगको मानों पीछे लौट जानेकी सलाह देनेके ही लिये, हवा उलटी धहने और उसकी आँखोंमें धूल डालने लगी । जिसके ऊपर आटा लगा हुआ नहीं है अथवा जो फूट गया हो ऐसे मृदङ्गकी तरह बेसुरा शब्द करनेवाला गधा उसकी दाहिनी ओर आकर शब्द करने लगा । इन अपराधुनोंकी सुवेग मली भाति जानता समझता था, तो भी वह आगे चलता ही गया ।

कारण, नमबहलाल मीबर स्वामीके कार्यमें बाणकी तरह सभी स्थलनको प्राप्त नहीं होने, बहुतेरे गाँवों, नगरों, धानों और कम बाँबो पार करता हुआ यह यहकि लोगोंको क्षणमरके लिये परंहरसा ही मात्रम पड़ता था। न्यामीके कार्यमें दण्डकी तरह डटे हुए उसने वृक्ष-समूह, सरोवर और सिंधु-तट आदि स्थानोंमें भी विधाम नहीं किया। इस प्रकार यात्रा करता हुआ यह एक ऐसे मयानक जङ्गलमें पहुँचा जो मृत्युकी एवान्त रतिभूमि मालूम पड़ता थी। यह जङ्गल धनुष बनाकर हाथियोंका शिषार करने वाले और घमरी-मृगोंको शालक बन्दर पहननेवाले राक्षसोंके समान भीलोंसे भरा हुआ था। यह धन यमराजके नाने शोतों के समान घमरी मृगों चीनों बाघों, सिंहों और सरसों आदि क्रूर प्राणियोंसे भरा हुआ था। परस्पर घेर रखनेवाले श्वपों और नेत्रोंके बिलोंसे यह जंगल बड़ा भयङ्कर लगता था। मातृ-ओंके केश धारण करनेके लिये ध्यग्र बनी हुईं नहीं नहीं भील निर्वा उस घनमें घूमना श्रित्ती रहती थीं। परस्पर युद्ध कर जंगली जैसे घनके जीण वृक्षोंको ताडा करते थे। शहद निचा लनेवालोंके द्वारा उड़ायी हुईं मधुमन्त्रियोंके मारे उन जंगलमें चलना किरना मुश्किल था। इसी प्रकार आसमान घूमनेवाले ऊँचे ऊँचे वृक्षोंके मारे वहाँ सूर्य भी नहीं दिखलाए देते थे। जैसे सुण्यवान् मनुष्य विपत्तियोंको पार कर जाता है वैसेही मृग तेज रथमें बैठे हुआ सुवेग भी उस भयङ्कर जंगलको बड़ी आसानीसे पार कर गया। वहाँसे यह यहली-देशमें आ पहुँचा।

जिनके प्रतापको नहीं सहन कर सकता था, ऐसे नागकुमारोंके से राजकुमार उनके आस पास बैठे हुए थे। बाहर निकली हुई जिह्वावाले सर्पोंकी भाँति खुटे हुए हाथियोंको हाथमें लिये हुए हजारों आत्मरक्षकोंसे घिरे हुए थे। मन्थाचलकी तरह भयङ्कर मालूम होते थे। जैसे चमरीमृग हिमालय-पर्वतको चँवर डुलाते हैं वैसेही सुन्दर सुन्दर धाराङ्गनाएँ उन पर चँवर डुलाती थीं। मिजली सहित शरदु ऋतुके मेघकी तरह पवित्र वेश और छडी धारण करनेवाले छडीदारोंसे वे मुशोभित थे। सुवेगने भीतर प्रवेश कर शब्दायमान स्वर्ण-शृङ्खला-युक्त हाथीकी तरह ललाट को पृथ्वीमें टेक कर बाहुवलीको प्रणाम किया। तत्काल महा राजने कनखियोंसे इशारा किया और प्रतिहारी भटपट उसके लिये एक आसन ले आया, जिस पर वह बैठ गया। तदनन्तर प्रसादरूपी अमृतसे धुनी हुई उज्ज्वल दृष्टिसे सुवेगकी ओर देखने हुए राजा बाहुवली कहा —“सुवेग! कहा मेया भरत सकुशल तो है। पिताजीकी लालित-पालित विनाताकी सारी प्रजा सा नन्द है न? कामादिक छ शत्रुओंको तरह भरतक्षेत्रके छत्रों खड्डों को महाराजने निबिघ्न जीत लिया है न? साठ हजार वर्ष तक विकट युद्ध करनेके बाद सेनापति आदि सब लोग सकुशल लौट आये हैं न? सिन्दूरसे लाल रगमें रंगे हुए कुम्भखलोंवाले, आकाशको सध्याकालके मैघोंकी तरह रञ्जित करनेवाले हाथियोंका श्रेणी ज्यों की त्यों है न? हिमालय तक-पृथ्वीको आत्रान्त कर लौटे हुए महाराजके उत्तम

आज्ञावाले सब राजाओं से मेवित्त आर्य भरतके दिन सुखसे छ
तात होते हैं न ?”

इस प्रकार प्रश्न कर श्रृंगारमज्ज घानुयली चुप हो रहे । तब
आवेग रहित होकर हाथ जोड़े हुए सुवंगने कहा,—“सारी
पृथ्वीकी कुशल करनेवाले भरतराजकी अपनी कुशल तो स्वत
सिद्ध ही है । भला जिनकी रक्षा करनेवाले आपके बड़े भाई हों,
उन नगर, सेनापति हस्ता और अश्वों की सुराई करनेको तो दैव
भी समर्थ नहीं है । भला भरतराजसे बढकर या उनके मुका
बलेका ऐसा दूसरा कौन है जो उनके छत्रों छण्डों पर विजय
प्राप्त करनेमें विघ्न डालना ? सब राजा लोग उनकी आज्ञाका
मानते हुए उनकी सेवा करते हैं तथापि महाराज भरतपति किसी
तरह अपने मनमें हृपका अनुमय नहीं करते ; क्योंकि कोई दरिद्र
मले ही हो ; पर यदि उसके अपने कुटुम्बक लोग उसकी सेवा
करते हों, तो यह निश्चय ही ऐश्वर्यवान् है । और यदि भारी
ऐश्वर्यशाली ही हो, किन्तु उसके कुटुम्बी उसकी सेवा न करते
हों तो उसे उस ऐश्वर्यमें सुख थोड़े हा होता है ? साठ हजार
घर्षोरु अन्तमें आये हुए आपके बड़े भाई अपने सब छोटे भाइयोंके
आनेकी राह बडी उत्कण्ठाके साथ देख रहे थे । सब सम्बन्धी
और मित्रादिक बहा आये क्षीर उन्होंने महाराजका अभिपेक
किया । उस समय सब देवताओंके साथ इन्द्र भी आये हुए थे,
तथापि अपने छोटे भाइयोंको न देख कर महाराजकी हृपे नहीं

महाराजका अभिपेक चलता रहा । इस

धीच कोई भाई वहाँ न आया, यह सुन कर उन्होंने अपने भाइयों को बुलानेके लिये दूत भेजे ; क्योंकि उत्कण्ठा घड़ी बलवान् होती है । ये लोग बहुत कुछ सोच विचार कर महाराजके पास नहीं आये और पिताके पास चले गये । वहा उन्होंने घत ग्रहण कर लिया । अब वे बेगमी हो गये, इस लिये संभारमें उनका कोई अपना पराया नहीं रहा । अतएव उनसे महाराजके भ्रातृ चाटसत्यकी साध नहीं मिट सकती । ऐसी दशामें यदि आपने मनमें उनके ऊपर बाधु स्नेह हो तो हृपाकर वहाँ चलिये और महाराजकी हर्षित कीजिये । आपके बड़े भाई बहुत दिनों याद दिग्दिगन्तमें घूमते हुए घर लौटे हैं, तो भी आप चुपचाप यहाँ पड़े हुए हैं इससे तो मुझे यही मालूम होता है, कि आपका हृदय बज्रसे भी कठोर है और आप निर्भयसे भी बढकर निर्भय हैं क्योंकि बड़े-बड़े शूर वीर भी अपने बड़ोंका श्रद्धा करते हैं और आप अपने बड़े भाई की अज्ञा करते हैं । विभवकी विजय करने वाले और गुरु की विनय करनेवाले मनुष्योंमें कौन प्रशंसाये योग्य हैं, इसका विचार करनेकी समासदोंको जरूरत नहीं है क्योंकि गुरुजनोंकी विनय करने वालोंकी ही प्रशंसा करनी उचित है । आपकी इस अविनीतताको सब कुछ सहनेमें समर्थ महाराज भी सहन कर रहे हैं सही, पर इससे चुगलखोरोंको उनके कान भरनेका पूरा मौका मिलेगा । सम्भव है, आपकी अमत्तिकी बातको नीन-मिर्च लगाकर बहनेवाले इन चुगलखोरोंकी चाणीरूपी ^{उन्नीके} छींटे पढ़नेमें क्रमशः महाराजका ~~अपमान~~

हृदय भी फट जाये। स्वामीके सम्यग्धर्मे यदि अपना अल्प छिद्र भी हो, तो उसे ढकना चाहिये, क्योंकि छोटेसे छिद्रके ही सहारे पानी सारे सेतुका नाश कर देता है। यदि अबतक मैं न गया, तो आज क्यों जाऊँ? ऐसी शङ्का आप न करें और अभी वहाँ चले, क्योंकि उत्तम गुणवाले स्वामी भूलों पर ध्यान नहीं देते। जैसे आकाशमें सूर्यके उदय होने पर कोहरा नष्ट हो जाता है, वैसे ही आपके वहाँ जानेसे चुगलखोरोंके मनोरथ नष्ट हो जायेंगे। जैसे पूर्णिमाके दिन सूर्यके साथ चन्द्रमाका संगम होजाता है। वैसेही स्वामीके साथ आपका सङ्गम होतेही आपके तेजकी वृद्धि हो जायेगी। स्वामीके समान आचरण करनेवाले बहूतसे बलवान् पुरुष अपना स्वामित्व छोड़कर महाराजकी सेवा कर रहे हैं। जैसे सब देवताओंके द्वारा इन्द्र सेवा करने योग्य है, वैसेही निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ चक्रवर्ती सब राजाओं द्वारा सेवन करने योग्य हैं। यदि आप केवल उन्हें चक्रवर्ती जान कर ही उनकी सेवा करेंगे, तो भी उससे आपके अद्वितीय भातृ प्रेमका प्रकाश होगा। कदाचित् आप उनको अपना भाई समझ कर वहाँ नहीं जायेंगे, तो भी यह उचित नहीं होगा, क्योंकि माहा को श्रेष्ठ समझनेवाले राजा क्षातिभाव करके भी निग्रह करते हैं। लोहचुम्बकसे खिंचकर चले आने वाले लोहेकी तरह महाराज भरतपतिके उत्कृष्ट तेजस्व प्रभावसे आकर्षित होकर सभी देव, दानव और मनुष्य उनके पास घले आते हैं। इन्द्रने भी महाराज भरतको अपना आधा आसन देकर मित्र बना लिया है, फिर आप

केवल धर्म जाकर ही उनकी धर्मों नहीं अपने अनुकूल बना लेंते ? यदि आप अपनेकी धीर मानते हुए महाराजका अपमान करेंगे, तो ठीक समझ लीजिये, आप उनके पराधमरूपी समुद्रमें ससूकी पिण्डीकी तरह ही जायेंगे। चलने फिरते पर्वणोंकी तरह उनके चीरासी लाख वैरावन-सम्राज हाथी, जिस समय सामने आयेंगे उस समय कौन ऐसा है, जो उनके आक्रमणको सहन कर सके ? क्या कोई ऐसा भाइका लाल है, जो कल्यान्त समुद्रके बहोलाका तरह भारी पृथ्वीको ग्राहित करनेवाले उनके अर्थों और रथोंको रोक सके ? छियानवे करोड़ प्रामोके अधिपति महाराजके छियानवे करोड़ प्यादे सिंहके समान जिसको ब्रास नहीं देते ? उनका एक सुपेण नामक सेनापति हा हाथमें दण्ड लिये चला आता है तो उस यमराजके समान सेनापतिका प्रताप देव, और असुर भी नहीं सहन कर सकते जैसे सूर्य अन्धकारका दूर करता है, वैसेही शत्रुओंको दूर भगा देनेवाले चक्रका घारण करनेवाले भरत चक्रघर्षीके सामने तीनों लोक कोई चीज नहीं है। इस लिये ह वाहुपली ! यदि आप राज्य और जीवनकी रक्षा चाहते हैं, तो उन महाराजकी सेवा करनी आपके लिये उचित है।”

सुपेणकी ये बातें सुन, अपने वाहुबलसे जगत्की नाश करनेवाले वाहुपलीने दूसरे समुद्रकी तरह गम्भीर स्वरसे कहा — “ह दूत ! तू बडा ही दाशियार है। तेरी जवान भी खूब तेज है, तमी तो तू मेरे मुँह पर ही इतनी बातें बक गया। बडे भाइ होनेके कारण राजा भरत मेरे पिताके समान है। यह उनका

बडप्पन है, कि वे अपने भाईसे मिलना चाहते हैं, परन्तु सुर, असुर और अन्य राजाओंकी लक्ष्मी पाकर ऋद्धिशाली बने हुए वे आप वैभवशाली राजा मेरे जानेसे लज्जित हंगि यही सोचकर मैं अब तक यहाँ नहीं गया। साठ हजार वर्ष तक पराये राज्यों का हरण करनेमें लगे हुए उनका अपने छोटे भाइयोंका राज्य हड़प जानेके लिये व्यग्र होना अकारण नहीं है। यदि वे अपने भाइयों पर प्रेम रखते तो उनके पास राज्य अथवा संग्रामकी इच्छासे दूत किस लिये भजते? ऐसे लोभी, पर साथ ही बड़े भाईके साथ कौन युद्ध करे? यही सोच कर मेरे परम उदार-हृदय भाइयोंने पिताका अनुसरण किया। उनका राज्य हड़प कर जानेका यद्दना ढूँढने वाले तुम्हारे स्वामीकी सारी कानू इत बातसे छुल गयी। इसी तरह मुझे भी झूठा स्नेह दिखला कर फँसानेके लिये उन्होंने तुमसे चतुर घत्ताको मेरे पास भेजा है। मेरे अन्य भाइयोंने जिस प्रकार दीक्षा ली, वही अपना राज्य देकर हविष्य किया है, वैसा ही हृप मैं भी उन राज्यके लोभीको वहा पहुँच कर हूँ? ऐसा तो नहीं हो सकता। क्योंकि मैं यज्ञसे भी कठोर हूँ; परन्तु अल्प वैभव वाला हाकर भी मैं भाईके तिरस्कारके भयसे उनकी वृद्धिमें हिस्सा घंटाने नहीं जाता। वह पूरसे योग्य हैं, पर मायावी हैं क्योंकि उन्होंने भाई-भाई के झगड़ेसे घरने वाले अपने छोटे भाइयोंका राज्य आप हड़प लिया। हे दूत! मैं भाइयोंका राज्य हड़प कर जाने वाले भरतकी उपेक्षा करता हूँ, इस लिये सबमुच मैं निर्मयसे भी

निर्माय हैं। गुरुजनमें विनय भक्ति रचना प्रशंसनीय है, इसमें सन्देह नहीं; पर वह गुरु भी दरअसल गुरु (श्रेष्ठगुणयुक्त) हो; पर गुरुके गुणोंसे रचित गुरुजनमें विनय-भक्ति रचना उल्टा लज्जा-जनक है। गर्वयुक्त, कायाकार्यके नहीं जाननेवाले और घुरी राह पर चलनेवाले गुरुजनोंका त्याग ही करना उचित है। मैंने क्या उनके हाथी घोड़े छोन लिये हैं या उनके नगर मादिबो ध्वंस कर डाला है जो तू कहता है कि ये मेरे अधिनय को अपन सर्वसह स्वभाषके कारण सहन कर रहे हैं? दुर्जनोके प्रतिकारके लिये भी मैं जैसे कार्यमें प्रवृत्त नहीं होता; फिर विचार कर काय करने वाले सत्पुरुषोंको क्या दुष्टोंके बहनेस ही दूषण लग जायेगा? अभी तक मैं उनके पास नहीं आया, इस घालसे उदास होकर क्या यह नहीं चले गय है, जो मैं उनके पास जाऊँ? भूतकी तरह यहाँना दूँदुनेवाँ भरतपति, सबत्र अप्रमत्त और भट्टुघ रहनेवाले मुझमें कौतसा दोष दूँड निकालेंगे? उनका कोई दोष या दुमरी कोई वस्तु मैंने नहीं ली, फिर ये मेरे स्वामी कैसे हुए? हमारे और उनके स्वामी तो श्रुपमस्वामी है फिर ये मेरे स्वामी किस तरह हुए? मैं तो स्वयं तेजकी मूर्ति हूँ, फिर मेरे घहा पदुचन पर उनका तेज कैसे रहगा? कारण, सूर्यका उदय होने पर अग्निका तेज मन्द हो जाता है; जो राजा स्वयं स्वामी होते हुए भी उहें स्वामी मानकर उनकी सेवा करते हैं, ये असमर्थ हैं; तभी तो ये उन दृष्टि राजामों पर निप्रद और अनुग्रह करनेका समर्थ हैं।

यदि मैं भाइयारके नाते भी उनकी सेवा करूँ, तो लोग उसे घन-रत्नोंके ही नाते की हुई सेवा समझेंगे; क्योंकि लोगोंके मुँह पर कौन हाथ रख सकता है? मैं उनका निर्मय भाई हूँ और वे आशा करने योग्य हैं पर इसमें जातिपनके झेहका क्या काम है? एक जाति ऐसे यज्ञसे क्या यज्ञका भी विदारण नहीं हो जाता? सुर, असुर और मनुष्योंकी उपासनासे वे मले ही प्रसन्न हों, पर उससे मेरा क्या आता जाता है? सजा सजाया रथ भी ठीक रास्तेमें ही चलनेको समर्थ होता है, टेढ़े मेढ़े रास्तेमें ताँ गिर कर चूर चूर ही हो जाता है। इन्द्र पिताजीके भक्त हैं, इस लिये यदि उन्होंने उनका उद्येष्ट पुत्र सम्भ्र कर भरतराजको अपने आधे आसन पर बैठाया तो इससे वे इतना अभिमान क्यों करते हैं? इस भरतरूपी समुद्रमें और भी राजा भले ही नैय सहित सत्सूकी पिण्डियों की तरह समा जायें पर मैं तो बड़धान्त हूँ और अपने तेजके कारण दुस्सह भी हूँ। जिस तरह सूर्यके तेजके आगे और सबका तेज छिप जाता है, उसी तरह राजा भरत अपने समस्त हाथी घोड़े, पैदल और सेनापतियोंके साथ मेरे सामने भँप जायेंगे। लडकपन ही मैं मैंने हाथीकी तरह उन्हें पैरोंसे दबा कर, हाथसे उठा कर मिट्टीके ढेलेकी तरह आसमानमें उछाल दिया था। आसमानमें बहुत ऊँचे जाकर जब वे नीचे गिरने लगे, तब मैंने यही सोचकर उन्हें फूलकी तरह स्वयं अपने ऊपर ले लिया, कि वहाँ उनसे प्राण न चले जायें परन्तु अब मालूम होता है, कि वे घाचाल हो गये हैं और हारे हुए राजाओंकी तुशामद् भरी यातों

से अपना नया जन्म सम्पन्नते हैं, इन्हींलिये ये सब दार्ते मूल गये हैं। परन्तु ये खुशामदी दृष्ट कितनी काम नहीं आयेगे और उन्हें अकेले ही बाहुबलीके बाहुबलसे होने वाली व्यथाको सफल करना पड़ेगा। रे दूत! तू अभी यहाँसे चला जा। राज्य और जीवनकी इच्छा हो, तो वह भलेही यहाँ आये पर मैं तो पिताके दिये हुए राज्य से सन्तुष्ट हूँ इसलिये उनकी पृथ्वीकी मैं उपेक्षा करता हूँ और यहाँ जाना बेकार समझता हूँ।

बाहुबलीके ऐसा कहतेही रङ्ग बिरङ्गे शरीर वाले और स्वा मीकी आभा रूपी दृढ पाशमें बंधे हुए अन्याय राजा भी क्रोध में लाल नेत्र किये हुए सुयोगकी ओर दृष्टि लगे। रोपके मारे "मारो—मारो" की आवाज लगाते हुए कुमार ओठ फड़काते हुए बारम्बार उसके ऊपर विषट्ट बटाक्ष निक्षेप करने लगे वस्त्र बांधे तैयार, धड़ग हिलाते हुए अङ्कुरक्षक मानों मारनेकी इच्छा से ही उसे भृशुटी पर चढ़ाकर देखने लगे। मन्त्रीगण इस हालत को देख उसके जानकी चिन्ता करने लगे। उन्हें भय होने लगा कि वहाँ स्वामीका कोई साहसी सिपाही इस गरीबको न मार डाले। इतनेमें हाथ तैयार कर पैरको ऊँचे किये हुए होनेके कारण उसकी गरदन नापनेको तैयार मालूम पड़ने वाले छद्मीवरदारों ने उसे आमनसे उठा दिया। इससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ तो भी धैर्यका अवलम्बन कर वह समासे बाहर निकला। क्रोध से भरें हुए बाहुबलीके जोशीले शब्दोंके अनुमानसे ही राजद्वार पर रहने वाली पैदल-सेना क्रोधसे तमतमा उठी। कितनेही क्रोधसे

दाल फैरने लगे, कितन ही तलवार नचाने लगे, कितने ही कैंबने के लिये चक्र सुधारने लगे किसी ने मुद्गर उठाया, कोई शिशूल सम्हालने लगा, बोद तरफस बाँधने लगा, कोई दण्डग्रहण करने लगा और कोई परशुकी प्रणामें लग गया। उनकी यह हालत देख चारो ओरमे पग-पग पर अपने मीत धहरानेका समान देख कर सुयोग घचल चरणोंसे चलता हुआ नरसिंह बाहुवलीके सिंह द्वार से बाहर निकला। वहाँसे रथमें बैठकर चलते हुए उसने नगरके लोगोंको इस प्रकार आपसमें धाते करने हुए सुना,—

पहला आ०—यह कौन नया आदमी राजद्वारसे बाहर निकला ?

दूसरा आ०—यह तो भरत राजाका दूत मालूम पड़ता है।

पहला,—नो क्या इस पृथ्वामें बाहुवलीके सिया और राजा हैं ?

दूसरा —अयाध्यामें बाहुवलीके बड़े भाई भरत राज्य करते हैं।

पहला —उन्होंने इस दूतको यहाँ किसलिये भेजा था ?

दूसरा,—अपने भाई राजा बाहुवलीको बुलानेके लिये।

पहला —इतने दिनो तक हमारे राजाके भाई कहाँ गये हुए थे।

दूसरा,—भरतक्षेत्रके छत्रो छपडोंको जीतने गये हुए थे

पहला,—आज इतनी उत्कण्ठासे उन्होंने अपने छोटे भाईको क्यों बुलवाया ?

दूसरा —मन्यान्य छोटे छोटे राजाओंकी तरह इनसे भी अपनी सेवा करानेके लिये।

पहला,—और और राजाओंको जीत कर यह अब इस सुली पर चढ़नेको क्यों तयार हो रहे हैं ?

दूसरा,—अनष्ट धनपत्तों होनेका भविमान इसका कारण है ।

पहला,—वहीं भग्ने भोटे भार्गवे हार गये, तब ही सारी हिवड़ी बिरबिरी हो न जायगी ? फिर ये संसारको अपना मुँह कैसे दिखला सकेंगे ?

दूसरा,—अब जगहोंसे जीत कर आया हुआ मनुष्य अपना भाषी पराजयकी कल्पना तक नहीं कर सकता ।

पहला,—इस मन्तराज्यके मन्त्रियोंमें क्या कोई गूढ़ जैसा भी नहीं है ।

दूसरा,—उमड़े यहाँ कुछ-कमसे खड़े माने हुए बहुतस बुद्धिमान मन्त्री हैं ।

पहला,—फिर सार्धके मन्त्रियोंके तुल्यताको इच्छा करने वाले उस भारतराजाको मन्त्रियों ने क्यों नहीं रोका ?

दूसरा,—रोकना तो दूर, उन्होंने उन्हा उनको इससे श्रिये प्रेरित किया है । क्योंकि होनहार ही कुछ ऐसी प्रतीत होती है ।

नगर निवासियोंकी यह बातें सुनता हुआ सुपेग नगरके बाहर घुमा आया । नगर द्वारके पास ही उसे दोगों श्रेयम कुमारोंके युद्धकी बात इतिहासके समान इस प्रकार सुननेमें आयी, मार्गों वैपता उसे सुना रहे हों । सुनते ही यह बोधके मारे जल्दी-जल्दी पैर भागे बढ़ाने लगा । इधर युद्धकी बात भी उसकी झालसे होठ करती हुई नेत्रोंके साथ फैलाने लगा । सदा युद्धकी बात सुनते ही हरएक गाँव-नगरके घोर घोटानेप युद्धके लिये-~~सुपरह~~ तैयार होने लगे, मार्गों राजने

आज्ञा दे दी हो। जैसे योगी शरीरको दृढ़ करते हैं वैसे ही कोई तो अपना युद्ध रथ रथशालासे बाहर निकालकर उसमें नये धूरे आदि लगाकर उसे दृढ़ बना रहा था। कोई अपने घोड़ोंको नगरके बाहर मैदानमें ले जाकर उन्हें पाँचों प्रकारकी चालें सिखाकर युद्धके लिये तैयार करता हुआ विश्राम करा रहा था, कोई प्रभुकी तेजोमयी मूर्तिके समान अपने खड्ग आदि हथियारोंको सान धराने वालेके यहाँ ले जाकर तैज करा रहा था। कोई अच्छे अच्छे सींग और नयी तात लगवा कर अपने यमराजकी टेढ़ी भीहोंके समान धनुषोंको तैयार कर रहा था। कोई युद्धयात्राक समय जानदार बाजोंका काम देनेवाले जङ्गली ऊँटोंको कवच आदि ढोनेके लिये ला रहा था, कोई अपने राणोंको, कोई तरकसकों, कोई सिर पर पहननेकी टोपीको, उसी प्रकार दृढ़ कर रहा था जैसे तार्किक पुरुष अपने सिद्धान्तको दृढ़ करते हैं। इसी तरह कोई कोई अपना बख्तर दृढ़ होने पर भी विशेष दृढ़ बना रहे थे। इसी तरह कोई गन्धर्वोंके भवनके समान घरमें धरे रखे हुए तम्रकूनातोंको खोल खोल कर देख रहे थे। राजा बाहुगलीके देशके लोग इसी प्रकार एक दूसरेसे स्पृधा करते हुए युद्धके लिये तैयार कर रहे थे क्योंकि वे अपने राजा पर बड़ी भक्ति रखते थे। ऐसा ही कोई राजभक्तिकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य मगधमें जानेके लिये तैयार हो रहा था, इसी समय उसके किसी गुरुजनने आकर उसे मना किया। इसपर वह खिगड उठा। सुरैगन रास्तेमें जाते जाते लोगोंको इसी प्रकार राजाके अनुराग

के वशावर्ती होकर अपने प्राण देकर भी राजाका प्रिय करनेकी इच्छा प्रकट करने हुए देखा। युद्धकी घात सुन और लोगोंकी यह तैयारी देख बाहुबली पर अटूट भक्ति रखने वाले कितने ही पहाड़ी राजा भी बाहुबलीके पास आने लगे। मालेका शब्द सुनकर जैसे गीर्ण दौड़ी हुई चंगी आती है, वैसे ही उन पहाड़ी राजाओंके बजाये हुए मिथेकी आवाज सुनते ही हजारों किरात, निकुञ्जोंसे निकल निकल कर दौड़ते हाँपते हुए आने लगे। उन शूरवीर किरातोंमें कोई बाघकी त्वचासे कोई मोरकी पाछोमे और कोई लताओंसे ही जन्दी जन्दी अपने घाल बाधने लगे। इन्ही तरह कोई सर्पकी त्वचासे, कोई घृक्षोंकी त्वचासे और श्रेष्ठ नील गायकी त्वचासे अपने शरीरमें पहने हुए मृगचर्मको बाँधने लगे। यन्दरोंकी तरह कूदते-फाँदने हुए वे लोग हाथमें पाषाण और धनुष लिप हुए स्वामिमल्ल शत्रुओंको तरह अपने स्वामीकी घेर कर चलने लगे। वे सब आपसमें कह रहे थे कि हम राजा भरतकी एक-एक अक्षीहिणी सेनाको चूण कर अपने महाराज बाहुबलीको कृपाका घदला अग्र्य देंगे।

उनकी ऐसी सकीप तैयारी देख, सुयोग मन हो-मन विशेष-बुद्धिसे विचार करन लगा,— 'ओह ! इस बाहुबलीके देशके लोग तो इसके ऐसे वशोभूत हैं, कि मालूम होता है, मानों ये अपने बापके घरीमे घदला लेनेके लिए तत्परताके साथ युद्धका तैयारी कर रहे हैं। राजा बाहुबलीकी सेनाके पहले ही रणकी

जाले ये किरात भी इस तरफ आने !

सेनाको मात्र गिरानेका उन्साह दिखला रहे है। मैं तो यहाँ कोई ऐसा मनुष्य नहीं देखता, जो शुरु के लिये तैयार न हो। साथ ही ऐसा भी कोई नहीं दिखलाई देता, जो बाहुबली पर भुराग न रखता हो। इस बहठी देशमें हल जोतनेवाले रीतिहर भी शूर धीर और स्यामिभक्त है। क्या यह इस देशका ही प्रभाव है, अथवा राजा बाहुबलीमें ही ऐसा कोई गुण है। मामात आदि पारिपद तो मूल्य देकर खरीदे भी जा सकते हैं, पर बाहुबलीने तो अपने गुणोंसे सारी पृथ्वीको मोल ली हुई पन्नीसी बना लिया है। जैसे अग्निसे सामने धुनोंका समूह नहीं ठहरता, वैसे ही बाहुबलीकी ऐसी सेनाके सामने तो मैं चक्रवर्तीकी विशाल सेनाको भी तुच्छ हो मानता हूँ। इस महावीर बाहुबलीके आगे मैं तो चक्रवर्तीको वैसे ही छोटा समझता हूँ जेसा अष्टापदके सामने हायाका छोटा बघा हो। शक्ति सामर्थ्यमें पृथ्वीमें चक्रवर्ती और स्वर्गमें इन्द्र विख्यात है, पर इन दोनोंके बीचमें अथवा इन दोनोंसे भी बढ़कर श्रृपमदेवका यह छोटा पुत्र जान पड़ता है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, मानों बाहुबलीके थप्पड़के सामने चक्रीका चक्र और इन्द्रका चक्र भी व्यर्थ है। इस बाहुबलीको छेड़ना क्या है, रीछके कान पकड़ना और साँपको मुट्टीमें पकड़ना है। जैसे व्याघ्र पकही मृगको लेकर सन्तुष्ट रहता है, वैसे ही इतनीसी भूमि लेकर सन्तुष्ट रहनेवाले बाहुबलीको छेड़ कर व्यर्थ दा शत्रु बनाया गया। अनेक राजाओंसे खेचित महाराज को क्या कमी दिखलाई दी, जिसके लिये उन्होंने घाहनके लिये

सिंहको पकड़ मंगरानेकी तरह इस बाहुबलीका सेवाके लिये बुलवाया। स्वामीके हितको माननेवाले मंत्रियों और मुझको धिक्कार है, जो हम लोगोंने इस मामलेमें शत्रुकी तरह उनकी उपेक्षा की। लोग यहाँ कहेंगे कि सुरेगने ही जाकर भरतसे बाहुबलीकी लड़ाई छिड़वायी। ओह ! गुणको दूषित करनेवाले इस दूतपत्रको धिक्कार है।”

रास्ते भर इसी प्रकार विचार करता हुआ, मीनि निपुण सुवेग कितने ही दिन बाद अयोध्या-नगरीमें आ पहुँचा। द्वारपाल उसे सभामें ले गया। वह प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए बैठा ही था, कि महाराजने उससे थड़े आदरके साथ पूछा,—

‘सुरेग ! मेरा छोटा भाई बाहुबली कुशल से हैं न ? तुम यहाँ से यहाँ जल्दी चले आये, इससे मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। यद्यत् उसन तुम्हें खदेड़ दिया है, इसीलिये तुम झटपट चले आये हो ? क्योंकि यह वीरवृत्ति तो मेरे बलवान् भ्राताके याग्य ही है।’

सुरेगने कहा — “ह महाराज ! आपकी ही समान अतुल्य पराक्रम वाले उन बाहुबली राजाकी घुराई करनेको देन भी समर्थ नहीं है। वे आपके छोटे भाई हैं, इसीलिये मैंन पहले उनसे स्वामीकी सेवा करनेके लिये आनको विनय पूर्वक हितकारी वचन कहा ; इसके बाद औपधकी तरह कहने पर परिणाममें उपकारो तीव्र वचन कहे पर क्या मीठे, क्या कड़वे, किसी तरहके वाक्यों से वे आपकी सेवा करनेको नहीं तैयार हुए। जैसे सन्निपातके रोगीको दवा थोड़े ही असर करती है ? वह बलवान् बाहुबली

अभिमानमें घूर होकर नीनों लोकको घृण समान जानते हैं और सिंहकी तरह किन्हीको अपनी घराबरोका धीर नहीं मानते । मैंने जब आपके सेनापति सुपण और आपकी सेनाका घर्ण किया, तब उन्होंने उसी तरह नाक साकोड़ ली जैसे दुर्गाधकी मईक पाकर आदमी नाक सिफोड़ लेता है । माघ ही यह भी कहा, कि ये किम गिनतीमें है ? जब आपकी पत्तण्ड धिजयका मैंने घर्णन किया तब उन्होंने उसे धनसुना सा कर अपने भुजदण्डका देखन हुए कहा —“मैं अपन पिताके दिये हुये राज्यसे ही सन्तुष्ट हूँ, इसीलिये मेरो उपेक्षाके ही कारण भरत भरत क्षेत्रके छहों क्षण्डोंको पा सके हैं ।” सेवा करनी तो दर रही, लमी तो वे निभयताके साथ आपको रणके लिये घुलावा दे रहे हैं, जैसे कोई सिंहीकी दूहनेके लिये घुलाये आपके भाई ऐम्ने पराक्रमी मानी और महाभुज है कि वे गंधहम्नीकी तरह अस्वहा और पराये पराक्रमको नहीं सहन करनेवाले हैं । इन्द्रके सामानिक देवताओंकी तरह उनको स्वभामें बड़े प्रचण्ड पराक्रमी सामन्तराजा हैं ; इसलिये वे न्यून आशयवाले भी नहीं हैं । उनके राजकुमार भी अपने राजतैज के कारण अत्यन्त अभिमानी हैं । युद्धके लिये उनकी बाँलोंमें धुजली पैदा हो रही है, इसी लिये वे बाहुबलीसे दसगुने पराक्रमी मालूम पड़ते हैं । उनके अभिमानी मन्त्रो भी उन्हींके विचारोंके अनुसार चलते हैं ; क्योंकि जैसा स्वामी होता है वैसाही उसका परिवार भी होता है ।

। त्रिय्याँ जैसे पराये पुरुषको नहीं देखतीं, वैसेही उनकी प्रजा

भा यह नहीं जानती—कि उनके सिवा इस दुनिया में कोई
 राजा है। क्या घर देनेवाले क्या बेगाह देना दे, इन्हे नहीं सोच
 हीरक की तरह उनको मलाने लिये प्राण देना इच्छा करते हैं
 मिहोकी तरह घनघर और गिरिघर और जो घर करते हैं
 और उनकी मान मिद्धि करोंकी इच्छा करते हैं। हैं मन्त्रों
 अधिष क्या कहें, ये महावीर दर्शनकी इच्छा करते हैं। हैं
 युद्धकी लालसासे आपकी तुरत देनेको इच्छा करते हैं। हैं
 आपकी जैमा दये, पैसा वात्रिये, बर्तनके दूरे इच्छा करते हैं। हैं
 मात्र संघाद सुनानेवाला ही है।

उसकी चेन्नी बातें सुन नाटकाकारों ने नाटक बनाकर
 माय विस्मय, बाप, क्षमा और हर्षका शब्द करते हुए नाटक
 कहा —“सुर, असुर और नरोंमें इस दुनिया में नाटक
 नहीं है। इस बातका तो मैं लड़कपन ही में मर्दा सुनकर
 चुका हूँ। तीनी जगतय स्वभावके ही हैं। वे ही हीन
 पाहुषली अपने भागे तीना शब्दों का ही मन्त्र मन्त्रे यह
 उसकी झूठी प्रशंसा नहीं बल्कि शब्द ही है। वेसा ही हीन
 पाकर मैं भी प्रशंसाने योग्य हो जाऊँ। इन्हीं हीन शब्द
 हाथ छोटा और दूसरा बड़ा है, एक सुन्दरकी शोभा ही है।

लेने पर भी यदि आपकी यहीं अविजय हो गया तो फिर यही कहना पड़ेगा, कि समुद्रको तैर जानेगला पुरुष गढियामें डूब गया । क्या आपने यह कहीं देखा या सुना है कि धन्यवर्त्तोंकी प्रतिस्पर्द्धा करनेवाला राजा भी सुखसे राज्य कर सका हो ? हे प्रभु ! जो अपना अर्थ न करता हो, उसके साथ भाईचारा दिखलाना, एक हाथसे ताली बजाना है । घेश्याओंकी तरह स्नेह-रहित बाहुयली राजापर भरतराज स्नेह रखते हैं ऐसा कहनेसे यदि आप लोगोंको रोकें, तो मलेही रोकें ; परन्तु आज तक जो चक्र नगरके बाहर यही प्रण करके ठहरा हुआ है कि मैं तो सब शत्रुओंको जीत करही अन्दर प्रवेश करूँगा उसे आप कैसे रोकेंगे ? भाई होकर भी जो आपका शत्रु है । ऐसे बाहुयलीकी उपेक्षा करना आपके लिये उचित नहीं है ; आगे इस विषयमें आप अपने अन्यान्य मंत्रियोंसे भी पूछ लीजिये ।”

सुपेणके ऐसा कह लेने पर महाराजने एक बार अत्यायस्य लोगोंकी ओर देखा । इतनेमें घाचस्पतिके समान प्रधान मंत्री ने कहा,—“सेनापतिने जो कुछ कहा, यह ठाक हा है । ऐसी बातें कहनेको दूसरा कौन समर्थ हो सकता है ? जो पराक्रम और प्रयासमें भीरु होते हैं वे अपने स्वामीके तेजकी उपेक्षा करते हैं । स्वामी अपने तेजके लिये जो कुछ आदेश करते हैं उसके विषयमें अधिकारीगण स्वार्थानुकूल उत्तर दिया करने और ध्वर्थ का तुलकलाम किया करते हैं । पर सेनापति महोदय जैसेही आपके तेजकी वृद्धि करनेवाले हैं, जैसे वायु अग्निको बढ़ा देती है ।

चक्ररत्नकी तरह सेनापति भी आपके इस बाकी बचे हुए शत्रुको भी पराजित किये बिना सन्तुष्ट नहीं होंगे। इस लिये आप अब विलम्ब न करें। आपकी आज्ञासे सेनापति हाथमें दण्ड लिये हुए शत्रुका शासन करनेको प्रस्थान करें, इसके लिये आप अभी विगुल धजवा दें। सुघोषाके घोषको सुनकर जैसे देवनागण प्रस्तुत हो जाते हैं, वैसेही आपकी विगुलकी आवाज सुनते ही आपके सब सैनिक बाहनों और परिवारोंके साथ एकत्र हो जायें और आप भी तेजकी वृद्धिके लिये उत्तरकी ओर तक्षशिलापुरीके लिये सूर्यकी तरह प्रस्थान करें। आप स्वयं जाकर अपनी आपों भाईका स्नेह देख आये और सुवेगकी बातोंकी सच्चाई-भूठाईकी परीक्षा कर लें।”

मन्त्रीकी यह बात राजाने स्वीकार कर ली और कहा — बच्छा, ऐसाही होगा।” पर्योकि विद्वान् मनुष्य दूसरोंकी कही हुई उचित बातोंको भी मान लेते हैं। इसके बाद शुभदिनको यात्राके समय किये जानेवाले मङ्गलक कार्योंका अनुष्ठान कर, महाराज पत्रकेसे उन्नत गजेन्द्रके ऊपर आरुढ़ हुए। मानों दूसरे राजाकी सेना हो, ऐसे रथों, घोड़ों और हाथियों पर सवार हज़ारों सेवक प्रयाण समयके वाजे बजाने लगे। एक ताल पर सगीत करनेवालोंकी तरह प्रयाण गायोंका नाद सुन, सारी सेना इकट्ठी हो गयी। राजाओं, मन्त्रियों सामन्तों और सेनापतियोंसे घिरे हुए महाराज मानों अनेक मूर्त्तियोंवाले होकर नगरके बाहर आये। एक हजार यक्षोंसे अर्घिपुत्र चक्ररत्न सेनापतिके समान

सारी सेनाके आगे आगे चलने लगा। मानों शत्रुओंके गुप्तघर घूम रहे हों, इसी तरह महाराजके प्रयाणकी सूचना देनेके लिये चारों ओर धूल उड़ उड़ कर फैलने लगी। उस समय लाक्षा हाथियोंको ज्ञाते देख ऐसा मालूम पड़ा, मानों पृथ्वी ही गज शून्य हो गयी हो। घोड़ों, रथों पथरों और ऊँटोंकी पलटन देख ऐसा जान पड़ा, मानों अब दुनियाँमें कहीं चार सजारी नहीं रह गयी है। जैसे समुद्रकी ओर दृष्टि करने वालेको सारा जगत् जलमयही दायता है, वैसेही उनकी पीढ़ सेनाको देखकर सारा जगत् मनुष्यमयही मालूम पड़ने लगा। राहमें जाते-जाने मद्दागज प्रत्येक नगर और ग्राममें लोगोंको राह राह यही कहते हुए जाने लगे,—“इस राजाने इस मारे मरत क्षेत्रको एक क्षेत्रकी तरह घरामें कर लिया है और मुनि जिस प्रकार चौदह पुरुषोंको मिलते हैं उसी प्रकार चौदहों रथोंको प्राप्त कर लिया है। आयुधोंके समान इन्होंने नये निधियोंको घरामें कर लिया है। फिर इतना समय होते हुए भी महाराजने किस लिये और कहाँको प्रस्थान किया है? क्याचिन् अपना इच्छास अपना देश देखनेके लिये जा रहे हों, तो फिर शत्रुओंको दण्ड देनेवाला यह चक्ररत्न क्यों आगे-आगे जा रहा है? परन्तु दिशाका अनुमान करनेसे तो यही मालूम होता है कि ये बाहुयलीके ऊपर चढ़ाई करने जा रहे हैं। ओह, बड़े आश्चर्योंके क्यायका घेग भी बड़ा भवण्ड होता है। यह बाहुयली देवों और असुरोंसे भी मुश्किल से जीता जा सकता है, ऐसा सुननमें आता है, फिर उसे जीतने

की इच्छा करनेवाले ये राजा मानों उँगली पर मेरुपर्वत उठाने जा रहे हैं, इस युद्धमें छोटे भाईने कहीं थड़ेको जीत लिया अपन्या बड़ेनेही छोटेको परास्त कर दिया, तो दोनोंही अवस्थाओंमें महागजको ही भारी अपयश प्राप्त होगा ।”

सैन्योंकी उडायी हुई धूलकी बादसे विध्याचलकी घृद्धिकी तरह चारों ओर बन्धकार फैलाते ऋषोंके हे पारब, गर्भोंके गर्जन रथोंके चीत्कार और योद्धाओंके बराघातों इन चारों प्रकार के शब्दोंसे नगाड़ेके शब्दकी तरह दिशाओंको नादमय करते, ग्रीष्म ऋतुके सूर्यकी तरह रास्तेकी नदियोंको सोखते, उत्कट पवनकी भाँति मार्गके वृक्षोंको उखाड़कर फेंकते, सेनाकी ध्वजाओंके यत्नसे आकाशको वगुलोंसे भरा हुआ बनाते, सैन्यके भारसे धरी हुई पृथ्वीको हाथियोंके मदसे शान्त करते और प्रतिदिन चपके जलवाये हुए रास्तेपर चलते हुए महाराज उसी प्रकार बहलौदेशमें आ पहुँचे, जैसे सूर्य दूसरी राशिमें संक्रमण करता है । उस देशकी सीमाके पास पहुँचकर उन्होंने पडाव डाला और समुद्रकी तरह मर्यादा बाँधकर वहीं टिक रहे ।

इसी समय सुनन्दाके पुत्र बाहुवलीने राजनीति रूपी भयनके स्तम्भ-स्वरूप धरोंके मुँहसे चक्रवर्त्तिक आगेका समाचार सुना । सुनतेही उन्होंने भी अपनी प्रतिभनिसे स्वर्गको भी शब्दायमान करनेवाली दुःदुमि बजायी । प्रस्थानही कल्याणकारी हो, इस लिये उन्होंने मूर्त्तिमान् कल्याणकी तरह भद्र-गजेन्द्रके ऊपर उत्साह की तरह मधारी की । बड़े बलवान्, युद्धे उत्साही, कार्यमें एक

सी प्रवृत्ति रखनेवाले, दूसरोंसे अमेघ और अपनेही अंशके समान उनके राजकुमारों, मन्त्रियों और धोमपुत्रोंसे घिरे हुए राजा बाहुबली देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी तरह शामिल होने लगे। मानो उनके मनमेंही वसे हों, जैसे लालों यादा-हुँछ हाथियोंपर, कितनेही घाड़ोंपर, कितनेही रथोंपर सवार हो, तथा कितनेही पैदल बाहर निकले। बलवान् और ऊँचे-ऊँचे अछोंवाले अपने धीरोंसे एक धीरमयी पृथ्वीकी रचना करते हुए अचल निश्चय वाले बाहुबली चल पड़े। विमागरहित अथवा इच्छा रखनेवाले उनके धीर सुमट, "मैं अकेला ही शत्रुकी जीत लूँगा" ऐसा एक दूसरोंसे कह रहे थे। राहणाचल पथनके सभी पत्थर उसे मणि मय होते हैं, ऐसेही उस सेनामें बाजे यज्ञानेवाले मा अपनेको धीर ही समझ रहे थे। उनके माण्डलिक राजाओं के चन्द्रमाकी भा कान्तिवाले छत्र-माण्डलसे आकाश श्रेणकमलमय दीखने लगा। हरएक पराक्रमी राजाको देखकर उन्हें अपनी मुजाफे समान मान लेते हुए वे भागे भागे चलने लगे। राहमें घन्ते हुए राजा बाहुबली अपनी सेनाके भारसे पृथ्वीका और याजोंकी ध्वनिसे आकाशको फाड़ने लगे। उनके देशकी सीमा दूर थी, तोभा वे नटकाठ वहाँ आ पहुँचे। क्योंकि रणके लिये उत्कर्षण धीर-पुरुषगण धायुसे भी अधिक, वेगवान् ही जाते हैं। भरतराजके पहायमें न बहुत दूर न बहुत निकट, गङ्गाके तटपर बाहुबलीने पहाय डाला।

कुमारों को युद्धोत्सवके लिये रण निमंत्रण दिया । रातके समय बाहुबलीने सब राजाओंकी सलाहसे अपने मित्र जैसे पराक्रमी मित्र रथ नामक पुत्रको सेनापति नियुक्त किया और पट्टहस्तोका भाँति उनके मन्त्रकपर प्रकाशमान प्रतापके समान देखीप्यमान सुवर्णका एक रण पट्ट आरोपित कर दिया । राजकुमार राजाको प्रणाम कर, उनसे रण शिक्षा ले ऐसे आतन्द्रसे अपने निवास स्थान पर आये, मानों उन्हें पृथ्वी ही मिल गयी हो । महाराज बाहुबलीने अन्यान्य राजाओंको भी युद्धके लिये आज्ञा देकर विदा किया । यद्यपि वे स्वयं रणकी इच्छा रखते थे, तथापि स्वामीकी इस आज्ञाको उन्होंने सम्मानके साथ सिर-आँखोंपर लिया ।

इधर महाराज भरतने कुमारों, राजाओं और सामन्तोंकी रायसे श्रेष्ठ आचार्यकी तरह सुपेणको रणदीक्षा प्रदान की—उन्हें सेनापति बनाया । सिद्धिमंत्रकी तरह स्वामीकी आज्ञा स्वीकार कर चक्रवाककी भाँति प्रातः काल होनेकी घाट जोड़ता हुआ सुपेण अपने डेरेपर आया । कुमारों, मुकुटधारी राजाओं और सब सामन्तोंको बुलाकर राजा भरतने आज्ञा दी,—“प्यारे शूर वीरों! मेरे छोटे भाईके साथ युद्ध करते समय बिना भूले तुम लोग सुपेण सेनापतिको मेरेही समान जानना । हे पराक्रमी योद्धाओं! बहावत जैसे हाथीको चशमं कर लेता है, वैसेही तुमने अपने अतुल्य पराक्रमसे बड़े बड़े अभिमानी राजाओंको चशमं कर लिया है और घैताद्वयपर्वतको लाँघकर देघों तथा असुरोंको पराजित कर, तुमने दुर्जय किरातोंको भी अपने पराक्रमसे खूबही मसल डाला

है। पर ठीक जानता उन लोगोंमें बाहुलीके पैदल सिपाहियोंकी शराशरा करनेवाला एक भी नहीं था। हवा जैसे खईको उड़ा ले जाता है वैसेही इस बाहुलीका जेठा घेठा सोमयशा सारी सेना को दसों दिशाओंमें उड़ाकर फेंक देनेको समर्थ है। उमरमें छोटा और पराक्रममें बड़ा उसका मिहरथ नामका छोटा भाई शत्रुओंकी सेनाके लिये दावानलके समान है। अधिक क्या कहूँ? उसके अग्र पुत्रों और पीत्रोंमें भी एक-एक ऐसा है, जो अग्नी हिणी सेनामें मल्लके समान और यमराजके सदृश भय उत्पन्न कर सकती है। उसके स्वामिमक सेवक भी, जो ठीक उसके प्रति-रिम्भ मालूम पड़ते हैं, बलमें उसकी समानता कर सकते हैं। औरोंकी सेनामें जैसे पंचही महाबलवान् नायक होता है, वैसे उसकी सेनामें सबके मन पराक्रमी हैं। महाबाहु बाहुली तो दूर रहे, उसका एक एक सेनाब्युह रणमें धन्नकी तरह अमेघ है। इसलिये जैसे वर्षाऋतुमें मेघके साथ-साथ पुरवीया हवा चलती है, वैसे ही तुम भी युद्धके न्यिे यात्रा करते हुए सुपेणके पीछे पीछे चले जाओ।”

धरने न्यामीकी अमृतसमान वाणीसे मानों उनके रोम-रोम भर गये हों, इस प्रकार उनके शरीरमें पुलकावली छा गयी। मानों प्रतिवीरों (शत्रुओं) की जयलक्ष्मीको स्वयंवर मण्डपमें धरने जाते हों, इसी तरह महाराजके द्वारा जिसर्जन किये हुए वे वीर अपने अपने डेरोंमें चले गये। दोनों ऋषभपुत्रोंकी प्रसादरूपी स मुद्रकी तरनेकी इच्छासे शानों धोरके वीरश्रेष्ठ युद्धके लिये तैयार

हाने लगे । सबके सब अपने शृगण, धनुष तन्त्रस, गदा और शक्ति भादि आयुधोंकी देवताको तरह पूजा करने लगे । उत्सव से नाचते हुए अपने चित्तके तालपर हो, वे घोर अपने आयुधोंके सामने ऊँच स्वरसे धाजे बजाने लगे । इसके बाद अपने निर्मल यशके समान नवीन और सुगन्धित उबटनसे वे अपने शरीरका मार्जन करने लगे । मस्तक पर धँधे हुए काले घल्लके घोरपट्टका अनुकरण करनेवाली कस्तूरीकी चिन्ती (टीका) वे अपने अपने ललाटमें लगाने लगे । दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्धबन्धा जारी रहने और शस्त्र पूजाके लिये जागरण करनेके कारण घोरोंका नौदू नहीं आयी । मार्गों वह उनसे डर गयी । प्रातःकाल होन वाले युद्धके लिये उत्साहमें भरे हुए दोनों ओरके घोर सैनिकोंको तीन पहरोंकी यह रात सौ पहरोंवाली मालूम पडी और उन्होंने बड़ी मुश्किलसे यह रात काटी ।

सवेरा होतेही दोनों श्रेयमपुत्रोंकी युद्ध फ्रीडा देखनेके कौतूहलसे ही मार्गों सूर्य उदयानलकी चोटी पर चढ भाये । उसी समय एकाएक मन्द्राचलसे क्षुब्ध समुद्र जलकी भाँति प्रलयकालके पुष्करावर्त्त मेघकी भाँति और बज्रसे ताडित पर्वतकी भाँति दोनों सेनाओंमें मारू धाजे बज उठे । उन रणयात्रोंके उस गूँजते हुए नादसे दिग्गजोंने तत्काल कान ऊँचे किये और डर गये—जलमें रहनेवाले जीव भयसे सन्नत होने लगे । समुद्र धल बग उठा धूर प्राणी भी चारों ओरमे दीडते भागते हुए गुफाओंमें प्रवेश करने लगे, बड़े बड़े साँप बिलोंमें घुसने लगे पर्वत

काँप उठे और उनके शिखर गिर पड़ने लगे, पृथ्वीका धारण करने वाली कूर्मराजने अपने धरण और कण्ठका सङ्कोच करना शुरू किया, माकाश टूट पड़ने लगा और पृथ्वी फटना हुई उसी मालूम पड़ने लगी। राजाके हाथपायस प्रेरित किये हुएके समान दातों औरक हैनिक रणघाघोंसे प्रेरित होकर युद्धके लिये तैयार हान लगे। रणके अस्ताहसे शरीर फूल उठनेके कारण उनके कण्ठों के बन्द तडक उठे और वे मये मये बयच धारण करने लगे। कोई अन्यन्त प्रेमके मारे अपने घाटेको भी बन्दर पड़ाने लगा क्योंकि बड़े बड़े धीर अपनी अपेक्षा भी अपने चाहनोंकी विशेष रक्षा करते हैं। काई अपने घाटेकी पनीक्षा करनेके लिये उसपर बैठकर उसे खलाकर देखने लगा क्योंकि दुःशमिन् और जड भव्य अपने सवागका शत्रुही होता है। बन्दर पहनकर हीमने गले घाटेकी काई को धीर पूजा करने लगे, क्योंकि युद्धमें जाते समय घाटेका होमना युद्धमें जीव होनेका लक्षण है। काई पिना बन्दरका घोड़ा मिलनेसे आप भी अपना बन्दर उतार कर रखने लगा, क्योंकि पराक्रमी पुरुषोंका रणमें यही पुरुष्यत है। कोई अपने सारथिको घेसी शिक्षा देने लगा, जिससे यह समुद्रमें जैसे मछली चलती है, वैसे ही घोर रणमें सञ्चार करत हुए भी म्चलन नहीं पानेकी शत्रुताई मील जाये। उसे राह चलनेवाले राहचर्चके लिये पूरा सामान अपने पास रख लेने ही, देखेही बहुत दिनोंतक जारी रहनेवाली लडाईक लिहाजमें क्लिनेही धीरोंने अपने रघोंकी हथियारोंसे मर लिया। काई दूसरेही अपना पहचान करा देने

घाले भाटभारणों से अपने गुण बतलानेवाले व्यजस्तम्भोंको दूढ करने लगे। कोई अपने मजबूत धुरेवाले रथमें, शत्रुसैन्य-रूपी समुद्रमें मार्ग पैदा करनेके लिये, जलकान्तररत्नके समान अश्व जोतने लगे। कोई अपने सारथिका मजबूत बस्तरपूत्रने लगा, क्योंकि अच्छे घोड़े जुते रहनेपर भा विना सारथि रथ निषम्मा हो जाता है। कोई मजबूत लोहेके कंषणकी श्रेणोका सम्पर्क होनेस बठार घने हुए हाथियोंके दाँतको अपनी भुजाकी तरह पूजने लगे। कोई प्राप्त होनेवाली जयलक्ष्मीके वासगृहके समान पताकाओंके समूह वाली अमारोको हाथीके ऊपर रखने लगा। कोई कोई धीर शत्रुन समझ कर हाथीके गण्डस्थलसे चूते हुए मदका कस्तूरीके समान तिलक करने लगे। कोई दूसरे हाथीकी मदगन्धसे भरी हुए वायुको भी सहन न करनेवाले मनकी तरह मतवाले हाथीपर, सवार होने लगा, सारे महावन रणोत्सवके शृङ्गार चलनेके समान सानेके कड़े हाथियोंको पहिनाने और उनकी सूँडोंसे भी ऊँची नालवाले नील कमलकी लीलाको धारण करनेवाले लोहेके मुद्गर भी उनसे उठवाने लगे। कितनीने महावत यमराजके दाँतके समान हाथियोंके दातके ऊपर काले लोहेकी तीखी चूड़ियाँ पहनाने लगे।

इसी समय राजाके अधिकारियोंकी ओरसे आज्ञा जारी हुई कि सैन्यके पीछे पीछे अस्त्रोंसे लड़े हुए ऊँट और गाड़ियोंको शीघ्रही ले जाओ नहीं तो हस्तलाघयतावाले धीर सिपाहियोंको हथियारीका टोटा हो जायगा, बख्तरोंसे लड़े हुए ऊँट भी ले

आओ क्योंकि खानाकार लडाईंमें हट हुए पीरोंके पटलेके पटने
 हुए कवच अग्रश्यहो टूट जायेंगे । रथी पुगलोंने पीछे-पीछे दूमर
 रथ भी तैयार रखो , क्योंकि जैसे पत्र पर्यंतोंको ढा देता है, वैसे
 हो अप्रोंसे रथ टूट जाने है । पटलेके घोंडे यत्र जायें और युद्ध
 में चित्र हो, इस मयस अनीसे नीकहों अथ्य घुहमवारोंके पीछे
 पीछे जानेके लिये तैयार कर रथो । प्रत्येक मुकुटपथ राजाके
 पीछे दूमरा हाथी भी तैयार रखो क्योंकि एकही हाथीसे संप्राम
 में काम मही चल सकता । प्रत्येक सैनिकके पीछे पानी ढोने
 थाले जैसे तैयार रखो , क्योंकि युद्धकेछा रुपी भीष्मकरजुने तपे
 हुए पीरोंके लिये यह चरनी फिरनी हुए प्याऊका काम देगा ।
 औपधिपति चन्द्रमाके भण्डारकी भाँति और तिमिगिरिक सारके
 सदृश ताजी मण-मंरोहिणो औपधियोंके गहुर उधरहवा मंगया
 मो । उनके ऐसे बोलाहलस रणक बाजोंकी ध्वजिह्वी समुद्रमें
 उगार सा सा गया । वन समय साग संसार चारों ओरने उठें
 हुए तुमुल शब्दसे शब्दमय और हृषियारोंकी बदनभनाहटसे लीह
 मय हो उठा । मानों पूयंकी सभी चारों भाँपोंदेवी हों इस तरह
 से पूर्वपुरुषके चरित्र सुनानेवाले, ध्यासकी तरह रण त्रियाहके
 फल चलाने वाले और नारदकी तरह धीर पादाभोंका जोश दि
 लानके लिये सामने भायें हुए शत्रुपीरोंका बारम्बार आदर-महित
 यत्नान करनेवाले अरण भाट, हरएक हाथी, रथ और घोड़ेके पास
 जा जाकर पय दियमकी तरह रणसे संचल होकर इधरसे उधर
 घूमने फिरने लगे ।

इधर घाहुपली स्नान कर, देवपूजाके लिये मन्दिरमें गये । घड़े बादमी किन्तो कायके भङ्कटमें पड़कर मरने विलसकी स्थिरताका नहीं छो देते । देवमन्दिरमें जा, जन्मानिवेकके समय इन्द्रकी तरह उठोंने श्रेयमस्थामीकी प्रतिमाको सुगन्धित जलसे स्नान कराया । इसके बाद नि कपाय और परम धन्द्रा-युक्त होकर उन्होंने दिव्य गन्ध पूर्ण कपाय पहनने, मनमानी धन्द्राके साथ उस प्रतिमाका भाजन किया और इनके पश्चात् लालरंगरे घहरकी मानों रचना की हो येना यक्षकर्दमसे उस प्रतिमाका विलेपन किया । सुगन्धमें देववृक्षके पुष्पोंकी मालाकीबहनसी विचित्र पुष्पोंकी मालासे उन्होंने प्रतिमाका अर्चन किया । मोनेकी धूप-दानोंमें दिव्य धूप दिया । उसके धूप भी ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों नीले कमलोंसे पूजाकी जा रही हो । इसके बाद मकर-राशिमें आये हुए सूर्यके समान उत्तरासङ्ग कर, प्रकाशमान आरतीको प्रतापके समान ग्रहण कर, आरती उतार, अन्तमें हाथ जोड़कर आदि भगवान्का प्रणाम कर उन्होंने मक्तिपूर्वक इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की,—

“ हे सचक ! मैं अपनी जड़ता दूर कर आपकी स्तुति कर रहा हूँ क्योंकि आपकी यह दुर्निवार भक्ति मुझे घावाल कर रही है । हे आदि-तीर्थेश ! आपकी जय हो, आपके चरण नखकी कान्तिपाँ संसाररूपी शत्रुसे त्रास पाये हुए प्राणियोंको उन्नत जरका काम देनी है । हे देव ! आप के चरण-कमलोंके दर्शन करनके लिये दूर-दूरसे जो लोग राजहंसके समान प्रतिदिन

आपा करते हैं, वे धन्य हैं। जाइसे डिठुरे हुए लोग जैसे सुयकी शरणमें आते हैं, वैसेही इस मत्स्यारके विषट कुलोंसे पीडित विनेकी व्यक्ति नित्य आपकी ही शरणमें आते हैं। ही भगवन् ! जो लोग निर्मैय नेत्रोंसे देखते हैं उनकी परलोकमें देवत्व दुलभ नहीं है। हे देव ! जैसे खामी कपड़े पर लगा हुआ लंजनका दाग दूधने धानेपर मिट जाता है वैसेही पुरुषोंका कर्म रूपो मेल आपकी देशनारूपी जलसे धुल जाता है। हे स्वामी ! जो निरन्तर आपका श्रुपभनाथ यह नाम जपा करता है उस जापकको सब सिद्धियोंका आकर्षण मन्त्र सिद्ध सा हो जाता है। हे प्रभु ! जो आपकी भक्तिरूपी कवचको धारण कर लेता है उस पर घञ या त्रिशूलका असर नहीं होता।”

इस प्रकार भगवान्की स्तुति कर जिनके सारे शरीरके रोंगटे झटे हो गये हैं ऐसे वे नृप शिरोमणि याहुयली, प्रभुको प्रणाम कर, देवालयसे बाहर निकले।

इसके बाद उन्होंने विजयलक्ष्मीके विवाहके लिये यनी हुई काँचलीके समान सुवर्णमाणिक्य-मण्डित घञ कवच धारण कर लिया। जैसे बहुतसे प्रवालोंने समूहसे समुद्र शोभा पाता है, वैसेही वे देशीप्यमान कवच पहननेसे सुराभिन् दीवने लगे। तदनन्तर उन्होंने पर्वतकी चोटीपर सोहनेवाले मेघमण्डपकी तरह सिरपर शिरछाण धारण कर लिया। बहुतसे सर्पोंसे भरे हुए पाताल विजयके समान, लोहके बाणोंसे भरे हुए दो तरकस उन्हीं ने पीठपर बाँध लिये और युगान्तके समय चमराजके उठाये हुए

दण्डकी तरह बायें हाथमें धनुष ले लिया । इस प्रकार तयार होनेवाले राजा याहुबलीको स्वस्तिवाचक पुरयोंने आपका कल्याण हो, ' ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया । नाते गीतेकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ 'जीओ जागो बहकर उन्हें असासैं देने लगीं । यड़े धूदे और श्रेष्ठ पुरुष 'सानन्द रहो-सानन्द रहो' ऐसा कहने लगे और चारण—भाट चिरंजीवी हो चिरजीवी हो' कहकर ऊँचे स्वरसे उनका मङ्गल मनाने लगे । तदनन्तर स्वर्गाधिपति जैसे मेरुपर आरूढ होते हैं, वैसेही सबके मुँहसे शुभ शब्द सुनते हुए महामुन याहुबली महाचतका हाथ पकड़कर गजपतिके ऊपर आरूढ हुए ।

इधर पुण्य-शुद्धि महाराज भग्न भी शुभलक्ष्मणके कोषागारके समान अपने देवमन्दिरमें पधारे । यहाँ पहुँचकर महामना महाराजने आदिनाथकी प्रतिमाको, दिग्विजयके समय ल्याये हुए पद्महृद् आदिभूतोर्थाके जलसे स्नान कराया जैसे उत्तम कारीगर मणिका मार्जन करता है वैसेही देवदूय बख्शसे उस अप्रतिम प्रतिमाका मार्जन किया अपने निर्मल यशसे उज्ज्वल बनायी हुई पृथ्वीके समान हिमाचल कुमार आदि देवोंके दिये हुए गोशोर्ष चन्दनसे उस प्रतिमाका विलेपन किया, लक्ष्मीके सदन स्वरूप कमलोंके समान प्रफुल्ल कमलोंसे उहोंने पूजामें नेत्रस्तम्भनको औपधिके समान प्रतिमाको भाँगी रची । धूम्रवह्नीसे मानों कस्तूरीकी पत्र रचना करते हों, ऐसा धूप उहोंने प्रतिमाके पास जलाया । इसके बाद मानों सर्व कर्मरूपी समाधिका अग्निकुण्ड हो, ऐसी

प्रदीप्त दीपकवाली भारती प्रहणकर उस राजदीपकन प्रभुका भारती उतारी। सयके अन्तमें देवताको प्रणाम कर, हाथ जोड़ उन्हेनि इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की,—

“ हे जगन्नाथ ! मैं अज्ञान हूँ मैं अज्ञान हूँ तो भी अपनेको योग्य मानकर मैं आपकी स्तुति करता हूँ क्योंकि बालकोंकी तौनली बाणी भी गुरुजनोंका उचित ही मान्य पड़ती है। हे देव ! निन्द रसके स्पर्शसे जैम लहा भी मोना हा जाता है, जैसे ही आपका आश्रय करनेवाले प्राणियोंके चाहे जैसे कम हों, तो भी यह निन्द-पदको प्राप्त हो जाता है। हे स्वामी ! आपका ध्यान स्तुति और पूजन करनेवाला प्राणी अपने मन, ध्यान और कायाका फल प्राप्त कर लेता है और यही धन्यपुरुष है। हे प्रभु ! पृथ्वी में विहार करने हुए आपके धरण विद्व पुरुषोंके पापकपी कृशको उपादनके लिये हाथोंके समान काम करते हैं। हे नाथ ! स्वाभाविक मोहसे ज-मान्य धर्म हुए संसारके जारोंको अदिले आपही श्रियकरणी नेत्र देनमें समर्थ हो। जैसे मनके लिये मेरु आदि भी कुछ दूर नहीं है, वैसेही आपके धरणकर्मोंमें भ्रमर धनकर लिपटे हुए पुरुषोंके लिये मांस पाना कोइ, पडा घात नहीं है। हे देव ! जैसे मेरुका जग पड़नसे जम्बू कृशके फल गिर जाते हैं, वैसे ही आपकी देशना कपी बाणीमे (पानीसे) प्राणिअफि कर्मकपा पाश छिन्न भिन्न हो जाते हैं। हे जगन्नाथ ! मैं धारम्भार प्रणाम करता हुआ गापसे यहा घर माँगता हूँ कि आपमें मेरा भक्ति वैसेही अक्षय हो जैसे समुद्रका जल कमी नहीं घटता ।”

इस प्रकार आदिनाथकी स्तुतिकर, प्रणाम करनेके अनन्तर चक्रवर्ती भक्ति भरे हृदयके साथ मन्दिरके बाहर आये ।

इसके बाद चारम्बार शिथिल करके रचा हुआ कवच उन्होंने अपने हर्षसे उल्लूखित अङ्गुलीमें धारण किया । माणिक्यकी पूजासे जैसे देवप्रतिमा सोहती है, वैसेही अपने अङ्गुलीमें दिव्य थीर मणिमय कवच धारण करनेसे वे भी शोभाकी प्राप्त हुए । मानों दूसरा मुकुट ही हो, ऐसा बीचमें उठा हुआ और छत्रकी तरह गोलाकार सुवर्ण रत्नवाला शिरस्त्राण उन्होंने पहन लिया । उन्होंने अपनी पीठ पर सपकेसे तीक्ष्ण याणोंसे भरे हुए दो तरफस बाँध लिये और इन्द्र जैसे ऋजुरोहित नामक धनुषको धारण करता है वैसे ही शत्रुओंको भय देनेवाला कालपृष्ठ नामक धनुष अपने बायें हाथमें ले लिया । इसके बाद सूयकी तरह अन्य तेजस्वियोंके तेजका हरण करने वाले, भद्र गजेन्द्रकी भाँति मस्तानी चालसे चलने वाले, सिंहकी तरह शत्रुओंको तुणके समान जाननेवाले, सर्पकी तरह अपनी दुर्घिपह दृष्टिसे भय देनेवाले, और इन्द्रका तरह घन्दी घनाये हुए देवताओंस स्तुति करवाने वाले भरतराज निस्तन्द्र गजेन्द्रके ऊपर आ सवार हुए ।

कल्पवृक्षके समान पाचकोंको दान देते हुए, सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रकी तरह चारों ओर दृष्टि दीडालते हुए, अपनी अपनी सेनाओंको आया हुआ देखकर, हंस कमल-नालकी ग्रहण करता है वैसेही एक एक याणको ग्रहण करते हुए, विलासी पुरुष जैसे रति-यात्ता करता है वैसे ही युद्धको घात्ता करते हुए गगन मण्डल

के बीचमें आये हुए सूर्यके समान बड़े उत्साह और पराक्रम वाले वे दोनों ऋषभकुमार अपनी अपनी सेनाओंके बीचमें आ विराजे। उस समय अपनी अपनी सेनाओंके बीचमें टिके हुए भरत औरबाहुबली राजा जम्बूद्वीपमें रहने वाले मेरु पर्वतकी शोभा दिखला रहे थे। उन दोनों सैन्योंके बीचमें पड़ी हुई पृथ्वी, निपच और नील पर्वतोंके बीचमें पड़ी हुई महा विदेहक्षेत्र भूमिकी तरह मालूम पड़ती थी। जैसे कल्याणके समय पूर्व और पश्चिम समुद्र आमने-सामने वृद्धि पाते हैं, वैसे ही दोनों आमने सामने एक बाँधकर चलने लगे। बाँध जिस प्रकार जलके प्रवाहको रोकता है उसी प्रकार पंक्तिसे अलग होकर चलनेवाले पैदल सिपाहियोंको राजाके द्वारपाल रोक देते थे। नाल सहित संगीत करनेवाले नाटकीय अभिनेताओंकी तरह वीरगण राजाकी आज्ञासे बराबर पाँव रखेहुए चलते थे। वे धीरे अपने स्थानको उल्लुघन किये बिना चल रहे थे, इसी लिये दोनों ओरकी सेनाएँ एक शरीर वाली मालूम पड़ती थीं। धीरे योद्धागण पृथ्वीको रघोंके लोहेके मुखवालेचक्रोंसे विदीण किये डालतेथे लोहेकी कुदालीके समान घोड़ोंके तीपे खुर्गोंसे षोड डालते थे। मानों लोहेका अक्षचन्द्र हो, ऐसे ऊटोंके खुरोंसे पृथ्वी छिदी जाती थी। घञ्जनीसी कठोर एडियों वाले पैदल सिपाही अपने पैरोंसे ही पृथ्वीको विदीण किये डालते थे। छुरोंके समान तेज बाणकेसे महिषों ओर साँडोंके खुरोंसे भी पृथ्वी फटी जाती थी। मुद्गलकेसे हाथियोंके पर भी पृथ्वीको

डालते थे। वे घोरगण अपने पैरोंकी धूलसे अघकारको आच्छादित कर रहे थे और घमकते हुए हथियारोंसे चारों ओर प्रकाश फैला रहे थे। अपने भारी बोझसे वे कूर्मकी पीठको भी फ्लेश पहुँचा रहे थे, महाचराहका ऊँची डाढो को भी झुका रहे थे और शेषनागके फनके फैलावको भी शिथिल कर रहे थे। वे ऐसे मालूम पड़ते थे मानों सारे दिग्गजोंको कुचड बनाये डालते हों और सिंहनादसे ब्रह्माण्डरूपी पात्रको खूब ऊँचे स्वर से शब्दायमान कर रहे हों। साथ ही वे ऐसे मालूम पड़ते थे मानो फराघात मात्रसे ही वे सारे ब्रह्माण्डको फोड़ डालेंगे। प्रसिद्धध्वजाओंके बिह्व से पहचानकर परामर्मी शत्रुओंके नाम ले-लेकर उनका वर्णन करते हुए उन्हींकेसे शौर्यशाली घोर उन्हें युद्धके लिये ललकार रहे थे। इस तरह दोनों सैन्योंके अग्रवीर एक दूसरे से भिड़ गये। फिरती जैसे मगरके ऊपर मगर टूट पड़ता है, वैसे ही हाथी वालेके सामने हाथीबाला आ गया। तरङ्गके ऊपर जैसे तरङ्ग आपड़ती है वैसेही घुडसवार घुड सवारके सामने आ डटा। वायुके साथ जैसे वायु टकराती है, वैसेही रथोंके साथ रथाकी टकरा हो गयी और पर्वतके साथ जैसे पर्वत आ मिला हो, वैसे ही पैदलके साथ पैदलकी मिडन्त हो गयी। इसी प्रकार सब घोर भाला, तलवार, मुद्गर और दण्ड आदि आयुधोंकी परस्पर मिलकर माघयुक्त हो एक दूसरेके निकट आये। इतनेमें श्रीलोचनके नाशकी आशङ्कासे भयभीत हो, देवतागण आकाशमें आ इकट्ठा हुए। “अरे इन दोनों ऋषमपुत्रों

का जो, एक ही शरीर की दो भुजाओंके समान हैं, परस्पर संघर्ष क्यों ही रहा है ?" ऐसा विचार कर उन्होंने दोनों ओरके सैनिकों को पुकार पुकार कर कहा — 'देखो जब तक हम लोग दोनों ओरके मनस्वी स्वामियोंकी सम्झाने हैं तब तक तुममेंसे भी कोई युद्ध न करे, ऐसा ऋषभदेवराजा को आता है ।' देवताओंने जब इस प्रकार तीन लोकोंके स्वामीकी आज्ञा सुनायी, तब दोनों ओरके सैनिक चित्र लिखेसे चुप चाप छुटे हो गये और यही विचार करने लगे किये देवता बाहुबलीके पक्षमें हैं या भरतराजके । काम भी न थिगहे और शोक कल्याण भी हो जाये इसी विचारसे देवतागण पहले चरुर्त्तियोंके पास आये । वहाँ पहुँचते ही 'जय-जय' शब्दसे आशीर्वाद करते हुए प्रियवादी देवताओंने मंत्रि योंके समान इस प्रकार युक्तिपूर्ण बातें कहनी आरम्भ की 'हे नरदेव ! इन्द्र जैसे देव्योंको जीतने हैं, घेसे ही आपने छत्रों छण्ड भरत क्षेत्रके सत्र राजाओंको जीत लिया यह बहुत ही अच्छा किया है रानेन्द्र ! पराक्रम और तेजके कारण सम्पूर्ण राजरूपी मृगोंमें आप शरमके तुल्य हैं— आपका प्रतिस्पर्द्धी कोई नहीं है । जलकुम्भका मयन करनेसे जैसे मधखनको साथ नहीं मिटती, वैसे ही आपकी युद्धकी साथ आजतक नहीं मिटी इसलिये आपने अपने भाइके साथ लड़ाई छेड दी है परन्तु आपका यह काम अपने ही हाथसे अपने दूसरे हाथको घायल करनेके समान है । जैसे घडा हाथी बडे वृक्षमें अपना गण्डस्थल घिसता है, उसका कारण उसकी धुजली है, वैसे ही भाईके साथ आपके

सुद ठाननका कारण भी भायकी भुजाओं की धुजलीही है ; परन्तु जैसे धनके उमत्त गजोंका उत्पात धाके नाशका ही कारण हाता है, जैसे ही भायकी भुजाओंकी यह मोड़ा जगतमें प्रलय मचा देगी । माँसमशी मनुष्य क्षणमरकी रमप्रीतिसे लिये जिन प्रकार पक्षिओंके समूहका सहार कर डाल्ते हैं उसी प्रकार भाय भी अपनो प्रीडा मात्रके लिये इस विश्वका सहार करनेको धर्यो तुले हुए है । जैसे चन्द्रमाकी किरणोंसे धमिकी वृष्टि होती उचित नहीं जैसे ही जगतके प्राता और धृपालु धीऋषभदेयके पुत्र होकर आपको ऐसा नहीं करना चाहिये । हे पृथ्वीनाथ ! सर्वनो पुण्य जैसे सगसे विराम ग्रहण कर लेते हैं धसे ही भाय भी इस धार समामसे हाथ धींचकर धर लौट जाइये । आप यहाँ तक चले आये, इसलिये आपके छोटे भाई भी आपका साम ना करनेका चले आये ; पर यदि आप लौट जायेंगे तो ये भी लौट जायेंगे, धयोंकि कारणमे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है । विधक्षय करनेके धासे आप धुटकारा पा जाइये, रणका त्याग कर देनेसे दांतों धारके सिपाहियोंका भला ही जाये आपकी सेनाके धारसे होने धात्री भूमिमङ्गका विराम होजानेसे पृथ्वीके गर्भमें रहने वाले भुवनपति इत्यादिको सुख हाये आपके सैन्यके मर्दनके धभावसे पृथ्वी, वर्धत, समुद्र, प्रजाजन और सारे जीय जतु क्षोभका त्याग कर दें धार धारके संप्र मसे होनेवाले विश्व सहारकी शङ्कासे रहित हाकर सारे देयता सुखी हो जायें ।

देयता इस प्रकारकी पक्षयातपूर्ण धार्ते कहा रहे ये, कि

महाराज भरत मेघकी सी गमोर गिरामें धोले — 'हे देवताओं ! आप लोगोंके सिवा विश्वके हितकी बात और भला कौन कह सकता है ? अधिकतर लोग तमाशा देखनेकी इच्छासे ऐसे २ मामलोंमें उदासोन हो रहते हैं, आप लोगोंने हितकी इच्छासे इस लड़ाईके छिड़नेका जो कारण अनुमान किया है वह वस्तुतः कुछ और ही है। यदि कोई किसी कामका मूल जाने बिना तर्कसे ही कोई बात कह दे तो वह भले ही वृहस्पति क्यों न हो पर उसकी बात बिलकुल बेकार होती है। 'मैं बड़ा यत्नान् हूँ यही सोचकर मैंने सहसा यह लड़ाई नहीं छोड़ी क्योंकि चाहे कितना भी अधिक ठल क्यों न हो पर उससे पद्यतरे शरीरका अभ्यङ्ग नहीं किया जाता। भरतदेशके छद्मों धण्डोंके सब राजाओंको जोतनेवाले मुझ भरतका कोई प्रतिस्पर्धी न हो, ऐसी बात नहीं है क्योंकि शत्रुकी तरह प्रतिस्पर्धा करने वाले तथा जय पराजयके कारणभूत इस बाहुबलीके भार मेरे बीचमें त्रिप्रियशात् बनबन हो गये हैं। पहले तो यह निन्दासे हरने वाला लज्जाशाल विप्रेकी, त्रिनयी और विद्वान् बाहुबली मुझ पिताके समान मानता था परन्तु साठ हजार घष घाद्दित्रिजय करके आनेपर मैं तो देखता हूँ कि वह कुछका कुछ हो गया है। हम दोनों बहुत फालतफ अलग अलग रहे यही इसका कारण मालूम पड़ता है। बारह घषतक राज्याभिषेकका उत्सव होता रहा पर बाहुबली धरकार भी नहीं आया। मैंने सोचा, यह मर गया होगा। इसीलिये मैंने उसके पास दूत भेजा, पर

यह नहीं आया। मैंने सोचा, यह उसके मंत्रियोंके विचारका रोप होगा। मैंने उसे किसी लोभसे या उसपर क्रोध करके नहीं बुलवाया था, पर चूँकि जयतक एक भो राजा सिंग ऊँचा किये रहेगा, तबतक चक्र नगरमें प्रवेश नहीं करेगा। ऐसी हालतमें मैं क्या करूँ ? इधर चक्र नगरमें नहीं प्रवेश करता, उधर बाहुबली मेरे आगे सिंग नहीं झुकाता, इससे मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि इन दोनोंमें हीदसी लगी हुई है। मैं इसी संकटमें पड़ा हूँ। यदि मेरा भनस्वी भाइ एक धार मेरे पास आये और अति धिकासा सत्कार ग्रहण करे, तो मैं उसको मनमानी पृथ्यो दे हूँ। इसलिये इस चक्रके नहीं प्रवेश करनेके सिवा मेरे युद्ध करनेका कोई दूसरा कारण नहीं है। मैं अपने उस छोटे भाइसे मान पानेकी इच्छा भी नहीं करता।

देवतामो ने कहा,—“राजन ? संग्रामका कारण बहुत बड़ा होना चाहिये, क्योंकि आपकेसे पुरुषों को छोटे मोटे कारणोंसे ऐसी प्रकृति नहीं होनी चाहिये। अब हमलोग बाहुबलीके पास जाकर उन्हें भी समझायेगे और इस युगान्तके समय होनेवाले जनक्षयके समान लोक संहारको रोकने की चेष्टा करेंगे। क्या चित् वे भी आपकी ही तरह इस युद्धका कोई दूसरा कारण बतलाय, तो मैं आपकी यह अधम युद्ध नहीं करना चाहिये। महान् पुरुष तो दृष्टि, बाहु और दण्ड आदि उत्तम आयुधोंसे ही युद्ध करते हैं, जिससे निरपराध हाथियों आदिका बध न हो।”

भरत चक्रवर्तीने देवतामोकी यह बात स्वीकार करली और

देवतागण ठमी समय बाहुबलारे सैनिक पडाथमें आ पहुँचे । मन ही-मा यह विचार कर विस्मयमें डूबने हुए, कि यह बाहु-बल तो दृढ़ अजगमबालो मूर्त्तिते भी दृढ़ है देवताओंति बाहु-बलीस कहा,—

“हे श्रम नन्दन ! हे ममारुफ नत्ररूपी चकोरोंको धानन्दतेन चात्र चन्द्रमा ! आपको सदा जय हो और आप सदा सानन्द रहें । आप समुद्रकी भाँति कभी मयादावा उल्लास नहीं करते और कायर पुरुष जैसे युद्धसे डरते हैं वैसेही आप भी लोकापवाद से डरते हैं । आप न तो अपना सम्पत्तिका गव्य करते हैं, न दूसरोंकी सम्पत्ति पर आपको ईर्ष्या होती है । आप दुचिनीत मनुष्योंके दण्डदाता हैं, गुरुजनोंकी विनय करनेवाले हैं और विश्वको अमय करनेवाले श्रमस्थामारे योग्य पुत्र हैं । इसलिये आपका ऐसे कायमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये जिससे बहुतसे लोगोंका मत्स्यानाश हो जाये । अपने बड़े माँरे ऊपर घनाई करनेकी ऐसा तैयारी करना आपके लिये उचित नहीं क्षीर अमृत से जिस प्रकार मृत्यु नहीं हो सकती उसी प्रकार आपने ऐसा काम हो मा नहीं सकता । अमीनक कुछ भी नहीं विगहा है, इसलिये सब पुरुषकी मैत्रीका तरह आप इस युद्धकी तैयारी से हाथ धींध लीजिये । जैसे मात्र द्वारा बड़े बड़े सर्प भी पीछे लौग दिये जा सकते हैं वैसेही आपकी अज्ञास ये घोर योद्धा युद्धके शौरसे अग्न हा जाये और आप अपने बड़े माँ भरतराज के पास जाकर उनकी वश्यता स्वीकार कर लीजिये । ऐसा

करनेमें लोग यही कह-कह कर आपकी प्रशंसा करेंगे, कि आप शक्तिमान् होते हुए भी विनयी हैं। भरत राजाने जो भरतक्षेत्रके छहों अण्ड जीत लिये हैं, उनका भाग स्वयं जीते हुए देशोंकी तरह भाग कीनिये, क्योंकि भाग दीनोंमें कोई अन्तर नहीं है।

ऐसा कहकर जब मेरुकी तरह देवगण चुप हो गये, तब या-हुयलीने जरा मुस्करा कर गम्भीर घाण्ठासे कहा,—“ह देवताओं! आप लोग हमारे युद्धके असल कारणको जाने बिना ही अपनी स्वच्छन्दताके कारण ऐसा कह रहे हैं। आप लोग हमारे पिताके भक्त हैं और हम दोतों उनके पुत्र हैं। इस सवन्धसे आप लोगोंका ऐसा कहना उचित ही है। इससे पहले दीक्षा ग्रहण करते समय पिताजीने जिस प्रकार याचकोंको सोना आदि दिया उसी प्रकार मुझे और भरतको भी देशोंका विभाग करके दिया। मैं तो उनके दिये हुए राज्यसे सन्तुष्ट होकर रहा क्योंकि महज धन के लिये दूसरोंसे ग्राह कीन करे? परन्तु जैसे समुद्रकी घड़ी घड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको निगल जाती हैं। वैसेही इस भरत-क्षेत्ररूपी समुद्रके सब राजाओंके राज्योंको राजा भरतने निगल लिया। जैसे मरभुक्षणा मनुष्यको बितना भी खानेको मिले, पर वह सन्तुष्ट नहीं होता, वैसेही उतने राज्योंको पाकरभी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने अपने सब छोटे भाइयोंके राज्य भी हड़प कर लिये। जब उन्होंने पिताके दिये हुए राज्यको छोटे भाइयों से छीन लिया तब तो उन्होंने अपना बहप्पन मानते अपने भाग ही छो दिया। बहप्पन केवल उमरसे ही नहीं माना जाता, बल्कि

बड़ेको वैसे ही आचरण भी करना चाहिये । भाइयोंको राज्य से दूर करके उन्होंने अपना बडप्पन भली भाँति दिखला दिया है । जैसे कोई घोखेसे पीतलको सोना और काँचको मणि समझ ले, वैसेही मैं भी अवनक झ्रममें पड़ा हुआ उन्हें बड़ा समझ रहा था । यदि पिता अथवा दशके किसी अन्य पूर्व-पुरुषने किसीको पृथ्वी दान की हो तो जयतक वह कोई अपराध नहीं करता, तबतक कोई अन्य राज्यपाल राजा भी उससे वह दानकी हुई पृथ्वी वापिस नहीं लेता । फिर भरतन भाइयोंके राज्य क्यों छीन लिये ? छोटे भाइयोंका राज्य हरण कर निश्चय ही वे लज्जित नहीं हुए, इसीसे तो अथवे मेरे राज्यको जीत लेनेकी इच्छामे मुझे भी धुला रहे हैं । जैसे नौका समुद्र पार करके बिनारे आलगत न लगते किसी परतसे टकरा जाती है, वैसे ही सारे भरतक्षेत्रको जीतने बाद ये मेरे साथ टकर लेने आये हैं । लोभी, मर्यादाहीन और राक्षसके समान निर्दय भरतराजको जब मेरे छोटे भाइयोंने ही शमके मारे अपना प्रभु नहीं माना, तब मैं ही उनके किस गुणपर रीझ कर उनके घशमें हो जाऊँ ? हे देवताओ ! आप लोग समासदोंकी तरह मध्यस्थ होकर विचार करे । यदि भरतराज अपने पराक्रमसे मुझे घशमें कर लेना चाहते हैं, तो भले ही कर देखें, क्योंकि यह तो क्षत्रियोंका स्वाधीन मार्ग ही है । लेकिन इतने पर भी यदि वे समझ बूझ कर पीछे लौट जायें, तो बड़े मजेसे जा सकते हैं । मैं उनकी तरह लोभी नहीं हूँ, कि उनके पीछे लौटनेकी राहमें अडड्डा लगाऊँ । आप जो यह कह रहे-हैं, कि

उाके दिये हुए भरत क्षेत्रोंका भोगिये— मा क्या वह भी नहीं हो सकता है ? सिंह भी कभी किसीका दिया हुआ खाता है ? नहीं— हर्गिज नहीं । उन्हें तो भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने में साठ हजार वर्ष लग गये, पर मैं यदि चाहूँ, तो यातकी घातमें चूँ । परन्तु उनके इतने गिनोके परिश्रमसे प्राप्त किये हुए स मस्त भरत क्षेत्रके धैभयको धनजानके धनकी तरह मैं भाई होकर भी कैसे छीन लूँ ? जैसे चमेलीके फूल तथा जायफल खानेसे हाथी मदाय हो जाता है, वैसेही यदि ये धैभय पाकर अन्धे हो गये हों, तो सब जानिये, उन्हें सुखकी नींद नसीब नहीं होगी । मैं तो उस धैभयको नष्ट हो गया हुआ ही समझ रहा हूँ, पर अपनी उसपर धार नहीं टपकती इसीलिये उसकी उपेक्षा कर रहा हूँ । इस समय मामों अपनी जमानत देनेके हो लिये वे अपने अमात्यों, भण्डारों, हाथियों, घोड़ों और यशको लिये हुए उन्हें मेरी तरफ करने आये हैं । इसलिये हे देवताओं ! यदि भाव लोग उनकी मलाई चाहते हों, तो उन्हें युद्ध करनेसे रोकिये । यदि वे लड़ा न करेंगे तो मैं भी नहीं लड़ूँगा ।”

मेघके गर्जनकी तरह उनके इन उटकट वचनोंको सुनकर विन्मित हो देवताओंने उसे फिर कहा,—“एक ओर चक्रवर्ती अपने युद्ध करनेका कारण यह बतलाते हैं, कि उनके नगरमें चक्र नहीं प्रवेश करता, इसलिये उनके गुरु भी निरुत्तर हो जाते हैं और उन्हें रोकनेमें असमर्थ है । इधर आप कहते हैं कि मैं तो उसीके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ जिसके साथ युद्ध करना

लिये हमारे इन्द्रसे पराक्रमी महाराज बाहुबली तुमको रण सप्राप्त करनेसे मना करते हैं। देवताओंके समान तुम भी तटस्थ होकर हस्तिमल्लकी तरह अपने एकाङ्गमल्ल जैसे स्वामीका युद्ध करना देगों और घम वन हुए प्रहोंकी तरह अपने रथों, घोड़ों और हाथियोंको पीछे ठीटा ले जाओ। साँपको जैसे पिटारीके अन्दर बन्द कर लेते हैं वैसेही तुम अपने पङ्गोंको म्यानमें डाल दो; केतुके सदृश भालेको कोपमें रख दो हाथीकी सूँटके समान अपने मुद्गरोंको मोचे डाल दो, ललाटकी भृकुटीकी तरह धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार डालो, भण्डारमें जैसे द्रव्य डाल दिया जाता है, वैसेही अपने धाणोंको तरकसमें रख दो और मेघ जैसे बिजली का संघरण करता है, वैसेही अपने शत्रुका संघरण कर लो।”

प्रतिहारके पत्र निर्घोषके समान इन वचनोंको सुन, चक्रमें आये हुए बाहुबलीके सैनिक बीच-बीचमें इस प्रकार विचार करने लगे,—“ओह, इन देवताओंने तां न जाने अकस्मात् कहाँसे आकर स्वामीसे प्राथना कर, हमारे युद्धोत्सवमें विघ्न डाल दिया। मालूम होता है, कि हानेवाले युद्धसे ये देवता बनियोंकी तरह डर गये अथवा इन्होंने भरत राजाके सेनिकोंसे रिश्वत ले ली है अथवा ये हमारे पूर्व जन्मके वैरी हैं। धरें! हमारे सामने आये हुए इस रणोत्सवको तो देवने ठीक उसी तरह छीन लिया, जैसे भोजन करनेके लिये बैठे हुए मनुष्यके सामनेसे परोसी हुई थाली हटा ली जाये अथवा प्यार करनेको जाते हुए मनुष्यको गोदसे कोई उसका बच्चा छीन ले अथवा कुर्ममें से बाहर निकल कर

आते हुए मनुष्यके हाथसे कोई रस्ती खींच ले। भला भरतराजा जैसा दूसरा कौन शत्रु मिलेगा, जिसके साथ युद्ध करके हम अपने महाराजका श्रेष्ठ चुकायेंगे ? भाइ यन्दों, चोर और पिताके घर रहनेवाली पुत्रवती स्त्रीकी तरह हम लोगोंने तो व्यर्थ ही बाहु बलीका द्रव्य लिया और जङ्गली वृक्षोंके फूलकी सुगन्धकी तरह अपने बाहुदण्डोंका धीय भी व्यर्थ ही गया। नपुंसक पुरुषोंके द्वारा किये हुए स्त्री संग्रहके समान अपना यह शस्त्र संग्रह भी बिलकुल बेकार ही गया और तोतेके पढ़ाये हुए शास्त्राभ्यासकी तरह हमारा शास्त्राभ्यास भी व्यर्थ ही हुआ। तापसेकि पुरोंको मिला हुआ कामशास्त्रका परिज्ञान जैसे निष्फल होता है, वैसे ही अपनी यह सिपाहीगिरी भी बेकार ही गयी। मूर्खोंकी तरह हमने जो हाथियोंको युद्धमें सिर रहनेका अभ्यास करवाया और घोड़ोंको धमजय करवाया, वह सब व्यर्थ ही होगया। शरद शत्रुके मेघोंकी तरह हमारी सारी गरज-ठनक निकम्मी निकली और हमने महर्षियोंकी तरह व्यर्थ ही विकट फटाक्ष किये। मामग्री देखनेवालों की तरह अपनी तैयारिया व्यर्थ हो गयीं और युद्धकी लालसा नहीं मिटनेसे अपनी सारी हँकड़ी किरकिरी हो गयी।

इसी प्रकारके विचारोंमें डूये हुए वे लोग खेदरूपी विषसे गर्भित हो फुफकार छोड़नेवाले साँपकी तरह लम्बी साँसे लेते हुए पीछेको लौटते। क्षात्रव्रत रूपी घनसे घनवान भरत राजाने भी अपनी सेनाको उसी तरह पीछे लौटाया, जैसे समुद्र भाँटे-को पीछे

परामर्मी चक्रवर्तीके द्वारा ८१५

सेनिक पग पग पर रुक जाते और 'इकट्ठे' होकर विचार करने लगते — 'हमारे स्वामी भरतने भला किस वीरोंके समान मंत्रीकी सलाहसे केवल दो भुजाओंसे होनाल्ला द्वन्द्व युद्ध स्वीकार कर लिया ? जब छाँछके भोजनकी तरह स्वामीने ऐसाही युद्ध करना स्वीकार कर लिया, तब अपना क्या काम रहा ? भरतक्षेत्रके छर्भों खण्डोंके राजाओंसे युद्ध करते समय क्या हमने किसीको नहीं मारा कृपा ? फिर वे क्यों हमें युद्ध करनेसे रोक रहे हैं ? जबतक अपने सिपाही भाग न खड़े हों, लड़ाई जीत न लें या मारे न जायें, तबतक तो स्वामीको युद्ध ही करना चाहिये क्योंकि युद्धकी गति बड़ी विचित्र होती है ; यदि इस एक बाहुबलीके सिवा और भी कोई शत्रु हो तो भी अपने मनमें तो स्वामीकी विजयमें शङ्का नहीं हो सकती ; परन्तु धरान भुजाओंवाले बाहुबलीके साथ युद्ध करनेमें जब इन्द्रको ही जीतनेके लाले पड़ने लगे, तब और क्या कहा जाये । बड़ी नदीकी बाढ़के समान दुसरे वेगवाले उस बाहुबलीके साथ पहले पहल स्वामीको ही युद्ध नहीं करना चाहिये क्योंकि पहले चाबुक सवारोंके द्वारा दमन किये हुए घोड़े पर ही बैठा जाता है ।"

अपने वीर पुरुषोंकी इस प्रकार बीच बीचमें रुक रुककर बातें करते हुए जाते देख चाल ढालसे उनका भाव ताड कर भरत धकवर्त्तनि उन्हें अपने पास बुलाकर कहा,— "हे वीर पुरुषों ! जैसे अधकारका नाश करनेमें सूर्यकी किरणें सदा नत्पर रहती हैं, वैसेही शत्रुओंका नाश करनेमें तुम भी कभी पीछे

पैर देनेवाले नहीं हो। जैसे भगाध खासमें गिरकर हाथी किले तक नहीं आने पाता, वैसेही जयतक तुमसे थोड़ा मेरे पास हैं, तबतक मेरे पास कोई शत्रु नहीं आ सकता। पहले तुमने कभी मुझे लड़ते नहीं देखा इसीलिये तुम्हें ध्यर्षकी शङ्का हो रही है क्योंकि भक्ति उम स्थानमें भा शङ्का उत्पन्न कर देती है, जहाँ शङ्का करनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं होती। इसलिये हे धीर! योद्धाओ! तुम सब लोग खड़े होकर मेरी भुजाओंका बल देखो, जिममें तुम्हारी यह शक्ता मिट जाये जैसे औषधमें रोगका क्षय करनेकी शक्ति है या नहीं। यह सन्देह रोग दूर होते हो दूर हो जाता है।”

यह कह कर भगत चरित्रोंने एक बहुत लम्बा-चीड़ा और गहरा गड्ढा खुदवाया। इसके बाद जैसे दक्षिण समुद्रके तीर पर सहाद्रि पर्वत है, वैसे ही वे आप भी उस गड्ढेके ऊपर बैठ रहे और बड़के पेड़के सहारे लटकनेवाली बरोहियों (जटावल्लरी) की तरह उहोंने धार्ये हाथमें मजबूत साँकलें एकके ऊपर दूसरा बंधवायीं। जैसे फिरणोंसे सूर्यकी शोभा होती है और उताओं से वृक्ष शोभा पाता है वैसे ही उन एक हजार शृंगलाओंसे महाराज भी शोभित होने लगे। इसके बाद उन्होंने उन सब सैनिकोंसे कहा,— “हे धीरों जैसे बैल गाडीको ब्वाचते हैं, वैसे ही तुम भी अपने वाहनोंके साथ पूरा जोर लगा कर मुझे निर्भय होकर खींचो। इस प्रकार तुम सब लोग मिलकर अपने एक प्रियतम मुझे पींचकर इस गड्ढेमें गिरा दो।

कितना बल है, इसकी परीक्षा करनेके लिये तुम इस काममें यह सीचवर ढील न करना, कि इससे अपने स्वामीकी वैद्म्यता होगी। मैंने ऐसा ही कुछ दु स्वप्न देखा है, इसलिये तुमलोग उसका नाश कर दो। क्योंकि स्वप्नको स्वयं सार्थक कर दिखानेवालेका स्वप्न निष्फल हो जाता है।” जब चक्रवर्तीने बार-बार यही बात कही, तब सैनिकोंने बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे ऐसा करना स्वीकार कर लिया, क्योंकि स्वामीकी आज्ञा हर हालतमें बलवान् होती है। इसके बाद देवासुरोंने जिस प्रकार मन्दा-चल पर्वतके रज्जुभूत सर्पको खेचा था, उसी प्रकार सब सैनिक मिलकर चक्रवर्तीकी भुजामें बाँधी हुई वह शृ खला खींचनी शुरू की। अब तो वे चक्रीकी भुजासे लिपटी हुई शृ खलामें चिपके हुए ऊँचे वृक्षकी डाल पर बैठे हुए बन्दरोंकी तरह मालूम पड़ने लगे। चक्रवर्तीने कौतुक देखनेके लिये थोड़ी देरतक पर्वतको भेदनेवाले हाथियोंकी तरह अपनेको खींचनेवाले उन सैनिकोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा। इसके बाद महाराजने उस हाथको अपनी छातीसे लगाया। इतनेमें हाथ खींच लेतेसे पंक्ति बाँधकर पड़े हुए वे सब सैनिक घटीमालाकी तरह एक साथ गिर पड़े। उस समय खजूरका वृक्ष जैसे फलोंसे सोहता है वैसेही उन लटकते हुए सैनिकोंसे चक्रवर्तीकी भुजा सोहने लगी। अपने स्वामीका यह अपूर्व बल पौरुष देख हर्षित हो, सैनिकोंने उनकी भुजासे लिपटी हुई उन शृ खलाओंको पूर्वमें की हुई अनुचित शङ्काकी तरह तत्काल तोड़ डाला।

तदनन्तर गीत गानेवाले जैसे पहले बड़े हुए देव पर (ध्रुव-पद) फिर लौट आते हैं, वैसेही चक्रवर्ती फिर दायी पर बैठ कर रणभूमिमें आये। गङ्गा और यमुनाके बीचमें जैसे वेदिबाबा भाग सोहता है वैसेही दोनों नेनाभाके बीचमें विपुल भूमि तल शोभा दे रहा था। जगतबा संहार होते होते रुक गया, यही सोचकर प्रसन्न हुई धायु न जाने किसकी प्रेरणामे धीरे धीरे पृथ्वीकी धूलको उड़ाकर जगह साफ करने लगी। समयसरण का भूमिकी तरह उग्र रणभूमिकी पवित्र जानेवाले देवताओंने सुगन्धिन जङ्गी वृष्टिसे स्वीचना शुरू किया और जैसे मंत्रिक पुण्य मण्डलकी भूमि पर फूट छोड़ता है वैसेही रणभूमि पर खिले हुए फूल बरसाये। तदनन्तर गजकी तरह गजन करते हुए दोनों राजकुमार दायी परसे उतरकर रणभूमिमें आये। मस्तानी खालसे चलनेवाले ये महापरावर्ती धीरे पग-पग पर घूर्मेन्द्रके प्राणोंको सरायमें डालने लगे।

पहले इष्टि युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा कर, दूसरे शय और ईशा इन्द्रकी तरह ये दोनों निनिमेष नेत्र किये हुए आमने सामने गढ़े हो रहे। रत्न नेत्रवाले ये दोनों धीरे सम्मुख खड़े होकर एक दूसरेका मुँह देखने लगे, उम समय ये ऐसे शोभित हुए, मानों सार्यकालके समय आमने सामने रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा हों। वही दरतक ये दोनों धीरे ध्यान करनेवाले योगियोंकी भांति निश्चल नेत्र किये स्थिर बड़े रहे। अन्तमें सूर्यकी किरणोंसे आकाश नील कमलके समान प्रथमस्यामीके ज्येष्ठ पुत्र भरतके


गये और भरत क्षेत्रके छहों जगहोंकी त्रिजय करके प्रात को हुई
 षड्डी कीर्त्तिको उनके नेत्रोंने आँसुओंके बहाने पानीमें डाल दिया
 ऐसा मालूम पडा। प्रात-पाल हिलते हुए वृक्षोंकी तरह सिर
 हिलाते हुए देवताओंने उससमय बाहुवलीके ऊपर फूलोंकी घरा
 की। सूर्योदयके समय पक्षी जिस प्रकार कोलाहल कर उठते
 हैं, वैसेही बाहुवलीकी विजय होते ही मोमप्रम आदि चीरोंने
 हर्षसे कोलाहल करना शुरू किया। कीर्त्तिरूपी नर्त्तकीने मानों
 नृत्य प्रारम्भ कर दिया हो, वैसेही तैयार पडे बाहुवलीके शी-
 निकोंने जयके वाजे बजाने शुरू किये। भरत राज्यके चोर तो ऐसे
 मन्द पराम्रम हो गये मानों मयके सत्र मूर्च्छित हो गए हों, सो
 गये हों या रोगानुर हो गये हों। अधकार और प्रकाशवाले
 मेरु पर्यंतके शैनों पार्श्वोंकी तरह एक सेनामें श्रेय और दूसरीमें
 हर्ष फैल गया। उस समय बाहुवलीने चक्रवर्त्तीसे कहा—
 “देखना कहीं यह न कह बैठना कि मैं बालतालीय न्यायसे
 जीत गया हूँ। यदि जीमें ऐसी ही धारणा हो, तो अथके घाणीसे
 युद्ध करके देण लो।” बाहुवलीकी यह बात सुन, पैरसे कुचले
 हुए साँपकी तरह क्रोधसे भरकर चक्रवर्त्तीने कहा,— “भला इस
 तरह भी तो जीत जाओ।”

तदनंतर जैसे ईशानइन्द्रका वृषभ नाद करता है, सौधर्म
 इन्द्रका हाथी गरजता है और मेघ ठनफना है वैसेही भरत
 राजा भी घोर सिंहनाद किया। जैसे षड्डी नदीमें बाढ़ आने
 पर उसके दोनों किनारे पानीसे लबालब भर जाते हैं, वैसेही

उनका यह सिंहनाद धारों दिशाओंमें ध्यात हो गया । साथ ही पेमा मालूम पडा, मानों यह युद्ध देखनेके लिये आये हुए देवताओंके विमान गिग रहा हो, आकाशके ग्रह-नक्षत्रों और तारकोंको अपनी जगहसे हटा रहा हो कु७ परंतोंके ऊंचे ऊंचे शिखरोंको हिला रहा हो और समुद्रके जलमें खलखली पैदा कर रहा हो । यह सिंहनाद सुनतेहा रथके घोडे घेसेहा गसकी परवा नहीं करने लगे, जैसे दुष्टबुद्धिवाडे मनुष्य यहाँकी आगाकी परवा नहीं करने, पिशुन लोग जैसे सद्बुचनको नहीं मानते, घेसे ही हाथी अंकुशको नहीं मानते लगे, षरु रोगवाले जैसे कडवे पदार्थको नहीं मानते, घेसही घोडे लगामकी परवा नहीं करने लगे, कामी पुरष जैसे लज्जाको नहीं मानते घेसही ऊट नकेलोंको कुछ नहीं समझने लगे और मृत लगे हुए प्राणीकी तरह पशु अपने ऊपर पडती हुई चातुकोंकी मारकी भी कुछ नहीं समझने लगे । इस प्रकार चरुर्त्तों भरतके सिंहनादको सुनकर कोई स्थिर न रह सका । इसके बाद पाहुबलीने भी बडा भयङ्कर सिंहनाद किया । यह आवाज सुनते ही सर्प नीचे उतरे हुए गडके परों की आवाज समझकर पातालसे भी नीचे घुस जानेकी इच्छा करने लगे । समुद्रके बीचमें रहनेवाले जठ-जन्तु यह आवाज सुन, समुद्रमें प्रवेश किये हुए मन्दराचलके मधनकी आवाज समझ कर डर गये, कुल पतंत, उस धनिको सुनकर धारम्बार इन्द्रके छोडे हुए वसुका अघाज समझ, धरने नाशकी आशङ्कासे काँपने लगे । मृत्यु लोकवासों सारे मनुष्य यह शब्द सुन प्रत्येके

घड़ते थे कि दर्शकोंको यह मालूमही नहीं पड़ता था कि अमुक व्यक्ति ऊपर है या नीचे। यद्ये भारी सर्पकी भाँति ये एक दूसरेके बाधन-रूप हो जाने थे और तत्काल ही चंचल चन्द्रोंकी तरह अपना पीछा छुड़ाकर अलग हो जाते थे। धारधार पृथ्वी पर लोटनेसे दोनोंकी देहमें खूब धूल मिट्टी लग गयी जिससे ये धूलिमद वाले हाथी मालूम होते थे। चलते हुए पर्यतोंकी तरह उन दोनोंके भारको नहीं सह सकनेके कारण पृथ्वी मानों उनके पदाघातके शब्दके मिएसे रो रही थी, पेना मालूम पड़ता था। अन्तमें क्रोधसे तमतमाये हुए अमित पराक्रमी बाहुबलीने, शरभ जिस प्रकार हाथीको पकड़ लेता है, वैसेही चक्रवर्त्तोंको पकड़ लिया और हाथी जैसे सूँढसे उठाकर पशुको ऊपर उछालता है, वैसेही हाथसे उठाकर उन्हें आसमानमें उछाल फेंका। सच ही चक्रवर्त्तोंमें भी घलवान्की सदा उत्पत्ति होती रहना है। धनुष से छूटे हुये बाणकी तरह और यंत्रसे छोड़े हुए पापाणकी भाँति राजा भरत आकाशमें बड़ी दूरतक चले गये। इन्द्रके छोटे हुए घड़की तरह वहाँसे गिरते हुए चक्रवर्त्तोंको देख डरके मारे सभी सभ्राम दर्शो खेचर भाग गये और उस समय दोनों सेनाओंमें हाहाकार मच गया, क्योंकि बड़े लोगों पर आपत्ति आती देख भला किसे दुःख नहीं होता ? उस समय बाहुबली सोचने लगे —“ओह ! मेरे बलको धिक्कार है मेरी भुजाओंको धिक्कार है इस प्रकार बिना समझे बूझे काम करने वाले मुझको धिक्कार है। और इस वृत्त्य के करने वाले दोनों राज्योंके मन्त्रियोंको धिक्कार है—पर नहीं

ममी इस प्रकार निन्दा करनेकी भी क्या जरूरत है ? जब तक मेरे बड़े माई पृथ्वी पर गिरकर चूर चूर हुआ चाहें, तबतक मैं उन्हें बीचसे ही झेल लू, ता ठीक हो।" ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर नीचे शय्या सी तैयार की। ऊपरको हाथ उठाये रहने वाले तपस्त्रियोंकी तरह दोनों हाथ ऊपर उठाये हुए बाहुवली क्षण मात्र तक सूर्यके सम्मुख देखने वाले तपस्वीकी तरह भरतकी ओर देखते रहे। मानो उड़नेकी इच्छा रखते हों, ऐसे उठे हुए पैरों पर खड़े रहकर उन्होंने भरतराजाको गेंदकी तरह यड़ी भासानीसे ग्रहण कर लिया। उस समय दोनों सेनाभोंमें उत्सर्ग और अपवाद मागकी तरह चब्रीके उछाले जानेसे खेद और रक्षा पाजानेसे हर्ष हुआ। इस प्रकार माईको रक्षा करनेसे प्रकट होने वाले श्री ऋषभदेवजीके छोटे पुत्रके विवेकको देखकर लोग उनकी विद्या शील और गुणके साथ ही साथ पराक्रमकी भी प्रशंसा करने लगे और देवता ऊपरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। पर ऐसे धीर यतधारी पुरुषका इससे क्या होता है ? उस समय जैसे अग्नि घुप और लपटसे मरी होती है वैसेही मरत राजा इस घटनासे खेद और क्रोधसे भर उठे।

उस समय लज्जासे सिर झुकाये हुए, बड़े माईकी खेंप दूर करनेके इरादेसे बाहुवलीने गद्गद स्वरसे कहा — "हे जगत्पति ! हे महावीर ! हे महाभुज ! आप खेद न करें। कभी-कभी दैवयोगसे बिल्ली पुरुषोंको भी अन्य पुरुष जीत लेते हैं, 

नेसे मैंने न तो आपको जीना है और न मैं विजयी हूँ। अपनी इस विजयको मैं घुणाक्षर न्यायके समान जानता हूँ। हे मुधने-शूर ! अभी तक इस पृथ्वीमें आप ही एक मात्र धीर हैं, क्योंकि देवताओंके द्वारा मघन किये जाने पर भी समुद्र-समुद्र ही कहलाता है। यह कुछ बघली नहीं हो जाता। हे पट्टखण्ड-भरतपति ! छलांग मारते समय गिर पड़ने वाले व्याघ्रकी तरह आप धुपचाप खाड़े क्यों हो रहे हैं ? भटपट युद्धके लिये तैयार हजिये।”

मग्नने कहा,—“यह मेरा भुजदण्ड घूमके द्वारा अपना बलकू दूर करेगा।” यह कह कर फणीश्वर ऊसे अपना फन ऊपरको उठाता है जैसेही घूमसा तानकर क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये हुए चमपत्तों तत्काल दाँडे हुये बाहुयलीके सामने आये और हाथी जैसे किवाड़में अपने दातका प्रहार करता है, वैसेही यह घूमसा बाहुयलीकी छातीपर मारा। असत्पात्रको किया हुआ दान, यह रेके कानमें किया हुआ जाप, चुगलखोरका सत्कार, खारी जमीन पर घरसने वाली वृष्टि, और बरफके ढेरमें पड़ी हुई अग्नि जैसे व्यर्थ हो जाती है उसी प्रकार बाहुयलीकी छातीमें मारा हुआ घूमसा भी बेकार ही हुआ। इसके बाद इसी आशंकासे, कि कहीं मेरे ऊपर क्रोध तो नहीं किया ? देवताओंसे देखे जाने वाले सुतन्दा-सुभनने घूमसा ताने हुए भरत राजाके सामने आकर उनकी छातीमें वैसे ही घूमसा मारा, जैसे महावत बहुशसे हाथीके सुभस्यल पर प्रहार करता है। उस प्रहारको न सहकर विह्वल

जैसे चोटोसे पर्वत सोहता है और छाया मार्गसे आकाश शोभा पाता है, वैसेही उस ऊपरको उठाये हुए दण्डसे चक्रवर्त्ती भी शोभा पाने लगे। घूमकेतुका घोला पैदा करनेवाले उस दण्डको चक्रवर्त्तीनि थोड़ी देर तक हवामें घुमाया, इसके बाद जैसे युवा सिंह अपनी पूँछको पृथ्वी पर पटकता है, उसी तरह उन्होंने यह दण्ड बाहुबलीके मस्तक पर दे मारा। सहाय्य पर्वतके साथ समुद्रकी घेलाका आघात होनेसे जैसा शब्द होता है वैसे ही मयङ्कर शब्द उस दण्डके प्रहारसे भी उत्पन्न हुआ। निहाई पर रखे हुए लोहेको जिस तरह लोहेका घन चूर्ण कर डालता है उसी तरह उस प्रहारसे बाहुबलीके सिरका मुकुट धूर-धूर हो गया। साथ ही जैसे हवाके झकोरेसे वृक्षोंके अप्रभागके फूल झड जाते हैं, वैसेही उस मुकुटके रत्न टुकड़े टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस चोटसे थोड़ी देरके लिये बाहुबलीकी आँखें भ्रम गयीं और उसके घोर निर्घोषसे लोगोंकी भी घबही हालत हुई। इसके बाद नेत्र खोल, बाहुबलीने भी संग्रामके हाथीकी तरह लोहेका उद्दण्ड दण्ड ग्रहण किया। उस समय आकाशको यही शका होने लगी, कि कहीं ये मुझे गिरान दे और पृथ्वी भी इसी डरमें पड गयी, कि कहीं ये मुझे उछाड कर फरक न दें। परन्तु अप्रभागमें घने हुए बिलमें रहनेवाले साँपकी तरह यह विशाल दण्ड बाहुबलीको मुट्ठीमें शोभित होने लगा। दूरसे यमराजका बुलानेका मानों सङ्कत वर्र हो, उसी तरह घे उस लोहदण्डको घुमाने लगे। जैसे ढेंकीकी घोट धान

पर पड़ती है, वैसेही बाहुबलीने उस दण्डका आघात चब्रीके हृदय पर बड़ी निर्भयताके साथ किया। चब्रीका घडा ही मजबूत बख्तर भी इस प्रहारको न सह सका और मिट्टीके घटेकी तरह खूर खूर हो गया। बख्तरके न रहनेसे चक्रवर्ती यादल रहित सूर्य और धूम हीन अग्निचे समान दिखाई देने लगे। सातवीं मदावस्याको प्राप्त होनेवाले हाथीकी तरह भरत राज क्षणभर विह्वल होकर कुड़ भी न सोच सके। थोड़ी देर बाद सावधान होकर प्रिय मित्रके समान अपनी भुजाओंके पराक्रमका अजलमजन कर, वे फिर दण्ड उठाये हुए बाहुबली पर लपके। दातसे मोठ काटते हुए और मोहें बढाये भयङ्कर दीक्षने हुए भरतराजा ने बडवानलके चक्रकी तरह दण्डको खूब घुमाया और बल्यात कालका मेघ जैसे विजलीका दण्ड चलाकर पर्वतका ताडन करता है, वैसेही बाहुबलीके मस्तक पर उस दण्डका धार किया। लोहेकी निहाइ पर रखे हुए घञ्जमणिकी भाँति उस घोटको आ कर बाहुबली घुटने तक पृथ्वीमें धँस गये। मानों अपने अप राधसे डर गया हो ऐसा यह चक्रवर्तीका दण्ड घञ्जे घने हुएपके समान बाहुबली पर प्रहार कर आप भी खूर खूर हो गया। उधर घुटने तक पृथ्वीमें धँसे हुए बाहुबली पृथ्वीमें कीलकी तरह गढे हुए पयत और पृथ्वीके बाहर निकलते हुए दीपनागकी तरह शोभित होने लगे। उस प्रहारकी वेदनासे बाहुबली इस प्रकार सिर घुनाने लगे, मानों आपने बडे भाईका पराक्रम देख कर उन्हें अपने अस्त, कर्णामें थडा अचम्भा हुआ हो। आत्मा

जैसे चोटीसे पर्वत सोहता है और छाया मार्गसे आकाश शोभा पाता है, वैसेही उस ऊपरको उठाये हुए दण्डसे चक्र-घर्षी भी शोभा पाने लगे। घूमनेतुका धोखा पैदा करनेवाले उस दण्डको चक्रघर्षीने थोड़ी देर तक हवामें घुमाया इसके बाद जैसे युवा सिंह अपनी पूँछको पृथ्वी पर पटकता है, उसी तरह उन्होंने यह दण्ड बाहुबलीके मस्तक पर दे मारा। सहाय्य पर्वतके साथ समुद्रकी वेलाका आघात होनेसे जैसा शब्द होता है वैसेही मयङ्कुर शब्द उस दण्डके प्रहारसे भी उत्पन्न हुआ। निहाइ पर रखे हुए लोहेको जिस तरह लोहेका घन चूर्ण कर डालता है उसी तरह उस प्रहारसे बाहुबलीके सिरका मुकुट धूर-धूर हो गया। साथ ही जैसे हवाके षकोरेसे वृक्षोंके अग्रभागके फूल झड जाते हैं वैसेही उस मुकुटके रत्न टुकड़े टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस चोटसे थोड़ी देरके लिये बाहुबलीकी आँखें भ्रम गयीं और उसके घोर निर्घोषसे लोगोंकी भी वही हालत हुई। इसके बाद नेत्र खोल, बाहुबलीने भी संप्रामके हाथीकी तरह लोहेका उदण्ड दण्ड ग्रहण किया। उस समय आकाशको यही शका होने लगी, कि कहीं ये मुझे गिरान दे और पृथ्वी भी इसी डरमें पड गयी, कि कहीं ये मुझे उखाड कर फर न दें। परन्तु अग्रभागमें घने हुए बिलमें रहनेवाले साँपकी तरह यह विशाल दण्ड बाहुबलीको मुट्ठीमें शोभित होने लगा। दूरसे यमराजका बुलानेका मानों मद्धत घबरा हो, उसी तरह वे उस लोहदण्डको घुमाने लगे। जैसे टैंकीकी चोट धन

पर पड़ती है, वैसेही बाहुबलीने उस दण्डका आघात चन्नीके हृदय पर बड़ी निर्मयताके साथ किया। चन्नीका घटा ही मजबूत बन्दर भी इस प्रहारको न सह सका और मिट्टीके घट्टेकी तरह चूर चूर हो गया। बन्दरके न रहनेसे अगवर्ती बादल रहित सूर्य और धूम हीन अग्निके समान दिखार देने लगे। स्वातंत्री मदायम्याका प्राप्त होनेवाले हाथीकी तरह भरत राज क्षणभर विह्वल होकर कुठ भी न सोच सके। छोड़ी देर बाद सायधान होकर प्रिय मित्रके समान अपनी भुजाओंके पराक्रमका अवलम्बन कर, ये फिर दण्ड उठाये हुए बाहुबली पर लपके। दाँतसे ओंठ काटते हुए और माँहें चढ़ाये मयदूर दीखने हुए भरतराजा ने बडवानलके चक्रकी तरह दण्डको बूध घुमाया और कर्णात कालका मेघ जैसे पिङ्गलका दण्ड चलाकर पर्यंतका ताड़न करता है, वैसेही बाहुबलीके मस्तक पर उस दण्डका धार किया। लोहेकी निहाइ पर रखे हुए घञ्जमणिकी भाँति उस घोटको खा कर बाहुबली घुटने तक पृथ्वीमें धँस गये। मातों अपने अप रापसे डर गया हा ऐसा यह अगवर्तीका दण्ड घञ्जने घने हुएके समान बाहुबली पर प्रहार कर आप भी चूर-चूर हो गया। उधर घुटने तक पृथ्वीमें धँसे हुए बाहुबली पृथ्वीमें कीलकी तरह गड़े हुए पयत और पृथ्वीके बाहर निकलते हुए होपनागकी तरह शोभित होने लगे। उस प्रहारकी वैशनासे बाहुबली इस प्रकार क्षिर घुमाते लगे भानों अपने बड़े भाइका पराक्रम देख कर उन्हें अपने अन्न करणमें बड़ा अचम्भा हुआ हो। आत्मा

नन्दमें मग्न योगीका तरह उन्होंने क्षण भर तक कुछ भी नहीं सुना । इसके बाद जैसे सखिता तटके सूखे हुए कौचड़मेंसे हाथी बाहर निकलता है, वैसेही सुनन्दाके धी पुत्र भी पृथ्वीसे बाहर निकले और लाक्षारसकी सी दृष्टिसे तर्जना करते हुएके समान वे अमर्षाग्रणी अपने भुजदण्ड और दण्डकी देपने लगे । इसके बाद तक्षशिलाधिपति बाहुबली तक्षक नागकी तरह उस भयंकर दण्डको एक हाथसे घुमाने लगे । अतिवेगसे घुमाया हुआ उनका यह दण्ड राधा घेघमें फिरते हुए चक्रकी शोभाका धारण कर रहा था । कल्याण कालके समुद्रके भँवर जालमें घूमते हुए मत्स्यावतारी कृष्णकी तरह भ्रमण करते हुए उस दण्डको देखकर देखनेवालोंकी आँखें चौंधिया जाती थीं । सैन्यके सब लोग और देवताओंको उस समय शङ्का होने लगी कि 'कहीं यह बाहुबलीके हाथसे छूटकर उडा, तो फिर सूर्यको काँसेके पात्रकी तरह फाँड़ डालेगा, चन्द्रमण्डलको भारूँड पक्षीके भण्डेकी तरह चूर कर डालेगा, तारागणोंको आँवलेके फलकी तरह नीचे गिरा देगा, घैमानिक देवोंके विमानोंको पक्षीके घोंसलोंकी तरह उडा देगा, पर्वतके शिखरोंको रिलोंकी तरह नष्ट भ्रष्ट कर देगा, बड़े-बड़े वृक्षोंको नहे नन्दे कुञ्जके सृणोंकी तरह तोड देगा, और पृथ्वीको बच्ची मिट्टीके गोलेकी तरह भेद कर देगा ।' इसी हाँकासे देखते हुए सब लोगोंके सामने ही उन्होंने यह दण्ड चक्र-धर्तीके मस्तकपर चला दिया । उस बड़े भारी दण्डके आघातसे सबधर्तों मुद्गालने ठोंकी हुई कीलकी तरह ऋण्डतक पृथ्वीमें

गढ़ गये । उनके साथही उनके सय 'मनिश' भी, मानों ऐसी प्रा
 र्थना करते हुए, कि हमें जो हमारे स्वामीकी हो भाँति यिलमें
 घुसा दो, वेदके साथ पृथ्वीपर गिर पड़े । राहुसे प्राप्त किये हुए
 सूर्यके समान जय चक्रयर्त्ती पृथ्वीमें मग्न हो गये, तब भोजाशमें
 देवताओंने और पृथ्वीपर मनुष्योंनि बड़ा कोलाहल किया । नेत्र
 भींचे हुए भरतपतिका चेहरा काला पड़ गया और वे क्षणभर
 लज्जाके मारे धुगचाप पृथ्वीमें गड़े रहे । इसके बाद शीघ्रही
 रात बीतनेपर उगनेवाले सूर्यके समान देशीप्यमान होकर वे
 पृथ्वीसे बाहर निकल आये ।

उस समय चक्रयर्त्तीनि सोचा, 'जैसे अंधा जुआडी हरएक
 धात्रीमें मात हो जाता है, वैसेही इस बाहुबलने सय प्रकारके
 युद्धोंमें मुझे पराजित कर डाला । इसलिये जैसे गायके खाये
 हुए घाम-पात दूधके रूपमें सबके काममें आते हैं, वैसेही मेरा
 इतनी मिहनतसे जोता हुआ भरतक्षेत्र भी क्या इसी 'बाहुबल'के
 चाम आयेगा ? एक म्यानमें दो तन्त्रारोंकी तरह इस भरतक्षेत्रमें
 एवही समय दो चक्रयर्त्ती तो कमी होते नहीं देंगे न सुनें । जैसे
 गधेको मींग नहीं होता, वैसेही देवताओंसे इन्द्र हार जायें और
 राजाओंसे चक्रयर्त्ती पराजित हो जायें, ऐसा तो पहले कभी नहीं
 सुना । तो क्या बाहुबलने हारंघर में अथ पृथ्वीमें चक्रयर्त्ती ५
 कहे ठाऊँ और मुझसे नहीं हारनेके कारण जगतमें भी अजेय
 हाकर यही चक्रयर्त्ती कहलायेगा ?' इसी तरहकी चिन्ता करते हुए

पित कर दिया। उसीके विश्वाससे अपनेको चक्रवर्ती मानते हुए चक्रवर्ती भरत, उसी प्रकार उस चक्रको आकाशमें घुमाने लगे, जैसे बवंडर कमलकी रज्जको आसमानमें नचाता है। ज्वालाओंके जालसे विकराल घना हुआ वह चक्र मानों आकाशमें ही पैदा हुई कालाग्नि, दूसरी घडवाग्नि, अकस्मात् उत्पन्न हुई घ आग्नि, उग्रत उल्का-पुञ्ज, गिरता हुआ सूर्य विम्ब अथवा विजली का गोलासा घूमता मालूम पढ़ने लगा। अपने ऊपर छोहनेके लिये उस चक्रको घुमानेवाले चक्रवर्तीको देखकर धादुपलीने अपने मनमें विचार किया,— “अपनेको धीश्रृपमस्वामीका पुत्र माननेवाले भरत राजाको धिक्कार है— सायही इनके क्षत्रिय मतको भी धिक्कार है क्योंकि मेरे हाथमें दण्ड होने पर भी इन्होंने चक्र धारण किया। देवताओंके सामने इन्होंने उत्तम युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, पर अपनी इस काररवाईसे इन्होंने बालकोंकी तरह अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी। इसलिये इन्हें धिक्कार है। जैसे तपस्वी अपने तेजका भय दिखलाते हैं, वैसेही ये भी चक्र दिखलाकर सारी दुनियाकी तरह मुझे भी डरवाना चाहते हैं, पर जैसे इन्हें अपनी भुजाओंके बलकी याह मिल गयी वैसे ही इस चक्रका पराक्रम भी भली भाँति मालूम कर लेंगे।” वे ऐसा सोचही रहे थे, कि राजा भरतने सारा जोर लगाकर उनपर चक्र छोड़ दिया। चक्रको अपने पास आते देख तक्षशिलाधिपतिने सोचा,— “क्या मैं टूटे हुए बर्तनकी तरह इस चक्रको तोड़ डालूँ ? गेंदकी तरह इसे उछाल कर फेंक दूँ ? पत्थरके

दुकहेवी तरह योही मीठा पूर्णक इसे आकाशमें उड़ा दू ? बालक के नालकी तरह इसे लेकर पृथ्वीमें गाड़ दूँ ? चञ्चल विटिया के बच्चेकी तरह हाथसे पकड़ लूँ ? मारने योग्य अपराधीकी भाँति इसे दूरहीसे छोड़ दूँ ? अथवा चञ्चोमें पड़े हुए किनकोकी तरह इसके अधिष्ठाता हज़ारों यज्ञोंको इस दण्डसे दल मसल दूँ ? अच्छा, रहो, मैं इन कामोंको अभी न कर, पहले इसके पराक्रमकी परीक्षा तो लूँ।" यह ऐसा सोचही रहे थे, कि उस चपले बाहुबलीके पास आकर ठीक उसी तरह उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की जैसे शिष्य गुरुकी करता है। चञ्चोका चक्र जब सामान्य सगोत्री पुण्य पर भी नहीं चल सकता, तब उनपेही घम शरीरी पर कैस अपना जोर आजमाये ? इसीलिये उसे पक्षी अपने घोंसलेमें चला जाता है और घोड़ा अस्तयलमें दैसेही यह चक्र लीट आकर भरतेश्वरके हाथके ऊपर बैठ रहा।

"मारनेकी क्रियामें विधारी सपके समान एकमात्र अमोघ अस्त्र एक यही चक्र था। अब इसके समान दूसरा कोई अस्त्र इनके पास नहीं है, इसलिये दण्डयुद्ध होते समय चक्र छोड़नेवाले इस अन्यायी मरत और इसके चक्रको मैं मारे भुट्टि प्रहारके ही चूण कर डालूँ" ऐसा विचार कर सुनन्दा-सुत बाहुबली प्रोध से मरकर यमराजकी तरह भयंकर धूँसा ताने हुए चक्रपत्ती पर लपके। धूँड़में मुद्गर लिये हुए हाथीकी तरह धूँसा ताने हुए बाहुबली दौड़ कर भरतके पास आये; पर जैसे

अपनी मर्यादाके भीतर ही रुका रहता है, वैसेही ये भी चुस्वाप लड़े ही गये। उन महामाण व्यक्तिने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! यह क्या ? क्या मैं भी इन्हीं चक्रवर्तीकी तरह राज्यके लोभमें पड़कर बड़े भाईको मारने जा रहा हूँ ? तब तो मैं व्याघ्रसे भी बढकर पापी हूँ। जिसके लिये भाई और भतीजोंको मारना पड़े, वैसे शाकिनी मंत्रकेसे राज्यके लिये कौन प्रयत्न करने जाये ? राज्य थी प्राप्त हो और उसे इच्छानुसार भोगनेका भी अपसर मिले तो भी जैसे शराब पीनेसे शराबियोंको तृप्ति नहीं होती वैसेही राजाओंको भी उससे सन्तोष नहीं होता। आराधन करने पर भी थोडासा बहाना पाकर रुठ जानेवाले क्षुद्र देवताको भाँति राज्यलक्ष्मी क्षणभरमें ही मुँह मोड़ लेती है। अमावसकी रातकी तरह यह घने अंधकारसे पूर्ण है नहीं तो पिताजी इसे किस लिये तृणके समान त्याग देते ? उन्हीं पिताजीका पुत्र होते हुए भी मैंने इतने दिनोंमें यह बात जान पायी, कि यह राज्यलक्ष्मी ऐसी बुरी है तो फिर दूसरा कोई कैसे जान सकता है ? अतएव यह राजलक्ष्मी सर्वथा त्याग करने योग्य है। ऐसा निश्चय कर, उस उदार हृदयवाले बाहु-बलीने चक्रवर्तीसे कहा,—“हे क्षमानाथ ! हे भ्राता ! केवल राज्य के लिये मैंने आपको शत्रुको भाँति दुःख पहुँचाया इसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। इस संसारकी बड़े भारी तालाबमें तनुपाशके समान भाई, पुत्र और स्त्री तथा राज्य आदिसे अब मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं है। मैं तो धरतीमें जगतके स्वामी

भीर लिम्बकां अग्रयज्ञका सदायन द्वेनेमै वीटनेवाले अपने पिता जीके मार्गका ही बटोही होने आ रहा हूँ ।”

यह कह साहसी पुत्रोंमें अग्रणी भीर महाप्राण उन 'बाहु बलीने अपने तने हुए शूंसको धोल्कर उसी हाथसे अपने सिरके केशोंको तुणकी तरह मोच लिया । उस समय देवताओंने 'साधु-साधु' कहकर उनपर फूल बरसाये । इसके बाद पाँच महा व्रत धारण कर उन्होंने अपने मनमें विचार किया,—“ मैं अभी पिताजीके धरण कमलोंके समीप नहीं जाऊंगा क्योंकि इस समय जानेसे पहले व्रत ग्रहण करने वाले भीर ज्ञान पाये हुए छोटे भाइयोंके सामन मेरी हेठी होगी । इस लिये अभी मैं यहीं रहूँ और ध्यान रुपी अग्निमें सब घानी कर्मोंको जलाकर केवलज्ञान प्राप्त करनेके बाद उनकी समामें जाऊँ ।” ऐसा ही निश्चय कर वह मनस्वी बाहुबली अपने दानों हाथ लम्बे फौलाकर रत्न प्रतिमाके समान वहीं कायोत्सर्ग करके टिक रहे । अपने भाईका यह हाल देख राजा भरत, अपने कुकर्मोंका विचार कर इस प्रकार नीचे गिरदन बिपे छड़े रह, भानों के पृथ्योंमें समा जानेकी इच्छा कर रहे हों । तदनन्तर भरत राजाने अपने रह सहे कोधको गरम-गरम आँसुओंके रूपमें बाहर निकाल कर मूर्ति मान् शान्तरसये समान अपने भाईका प्रणाम किया । प्रणाम करते समय बाहुबलीके जल रुपी शूर्पणोंमें परछाँई पड़नेसे ऐसा मालूम होने लगा भानों उगड़ने अधिक उपासना करनेकी इच्छासे बलग-मलग कई रूप धारण कर लिये हैं । इसके बाद

बाहुबली मुनिका गुण गाते हुए, वे अपने अपयाद रूपी रोगकी औषधिके समान अपनेको इस प्रकार धिक्कार देने लगा — “तुम धन्य हो कि मेरे ऊपर दया करके तुमने अपना राज्य भी छोड़ दिया । मैं पापी और अभिमानी हूँ ; क्योंकि मैंने असन्तोषके हाँ मारे तुम्हारे साथ इस प्रकार छोड़-छाड़ की । जो अपनी शक्ति नहीं जानते जो अन्याय करनेवाले हैं जो लोभके पन्ध्रों में फँसे हुए हैं—ऐसे लोगोंमें मैं मुझिया हूँ । इस राज्यको जो संसार-रूपी वृक्षका धीज नहीं जानते, वे अधम हैं । मैं तो उनसे भी बढकर हूँ ; क्योंकि यह जानता हुआ भी इस राज्यको नहीं छोड़ता । तुम्हीं पिताके सच्चे पुत्र हो—क्योंकि तुमने उनकी रास्ता पकड़ लिया । मैं भी यदि तुम्हारे ही जसा हो जाऊँ, तो पिताका सच्चा पुत्र कहलाऊँ ।” इस प्रकार पद्मा सापरूपी मलसे विषादरूपी कीचड़को दूर कर भरत राजाने बाहुबलीके पुत्र चन्द्रयशकी उनकी गद्दीपर बैठाया । उसी समयसे जगत्में सेकड़ों शाखाओंवाला चन्द्रयश प्रतिष्ठित हुआ । यह बड़े बड़े पुरुष-रत्नोंकी उत्पत्तिरा एक कारण रूप हो गया ।

इसके बाद महाराज भरत बाहुबलीको नमस्कार कर स्वर्गकी राजलक्ष्मीकी सहोदरा यहनकी भाति अपनी व्योध्य। नगरी में अपने सकल समाजके साथ लौट आये ।

मगधान् बाहुबली जहाँ-कहाँ अकेले ही कायोत्सव ध्यान में ऐसे खड़े रहे मानों पृथ्वीसे निकले हों या आसमानसे उतर आये हों । ध्यानमें एकाग्र चित्त किये हुए बाहुबलीकी दोनों आँखें

नासिका पर गडी हुई थीं। साथ ही वे महात्मा विना हिले
 झुले ऐसे शोमित हो रहे थे मानों दिशामोंका साधन करने
 वाला शंकु * हो। अग्निकी लपटोंकी तरह गरम-गरम बालू
 चलानेवाली गरमीकी लूको ये वनके वृक्षोंकी भांति सह लेते
 थे। अग्नि कुण्डके मध्याह्न कालका सूर्य उनके सिर पर तपता रहता
 था तो भी शुभ ध्यान-रूपी अमृत कुण्डमें निमग्न रहनेवाले उन
 महात्माको इस बातकी खबर ही नहीं होती थी। मिरसे लेकर
 पैरके अगूठे तक धूलके साथ पसीना मिल जानेसे शरीर कीबड़
 से लिपटा हुआ मालूम पड़ने लगता था। उस समय वे कीबड़
 कादेसे निकले हुए घराहकी तरह शोमित होते थे। वषा ऋतुमें
 बड़े जारकी भाँधी और मूसलधार-वृष्टिसे भी वे महात्मा पर्झर
 तरह अचल बने रहते थे। अक्सर अपने निर्घातके शब्दसे पत्थर
 शिखरोंको भी कपानी हुए बिजली गिर पड़ती, तो भी वे कच्चे-
 त्सग अथवा ध्यानस विचलित नहीं होते थे। नीचे बैठे हुए
 पानोंमें उत्पन्न सिवारोंसे उनके दोनों पैर निर्जन शब्दों
 की सीढियोंके समान लिप्त हो गये। हिम-ऋतुमें हिम-जल
 वाली मनुष्यका नाश करनेवाली नदी जारी हो जाती है
 रूपी अग्निमें कर्म-रूपी ईंधनको जलानेमें लालचुई हुए बड़े कुण्ड
 रहे। बर्फसे वृक्षको अलादेने वाली हिम-ऋतुमें
 भी बाहुयलीका ध्यान कुण्डके फूलोंके लहलहाते हुए
 जगली जैसे मोटे वृक्षके स्क्वपडे

यही कहकर वे दोनों देवियाँ जिधरसे आयी थीं, उधर ही चली गयीं, उनकी बात सुन मन ही मन विस्मित हो महात्मा बाहु बलीने विचार किया — “सब प्रकारके साधन योगोंका स्थापन, वृक्षकी तरह कायोत्सर्ग करने वाला मैं इस जंगलमें हाथी पर खड़ा हूँ। यह कैसी बात है ? वे दोनों भार्याएँ भगवानकी शिष्याएँ हैं, पर किसी तरह झूठ नहीं बोल सकतीं। फिर मैं उनकी इस बातसे क्या समझूँ ? ओह ! अब मालूम हुआ। व्रत में बड़े और घयसमें छोटे भाइयोंको मैं कैसे नमस्कार करूँगा ? यही अनिमान जो मेरे मनमें घुसा हुआ है, वही भागो हाथी है, जिस पर मैं निर्भयताके साथ सवार हूँ। मैंने तीनों लोकके स्वामीकी बहुत दिनों तक सेवा की, तो भी जैसे जलचर जीवोंको जलमें तैरना नहीं आता, वैसेही मुझको भी विषेक नहीं हुआ। इसीलिये तो पहलेसे ही व्रत प्रदण किये हुए महात्मा भाइयोंको छोटा समझ कर ही मैंने उनकी घन्दना करनी नहीं चाही। अच्छा रहो—मैं आजही यहाँ आकर उन महामुनियोंकी घन्दना करूँगा।”

ऐसा विचार कर ज्योंही महाप्राण बाहुबलीने अपने पैर उठाये त्योंही चारों ओरसे लताएँ टूटने लगीं—साथही घातो कम भी टूटने लगे और उसी पग पर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो आया। ऐसे केवलज्ञान और केवल दर्शनवाले सौम्य मूर्ति महात्मा बाहुबली उसी प्रकार शृंगारस्वामीके पास आये, जसे चन्द्रमा सूर्यके पास जाता है। तीर्थ-ररको प्रदक्षिणा कर, उन्हें प्रणामकर जगतसे घन्दनीय बाहुबली मुनि, प्रतिहासे मुक्त हो केवलीकी परिषद्में जा बैठे।

ब्रह्मसंग

इन दिनों भगवान् श्रृपमस्वामीका शिष्य, अपने नामके समान शास्त्रके एकादश भंगोंका जाननेवाला, साधुगणोंसे युक्त, भ्यमा वसें सुकुमार और हस्तिपतिके साथ-साथ चलनेवाले हाथीके बच्चेकी तरह, स्वामीके साथ विचरण करने वाला भरतपुत्र मरिचि प्रीप्प-श्रुतुमें स्वामीके साथ विहार कर रहा था। एक दिन मध्याह्नके समय लुहारोंकी घोंकनीसे फूँकी हुई अग्निके समान चारों ओरके मार्गोंकी धूल तक सूर्यकी किरणोंसे तप गयी थी और मानों अदृश्य रहने वाली अग्निकी लपटें हों पेसी गरम-गरम सू सब रास्तों पर चल रही थी। उस समय अग्निसे तपे हुए किञ्चित गीले काष्ठके समान सिरसे पाँव तक सारी देह बसीनेल सराबोर हो गयी थी। जलसे भीगे हुए सूखे चमड़ेकी दुग्न्धके समान पसीनेसे तर घने हुए कपड़ोंके कारण उसके भंगोंसे बड़ी कड़ी बद्दू निकल रही थी। उसके पैर जल रहे थे इसीसे तपे हुए-स्थानमें रहनेवाले कुलकी स्थिति घतला ये और गरमीके कारण वह प्याससे व्याकुल हो गया था। इस हालतसे

अपने मनमें सोचने लगा,—“ये”।

केवलज्ञान और केवल-दर्शन रूपी सूर्यचन्द्रसे शोभित मेरुके समान और तीनों लोकके गुरुके समान श्रृपमस्वामीका मैं पौत्र हूँ। इसके सिवा अघण्डपट्टण्ड-युक्त महि-मण्डलके इन्द्र और विद्येकको अद्वितीय निधिके 'समान भरत राजाका मैं पुत्र हूँ। सायही मैंने चतुर्विधि संघके सामने श्रृपमस्वामीसे पञ्चमहाघत का उच्चारण करके दीक्षा ली है; इसलिये जैसे वीर पुरुषोंको युद्धभूमिसे नहीं भागना चाहिये, वैसेही मुझे भी इस स्थानसे लज्जित और पीडित होकर घर नहीं चला जाना चाहिये। परन्तु बड़े मारी पर्वतकी तरह इस चारित्रके दुर्बह भारको मुहूर्त्त-मात्र के लिये उठानेको भी मैं समर्थ नहीं हूँ। न तो मुझसे चारित्र धतका पालन करते बनता है न छोड़ कर घर जानाही बन पड़ता है, क्योंकि इससे कुलको कलंक लगता है। इसलिये मैं तो इस समय एक ओर नदी और दूसरी ओर सिंहवाली हालतमें पड़ाहुआ हूँ। पर हाँ, अब मुझे मालूम हुआ, कि जैसे पर्वतके ऊपर भी पगडण्डी बनी होती है वैसेही इस विषम मार्गमें भी एक सुगम मार्ग है।

'ये साधु मनोदण्ड, ध्यानदण्ड और कायदण्डको जीतनेवाले हैं, पर मैं तो इन्हींसे जीता गया हूँ, इसलिये मैं त्रिदण्डो हूँगा। ये ध्रमणकेशका लोच और इन्द्रियोंकी जय कर, सिर मुँढाये रहते हैं, पर मैं तो छूरेसे सिर मुँढयाकर शिक्षाधारी हूँगा। ये स्थूठ और सूक्ष्म प्राणियोंके हिंसादिकसे विरत रहते हैं; पर मैं तो बेचल स्थूल प्राणियोंका ही पथ करने

से हाथ खींचे रहेंगा । वे मुनि अक्विचन होकर रहते हैं, पर मैं तो अपने पास सुवर्ण-मुद्रादिक रबूंगा । वे ऋषि जूते नहीं पहनते ; पर मैं तो पहनूंगा । वे अठारह हजार शीलके अंगोंसे युक्त सुशील होकर सुगन्धित बने रहते हैं ; पर मैं शीलसे रहित होने के कारण दुर्गन्ध युक्त हूँ, इसलिये चन्दनादिका लेप करूंगा । वे ध्रमण मोहरहित हैं और मैं मोहसे ढका हुआ हूँ इस कारण इस बातकी निशानोके तौर पर मस्तक पर छत्र लगाऊँगा ; वे निष्कपाय होनेके कारण श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और मैं कपायसे युक्त होनेके कारण उसके स्मारक स्वरूप कपाय वस्त्र धारण करूँगा । वे मुनि पापके भयसे बहुत जीर्णोंसे भरे हुए सचित जलका त्याग करते हैं पर मैं तो काफी जलसे नहाऊँगा और धूब पानी पीऊँगा ।” इस प्रकार यह अपनी ही बुद्धिसे अपने लिङ्ग (निशानी) की कल्पना कर, वैसा ही वेश धारण कर, स्वामीके साथ विहार करने लगा । वधरको जैसे घोड़ा या गधा नहीं बद्धा जाता ; पर वह है इन दोनोंके ही अंशसे उत्पन्न—इसी तरह मरिचिने न गृहस्थका सा धाना रखा न मुनियोंका सा ; बल्कि दोनोंसे मिलता-जुलता हुआ एक नया ही धाना पहन लिया । हंसोंके बीचमें कौपकी तरह महर्षियोंके बीच में इस अद्भुत मरिचिको देखकर बहुतेरे लोग बड़े कौतुकसे उससे धर्मकी बातें पूछने । उसके उत्तरमें वह मूल उत्तर गुणगाने साधु धर्मका ही उपदेश करता था । उसकी बातें सुनकर याद कोई पूछ बैठना, कि तुम भी ऐसा ही क्यों नहीं करते ? तो वह

इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट कर देनी थी। इस प्रकार प्रतिबोध देने पर 'यदि कोई मज्जेजीव देखी लेना चाहता, तो वह उन्को प्रमुख पास भेजे देता था और उससे प्रतिबोध पाकर अथि हुए भय प्राणियोंको भगवान् ऋषभदेव, जो निष्कारण उपेकार करनेमें बंधुके समान हैं, स्वयं दीक्षा दिया करते थे।

इसी प्रकार प्रमुखे साथ विहार करते हुए मरिचिके शरीरमें एकडीके घुनकी तरह एक बड़ा मारी रोग पैदा हो गया। डाल से घूरे हुए बन्दरकी तरह, धतसे घूरे हुए उस मरिचिकी उसके साथ वाले साधुओंने प्रतिपालन करना छोड दिया। जैसे ईश्वर का खेत बिना रक्षकके सूअर आदि जानवरोंसे विशेष हानि उठता है, वैसेही बिना दवा दारूके मरीचिका रोग भी अधिकाधिक पीडा देने लगा। तब धने जङ्गलमें पड़े हुए निस्सहाय पुष्पकी भांति घोर रोगमें पड़े हुए मरिचिके अपने मनमें विचार किया — "अहा! मालूम होता है, कि मेरे इसी जन्मका कोई भ्रम कर्म उदय हो आया है, जिससे अपनी जमातके साधु भी मेरी परायेके समान उपेक्षा कर रहे हैं परतुं उल्लुकी दिनके समये दिखलाई नहीं देता, इसमें जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशका कोई दोष नहीं है, उसी प्रकार मेरे विषयमें इन अप्रतिचारी साधुओंका भी कोई दोष नहीं। क्योंकि उसम कुलवाला जैसे म्लेच्छकी सेवा नहीं करता, वैसेही साधय कमासे विराम पाये हुए ये साधु मुझ साधय कर्म करनेवालेकी सेवा क्यों वैसे कर सकते हैं ? थलिक उनसे अपनी सेवा परानी ही मेरे लिये अनुचित है,

क्योंकि उससे मेरा यह प्राण, जो मृतमंगने कारण पैदा हुआ है, वृद्धि को प्राप्त होगा। भय में अपने उपचारके लिये किन्ना अपने ही समान मन्द धर्मवाले पुरुषकी आज्ञा करूँ, क्योंकि मृगके साथ मृगका ही रहना हीब होना है।” इस प्रकार विचार करते हुए चितने ही समय बाद मरिचि रोग मुक्त हो गया; क्योंकि भारी जमीन भी कुछ कालमें आप से आप अच्छी हो जाती है।

एक दिन महारामा धरमम्यामी जगत्का उपकार करनेमें वर्षा ऋतुरे मेघके समान देशना दे रहे थे। उसीसमय वहाँ कपिठ नामका कोई द्रष्टु राजकुमार आकर धर्मकी बातें सुनने लगा पर जैसे धर्मवाक्यों की आँदनी अच्छी नहीं लगती, उद्दूको दिन नहीं अच्छा लगता समाने रोमीको दया नहीं अच्छी लगती यद्यु रोगवालेको उँटो चोजे नहीं सुहानी और बकरेको भेष नहीं अच्छा लगता, ऐसेही उसे भी प्रभुका धर्मोपदेश नहीं भाया। दूसरी तरफकी धर्म-देशना सुननेकी इच्छा रखनेवाले उस राजकुमारने जो इधर-उधर दृष्टि दीक्षायी, तो उसे विचित्र धर्मधारी मरिचि दिखलाई दिया। जैसे बाजारमें चीनें मोल लेनेको गया हुआ बालक बड़ी दुकाससे हटकर छोटी दुकान पर चला आये, वसी प्रकार दूसरे दुकानकी धर्म-देशना सुननेकी इच्छा रखनेवाला कपिठ भी स्वामीके निकटम उठकर मरिचिके पास चला आया। उसने मरिचिसे धर्मका मार्ग पूछा। यह सुन, उसने कहा,— “भाई! मेरे पास धर्म नहीं है। यदि इसकी चाह हो, तो म्या मीजीकी ही शरणमें जाओ।” मरिचिकी यह बात सुन, कपिठ

फिर प्रभुके पास आकर धर्म कथा श्रवण करने लगा। उसके चले जाने पर मरिचिने अपने मनमें विचार किया,—“यह देखो! इस स्वकर्म दूषित पुरुषको स्वामीकी धर्म कथा भी नहीं रुची। बेचारे घातकको सारा सरोवर ही मिल जाये, तो उसको इससे क्या होता है?”

घोड़ी देरमें कपिल फिर मरिचिके पास आकर बहने लगा,—“क्या तुम्हारे पास ऐसा घेसा भी धर्म नहीं है? यदि नहीं है, तो तुम मन काहेका लिये हुए हो।”

इसी समय मरिचिने अपने मनमें विचार किया —“देवयोग से यह कोई मेरे जेसा मुड्ड मिला है। बहुत दिनों पर यह जैसेको तैसा मिला है इसीलिये अथ मैं नि सहायसे सहायवाला हो गया।” ऐसा विचार कर उसने कहा,—“यहाँ भी धर्म है और यहाँ भी धर्म है।” यत्न, इसी एक दुर्भाषणके ऊपर उसने कोटानुकोटि सागरोपम उदकट प्रपञ्च फैलाया। इसके बाद उसने उसको वीक्षा दी और अपना सहायक बना लिया। यत्न, उसी दिनसे परिप्राजकताका पाखण्ड शुरू हुआ।

विश्वोपकारी भगवान् ऋषभदेवजी ग्राम, खान नगर, द्रोण-मुख, करवट, पत्तन, मण्डप, आश्रम और जिले परगनोंसे भरी हुई पृथ्वीमें विचरण कर रहे थे। विहार करते समय वे चारों दिशाओंमें सौ योजन तकके लोगोंका राग निवारण करने हुए वर्षाकालके मेघोंकी तरह जगत्के जन्तुओंको शान्ति प्रदान कर रहे थे। राजा जिस प्रकार अनीतिका निवारण कर, प्रजाको

सृज्य देता है, वैसेही मूषक, शुक आदि उपद्रव करनेवाले जीवों की अपवृत्तिमें वे सबकी रक्षा करते थे। सूर्य जिस प्रकार अन्धकारका नाशकर, प्राणियोंके नैमित्तिक और शाश्वत पैरको शान्त करता हुआ सबको प्रसन्न करना है वैसेही ये सबको प्रसन्न करते थे। जैसे उन्होंने पहले सब प्रकारसे स्वस्थ करनेवाली व्यवहार प्रवृत्तिसे लोगोंको भानदित किया था वैसेही अब की विहार प्रवृत्तिसे सबको आनन्द दे रहे थे। जैसे भीषणि अजीर्ण और अतिक्षुधाको दूर कर देती है, वैसेही ये अनावृष्टि और अनिवृष्टिसे उपद्रवोंको दूर करते थे। अन्त शब्दके स मान स्वचक्र और परचक्रका भय दूर हो जानेसे तत्काल प्रसन्न बने हुए लोग उनके आगमनके उपलक्ष्यमें उत्सव करते थे। सायदो जैसे मान्दिक पुराण भूत—राक्षसोंसे लोगोंको बचाते हैं, वैसेही ये संहार करनेवाले घोर दुर्मिशाले सबकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उपकार पाकर सब लोग उन महात्म्याकी स्तुति किया करते थे। भानों भीतर नहीं स्वामि पर बाहर आती हुई अनन्त ज्योति हो, ऐमा सूर्यमण्डलको भी जीननेवाला प्रमा मण्डल ये मा घाटण बिये हुए थे। * जैसे भागे भागे चलने

ॐ जहाँ-जहाँ तीव्र कर विचार्य बात है उसके चारों चार सवासी शोचन एवम् उपद्रवकारी रोग शान्त हो जात हैं परस्परका बैर मिट जाता है, धान्यादिको हानि नष्ट चानवाले जन्तु नहीं रह जात महामारी नहीं होखी अतिवृष्टि नहीं हाती, अकास नहीं पता, स्वचक्र—परचक्रका भय नहीं रहता तथा प्रभुके मस्तक पर पोक्ष प्रभामवल्ल रहता है, जो केवल ज्ञान प्रकट होमत उत्पन्न तथा ग्यारह अतिघण्टित एक है।

झाले चक्रसे नयनचर्चो शोभित होता है, वैसेही आकाशमें
 उनके आगे आगे चलनेवाले असाधारण तेजमय धर्म चक्रसे वे
 भी शोभित हो रहे थे। सब कर्मोंकी ज़ीतनेके चिह्नस्वरूप ऊँचे
 जयस्तम्भके समान हजारों छोटी-मोटी ध्वजाओंसे युक्त एक
 धर्म ध्वजा उनके आगे-आगे भी चलती थी। मानों प्रयाण करते
 समय उनका कल्याण मण्डल करती हो, ऐसी भाप ही आप नि
 भर शब्द करती हुई दिव्य हु-दुमि उनके आगे-आगे बजती चलती
 थी। मानों उनका पश हो, ऐसा आकाशमें घूमता हुआ पाद
 पीठ सहित स्फटिक-रत्नाका सिंहासन उनका भी शोभित कर
 रहा था, देवताओंसे रखे हुए सुवर्ण कमलके ऊपर राजहंस
 के समान वे भी लीला सहित घरण-न्यास कर रहे थे। मानों
 उनके भयसे रसातलमें पैठ जानेकी इच्छा करता हो, ऐसे नीचे
 मुखवाले उनके तीक्ष्ण दण्ड रूपी कण्ठकसे उनका परिवार
 आश्रित नहीं होता था। मानों कामदेवकी सहायता करनेके पाप
 का प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करता हो, इस प्रकार छत्रों श्रुतुएँ
 एकही समयमें उनकी उपासना करती थीं। मार्गके चारों
 ओरके नीचेकी भुके हुए घृष्ट, जो संज्ञाहीन जड़ वस्तु हैं, दूरही
 से उनको नमस्कार करते हुए मालूम पड़ते थे। पंखेका हवा
 के समान ठंडी, शीतल और अनुकूल वायु उनकी निरन्तर सेवा
 करती रहती थी। स्वामीके प्रतिकूल चलनेवालेकी भलाई नहीं
 होनी, मानों यही सोचकर पक्षीगण नीचे उतर, उनकी प्रदक्षिणा
 कर, उनकी दाहिनी तरफ होकर चलने लगते थे। जैसे चंचल

तरङ्गोंसे समुद्र शोभित होता है, वैसेही अद्यत्यकीटि भङ्गावाले और बारम्बार गमनागमन करने हुए सुरासुरोंसे ये भी शोभित हो रहे थे। मानों अचिन्तित दिनमें भी प्रभासहित चन्द्रमा उदय हो आया हो ऐसा उनका छत्र आकाशमें शोभा दे रहा था। और मानों चन्द्रमासे पृथक् की हुई समस्त चिरमोंका जोष हो, ऐसा गङ्गाकी तरंगोंक समान प्रवेग धमर उनपर टुल रहा था। नक्षत्रोंसे घिर हुए चन्द्रमाके समान, तपसे प्रदीप्त और सौम्य लक्षणों उत्तम धमनोंसे ये घिरे रहते थे। जैसे सूर्य प्रत्येक सागर और सदापरमें कमलको त्रिगता है, वैसेही ये महात्मा प्रत्येक नगर और ग्राममें अथ्य जीवोंको प्रतिबोध दिया करते थे। इस प्रकार चिन्तन करते हुए भगवान् शृंगमदेवजी एक दिन अष्टापद पपतपर आये। मानों बनी घनी हुई सुफेदी के कारण शरद्भ्रतुके बादलोंका एक स्थान पर जमा किया हुआ ढेर हो स्थिर हुए क्षीर समुद्रका लहर छोड़ा हुआ पैलाकूट हो अथवा प्रभुके जामामियेकके समय इन्द्रके विषय किये हुए चार वृषभोंमेंसे एक वृषभ हो—ऐसाही वह पर्वत मालूम होता था। साथही वह पर्वत नन्दीश्वर द्वीपकी पुष्करिणीमें रहनेवाले दक्षि-मुच-पर्वतोंमेंसे एक पर्वत, जम्बूद्वीप की कमलकी एक नाल अथवा पृथ्वीके ऊँचे श्वेतवर्ण मुहुटकी भाँति शोभा पा रहा था। उसकी निर्मलता और प्रकाशको देखकर यही मालूम होता था, मानों देवतागण इसे सदा जलसे नहलाते और घनसे पोंछते रहते हैं। वायुसे उड़ायी हुई कमल-रेणुओंसे निर्मल

यने हुए उसके स्फटिक मणिके तटको खियाँ नदीके जलके समान देखती रहती थी। उसके शिखरोंके अप्रमाणमें विध्राम लेनेको बैठी हुई विद्याधरोंकी खियोंको यह पर्वत घेताद्वय और शुद्ध हिमालयकी याद दिलाता था। यह ऐसा मालूम पड़ता था मानों स्वर्ग भूमिका अन्तरिक्षमें टिका हुआ दर्पण हो, दिग्ब धुओंका अतुलनीय हास्य हो। और ग्रह-नक्षत्रोंके निर्माणके काममें आनेवाली मिट्टीका अक्षय आश्रय स्थल हो। उसके शिखरोंके मध्यभागमें दौड़ घूम करके थके हुए मृग बैठा करते थे, इससे वह अनेक मृगलाञ्छनों (चन्द्रों) का घोषा दे रहा था। उससे जो बहुतसे भ्रमने जारी थे, वे उसके छोटे हुए निर्मल वस्त्रसे मालूम पड़ते थे और सूर्यकान्त मणियोंकी फैलती हुई किरणोंसे यह ऊँची ऊँची पताकाओंवाला मालूम होता था। उसके ऊँचे शिखरोंके अप्रमाणमें जब सूर्यका संक्रमण होता था तब वह सिद्धोंकी खियोंको उदयाचलका भ्रम पैदा करता था। मानों मोरपक्षोंका बना हुआ छत्र तना हो, इस प्रकार उसपर हरे-हरे पर्तियोंवाले वृक्षोंकी छाया अनिरन्तर छायी रहती थी। खेचरों की खिया कौतुकसे मृगोंके बच्चोंका लालन पालन करती थीं, इससे हरिणियोंके भ्रमते हुए दूधसे उनकी सध लना कुञ्जे सिंच जाती थी। कदलीपत्रकी लंगोटियाँ पहने हुई शायरियोंका नाच देखनेके लिये वहा नगरकी खियाँ आँखोंकी पक्ति लगाये रहती थीं। रतिसे थकी हुई सापिणें वहा जगलकी मन्द मन्द हवा पिया करतीं, पवन-नटकी तरह लताओंकी नचा-नचा

कर खेल करता था, विश्वरोंकी छियाँ रतिये आरम्भसे ही उसकी गुफाओंको मन्दिर बना लेतीं और स्नान करनेके लिये भायी हुई अप्सरारोंको भीड़-भाड़के मारे उसमें सरोवरका जल तरङ्गित होना रहता था। वहीं खीपड़ खेलते हुए, वहीं पान-गोष्ठी करते हुए, वहीं जुभा खेलते हुए यक्षोंसे, उसके मध्य भागमें कोलाहल होता रहना था। उस पर्वत पर वहीं विश्वरोंकी छियाँ, वहीं मीलोंकी छियाँ और वहीं विद्याधरोंकी छियाँ ब्रीडा करता हुई गीत गाया करती थीं। वहीं पके हुए दाखके फल खाकर उमत्त बने हुए शुक पक्षी शब्द कर रहे थे, वहीं आमकी मोजरें खाकर मस्त कोयलें पंचम स्वरमें बलाप रही थीं, वहीं कमल तन्तुके आस्थादस उमत्त बने हुए हंस मधुर शब्द कर रहे थे। वहीं नदीके किनारे मशोमल वीक्ष्य पक्षी किलकारियाँ सुना रहे थे। वहीं विन्दुल पास आकर लटके हुए मेघोंकी देखकर बेसुध हो जानेवाले मोर शोर कर रहे थे और वहीं सरोवरमें तीरते हुए सारस पक्षियोंका शब्द सुनाई दे रहा था। इन सब बातोंसे वह पर्वत बड़ा ही मनोहर मालूम होता था। वहीं ता वह पर्वत भरोबके लाल लाल पत्तोंसे कुम्भुषी बल्लवाला वहीं ताल-तमाल और हिमतालके वृक्षोंसे जगम बल्लवाला, वहीं सुन्दर पुष्पवाले पलास वृक्षोंसे पीले बल्लवाला, और वहीं मालती और महिष्काके समूहसे श्वेत बल्लवाला मालूम पड़ता था। आठ योजन ऊँचा होनेके कारण वह आकाश जैसा ऊँचा मालूम पड़ता था। ऐसे उस

ऊपर गिरि की तरह गरिष्ठ जगत्सुगु, आ घिराजे । हवाके झोंपे से गिरनेवाले फूलों और भरनोंके जलसे वह पवन मानों जगत्पति प्रभुको अद्याप्या-पाद्य दे रहा हो, ऐसा मान्य पड़ता था । प्रभुके चरणोंसे पवित्र बना हुआ वह पर्वत, प्रभुके जन्म-स्नान से पवित्र बने हुए मेरुसे अपनेको कम नहीं समझता था । हरित कोकिलादिकके शत्रुओंके मिपसे वह पर्वत मानों जगत्पति का गुण गान कर रहा था ।

अब उस पर्वतके ऊपर वायुकुमार देवोंने एक योजन प्रदेश में मार्जन करनेवाले खेवकोंसे ऐसी सफाई करवा दी, कि कहीं तृणकाष्ठादि नहीं रहे । इधर मेघकुमारोंने पानी ढोनेवाले मैसोंकी तरह बादलोंको लाकर उस भूमिको सुगन्धित जलमें सींच दिया । इसके बाद देवताओंने सुवर्ण रत्नोंकी विशाल शिलाओंसे वपण जैसी समतल (घोरस) भूमि बना ली । उसपर ध्यन्तर देवताओंने इन्द्र धनुषके खण्डकी भांति पाँच रंगोंवाले फूलोंकी घुटने भर वृष्टि कर डाली और यमुना नदी की तरंगोंकी शोभा धारण करनेवाले वृक्षोंके आर्द्र-पल्लवोंके तोरण चारों ओर बाँधे । चारों ओर स्वर्णों पर बाधे हुए मकरावृत्ति तोरण, सिन्धुके दोनों तटोंमें रहनेवाले मगरकी तरह दिखला रहे थे । उसके बीचमें मानों चारों दिशाओंरूपिणी देवियोंके दर्पण हों, ऐसे चार छत्र और आकाश गङ्गाकी चञ्चल तरङ्गोंका धोखा देनेवाली पवनसे सञ्चालित ध्वजा पनाकाएँ शोभा दे रही थी । उन तोरणोंके नीचे मोतीका बना हुआ

स्वैस्तिक "सारे जगत्को यहाँ मङ्गल है" ऐसी चित्र लिपिका
 प्रेम उत्पन्न कर रहा था। चौरस बनायी हुई भूमि पर विमान
 चोटी देवताओंने रत्नाकरकी शोभाके सर्वस्वके समान रत्नमय
 गढ़ बनाया और उस पर मानुषोत्तरे पर्वतकी सीमा पर रहने
 वाली सूर्य चन्द्रकी किरणोंकी मालाके समान माणिक्यके बङ्गुरों
 की पंक्तियाँ बनायीं। इसके बाद ज्योतिषपति देवताओंने बलया-
 कार बने हुए हिमोद्रि-पर्वतके शिखरके समान एक निर्मल मुंघणका
 मध्यम गढ़ बनाया और उसके ऊपर रत्नमय बङ्गुरे लगाये। उन
 बङ्गुरों पर दर्शकोंकी परछाई पड़नेपर वे ऐसे मालूम पड़ते थे,
 मानों उनमें चित्र खिंचे हुए हों। उसके बाद मुंघन पत्तियोंने,
 कुण्डलाकार बने हुए शोपनागके शरीरका घोखा पैदा करनेवाला
 चाँदीका गढ़ अन्तमें तैयार किया और उसपर क्षीर सागरके
 तटके जलपर बैठी हुई गरुडश्रेणीकी भाँति सोनेके बङ्गुरोंकी श्रेणी
 बैठीरही। इसके बाद यक्षोंने अयोध्याके किलेका तरह इन गढ़ोंमें
 से मी प्रत्येकमें चार-चार दरवाजे लगाये और उनपर मानिकके
 तोरण बंधेवाये। अपनी फैलती हुई किरणोंसे वे तोरण सौगुने
 से मालूम पड़ते थे प्रत्येक द्वार पर व्यन्तरोंने नेत्रोंकी कोरमें लगे
 हुए काजलकी रेखाके समान धूप की तरंगे ठठानेवाली धूपदानी
 रख दी थीं। मध्यम गढ़के भीतर, ईशान-कोणमें घरमें बने हुए
 देवमन्दिरकी तरह प्रभुके विग्रह करनेके लिये एक "देवच्छन्द"
 (देवालय) रचाया गया। जैसे जहाजके धीवमें मास्तूल होता
 है, वैसे ही व्यन्तरोंन उस समवसरणके धीचोधीव तीन कोस

ऊँचा चैत्य-वृक्ष बनाया । उस चैत्य वृक्षके नीचे अपनी किरणों से मानों वृक्षको मूलसे ही पल्लवित करता हुआ एक रत्नमय पीठ बनाया और उस पीठ पर चैत्य-वृक्षकी शाखाओंके पल्लवोंसे बार-बार खच्छ होता हुआ एक रत्नच्छन्द बनाया । उसके मध्यमें पूर्वकी ओर विकसित कमलकी कलीके मध्यमें कर्णिकाकी तरह पादपीठ सहित एक रत्न सिंहासन तैयार किया और उस पर गङ्गाकी तीन धाराओंके समान तीन छत्र बनाये । इस प्रकार यहाँ देवों और असुरोंने भटपट समवसरण बनाकर रख दिया, मानों वे पहलेसे ही सब कुछ तैयार रखे हुए ही अथवा कहींसे उठा लाये हों ।

जगत्पतिने भव्य-जनोंके हृदयकी तरह मोक्षद्वार-रूपी इस समवसरणमें पूर्व दिशाके द्वारसे प्रवेश किया । पहुँचते ही उन्होंने उस अशोककी प्रदक्षिणा की जिसके डालके अन्तमें निबलने-घाले पल्लवोंको उन्होंने कर्ण-भूषण बना रखा था । इसके बाद पूर्व दिशाकी ओर आ, “नमस्तीर्थाय” कह कर, जैसे राजहंस कमल पर आ बैठे, वैसेही वे भी सिंहासन पर आ विराजे । तत्काल ही शेष तीनों दिशाओंके सिंहासनों पर व्यन्तर देवोंने भगवान्के तीन रूप बना रखे । फिर साधु साध्वी और वैमानिक देवताओंकी स्त्रियोंने पूर्व द्वारसे प्रवेश कर, प्रदक्षिणा करके मक्ति-पूर्वक जिनेश्वर और तीर्थको नमस्कार किया और प्रथम गढ़में प्रथम घम रूपी उद्यानके वृक्षरूप साधु, पूर्व और दक्षिण दिशाके बीचमें बैठे, उसी प्रकार पृष्ठ-भागमें वैमानिक देवताओंकी स्त्रियाँ

खाही रही और उनके पोछे उन्हींकी ही साधियोंका समूह बढ़ा था। सुवनपति, ज्योतिषी और व्याख्यानकी स्त्रियाँ, दक्षिण द्वार से प्रवेश कर, पूर्य त्रिधिके अनुसार प्रदक्षिणा और नमस्कार कर, नैऋत दिशामें बैठी और इन तीनों धेनियोंके देव, पश्चिम द्वारसे प्रवेश कर, उसी प्रकार नमस्कार कर क्रमसे पापशुद्धि प्राप्त करके बैठे। इस प्रकार प्रभुको समयसरणमें आया हुआ जान कर, अपने विमातोंके समूहसे आकाशको आच्छादित करते हुए इन्द्र यहाँ तत्काल आ पहुँचे। उत्तर द्वारसे समयसरणमें प्रवेश कर, स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दे, नमस्कार कर, भक्तिमान इन्द्र इस प्रकार स्तुति करने लगे,— “हे मगधन् ! जब बड़े-बड़े योगी भी आपके गुणोंकी ठीक-ठीक नहीं जानते तब आपके उन स्तुति योग्य गुणोंका मैं नित्य-प्रसादो होकर कैसे बखान सकूँ ? तो भी हे नाथ ! मैं यथाशक्ति आपके गुणोंका बखान करूँगा , क्योंकि लैंगडा आदमी भी इन्हीं मंत्रिण्य मारनेके लिये तैयार हो जाये, तो उसे कोई रोक थोड़े ही सकता है ? हे प्रभो ! इस संसाररूपी आत्मापने तापमें परबरा बने हुए प्राणियोंको आपके चरणोंकी छाया, छत्रछायाका काम देती है, इसलिये आप मेरी रक्षा करे । हे नाथ ! सूर्य जैसे केवल परोपकारके ही लिये उदय होता है, वैसेही केवल लोकोपकारके ही लिये आप विहार करते हैं, इस लिये धन्य हैं। मध्याह्न कालके सूर्यकी तरह आप प्रभुके प्रकट होनेपर देहकी छायाकी भाँति प्राणियोंके कर्म धारों धोरसे संकुचित हो जाते हैं। जो सदा आपके दर्शन करते रहते हैं, वे परा

पत्नी भी धन्य हैं और जो आपके दर्शनोंसे वञ्चित हैं, वे स्वर्गमें रहते हुए भी भय-य है। हे तीनों लोकके स्वामी ! जिनके हृदय मन्दिरमें आपही अधिष्ठाता देवताकी भाँति निवास करते हैं वे भव्य जीव श्रेष्ठ भी श्रेष्ठ हैं। वस आपसे मेरी केवल यही एक प्रार्थना है, कि नगर नगर और ग्राम ग्राम विहार करते हुए आप कदापि मेरे हृदयको नहीं त्यागे ।”

इस प्रकार प्रभुकी स्तुति कर, पाँचो क्षणों से पृथ्वीका स्पर्श करते हुए प्रणाम कर स्वर्गपति इन्द्र पूर्व और उत्तर दिशाओंके मध्यमें बैठे। प्रभु अष्टापद पथ पर पधारे हैं, यह समाचार शीघ्रही शैल-रक्षक पुंश्यानि चक्रवर्त्तिसे जाकर कह सुनाया ; क्योंकि वे इसी कामके लिये यहाँ रखे गये थे। भगवानके आगमनका समाचार सुननेवाले लोगोंकी उदार चक्रवर्त्तिसे साँढे धारह करोड़ सुवर्ण दान किया। मला ऐसे भयसर पर वे जो न दे देते कम ही या। फिर महाराजने सिंहासनसे उठकर उस दिशाकी ओर सात आठ कदम चलकर यिनयके साथ प्रभुकी प्रणाम किया और फिर सिंहासन पर बैठ कर इन्द्र जैसे देवताओंकी बुलाते हैं, ऐसेही प्रभुकी घन्दना करनेको जाँके लिये चक्रवर्त्तिसे अपने सैनिकोंकी बुलवाया, घेलासे समुद्रकी ऊँची तरङ्ग पंक्तिके समान भरत राजाकी आभासे सम्पूर्ण राजा धारों ओरसे आकर एकत्रित हो गये। हाथी ऊँचे स्वरसे गर्जना करने लगे। घोड़े हिनहिनाने लगे। उनका इस प्रकार शब्द करना ऐसा मालूम होता था मानों वे अपने सवारोंको ध्वामीके पास आँके लिये

जल्दी तयार होनेको कह रही हों। पुलकित अंगो वाले रथी और पैदल लोग तत्काल हर्षपूर्वक चल पड़े। क्योंकि एक तो भगवान्‌के पास जाना दूसर, राजाकी आज्ञाका पालन, मानो मोने में सुगन्ध आ गयी बड़ी नदीके दोनों तीरोंमें भी जैसे बाढ़का जल नहीं समाता, वैसेही अयोध्या और अष्टापदपत्र तके बीचमें वह सेना नहीं समाती थी। आकाशमें ज्येष्ठ छत्र और मयूरछत्र का सङ्गम होनेसे गङ्गा यमुनाके बेणी-सङ्गमकी तरह शोभा दिखलाई दे रही थी। घुड़सवारोंके हाथमें सोहनेवाले भाले अपना किरणोंके कारण, ऐसे मालूम पड़ते थे मानों उ-होंने भी अपने हाथमें भाले लिये हो। हाथियों पर घड़े हुए, वीरकुञ्जर हर्षसे उत्कट गर्जन करते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानों हाथीपर दूसरा हाथी सवार हो। सभी सनिक जगत्पतिके दर्शन करनेके लिये भरत चक्र-पत्तीसे भी बढकर उत्सुक हो रहे थे क्योंकि तलवार की अपेक्षा उसकी म्यान और भी तेज हाती है। उन सबके मिले हुए कालाहलने मानों द्वारपालकी तरह मन्थमें विराजित भरत राजासे यह निवेदन किया, कि सब सैनिक इकट्ठे हो गये। इसके बाद जैसे मुनीश्वर राग छेपको जीतकर मनको पवित्र कर लेते हैं वैसेही महाराजने स्नान करके अङ्गोंको पवित्र किया और प्रायश्चित्त तथा मंगल कर अपने चरित्रके समान उज्ज्वल घस्त्र धारण किये। मस्तक पर श्वेत छत्र और दोनों ओर इतत चषरोंसे शोभित ये महाराज अपने महलके आंगनमें आये और सूर्य जैसे पूर्वाधल पर आरुढ़ हाता हैं, वैसेही आंगनमें पधारे हुए

महाराज, आकाशके मध्यमें जानेवाले सूर्यकी भांति महागज पर आरूढ हुए। भरी, शङ्ख और नगाड़े आदिके उत्तम यात्रोंके ऊंचे शब्दसे फत्तारोंके जलके समान आकाशको ध्यात करते हुए, हाथियोंके मद-जलसे दिशाओंको पूरा करते हुए तरंगोंसे आच्छादित समुद्रकी तरह तुरङ्गोंसे पृथ्वाको आच्छादित करते हुए और कल्पवृक्षसे युक्त युगलियोंके समान हुए और स्वरा (जल्दी) से युक्त महाराज, छोड़ी देरमें अन्त पुर और परिवारके लोगोंके साथ अष्टापदमें आ पहुँचे।

जैसे संयम स्वीकार करनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष गृहस्थ धर्म से उतर कर ऊँच चरित्र धर्मपर आरूढ होता है वैसेही महागज से उतर कर महाराज उस महागिरि पर चढ़े। उत्तर दिशावाले द्वारसे समस्तारणके भीतर प्रवेश करतेही उन्होंने आनन्द-रूपी अंकुर उत्पन्न करनेवाले मेघके समान प्रभुको देखा। प्रभुकी तीन बार प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंमें नमस्कार कर, हाथोंकी अञ्जलि बना, सिरसे लगाकर भरतने उनको इस प्रकार स्तुति की,—
 “हे प्रभु! मेरे जैसे मनुष्यका आपकी स्तुति करना, घड़ेसे समुद्र का पान करनेके समान है। तथापि मैं आपकी स्तुति करता हूँ, क्योंकि मैं भक्तिके कारण निरकुश हूँ। हे प्रभो! जैसे दीपकके सम्पर्कसे यत्नी भी दीपक ही कहलाती है, वैसेही आपके आश्रित भव्यजन भी आपके तुल्य ही हो जाते हैं। हे स्वामिन्! मदसे उन्नत इन्द्रियरूपी हाथिया का मद उतारनेमें औषधिके समान और सच्चे मागको बतलानेवाला आपका शासन सर्वत्र विजय

पाना है। हे त्रिभुवनेश्वर ! मैं तो यही मानता हूँ, कि आप जो चार घातोंकर्मोंका नाश कर, याकी चार कर्मोंकी उपेक्षा करते हैं, वह लोगोंके कल्याणके निमित्त ही करते हो। हे प्रभु ! गण्ड के पक्षोंके नीचे रहनेवाले पुण्य जैसे समुद्रको लाँघजाते हैं, वैसे ही आपके चरणोंमें लिपटे हुए भव्य-जन इस संसार समुद्रको पार कर जाते हैं। हे नाथ ! अनन्त कल्याणरूपी घृक्षको उल्लसित करनेमें दोहद स्वरूप और मोहरूपी महानिद्रामें पड़े हुए विश्वके लिये प्रातःकालके समान आपका दर्शन सदाही जय युक्त है। आपके चरण कमलोंके स्पर्शसे प्राणियोंका कर्म विदारण हो जाता है; क्योंकि चन्द्रमाकी शीतल किरणोंसे भी हाथोंके दाँत फूटते हैं। मेघोंसे भरनेवाली घृष्टिकी तरह और चन्द्रमाकी चाँदनीके समान ही, हे जगन्नाथ ! आपका प्रसाद सबके लिये समान है।”

इस तरह प्रभुकी स्तुति कर प्रणाम करनेके अनन्तर भरत-पति सामानिक देवताकी भाँति इंद्रके पीछे बैठ रहे। देवताओं के पीछे अन्य पुरुषगण बड़े और पुरुषोंके पीछे स्त्रियाँ खड़ी हो रहीं। प्रभुके निर्दोष शासनमें जिस प्रकार चतुर्विध-धर्म रहता है, उसी प्रकार समरसरथके पहले गडमें, यह चतुर्विध संग्रं घेठा, दूसरे गडमें परस्पर विरोधी होते हुए भा सब जीव जन्तु सहोदर भाइयोंकी तरह सहर्षे बैठ रहे। तीसरे किलेमें आये हुए राजाओंके हाथा-धोरे आदि धाहन देशना सुननेके लिये कान ऊपरको उठाये हुए थे। फिर त्रिभुवनपतिने सब मायाओंमें प्रवर्चित

होनेवाली थीर मेघज शब्दकी भाँति गमतीर घाणीमें देशना देनी आरम्भ की। देशना सुनत हुए सभी पशु-पक्षी मनुष्य और देवता गण दर्पके मार ऐसे ब्यर हो रहे, भागोंके किसी बड़े भारी बोझसे छुटकारा पा गये हों इष्ट पदकी प्राप्त हो गये हों अज्याण-अभिषेक कर चुके हो, ध्यानमें हूये हों महामिन्द्र पदकी प्राप्त कर चुके हा अथवा परब्रह्मकी ही पा लिया हो। देशना समाप्त होनेपर, महायतका पालन करनेवाले अपने भाइयोंको देखकर मनमें दुःखित होते हुए भरतराजने विचार किया,—“अहा! अग्निकी तरह सदा असन्तुष्ट रहते हुए मैंने अपने इन भाइयोंका राज्य लेकर क्या किया? अब इस भोगफलयाली लक्ष्मीको दूसरोंको दे देना, तो राज्यमें धी छोड़नेके ही समान और मेरे लिये निष्कण्ट है। कौए भी दूसरे कौओंको गिलाकर अन्नादिक भक्षण करते हैं पर मैं तो अपने इन भाइयोंको भी हटाकर भोग भोग रहा हूँ, इसलिये कौओंसे भी गया भीता हूँ। मासक्षपणक* जिन प्रकार बिसौ दिन मिश्रा ग्रहण करते हैं वैसेही यदि मैं फिर उनको उनकी भोगी हुई सम्पत्ति वापिस कर दू, तो मेरा बच्चाही पुण्योदय होगा, यदि ये उसे ग्रहण कर लें।” ऐसा विचार कर, प्रभुके चरणोंके पास जा, अंजलि बद्ध होकर उन्होंने अपने भाइयो से उस सम्पत्ति को भोगनेके लिये कहा।

तब प्रभुने कहा,—“हे सरलहृदय राजा! तुम्हारे ये भाई बड़े ही सतोगुणी हैं और इन्होंने महायतका पालन करनेकी प्रतिज्ञा

* महीनाभर उपवास करनेवाला।

की है। अतएव संसारकी असारताको जानने हुए ये लोग धमन किये हुए अन्नकी तरह त्याग किये हुए भोगको फिर नहीं ग्रहण कर सकते।”

जब प्रभुने इस प्रकार भोगसम्यग्धी उतये मामन्वणका निषेध किया, तब फिर पञ्चाक्षाप-युक्त होकर चक्रवर्त्तनि विचार किया — “यदि मेरे ये सर्व सङ्ग-विहीन भाइ बड़ापि भोगका साग्रह नहीं कर सकते तो भी प्राण धारणके लिये आहार तो करेंगे ही ?” ऐसा विचारकर उन्होंने ५०० गाड़ियोंमें भरकर आहार भोगवाया और अपने छोटे भाइयोंसे फिर गहलेकी तरह उन्हें स्वीकार कर लेनेको कहा। इसके उत्तरमें प्रभुने कहा,— “हे भवनपति ! यह आधाबर्मी * आहार यतियोके योग्य नहीं है।”

प्रभुने जब इस प्रकार निषेध किया, तब उन्होंने महान और थकारित ! अपने लिये उन्हें निमन्वण दिया, क्योंकि सरलता में सब कुछ शोभा देता है। उस समय “हे राजेन्द्र ! मुनियोंको राजपिण्ड नहीं चाहिये।” यह कह कर धर्म चक्रवर्त्तनि फिर मना कर दिया। तब ऐसा विचारकर कि प्रभुने तो मुझे सब प्रकारसे निषेधही कर दिया महाराज भरत पञ्चाक्षापके कारण राहुप्रस्तचन्द्रमा की भाँति दुःखित होगये। उनकी इसप्रकार उदास होते देखकर इन्द्रने प्रभुसे पूछा,— “हे स्वामी ! अत्रग्रह † कितने तरहका दाता है ?”

० मुनियोंके लिये तयार किया हुआ। † मुनिकर्त्तिय नहीं किया हुआ और नहीं कराया हुआ। * रहने और विचारनेके ब्यापक लिय जो आना-जानी वस्तु है उस अत्रग्रह कहते हैं।

प्रभुने कहा,—“इन्द्र-सामन्थो, धरणी-सामन्थो, राजा-सामन्थी
गृहस्थ-सामन्थो और साधु सामन्थो—ये पाँच प्रकारके भयप्रद
होते हैं। ये भयप्रद उत्तरोत्तर पूर्व पूर्वको बाधा देने हैं। इन
में—पूर्वोक्त और परोक्त विधियोंमें पूर्वोक्तही बलवान् है।”

इन्द्रने कहा,—“हे श्व ! जा साधु मेरे भयप्रदमें विहार करते
हैं, उन्हें मैंने अपने भयप्रदके लिये भाजा दे रखी है।”

यह कह इन्द्र प्रभुके चरणबन्धनोंकी घन्दना कर, छटे हो
रह। यह सुन भरतराजाने पुन विचार किया,—“यद्यपि इन
मुनियोंने मेरे लिये हुए भजादिका स्वीकार नहीं किया, तथापि
भयप्रदके भयप्रदकी भाजासे तो भाजा हनार्य हो जाऊँ।” ऐसा
विचार कर, अष्ट हृदयगते स्वयंसेने इन्द्रकी तरह प्रभुके चरणों
के पास पहुँचकर अपने भयप्रदकी भाजा दी। तदनन्तर अपने
सहधर्मों (सामान्य धर्मबन्धु) इन्द्रसे पूछा,—“अप मैं यहाँ लिये
हुए अपने अन्न जल आदिको कौनसो व्यवस्था करूँ ?”

इन्द्रने कहा,—“यह सब गुणोंमें बड़े-बड़े हुए पुरुषोंको दे
दालो।”

भरतने विचार किया,—‘साधुमोंके सिवाय विशेष
गुणवान् पुरुष और शीत होगा ? अच्छा, अप मुझे मातृम हुआ।
देश विरतिके समान धायण विशेष गुणातर है, इसलिये यह सब
उन्हींको अर्पण कर देना चाहिये।’

यही निश्चय कर, भरत चम्रवर्तीने स्वर्गपति इन्द्रके प्रकाशमान
और मनोहर आदृतिवाले रूपको देख विस्मित होकर उनसे

पूजा,—“हे देव ! स्वर्गमें भी आप इसी रूपमें रहते हैं या किसी और रूपमें ? क्योंकि देवता तो कामरूपी कहलाते हैं—अर्थात् वे जब जैसा चाहें, वैसा रूप बना लेते हैं ।”

इन्द्रने कहा,—“हे राजा ! स्वर्गमें मेरा यह रूप नहीं रहता । वहाँ जो रूप रहता है, उसे कोई मनुष्य नहीं देख सकता ।”

भरतने कहा,—“आपका वह रूप देवनेकी मेरी बड़ी प्रशंसा हो रही है। इसलिये ह स्वर्गशर ! चन्द्रमा जैसे चकोरकी आनन्द देना है, वैसेही आप भी मुझे अपनी वह दिव्यमूर्ति दिखला कर मेरी आँलोंको आनन्द दीजिये ।”

इन्द्रने कहा,— “ह राजा ! तुम उत्तम पुण्य हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जानी चाहिये, अतएव लो, मैं तुम्हें अपने एक अङ्गका दर्शन कराना हूँ, ” यह कह, इन्द्रने उचित अलङ्कार से सोहनी हुई और जगत्रुगी मन्दिरमें दीपकके समान अपनी एक उँगली राजा भरतको दिखलायी, उस चमकती हुई कान्तिवाली इन्द्रकी उँगलीको देख मेदिनीवतिको वैसेही आनन्द हुआ, जैसा चन्द्रमाकी देखकर समुद्रको होता है। भरतराजाका इस प्रकार मान रक्षकर, भगवान्को प्रणामकर इन्द्र सच्य कालके देवकी भाँति तत्काल अन्तर्ध्यान हो गये। चन्द्रवर्त्ती भी स्वामीको प्रणाम कर, करने योग्य कामका मन ही मन विचार कर अपनी अयोध्या नगरीको लौट आये। रातको इन्द्रकी उँगलीका आरोपण कर उन्होंने वहाँ अष्टाहिका-उत्सव किया, सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य भक्ति और स्नेहमें एकसाही होता है। उस दिनसे इन्द्रका

स्तम्भ आरोपित कर लाग सर्वत्र इन्दोदसत्र करने लगे। यह रीति अत्र तक लोकमें प्रचलित है।

सूर्य जैसे एक क्षत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जाता है, वैसेही भव्य उन रूपी कमलोंको प्रबुद्ध करनेके (खिलानेके) लिये भगवान् ऋषभ स्वामीने भी अष्टापद-पर्वतसे अन्यत्र विहार किया।

इधर अयोध्यामें भरत राजाने सब श्रायकोंको धुलाकर कहा,—
 “तुम लोग सदा भोजनके लिये मेरे घर आया करो और वृषि आदि कार्योंमें न लग कर, स्वाध्यायमें निरत रहते हुए निरन्तर अपूव ज्ञानको ग्रहण करनेमें तत्पर रहा करो। भोजन करनेके बाद मेरे पास आकर प्रतिदिन तुम्हें यही कहना होगा, कि—जित्तो भवान् घटते मीस्तस्मान् माहन माहन (अर्थात् तुम जीते गये हो - मय वृद्धिको प्राप्त होता है, इसलिये ‘आत्मगुण’ को न मारो, न मारो)।” चक्रवर्त्तीकी यह बात मान, वे लोग सदा उनके घर आकर जीमने लगे और पूर्वांक वचनका स्वाध्यायमें तत्पर मनुष्यकी भाति पाठ करने लगे। देवताओंकी तरह रतमें मग्न और प्रमादी चक्रवर्त्तीने उन शब्दोंको सुनकर, अपने मनमें विचार किया,—
 “अरे! मैं किससे जीता गया हूँ और किससे मेरा भय बढ़ता है? हाँ अत्र जाना। कपायोंने मुझे जीत लिया है और इन्हींके करते भय वृद्धिका प्राप्त होता है। इसीलिये ये त्रिवेकी पुरुष मुझे नित्य इस बातकी याद दिलाया करते हैं, कि आत्माकी हत्या न करो— न करो, परन्तु तौ भी मेरी यह कसी प्रमादशीलता और विषय-लुब्धता है। धर्मके विषयमें मेरी यह कैसी उदासीनता है। इस

‘अस्वारमें मेरा कैसा अनुराग है ! और यह सब महापुरुषोंके आ-
 स्वारसे कैसा उलटा पड़ता है !’ इस प्रकारकी धारतें सोचनेसे राजा
 के मनमें ठीक उसी प्रकार धर्मका ध्यान क्षण भरके लिये समा
 गया, जैसे समुद्रमें गङ्गाका प्रयाद प्रवेश करता है । परन्तु पीछे
 वे धारम्यार शब्दादिक इन्द्रियोंमें आसक्त हो जाते थे ; क्योंकि
 भोग फल कर्मको अल्पधा बर डालनेकी बीड़ समर्थ नहीं होता ।

एक दिन पाक शालाके अध्यक्षने महाराजके पास आकर
 कहा — ‘ महाराज ! इतने लोग भोजन करने धाने हैं, कि यह
 समझमें नहीं आता, कि ये सबके सब धायकही हैं या और भी
 कोई हैं ?’ यह सुन राजा भरतने आजादी कि तुम भी तो धायक
 हो हो इसलिये आजमे परीक्षा करके भोजन दिया करो । अफसो
 पूछने लगा कि तुम कौन हो ? जब यह बतलाना कि मैं धायक हूँ,
 तब यह पूछना, कि तुममें धायकवि कौन कौनसे घत हैं । येसा
 पूछने पर जब वे बतलाते कि हमार निरन्तर पाच अणुघ्न और
 सात शिक्षा घत हैं तब यह संतुष्ट होता । इसी प्रकार परीक्षा करके
 यह धायको को भरत राजाकी दिखलाता और महाराज भरत,
 उनकी शुद्धिके लिये उनमें काकिणी-रससे उत्तरासद्गकी मूर्ति
 नोन देखापै ज्ञान, दशन और धारित्रदेविह ध्यरुप करने लगे । इसी
 प्रकारअन्येक छठे महीने नये-नये धायकोंकी परीक्षा की जाती
 और उनपर काकिणी-रसके चिह्न अङ्कित किये जाते । उसी
 चिह्नको देखकर उन्हें भोजन दिया जाता और वे “जितोमयात्”
 इत्यादि बचनका ऊँच स्वरसे पाठ करने लगते । इसीका पाठ

करनेके कारण वे क्रमशः "माहना" नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे अपने बालक साधुओंको देने लगे। उनमेंसे कितनेही स्वेच्छापूर्वक विरक्त होकर व्रत ग्रहण करने लगे और कितने ही परिग्रह सहन करनेमें असमर्थ होकर श्रावक होगये। काँकिणी रत्नसे अङ्कित होनेके कारण उन्हें भी भोजन मिलने लगा। राजा उनको इस प्रकार भोजन देते थे, इसीलिये और और लोग भी उनको जिमाने लगे। क्योंकि बड़ो से पूजित मनुष्य सबसे पूजित होने लगते हैं। उनके स्वाध्यायके लिये चक्रवर्त्तोंने अहन्तो की स्तुति और मूनिगणों तथा श्रावकोंकी समाचारोंसे पवित्र चार वेद रचे। क्रमशः वे ही माहनासे ग्रहण कहलाने लगे और काकिणी-रत्नकी तीन रेखाओं के बदले यज्ञोपवीत धारण करने लगे। भरत राजाके बाद जब उनके पुत्र सूर्ययशा गद्दी पर बैठे, तब उन्होंने काकिणी रत्नके अभावमें सुवर्णके यज्ञोपवीतकी चाल चलायी। उनके बाद महायशा आदि राजा हुए। इन लोगोंने चाँदीका यज्ञोपवीत चलाया। पीछे पट्ट सूत्रमय यज्ञोपवीत जारी हुआ और अन्तमें साधारण सूतकेही यज्ञोपवीत रह गये।

भरत राजाके बाद सूर्ययशा राजा हुए। उनके बाद महायशा, तथ अतिवल, तथ बलमद् तथ बलवीर्य तथ कोर्त्तीरीय तथ जलवीर्य और उनके बाद दण्डवीर्य इन—आठ पुरुषों तक ऐसाही आचार जारी रहा। इन्होंनेभी इस भरतार्द्धका राज्य भोगा और इन्हींके रथे हुए भगवानके मुकुटको धारण किया। फिर दृष्टरे राजाओंन मुकुटकी बड़ो लम्बाई चौड़ाई देल, उसे नहीं धारण

किया क्योंकि हाथीका भार हाथी ही सहनकरता है दूसरेमें नहीं
सहा जा सकता। नरें और इसमें तीर्थद्वारके बीचमें साधुका
विच्छेद हुआ और इसी प्रकार उनके बाद सात प्रभुओंके बीचमें
शासनका विच्छेद हुआ। उस समय भारत समयसोंको रची हुई
भर्तृहस्त-स्तुति तथा यति एवं ध्यायकोंके धर्मसे पूर्ण धैर्य आदि
बढ़ने लगे। इसके बाद सुल्स और पाशवत्यय आदि प्राहणोंमें
बनार्य धर्मोंकी रचना की।

इन दिनों अश्वघोशी राजा भारत ध्यायकोंका दान देते और
कामप्रीड़ा मन्त्रालयी विनोद करत हुए दिन बिता रहे थे। एक
दिन चन्द्रमा जैसे आकाशकी पवित्र करना है घेरीही अपन सर-
णोंसे पृथ्वीकी पवित्र करते हुए भगवान् आदीश्वर, अष्टाष्ट गिरि
पर पधारे। देवताओंमें तत्काल यहाँ समयसरणकी रचना की
और उसीमें बैठकर जगत्पति वैराग्य प्रदान करने लगे। प्रभु
यहाँ आनेकी शान्त संवाद-दाताओंमें अष्टाष्ट भरतराजाके पास जा
कर कह सुनायी। भरतने पदोंको ही भाँति उन्हें इनाम दिया।
सब ही, अष्टाष्ट मन्त्रा दान देना है तो भी क्षीण नहीं होता। इसके
बाद अष्टाष्ट गिरिपर समयसरणमें बैठे हुए प्रभु पाम भा, उा
की प्रदक्षिणाकर नमस्कार करते हुए भरतराजान उसकी इसप्रकार
स्तुति की — “हे जगत्पति ! मैं भक्त हूँ, तथापि ध्यायके प्रभावसे मैं
भायकी स्तुति करता हूँ क्योंकि चन्द्रमाको देखनेवालोंकी दृष्टि मन्त्र
होनेपर भी काम देने लगती है। हे स्यामिन् ! मोह रूपी अन्ध-
कारमें पड़े हुए इस जगत्की प्रकाश देनेमें क्षीरकन्दे समान और

आकाशकी भाँति बनल जौ आपका केवल-ज्ञान है यह सदा सब जगह जय पाता है। हे नाथ! प्रमाद-रूपी निद्रामें पड़े हुए मुखसरौखे मनुष्योंकेही लिये आप सूर्यकी तरह धारधार भाते-जाते रहते हैं। जैसे समय पाकर (जाड़े दिनोंमें) पत्थरकी तरह जमा हुआ धी भी आगको आँचसे पिघल जाता है, वैसेही लाखों जन्मों के उपार्जन किये हुए कर्म भी आपके दर्शनोंसे नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभु! एकान्त 'सुखम् काल' से तो यह 'सुखं-दुःखम् काल' ही अच्छा है जिसमें कल्पवृक्षमें भी विशेष फलफे देनेवाले आप उत्पन्न हुए हैं। हे समस्त भुवनोंके स्वामी! जैसे राजा गाँवों और भवनोंसे अपनी नगरीकी शोभा बढ़ाता है, वैसेही आप भी इस भुवनको भूषित करते हैं। जैसा हित माता पिता, गुरु और स्वामी भी नहीं कर सकते, वैसा अकेला होनेपर भी अनेक रूप होकर आप किया करते हैं। जैसे चन्द्रमासे रात्रि शोभा पाती है, हंससे सरोवर शोभा पाता है और तिलकमें मुखकी शोभा होती है, वैसेही आपमें यह सारा भुवन शोभा पाता है।

इस प्रकार विधि पूर्वक भगवान्की स्तुति कर, गिनयी राजा भरत अपने योग्य स्थानपर बैठ रहे।”

इसके बाद भगवान्ने योजन-भरतक फेन्ती हुई और मधु भाषाओंमें समझी जानेवाली वाणीमें विश्वके उपकारके लिये देशना दी। देशनाके अन्तमें भरतराजाने प्रभुको प्रणामकर, रोमाञ्चित शरीरके साथ हाथ जोड़े हुए कहा,—“हे नाथ! जैसे इस भरत छत्र में आप विश्वका हित करते फिरते हैं, वैसे और किनने धर्म-स्वकी

पूर्वाङ्गसे कम लाख पूर का होगा और दस लाख कोटि सागरोपमका अन्तर होगा । उसी नगरीमें मेघराजा और भङ्गलारानीके पुत्र सुमति नामसे पाँचवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका सुवर्ण जैसा वर्ण, चालीस लाख पूर्व का आयुष्य और तीससौ धनुषोंकी काया होगी । व्रत-पर्याय द्वादश पूर से कम लाख पूर्व का होगा और अन्तर नौ लाख कोटि सागरोपमका होगा । कौशाभ्यी-नगरीमें धर राजा और सुसोमा देवीके पुत्र पद्मप्रभ नामके छठ तीर्थङ्कर होंगे । उनका लाल रंग तीस लाख पूर्व का आयुष्य और दस सौ धनुषकी काया होगी । इनका व्रतपर्याय सोलह पूर्वाङ्गसे न्यून लाख पूर्व का और अन्तर नब्बे हजार कोटि सागरोपमका होगा । धारणसी-नगरीमें राजा प्रतिष्ठ और रानी पृथ्वीके पुत्र सुपाश्व नामके सातवें तीर्थङ्कर होंगे । उनकी सोनेकीसी कान्ति, बीस लाख पूर्वकी आयु और दो सौ धनुषकी काया होगी । उनका व्रत-पर्याय बीस पूर्वाङ्गसे कम लाख पूर्व का और अन्तर नौ हजार कोटि सागरोपमका होगा । चन्द्रामन नगरमें महासेन राजा और लक्ष्मणादेवीके पुत्र चन्द्रप्रभ नामसे आठवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका वर्ण श्वेत, आयु दस लाख पूर्वकी और काया षेड सौ धनुषोंके बराबर होगी । उनका व्रतपर्याय चौबीस पूर्वाङ्गसे तीन लक्ष पूर्व का और नौ सौ कोटि सागरोपमका अन्तर होगा । काकन्दी नगरीमें सुप्रोच राजा और रामादेवीके पुत्र सुविधि नामके नवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका वर्ण श्वेत, आयु दो लाख पूर्वकी और काया एक सौ धनुषोंकी होगी । उनका व्रतपर्याय अठ्ठाईस पूर्वाङ्ग

से हीन लक्ष पुर्यका और अन्तर नद्ये काटि सागरोपमका होगा । मद्दिलपुरमें इन्द्राय राजा और नन्ददेवीके पुत्र शीतल नामसे इसर्थ तीर्थद्वार होंगे । उनका सुयण जैसा धन, लक्ष पुर्यकी आयु नद्ये धनुषकी काया, पचीस हजार पुर्यका मृतपर्याय और नी काटि सागरोपमका अन्तर होगा । सिंहपुरमें विष्णु राजा और विष्णुदेवीके पुत्र धेयांस नामसे ग्यारहवें तीर्थद्वार होंगे । उनकी सुयण जैसी काति, अस्सी धनुषकी काया, बीसती लाख पुर्यकी आयु, इकतीस लाख धनका मृतपर्याय तथा छत्तास हजार और छाल्ल लाख धनसे तथा सौ सागरोपमसे न्यून एक कराड सागरोपमका अन्तर होगा । घम्पापुरीमें धन्सुपूज्य राजा और जयादेवीके पुत्र धाम्सुपूज्य नामसे बारहवें तीर्थद्वार होंगे । उनका धन लाल, आयु बहत्तर लाख पुर्यकी और काया सत्तर धनुषसे समान, दशला पर्याय धौवन लाख धनकी और अन्तर धौवन सागरोपमका होगा । कामिन्द्य नगरमें राजा इन्द्रयमा और श्यामादेवीके पुत्र विमल नामके तीरहवे तीर्थद्वार होंगे । उनकी साठ लाख धनकी आयु सुयणकी सौ काति और साठ धनुषकी काया होगी । इनके धनमें पन्द्रह लाख धन ध्यनीत होंगे और धाम्सुपूज्य तथा इनके मोक्षमें तीस सागरोपमका अन्तर होगा । अयाध्याम सिंहसेन राजा और सुयशादेवीके पुत्र अनन्त नामके चौदहवें तीर्थद्वार होंगे । इनकी सुयणकी सौ काति, तीस लाख धनकी आयु और पचास धनुषकी सौ अँधी काया होंगे । इनका मृत-पर्याय साढ़े सात लाख धनका और विमलनाथ तथा

इनके मोक्षके वाचमें नी सागरोपमका अन्तर होगा । रत्नपुरमें भानु राजा और सुव्रतादेवीके पुत्र धर्म नामके पन्द्रहवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका सुवर्णकासा धर्म, दश लाख वर्षकी आयु और पैंतालिस धनुषोंकीसा काया होगी । उनका व्रत पर्याय ढाई लाख वर्षका और अनन्तनाथ तथा उनके मोक्षके वाच चार सागरोपम का अन्तर होगा । इसी तरह गजपुर नगरमें विश्वसेन राजा और अचिरादेवीके पुत्र शान्ति नामके सोलहवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका सुवर्ण समान वर्ण, आठ लाख वर्षकी आयु, चालीस धनुषोंकी काया पच्चीस हजार वर्षका व्रतपर्याय और पौन पल्योपम न्यून तीन सागरोपमका अन्तर होगा । उसी गजपुरमें शूर राजा और श्रीदेवी रानीके पुत्र कुन्धु नामके सत्रहवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका सुवर्णकासा वर्ण, पञ्चानवे हजार वर्षकी आयु पैंतीस धनुषोंकी काया तेईस हजार साडेछात सौ वर्षोंका व्रतपर्याय और शान्तिनाथ तथा इनके मोक्षमें अर्द्ध पल्योपमका अन्तर होगा । उसी गजपुरमें सुदर्शन राजा और देवीरानीके अरु नामके पुत्र अठारहवें तीर्थङ्कर होंगे । उनकी सुवर्ण जैसी कान्ति, चौरासी हजार वर्षकी आयु और तीस धनुषोंकी काया होगी । उनका व्रत पर्याय इक्कीस हजार वर्षका तथा कुन्धुनाथ और उनके मोक्षकाल में एक हजार बरोड वर्ष न्यून पल्योपमके चौंथाई हिस्सेका अन्तर होगा । मिथिलापुरीमें कुम्भ राजा और प्रभावती देवीके पुत्र महिनाथ नामके उन्नीसवें तीर्थङ्कर होंगे । उनका नील वर्ण पचपन हजार वर्षकी आयु और पचास धनुषकी काया होगी ।

उनका व्रतपर्याय बीस हजार नौ सौ वर्ष तथा मोक्षमें एक हजार कोटि वर्षका अन्तर होगा। राजगृह नगरमें सुमित्र राजा और पद्मादेवीके पुत्र सुवत नामके बीसवें तीर्थंकर होंगे। उनका रङ्ग काला आयु तीस हजार वर्षकी और काया बीस धनुषों की होगी। उनका व्रतपर्याय बीस हजार नौ सौ वर्ष तथा मोक्षमें चौवन लाख वर्षका अन्तर होगा। मिथिला-नगरीमें विजय राजा और वप्रादेवीके पुत्र नमि नामके इक्रीसवें तीर्थंकर सुवर्ण जैसे वर्णवाले, दस हजार वर्षकी आयुवाले और पद्मधनुषके समान उन्नत शरीरवाले होंगे। इनका व्रतपर्याय ढाई हजार वर्षका तथा इनके और मुनि सुवर्णके मोक्षमें छ लाख वर्षका अन्तर होगा। शौर्यपुरमें समुद्रविजय राजा और शिवादेवीके पुत्र नेमि नामके बारसवें तीर्थंकर होंगे। उनका वर्ण श्याम आयु हजार वर्षकी और काया दस धनुषकी होगी। इनका व्रतपर्याय सातसौ वर्षका और इनके तथा नमिनाथके मोक्षमें पाच लाख वर्षका अन्तर होगा। धाराणसी (फाशी) नगरीमें राजा अश्व सेन और धामा रानीके पुत्र पार्श्वनाथ नामके तेईसवें तीर्थंकर होंगे। उनका नील वर्ण, सौ वर्षकी आयु नौ हाथकी काया, मत्तकवर्णका व्रतपर्याय और मोक्षमें तिरासी हजार साठेसात सौ वर्षका अन्तर होगा। क्षत्री-कुण्ड ग्राममें सिद्धार्थ राजा और अम्बिकादेवीके पुत्र महावीर नामके चौबीसवें तीर्थंकर होंगे। उनका वर्ण सुवर्णके अन्तर्गत, आयु बहतर वर्षकी, काया सान हाथ की, मत्तकवर्णका व्रतपर्याय और मोक्षमें तिरासी हजार साठेसात सौ वर्षका अन्तर होगा।

“सब चक्रवर्ती ब्रह्मपगोत्रके और सुवर्णकी सी कान्तिवाले होंगे। उनमें आठ चक्र तो मोक्षको प्राप्त होंगे, दो स्वर्गको जायेंगे और दो नरकका। मेरे समयमें जैसे तुम हुए हो, वैसेही अयोध्या नगरीमें अजितनाथके समयमें सगर नामके दूमरे चक्रवर्ती होंगे। वे सुमित्र राजा और यशोमती रानीके पुत्र होंगे। उनकी साठेचार सौ धनुषकी काया और बहतर लाख वर्षकी आयु होगी। धावस्ती नगरीमें भमुद्रविजय राजा और भद्रारानी के पुत्र माधवा नामके तीसरे चक्रवर्ती होंगे। उनकी साठे चालीस धनुषकी काया और पाँच लाख वर्षकी आयु होगी। हस्तिनापुर में भवसेन राजा और सहदेवी रानीके पुत्र सनत्कुमार नामक चौथे चक्रवर्ती तीन लाख वर्षकी आयुवाले और साठे उन्नालीस धनुषकी कायावाले होंगे। धर्मनाथ और शान्तिनाथ के बीचमें होनेवाले ये दोनों चक्रवर्ती तीसरे देवलोकमें जायेंगे। शान्ति हुन्धु और वर—ये तीन तो अर्हन्त ही चक्रवर्ती होंगे। इनके बाद हस्तिनापुरमें कृतवीर्य राजा और तारा रानीके पुत्र सुभूम नामके आठवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी साठ हजार वर्ष की आयु और अट्ठाईस धनुषकी काया होगी। वे भरनाथ और महिनाथके समयके बीचमें होंगे और सातवें नरकमें जायेंगे। इनके बाद घाटाण्डीमें पद्मोत्तर राजा और ज्वाला रानीके पुत्र पद्म नामके नवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी तीस हजार वर्षकी आयु और बीस धनुषकी काया होगी। काम्पिज्य-नगरमें राजा महा-हरि और मेरा देवीके पुत्र हरिपेण नामक दसवें चक्रवर्ती दस

देव होंगे । उनकी सत्तर धतुरोंकी काया और बटसर लाख वर्षका आयु होगी । ये धामपूज्य जिनेश्वरके विदारके समयमें होंगे और अन्तमें छठी नरक-भूमिको जायेंगे । द्वारकामें ही भरतोजा और पृथ्वीदेवीके पुत्र स्वयंभु तीसरे धामुदेव होंगे, जो साठ धतुर की कायावाले, साठ लाख वर्षकी आयुवाले और शिमल प्रभुकी घन्दना करनवाले होंगे । ये धामु पूरे होने पर छठी नरकभूमि में जायेंगे । उसी नगरीमें पुण्योत्तम नामके चौथे धामुदेव सोम राजा और सीता देवीके पुत्र होंगे । उनकी पचास धतुरकी काया होगी । ये अनन्तनाथ प्रभुके समयमें तीस लाख वर्षकी आयु पूरी कर, अन्तमें छठी नरकभूमिमें जायेंगे । अद्वयपुर नगरमें शिवराज और अमृता देवीके पुत्र पुण्यमिह पाँचवे धामु देव होंगे । ये चालीस धतुरकी काया और दस लाख वर्षकी आयुवाले होंगे । धर्मनाथ जिनेश्वरके समयमें आयु पूरी कर, ये छठी नरक भूमिमें जायेंगे । चक्रपुरीमें महाशिव राजा और लक्ष्मीधनी रानीके पुत्र पुण्य पुण्डरीक नामके छठे धामुदेव होंगे । जो उनतीस धतुरकी काया और पैंसठ हजार वर्षकी आयुवाले होंगे । भरनाथ और महीनाथके समयके बीच अपनी आयु पूरी कर ये छठी नरकभूमिमें जायेंगे । बाशो नगरीमें राजा अग्निचिह्न और रानी शेषयतीके पुत्र दत्त नामके सातवे धामुदेव होंगे । ये छठ्ठीस धतुरकी काया और छत्तर हजार वर्षकी आयुवाले होंगे । ये भी भरनाथ तथा महीनाथके समयके बीच आयु पूरी कर, पाँचवीं नरकभूमिमें जायेंगे । अयोध्या (राजगृह) में राजा दशरथ

सुमित्रा शनीक पुत्र लक्ष्मण (नारायण) नामके भाठवें चासुदेव
होगे । उनकी सोलह धनुषकी काया और बारह हजार वर्षकी
आयु होगी । मुनि सुभ्रत और नमि तीर्थंकरके समयक बीचमें
अपनी आयु पूरी कर चौथी नरकभूमिमें जायेंगे । मयुरा नगरीमें
पसुदेव और वेपकीके पुत्र हृण नये धामुदेव दस धनुषकी
काया और हजार वर्षकी आयुवाले होंगे । मैमिनाथके समयमें
मृत्युका प्राप्त होकर ये भी तीसरी नरक भूमिकी जायेंगे ।

“भद्रा नामकी मातासे उत्पन्न अचल नामक पहले बलदेव ७
पचासी लान वर्षकी आयुवाले होंगे । सुमद्रा नामकी मातासे
उत्पन्न विजय नामके दूसरे बलदेव होंगे । उनकी भी पचहत्तर लाख
वर्षकी आयु होगी । सुभ्रमा नामकी माताके पुत्र भद्र नामक
तीसरे बलदेव पैंसठ लाख वर्षकी आयुवाले होंगे । सुदरोन नामकी
माताके लड़के सुप्रम नामके चौथे बलदेव पचपन लाख वर्षकी आयु
वाले होंगे । धिनया नामकी माताके सुदशन नामक पाँचवे बल-
देव सत्तर लाख वर्षकी आयुवाले होंगे । धनयन्ती नामकी मजा
के पुत्र आतन्द्र नामके छठे बलदेव पचासी हजार वर्षकी आयुवाले
होंगे । जयन्ती नामकी माताके पुत्र मन्दन नामके सातवें बलदेव
पचास हजार वर्षकी आयुवाले होंगे । अपराजिता कौसल्या
नामकी माताके पुत्र पन्न (रामचन्द्र) नामके भाठवें बलदेव पन्द्रह
हजार वर्षकी आयुवाले होंगे । रोहिणी नामक माताके पुत्र राम

७ बालदेव और ब्रह्मदेवके पिता एक ही थे इसलिये ब्रह्मदेवकी काया
बालदेव की काया के ही समान जानना

(बलभद्र) नामके नवें बलदेव धारह मी धरणी भायुपाले होंगे । इन नवोंमेंस आठ बलदेव मोक्षको प्राप्त होंगे और नवें राम(बलभद्र) प्रथम नामक पांचवें देवलोकमें जायेंगे और वहासे भानेवाली उत्सर्पिणीमें इसी भरतक्षेत्रमें अवतार लेकर कृष्ण नामक प्रभुके तीर्थमें सिद्ध हो जायेंगे । अधमोय तारक मेरुक, मधु तिष्कुम्म, बलि, प्रह्लाद, राघव और मगधेश्वर (जरासन्ध) ये मी प्रति घासुदेव* होंगे । ये चक्र चलानेवाले चक्रधारी होंगे, अतएव घासुदेव उनको उन्हींके चक्रसे मार गिरायेंगे ।*

ये सब बातें सुन और भय जीजोंसे भरी हुई उस समाकी देख हर्षित होते हुए भरतपतिने प्रभुसे पूछा — “हे जगन्पति ! मानों तीनों लोक यहीं आकर इकट्ठे हो गये हैं, ऐसी इस समामें जहा नित्येश्वर नर और देव तीनों आये हुए हैं, क्या कोई ऐसा पुरुष है, जो आपकी ही भाँति तीर्थको प्रवृत्त कर इस भरतक्षेत्रको पवित्र करेगा ?”

प्रभुने कहा,— “यह तुम्हारा पुत्र मरिचि जो पहला परि-
प्राजक (त्रिदण्डी) हुआ है, वह आर्त्त और रौद्र ध्यानसे रहित हो
समकित्तसे शोभित हो, चतुर्विध धर्मध्यानका एकान्तमें ध्यान
करता हुआ स्थित है । उसका जीव अभी बीचड लगे हुए
रेशमी घल्लकी तरह और मुँहको माप लगनेसे दर्पणकी तरह मन्त्र
हो रहा है पर अग्निसे शुद्ध किये हुए घट तथा अच्छी जानि
वाले सुवर्णकी तरह शुद्ध ध्यान रूपी अग्निसे मयोगसे बढ धीरे

* ये प्रतिवासदेव नरकमें जानेवाले होंगे ।

घोरे शुद्धिको प्राप्त हो जायेगा। इसके बाद वह पहले तो इस भरतक्षेत्रके पोननपुर नामक नगरमें त्रिपृष्ठ नामका प्रथम धामुद्देव होगा। पीछे पश्चिम महाप्रदेशमें घनंजय और धारिणी नामक द्वयलोका पुत्र प्रियमित्र नामक अक्षयर्षी होगा। तदनन्तर बहुत दिनों तक संसारमें स्रमण करतेके बाद इसी भरतक्षेत्रमें महावीर नामका चौबीसवाँ तीर्थेश्वर होगा।”

यह सुन स्वामीकी माझा ले, भरतराजा भगवानकी ही भांति मरिचिकी घन्दना करने गये। यहाँ जाकर उसकी घन्दना करते हुए भरतने उससे कहा — तुम त्रिपृष्ठ नामक प्रथम धामुद्देव होगे अथवा महाप्रदेशक्षेत्रमें प्रियमित्र नामके अक्षयर्षी हो गे यह जान कर मैं तुम्हारे धामुद्देव पद या अत्रयर्षिभ्यको मिर नहीं झुकाता और न तुम्हारे परिमार्जकपत्रेकी ही घन्दना करता हूँ बल्कि तुम चौबीसवे तीर्थेश्वर होगे इससे मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।” यह कह, हाथ जोड़ प्रदक्षिणा कर, सिर झुकाकर भरनेंभरनें मरीचिका घन्दना की। इसके बाद पुन जगत्पतिका घन्दना कर भरतराज जैसे भागवतो-पुरीमें चला जाता है, घैमेही भरत राजामी अयोध्या नगरीमें चले आये।

भरनेंभरके चले जाने बाद, उनकी बातें सुनकर प्रसन्न बने हुए मरिचिके नीत बाद नालियाँ अजाप्री और अधिक हृषित हो, इस प्रकार कहना आरम्भ किया,— अहा! मैं सब धामुद्देवोंमें पहला हूँगा विदेहमें अत्रयर्षी हूँगा सबसे पिछला तीर्थेश्वर हूँगा,— अथ बाकी क्या रहा? सब अहस्तोंमें बेरे दादाटी आदि तीर्थेश्वर

है, सब सप्तवर्षियोंमें मेरे पिता ही पाले घ्यपसों हुए, सब पासु
 देयोंमें मैं ही पदला पामुदेश हूंगा। अहा! मेरा कुल भी बेसा
 श्रेष्ठ है। जैसे हाथियोंमें घेरायत श्रेष्ठ है, वैसेही तीनों लोकके
 सब कुलोंसे मेरा कुल श्रेष्ठ है। जैसे सब प्रहोमें सूर्य बड़ा
 है, सब ताराओंसे चन्द्रमा बड़ा है, वैसेही सब कुलोंसे मेरा कुल
 गौरवमें बड़ा हुआ है।" जैसे मकड़ी आपदा अपने जालमें फँस
 जाती है, वैसेही मरिचिने भी इस प्रकार कुलाभिमान बरके
 बीच गोत्र बाँधा।

पुण्डरीक आदि गणघरोंमें गिरे हुए श्रृपमस्यामी विहारके
 बहाने पृथ्वीको पवित्र करते हुए वहाँसे चल पडे। कोशल देशके
 लोगों पर पुत्रकी तरह दृषा बरके उन्हें धर्ममें कुशल बनाते हुए,
 बडे पुराने मुक्ताकालियोंकी तरह मगध देशवालोंको तपमें प्रवीण
 बरते हुए कमलकी कल्पियोंकी जैसे सूर्य जिला देना है, वैसेही
काशीके लोगोंको प्रबोध देते हुए, समुद्रको आनन्द देनेवाले
 बन्दरमाकी भाँति दशार्ण देशको आनन्दित बरते हुए, मूर्च्छा पाये
 हुएको होशमें लानेके समान चेदी देशको सचेत (मानवान्) बनाते
 हुए बडे बडे बेलोंकी तरह मालव देशवालोंसे धम धुराको बहन
 कराने हुए, देवताओंकी तरह गुर्जर देशको पाप रहित शुद्ध आशय
 वाला बनाते हुए और घँघकी तरह सौराष्ट्र देशवासियोंको पट्ट
 (सावधान) बनाते हुए महारमा श्रृपमदेवजी शत्रुञ्जय पर्वत पर
 आ पहुँचे।

अपने अनेक रौप्यमय शिखरोंके कारण यह पर्वत रेमा

मालूम पड़ता था मानों त्रिदेशमें लाकर खड़ा किया हुआ बेंत का पर्वत हो; अपने सुवर्णमय शिखरोंके कारण वह मेघ पर्वतमां दिखायी दे रहा था; रत्नोंकी छानोंसे दूसरा रत्नावलि ही जान पड़ता था और औपधियोंके समूहके कारण दूसरे स्थानमें ऊँचा हुआ हिमाद्रि पर्वत ही प्रतीत होता था। नैचिको ब्रह्म ब्रह्म हुए बादलोंके कारण वह धूलोंसे शरीर ढके हुएदे मन्त्र पड़ता था और उसपरसे जारी होनेवाले मन्त्रोंके शक्ति के पर पड़े हुए दुपट्टोंकी तरह दिखाई देते थे। अनेक मन्त्र शक्ति आये हुए सूर्यसे वह मुकुट मण्डित मालूम पड़ता था और पान पर्वतसे हुए चन्द्रमाके कारण वह मन्त्रोंके शक्ति लगाये हुए मालूम होता था। आकाशमय शक्ति के शक्ति शिखर उसके अनेकानेक मस्तकसे जान पड़े थे और तादृश वृक्षोंसे वह अनेक भुजाओंवाला मालूम पड़ता था और यलोंके वनमें उनमें एक जानेसे पीछे पड़े हुए मन्त्रोंका वन वधे समझकर बादलोंकी टोली दीह घुप करके छिपा देती थी और आमके फलोंको तोड़नेमें लगी हुई मन्त्रोंकी शक्ति मधुर गानको हरिण काग करके मुमा करके दे। उसकी ऊपरी भूमि शूलियोंके निर्देश से शक्ति होती है येने केतकीरु जीर्ण वृक्षोंसे मरी हुई थी। हरण के चन्दन वृक्षकी रसकी तरह इसका रस भी मधुर है।

पर रहने वाले वन्दरोंकी पूँछोंसे घेष्टित इमनीये वृक्ष पीपल और
 बड़के वृक्षोंका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। अपनी अद्भुत विचालता
 की सम्पत्तिले मानों हर्षित हुए हों, ऐसे निरन्तर फलोवाले पतम
 वृक्षोंसे यह पर्वत शोभित हो रहा था। अमावस्याकी रात्रिके
 अन्धकारकी भाँति श्लेष्मातक वृक्षसे यह पर्वत ऐसा मातूम
 होता था मानों वहाँ अज्ञानाचलणी चोन्वियाँ ही खली भायी हों।
 नीतेकी चोंचकी तरह लाल फूलोंवाले वैसुडीये वृक्षोंसे यह
 पर्वत लाल तिलकोंसे सुशोभित हाथीकी तरह शोभायमान
 मातूम होता था। कहीं दाबकी, कहीं खजूरकी और कहीं ताड़
 की ताड़ी पीनेमें लगी हुई भीलोंकी छियाँ उस पर्वतके ऊपर पान
 गोष्ठी जमाये रहती थीं। सूर्यके अबूक किरणरूपी शानोंसे अ-
 भेद्य ताम्बूल-लताये मण्डपो से यह पर्वत कवचावृत्तता मातूम
 होता था। वहाँ हरी-हरी दुबाकी आकर हर्षित हुए मृगोंका समूह
 बड़े बड़े वृक्षोंके नीचे बैठकर जुगाली करना रहता था। मानों
 अच्छी जानिके वैदूर्य-मणि हों, ऐसे आम्र-फलोंके स्वादमें जिनकी
 चोंचें मग्न हो रही हैं ऐसे शुक पक्षियोंसे यह पर्वत बड़ा मनोहर
 दिग्वार्द देता था। घमेली, अशोक कदम्ब, फैतकी और मौल
 सिरीये वृक्षोंका पराग उड़ाकर ले आनेवाले पवनने उस पर्वत
 की शिलाओंको रजोमय बना दिया था और पथिकोंके पोट्टे हुए
 नारियलोंके जलसे उसके ऊपरकी भूमि पकिल हो गयी थी। मानों
 अद्रशाल आदि वनमेंस ही कोई वन वहाँ छाया गया हो, ऐसे
 अनेक बड़े-बड़े वृक्षोंसे शोभित वनके कारण यह पर्वत बड़ा सुन्दर

इस क्षेत्रके प्रभावसे तुम्हें परिवार सहित थोड़े ही समयमें देवज्ञान उत्पन्न हो जायगा और शैलेशो ध्यान करते हुए तुम्हें परिवार सहित इन्दी पर्यंत पर मोक्ष प्राप्त होगा।”

प्रभुकी यह आज्ञा अङ्गीकार कर, प्रणाम करके अनन्तर पुण्डरीक गणधर कोटि मुनियोंके साथ वहीं रहे। जैसे उद्धृत मसुदा बिनारोंके बख्शोंमें रत्न समुद्रकी रेंक कर घला जाता है, वैसेही उन सब लोगोंको वहीं छोड़कर महात्मा प्रभुने परिवार सहित अन्ध्र विहार किया। उन्ध्याचल पर्वत पर मन्त्रोंके साथ रहनेवाले चन्द्रमाकी तरह अन्य मुनियोंके साथ पुण्डरीक गणधर उन्ध पर्यंत पर रहने लगे। इसके बाद परम संविद्यावाले वे भी प्रभुकी तरह मधुरयाणीसे अन्याय धर्मणोंके प्रति इस प्रकार कहने लगे,—

‘हे मुनियों! जयकी इच्छा रखनेवालेको जैसे सोमा-भ्रान्तकी भूमिको सुरक्षित बनानेवाला किन्ना सिद्धि दायक है, वैसेही मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको यह पर्वत क्षेत्रके ही प्रभावसे सिद्धि देनेवाला है। तो मो अब हमलोगोंको मुक्तिके दूसरे साधनके समान रूलेखना करनी चाहिये। यह संलेखना दो तरहसे होती है — द्रव्यसे और भावसे। साधुओंके सब प्रकारके उन्माद और महारोगके निदानका शोषण करना ही द्रव्य-संलेखना कहलाती है और राग द्वेष, मोह और सब कथायुक्ती स्वाभाविक शत्रुओं का विच्छेद करना ही भाव संलेखना कही जाती है।’ इस प्रकार कहकर पुण्डरीक गणधरने कोटि धर्मणोंके साथ प्रथमतः सब

प्रकारके सूक्ष्म और वादर अतिचारोंकी आलोचना की और पुन अति शुद्धिके निमित्त महाप्रवृत्तका आरोपण किया; क्योंकि घग्गको दो चार बार धोनेसे जैसे विशेष निर्मलता आती है, वैसेही अति चारसे विशेषरूपसे शुद्ध होना भी निर्मलताका कारण होता है ।

इसके बाद सय जीउ मुम्ह क्षमा करें मैं सयका अपराध क्षमा करता हूँ। मेरी सय प्राणियोंके साथ मैत्री है, किसीके साथ मेरा घर नहीं है ।” यही कहकर उहोंने आगार रहित और पुष्कर भव चरित्र अनशनप्रवृत्त उन सय अमणोंके साथ ग्रहण किया । क्षयक श्रेणीमें आरूढ हुए उन पराक्रमी पुण्डरीकके सभी घाती कर्म पुरानी रस्सोंकी तरह चारों तरफसे क्षीण हो गये । अन्यान्य साधुओंके भी घाती कर्म तत्काल क्षयको प्राप्त हो गये । क्योंकि तय सयके लिये समान होता है । एक मासकी संलेखनाके अन्तमें चैत्र मासकी पूर्णिमाके दिन सयसे पहले पुण्डरीक गणघर को केवल-ज्ञान हुआ । इसके बाद अय सय साधुओंको भी केवल ज्ञान प्राप्त हुआ । शुक्ल ध्यातके चौथे चरण पर स्थित होकर ये अयोगी शेष अघाती कर्मोंका क्षय कर मोक्ष पदको प्राप्त हुए । उस समह स्वर्गसे आकर मरुदेवीके समान भक्तिके साथ उनके मोक्ष गमनाका उत्सव मनाया । जैसे भगवान् ऋषभस्थामी पहले तीर्थेड्डर कहलाये, वैसेही यह पर्यंत भी उसी दिनसे प्रथम तीर्थ हो गया । जहाँ एक साधुको सिद्धि प्राप्त हो, वही जय पवित्र तीर्थ कहलाने लगता है, तय वहा अनगिनत महर्षि सिद्ध हुए हों, उस स्थानकी पवित्रताकी उत्कृष्टताके सम्बन्धमें और क्या कहा जाये ?

उस शत्रुञ्जय पर्वत पर भरत राजाने मेरु पर्वतकी चूल्काकी रायवरीका दाया करनेवाला एक रत्न-शिलामय शैत्य बनवाया और जैसे अन्त करणमे चेतना विराजता है, वैसेही उसके मध्यमें पुण्डरीकजाके साथ ही-साथ भगवान् ऋषभस्वामीकी प्रतिमा स्थापित करवायी ।

भगवान् ऋषभदेवजीकी मिश्र मिश्र देशोंमें विहार कर, अग्धे को आँसू देनेकी तरह भय्य प्राणियोंको बोधिबीज (समकित) का दान कर अनुगृहीत कर रहे थे । केवल-ज्ञान प्राप्त दानके बादसे प्रभुके परिवारमें चौंदासी हजार साधु, ताम लाख साध्वियाँ, तीन लाख पचास हजार भ्रात्रक, पाँच लाख जीवन हजार आधिकाद् चार हजार सात सौ पचास बौद्ध पूर्वो, नौ हजार अयधि-ज्ञानी, बीस हजार केवलज्ञानी और छः सौ धेक्रिय लब्धिवाले, धारह हजार छः सौ मन पर्यंत्र ज्ञानी इतने ही घादी और बाईस हजार अनुस्तर विमानवासी महात्मा हुए । उन्होंने व्यवहारमें जैसे प्रजाका स्थापन किया था वैसेही आदि-तीर्थद्वार होनेपर उन्होंने धर्म-मार्गमें चतुर्विध संघका स्थापन किया । दीक्षाके समयसे लेकर लक्ष पूर्व बौत जाने पर उन्होंने जाना, कि अब मेरा मोक्ष-काल समीप आ गया है तब महात्मा प्रभु ऋषभदेव अष्टापद् पर्वत पर आ पधारे । पास पहुँचने पर प्रभु मोक्षरूपी महलकी स्तीष्टि योंकि समान उस पर्वत पर अपने परिवारके साथ चढने लगे । तब प्रभुने वहाँ दस हजार मुनियोंके साथ चतुर्दश तप (छ उपवास) करके पादपोषामन अनशन किया ।

पर्वतके रक्षकोंके विभवतिके इस भयस्थामें रहनेका हाल तत्काल ही महाराज भरतमें जाकर कह सुनाया । प्रभुने चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान कर दिया है यह सुनकर भरतको ऐसा दुःख हुआ, मानों उनके कलेजेमें तीव्र चुन गया हो । साथ ही जैसे बृक्षसे जलविन्दु टपकते हैं वैसेही शोकाग्निसे पीड़ित होनेके कारण उनके आँसुओं से भी आँसु टपकन लगे । तदनन्तर दुर्धर दुःखसे पीड़ित होकर वे भी अमलपुर परिवारके साथ पाँच प्याद ही अष्टापदकी ओर चल पड़े । उन्होंने रास्तेके बन्दोर कट्टुओं की कुछ परवा नहीं की, क्योंकि हृदये या शोकमें किमी तरहकी शारीरिक वेदना मायूम नहीं होती । कट्टु ट गड़ जानेसे उनके पैरोंसे रुधिरकी धारा निकलने लगी जिससे महाघरके चिड़की तरह उनके पैरोंकी सर्वत्र निशानो पड़नी गयी । जिसमें पर्वत पर आरोहण करनेमें छिन भरकी भी देर न हो इसीलिये वे अपने सामने आ पड़नेवाले लोगोंका भी कुछ ब्याल नहीं करते थे । उनके सिर पर छत्र था, तो भी वे धूपमें ही चल रहे थे, क्योंकि जोकी जलन ता अमृतकी घषामे भी ठण्डो नहीं होती । शोक-प्रसन्न पक्षवर्ती हाथका सहारा देनेवाले सेयकोंके भी रास्तेमें भाटे आनवाली घृक्ष शाखाकी भाँति दूर कर देते थे । सगिता या नदके मध्यमें चलती हुई नाथ जैसे तीरके घृक्षोंको पीउं छोड जाती है, वैसेही वे भी अपनी तंत्र चालके कारण आगे-आगे चलनेवाले छड़ी-परदरोंको पीउं छोड देते थे । चिराके वेगकी तरह तेजीके

जुलुसुक राजा भरत पग-पग पर ठोकें

खानेगाला चमर डुलाने घालियोंकी राह भी नहीं देखते थे । यही तेजीके साथ चलनेके कारण उछल-उछल कर छातीसे टकराने-वाला मोतियोंका हार टूट गया, मो भी उन्हें नहीं मालूम हुआ । उनका मन प्रभुके ध्यानमें लगे होनेके कारण वे बार बार प्रभुका समाचार पूछनेके लिये छडीजरदारोंके द्वारा परतके रखवाओंको अपने पास बुलवाते थे । ध्यान स्थित योगीके समान राजाको और कुछ मो नहीं दीप्त पड़ता था । वे किसीकी ध्यान भी नहीं सुनते थे—केवल प्रभुकाही ध्यान करते हुए चले जा रहे थे । मानों अपने वेगसे रास्तेको कम कर दिया हो, इस प्रकार हवासे धातें धरते हुए तेजाके साथ चलकर वे अष्टापदके पास आ पहुँचे । साधारण मनुष्योंकी तरह पाँव प्यादे चल कर आनेपर भी परिश्रमकी कुछ भी परवा नहीं करते हुए वे चक्रवर्ती अष्टापद पर चढ़े । यहाँ पहुँचकर शोक और दर्पसे व्याकुल हुए राजाने जगत्पतिको पयङ्गासन पर बैठा देखा । प्रभुकी प्रदक्षिणा कर, वन्दना करनेके अनन्तर चक्रवर्ती देहकी छायाके समान उनके पास बैठकर उनकी उपासना करने लगे ।

“प्रभुका ऐसा प्रभाव वर्तते हुए भी इन्द्रगण अपने स्थान पर कैसे बैठे हुए हैं ?” मानों यही धात सोच कर उस समय इन्द्रोंके आसन डोल गये । अवधिज्ञानसे आसन डोल जानेके कारणको जान कर इन्द्रगण उसी समय प्रभुके पास आ पहुँचे । जगत्पतिकी प्रदक्षिणा कर वे विषादकी मूर्त्ति बने, चित्र लिखेसे चुपचाप भगवानके पास बैठ रहे ।

इस अरसर्पिणीके तीसरे आरेमें जय निम्नानत्रे पक्ष बाकी रह गये थे उसी समय माघ मासकी कृष्ण त्रयोदशीके दिन, पूर्वाह्नमें हा, जय चन्द्रमाका योग अभिजित नक्षत्रमें आयाहुआ था, तमापर्यङ्कासन पर बैठे हुए इन महात्मा प्रभुने वादर काय योग में रहकर वादर मनायोग और वादर घचनयोगका रोध कर लिया। इनके बाद सूक्ष्म काय योगका आश्रय ग्रहण कर, वादर काय योग सूक्ष्म मनोयोग और सूक्ष्म घचनयोगका रोध कर डाला। अतमें सूक्ष्म काययोगको भी लुप्त करके सूक्ष्मत्रिय नामके शुद्धध्यानके तीसरे चरणके अन्तमें प्राप्त हुए। इसके बाद उच्छिद्यत्रिय नामक शुद्धध्यानके चौथे चरणका आश्रय लिया, जिसका काल परिमाण पाँच ह्रस्वाक्षरके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतना ही है। इसके बाद वेरद्वानी, वेधलदर्शनी क्षय दुःखोंसे परे अष्टकर्मोंका क्षय कर सब अर्थाँके सिद्ध करनेवाले, अनन्तरीय, अनन्तसुख और अनन्त प्रवृद्धिसे युक्त प्रभु, बन्धके अभावसे परएड-फलके बीजके समान ऊँड-गति पाकर, स्वभावसेही सरल मार्गसे लोकाग्रको प्राप्त हुए। दस हजार धमणोंने भी, अनशन व्रत ग्रहण कर, क्षणकश्रेणीमें आरुह्य हो, वेधलज्ञान लाभकर, मन घचन और कायाके योगको सब प्रकारसे रुद्ध कर स्वामीकी ही भाति तत्काल परमपद लाभ किया।

प्रभुके निर्वाण कल्याणकके समय सुखका नाम भी नहीं जाननेवाले नारकीयोंकी दुःखाग्नि भी क्षणभरके लिये शान्त हो गयी। उस

यहल होकर चरुघर्षी घञ्जसे ढाये हुए पर्वत -

की तरह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भगवान्‌के विरहका महान् दुःख मिरपर आ पड़ा था, तो भी दुःखका भार कम करने में सहायक होनेवाले रोदनको मानों लोग भूल ही गये थे। इसी लिये चक्रवर्तीको यह बतलाने और इस तरह हृदयका भार हलका करनेकी सलाह देनेके लिये हो मानों इन्द्रने चक्रवर्तीके पास बैठे-बैठे जोर-जोरसे रोना शुरू किया। इन्द्रके बाद और सब देवता भी रोने लगे। क्योंकि एकसाँ दुःख अनुभव करनेवालोंकी चेष्टा भी एकसाँ होती है। उन लोगोंका रोना सुन, होशमें आकर चक्रवर्ती भी ऐसे ऊँचे स्वरसे रोने लगे, कि प्रह्लाद फट पड़ने लगा, मोटी धारकी तेजीसे जैसे नदीका बाँध टूट जाता है, वैसेही दिल खोलकर रो पड़नेसे महाराजको शोक प्रथि भी टूट गयी। उस समय देवों, असुरों और मनुष्योंके रोदन -काण्डसे तीनों लोकमें करुण रसका एकच्छन्न राज्यसा हो गया। उस दिनसे ही जगत् में प्राणियोंके शोकसे उत्पन्न कठिन शल्यको निकाल बाहर करने वाले रोदनका प्रचार हुआ। महाराज भरत, स्वभाविक धैर्यको छोड़, दुःखमें पीड़ित होकर, इस प्रकार पशु पक्षियोंको भी रुला देनेवाला विलाप करने लगे —

हे पिता ! हे जगद्गुरु ! हे वृषारसके समुद्र ! मुझ अज्ञानीको इस संसार रूपी अरण्यमें अकेले क्यों छोड़े जा रहे हो ? जैसे बिना दीपकके अन्धकारमें नहीं रहा जाता, वैसेही बिना आपके मैं इस संसारमें कैसे रह सकूँगा ? हे परमेश्वर ! छद्मवेशी प्राणीकी तरह तुमने आज मीन क्यों स्वीकार कर लिया है ? मीन त्यागकर

देशना क्यों नहीं देने ? देशना देकर मनुष्योंपर दया क्यों नहीं करते ? हे भगवन् ! तुम तो लोकाप्रकी चले जा रहे हो, इसीलिये नहीं बोलते पर मुझे दुखी देखकर भी मेरे ये भाई मुझसे/क्यों नहीं पालने ? हाँ अब मैंने जाना । धि भी तो स्वामीपेड़ी अनुगामी हैं । जब स्वामीही नहीं बोलते तब ये कैसे बोलें ? महो भगने कुलमें मेरे सिया और काइ तुम्हारा अनुगामी नहीं हुआ हो, ऐसी बात नहीं है । तीनों जगत्का रक्षा करनेवाले तुम यादुबलि भादि मेरे छोटे भाई, ब्राह्मण और सुन्दरी यहाँ पुण्डरीकादिक मेरे पुत्र, श्रेयान्म भादि पीत्र—ये सब लोग कर्म-रूपी शत्रुकी हत्याकर, लोकाप्रका चले गये, फेवल मैंही भाजनक जीवनको प्रिय मानता हुआ जो रहा हूँ ।”

इस प्रकार शोकसे निर्येदकी प्राप्त हुए चय-वर्षीकी मानों मरनेका तैयार देख इन्द्रने उन्हें इस प्रकार सम्बधाना शुरु किया,—
 “ हे महाप्राण भरत ! हमारे ये स्वामी स्वयं भी संसार-रूपी समुद्र से पार उतर गये और औरोंको भी उतार दिया । महानर्दीके किनारेके समान इनके प्रयत्नित बिये हुए शामनसे सासारिक प्राप्ती संसार-समुद्रके पार पहुँच आयेंगे । प्रभु भाव तो हतहत्य्य हुएही, साथही ये औरोंका भी हनाथ करनेके लिये लक्ष पूर्व पर्यन्त क्षीणवस्थामें रहें । हे राजा ! सब लोगोंपर अनुग्रह करके मोक्ष स्थानकी गये हुए जगत्पतिके लिये तुम क्यों शोक करते हो ? जो मृत्यु पाकर महाबुद्धके मण्डारके समान चीरामी लाख योनियों में बहुत कालत्रक घूमते रहते हैं उनके लिये शोक करना ठीक

है, परन्तु मृत्यु पाकर मोक्षस्थानको प्राप्त होनेवालेके लिये शोक करना उचित नहीं। इसलिये हे राजा। साधारण मनुष्योंकी तरह प्रभुके लिये शोक करते हुए क्या लज्जा नहीं जाती? शोक करने वाले तुमको और शोचनीय प्रभुको देखते हुए यह शोक उचित नहीं है। जो एक धार प्रभुकी धर्म-देशना सुन चुका है उसे भी हर्ष या शोक नहीं व्यापता फिर तुम तो न जाने कितनी धार देशना सुन चुके हो, तब तुम क्यों हर्ष शोकसे विचलित होते हो? जैसे ममुद्रका सूखना, पर्वतका हिलना, पृथ्वीका उलटना, वज्रका कुण्डित होना, अमृतका नीरस होना और चन्द्रमामें गरमी होना असम्भव है, वैसेही तुम्हारा यह रोना भी असम्भवसा ही मालूम पड़ता है। हे घराधिपति! धैर्य धरो और अपनी आत्माको पहचानो, क्योंकि तुम तीनों लोकके स्वामी, परम धीर भगवान्के पुत्र हो।" इस प्रकार घरके बड़े बूढ़ेकी तरह इन्द्रके सम्झाने-बुझानेसे भरतराजाने जल जैसी शीतलता धारण की और अपने स्वामाधिक धैर्यको प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् इन्द्रने आभियोगिक देवताओंको प्रभुके अंग-संस्कार के लिये सामग्री लानेकी आज्ञा दी। वे ऋटपट नन्दन घनसे गोशीर्ष चन्दनकी लकड़ियाँ उठा लाये। इन्द्रके आज्ञानुसार देवताओंने पूर्व दिशामें प्रभुके शरीर संस्कारके लिये गोशीर्ष-चन्दन-काष्ठ की एक गोलाकार चिता रचायी। इक्ष्वाहु-कुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले महर्षियोंके लिये दक्षिणदिशामें एक दूसरी त्रिकोणाकार चिता रची गयी। सायही अन्यान्य साधुओंके लिये पश्चिम दिशामें

एक तीसरी चौकोर चिन्ता प्रस्तुत की गयी । फिर मानों पुष्करा वर्त्तमेघ हों, ऐसे उन देवताओंसे इन्द्रने उसी समयक्षीर समुद्रका जल मँगवाया । उसी जलसे भगवान्‌के शरीरको नहलाकर उस पर गोशीर्ष-चन्दनका रस लेपन किया गया । तदनन्तर हंसकेसे उज्ज्वल देवदुर्लभ घलोंसे परमेश्वरके शरीरको ढक कर इन्द्रने उसे दिव्य माणिक्यके आभूषणोंसे ऊपरसे नीचे तक त्रिमूर्धित किया । अन्यान्य देवताओंने भी इन्द्रकी ही भांति अन्य मुनियोंके शरीरोंकी छानादिक क्रियाएँ मत्तिके साथ सम्पन्न कीं । तदनन्तर मानों देवनागण अपने अपने साथ लेते आये हों ऐसे तीनों लोकके चुने हुए रत्नोंसे सजी हुई सहस्र पुरुषोंके वहन करने योग्य तान शिबि कार्य तैयार हुए । इन्द्रने प्रभुके चरणोंमें सिर झुका, स्वामीके शरीरको सिरपर उठाकर शिविकामें बैठाया । अन्यान्य देवताओंने मोक्ष-मार्गके पथिकोंके समान इक्ष्वाकु वंशके मुनियोंके शरीर सिरपर ढो-ढोकर दूसरी शिविकामें ला रखे और तीसरी शिविकामें शेष साधुओंके शरीर रखे गये । प्रभुका शरीर जिस शिविकापर था उसे इन्द्रने स्वयं उठाया और अन्य मुनियोंकी शिविकाएँ अन्याय देवताओंने उठायीं । उस समय एक ओर अप्सराएँ ताल दे देकर नाच रही थीं और दूसरी ओर मधुर स्वरसे गीत गा रही थीं । शिविकाने आगे-आगे देवता धूपदान लिये हुए चल रहे थे । धूपदानसे निकलते हुए धूपको देखकर ऐसा मालूम होता था, मालों के भी रो रहे हों । कुछ देवता उस शिविका पर फूल फेंक रहे थे और कोई उन्हें शेषा (निर्माल्यप्रसाद) समझ कर चुन लेते थे ।

कोई आगे आगे देव दृष्य घर्झोंका तोरण बनाये हुए थे तो कई यज्ञकर्मसे छिड़काव करते चलते थे। कोई गोफणसे * फेंके हुए पत्थरका तरह शिविकाके आगे लोट रहे थे और कोई मंग पिये हुए मस्तानेकी तरह पीछेकी तरफ दौड रहे थे। कोई तो "हे नाथ! मुझे शिक्षा दो!" ऐसी प्रार्थनाकर रहा था और कोई "अब हमारे धर्म-सश्योंका छेदन कौन करेगा?" ऐसा कह रहा था। कोई यही कह-कहकर पड़ता रहा था, कि अर में अ-धेकी तरह होकर कहां जाऊँ? कोई बार-बार धरतीसे यही घर माँगता हुआ मालूम पड़ता था, कि वह फट जाये और वह उसमें समा जाये।

इस प्रकार बर्त्तते और बाजे बजाते हुए इन्द्र और देवतागण उन शिविकाओंको चिताओंके पास ले आये। वहाँ आकर हत क्षता पूर्ण हृदयसे इन्द्रने, पुत्रके समान, प्रभुके शरीरको धीरे-धीरे पूर्ण दिशाकी चितापर ला रखा। दूसरे देवताओंने भी भाईकी तरह इक्ष्वाकु-कुलके मुनियोंके शरीरको दक्षिण दिशावाली चितामें ला रखा और उचितानुचितका विचार रखनेवाले अन्यान्य देवताओंने भी शेष साधुओंके शरीर पश्चिम दिशावाली चितामें लाकर रख दिये। पीछे अग्नि कुमार देवताओंने इन्द्रके आज्ञानुसार उन चिताओंमें अग्नि प्रकट की और वायु कुमार देवोंने हवा धलाकर चारों ओर धाय-धाय भाग जला दी। देवता डेर का-डेर कपूर और घड़े भर-भर कर घी तथा मधु चितामें छोड़ने लगे। जब सिंघा हड़्डोके और सय

* गोफण—चक्रर ल-के खेलमें रस्ती आदिमें इ ट या पत्थर बाँधकर फेंकते हैं। उसीको गोफण कहते हैं।

घातुयें जल गर्वीं, तपमेघकुमार देवताओंने क्षीर-समुद्रके जलसे चिताग्निको शान्त कर दिया। इसके बाद अपने पिमानमें प्रतिमाकी महद रक्षणकर पूजा करनेके लिये सौधमेंन्द्रने प्रभुकी ऊपरवाली दाहिनी डाढ़ ले ली, इरानेन्द्रने ऊपरकी बायीं डाढ़ ले ली, घमरेन्द्रने नीचेकी दाहिनी डाढ़ ली, बलि इन्द्रने नीचेकी बायीं डाढ़ ली, अन्यान्य इन्द्रोंने प्रभुके शेष दांत ले लिये और अन्य देवताओंने और और हस्तियां ले लीं। उस समय जिन धाधकोंने अग्नि मांगी, उन्हें देवताओंने तीनों कुण्डोंकी अग्नि दी। वे ही लोग अग्निहोत्री ब्राह्मण कहलाय। वे उस चिताग्निसे अपने घर ले जाकर पूजने लगे और घनपति जिन प्रकार निर्यात प्रदेशमें रक्ष कर लक्ष-दीपकी रक्षा करते हैं, वैसेही उस अग्निकी रक्षा करने लगे। इक्ष्वाकु वंशके मुनियोंकी चिताग्नि शान्त हो जाती तो उसे स्वामाकी चिताग्निसे जागृत कर लेने और अन्य मुनियोंकी शान्त हुई चिताग्निसे इक्ष्वाकु-वंशके मुनियोंकी चिताग्निसे चिता देने थे परन्तु हमरे साधुओंकी चिताग्निवा वे अन्य दोनों चिताग्निओंसे साथ संक्रमण नहीं होने देते थे। यही विधि अब तक ब्राह्मणोंमें प्रचलित है। कितनेही प्रभुकी चिताग्निकी मस्मकी अचिके साथ प्रणाम करते हुए देहमें लयाने थे। उसी समयसे मस्म भूषाधारी तापस होने लगे।

किर मानों अष्टापद पर्यंतके तीन नये शिखर हों, जैसे उन चिताओंने म्यानपर तीन रत्न स्तूप देवताओंने बना दिये। यहाँसे नन्दीधर द्वीपमें जाकर उन लोगोंने शाश्वत प्रतिमाके समीप म

ष्टाहिका उत्सव किया और फिर इन्द्र सहित सारे देवता अपने अपने स्थानको चले गये । वहाँ पहुँच कर इन्द्रोंने अपने अपने विमानों में सुधर्मा समाके अन्दर माणवक-स्तम्भ पर यज्ञमय गोल डिणियोंमें प्रभुकी हाडोंको रखकर प्रतिदिन उनकी पूजा करनी आरम्भ की, जिसके प्रभावसे उनका सदैव विजय-मङ्गल होने लगा ।

महाराज भरतने प्रभुका जहाँ संस्कार हुआ था वहाँकी भूमि के पासवाली भूमिमें छ कोस ऊँचा मोक्ष मन्दिरकी घेड़िकाके समान 'सिंहनिपत्या' नामका प्रासाद रत्नमय पाषाणों और यार्दिक रत्नोंसे बनवाया । उसके चारों तरफ उन्होंने प्रभुके समवसरणकी तरह स्फटिक रत्नोंके चार द्वार बनवाये और प्रत्येक द्वारके दोगे तरफ शिव लक्ष्मीके भाण्डारकी भाँति रत्न-चन्दनके सोलह कलश बनवाये । प्रत्येक द्वारपर साक्षात् पुण्यधृष्टीके समान सोलह-सोलह रत्नमय तोरण बनवाये । प्रशास्त लिपिकी भाँति अष्टमाङ्गलिकको सोलह सोलह पक्षियों बनवायीं और मानों चारों दिक्पालोंकी सभा ही वहाँ लायी गयी हो, ऐसे विशाल मुखमण्डप बनवाये । उन चारों मुखमण्डपके आगे चलते हुए श्रीवह्नी मण्डपके अन्दर चार प्रेक्षासदन मण्डप बनवाये । उन प्रेक्षामण्डपोंके बिचौंधीचमें सूर्यबिम्बको लज्जानेवाले वज्रमय अक्षगाट रचाये और प्रत्येक अक्षगाटके मध्यमें कमलकी कर्णिकाकी भाँति एक एक मनोहर सिंहासन बनवाया । प्रेक्षामण्डपके आगे एक एक मणि पीठिका बनायी गयी, उसके ऊपर रत्नोंका मनोहर चैत्य स्तूप बना और प्रत्येक चैत्य स्तूपमें आकाशको प्रकाशित

करनेवाली बडीसी मणि-पीठिका प्रत्येक दिशामें बनायी गयी । उन मणि पीठिकाओंके ऊपर चैत्य-स्तूपके सम्मुख पाँच सौ धनुषों के प्रमाणवाली, रत्ननिर्मित अङ्गुली, भृषभानन, वर्धमान, चन्द्रानन और धारिणेण— इन चार नामोंवाली पर्यङ्कासनपर बैठी हुई, मनोहर नेत्ररूपी कुमुदोंके लिये चन्द्रिकाके समान, नन्दी श्वर महाद्वीपके चैत्यके अन्दर जैसी ही घैसी, शाश्वत जिन प्रति माँ बनाव कर स्थापित करवायीं । प्रत्येक चैत्य स्तूपके आगे अमूल्य मणिभयमय विशाल पत्र सुन्दर पीठिकाएँ तैयार करवायीं । उस प्रत्येक पीठिकाके ऊपर एक एक चैत्यशृङ्खल बनावया और हर एक चैत्यशृङ्खलेके पास एक एक मणि पीठिका और बनावया जिसके ऊपर एक-एक इन्द्रध्वज भी रखा गया । ये इन्द्रध्वज ऐसे मातृम होते थे मानों धर्मन प्रत्येक दिशामें अपना जयस्तम्भ स्थापित कर रखा हो । प्रत्येक इन्द्रध्वजके आगे तीन स्त्रीद्वियों और तीरणोंवाली नन्दा नामकी पुष्करिणी बनावयायी गयी । स्वच्छ और शान्त जलसे भरी हुई तथा विचित्र कमलोंसे सो हती हुई ये पुष्करिणियाँ दधि मुख पर्वतकी आधार-भूता पुष्करिणीकी भाँति मनोहर मालूम होती थीं ।

महाराजने उस सिंहनिषथा नामक महाचैत्यके मध्यभागमें एक बडीसी मणि पीठिका बनावया और समवसरणकी तरह उसके मध्यमें एक विचित्र रत्नमय देवच्छन्द बनावया । उसके ऊपर उन्हनि विभिन्न वर्णोंके वस्त्रोंके चँदये तनवाये, जो अकालमें ही सभ्या समयके बादलोंकी शोभा दिखलाते थे । उन चँदयों

छाहिका उत्सव किया और फिर इन्द्र सहित सारे देवता अपने अपने स्थानको घले गये । वहाँ पहुँच कर इन्द्रोंने अपने अपने विमानों में सुधमा समाके अन्दर माणवक-स्तम्भ पर ध्वजमय गोल डिशियोंमें प्रभुकी डायोंको रखकर प्रतिदिन उनकी पूजा करनी आरम्भ की, जिसके प्रभावसे उनका सदैव विजय मङ्गल होतैलगा ।

महाराज भरतने प्रभुका जहाँ संस्कार हुआ था वहाँकी भूमि के पासवाली भूमिमें छ कोस ऊँचा मोक्ष मन्दिरकी घेदिकाके समान 'सिंहनिपथा' नामका प्रासाद रत्नमय पाषाणों और धार्दिक रत्नोंसे बनवाया । उसके चारों तरफ उहोंने प्रभुके समवसरणकी तरह स्फटिक रत्नोंके चार द्वार बनाये और प्रत्येक द्वारके दोनी तरफ शिव लक्ष्मीके भाण्डारकी भाँति रत्न-चन्दनके सोलह कलश बनवाये । प्रत्येक द्वारपर साक्षात् पुण्यवह्नीके समान सोलह-सोलह रत्नमय तोरण बनवाये । प्रशस्त लिपिकी भाँति अष्टमाङ्गलिककी सोलह सोलह पंक्तियाँ बनवायीं और मानों चारों दिक्पालोंकी सभा ही वहाँ लायी गयी हो, ऐसे विशाल मुखमण्डप बनवाये । उन चारों मुखमण्डपके आगे चलते हुए श्रीवह्नी मण्डपके अन्दर चार प्रेक्षासदन मण्डप बनवाये । उन प्रेक्षामण्डपोंके चिचोंचीचमें सूर्यचिम्बको लजानेवाले ध्वजमय अक्षयाट रचाये और प्रत्येक अक्षयाटके मध्यमें कमलकी कर्णिकाकी भाँति एक एक मनोहर सिंहासन बनवाया । प्रेक्षामण्डपके आगे एक एक मणि पीठिका बनायी गयी, उसके ऊपर रत्नोंका मनोहर चैत्य स्तूप बना और प्रत्येक चैत्य स्तूपमें आकाशको प्रकाशित

करनेवाली बडीसा मणि-पीठिका प्रत्येक दिशामें घनायी गयी । उन मणि पीठिकाओंके ऊपर चैत्य-स्तूपके सम्मूल पांच सौ धनुषों के प्रमाणवाली, रहानिर्मित भङ्गघाला, श्रुपमानन घटमान, घ म्नानन और धारियेण— इम चार नामोंवाली पर्यट्टासनपर बैठी हुई मनोहर नेत्ररूपी कुमुदोच्च लिये चन्द्रिकाके समान, नन्दी श्वर-महाद्वीपके चैत्यके अन्दर जैसी है ऐसी, शाश्वत जिन प्रति मापें बनवा कर स्थापित करवायीं । प्रत्येक चैत्य स्तूपके भागे अमूल्य मणिबयमय विशाल एवं सुन्दर पीठिकार्प तैयार करवायीं । उन प्रत्येक पीठिकाके ऊपर एक एक चैत्यवृक्ष बनवाया और हर एक चैत्यवृक्षके पास एक एक मणि पीठिका और बनवायीं जिसके ऊपर एक-एक इन्द्रध्वज भी रखा गया । वे इन्द्रध्वज ऐसे मालूम होत थे मानों धर्मने प्रत्येक दिशामें अपना जयस्त्रम स्थापित कर रखा हो । प्रत्येक इन्द्रध्वजके भागे तीन मादियों और तोरणोंवाली नन्दा नामकी पुष्करिणी बनवायी गयी । स्वच्छ और शीतल जलसे भरी हुई तथा विचित्र कमलोंसे सी हनी हुई वे पुष्करिणियाँ इधि मुख पर्वतकी भाषा—भूता पुष्करिणीकी भाँति मनोहर मालूम होना थीं ।

महाराजने उस सिंहनिषद्या नामक महाचैत्यके मध्यभागमें एक बडीसी मणि पीठिका बनवायो और समग्रमस्जिदा तरह उसके मध्यमें एक विचित्र रत्नमय देवचन्द्र बनवाया । उसके ऊपर उन्होंने विचित्र चर्णोंके यमोंके चंद्रो नरकके जो कच्छमें हा सभ्या समयके बादलोंकी रंगमा

के बीचमें और आसपास यज्ञमय अद्भुत घने हुए थे, तथापि उनकी शोभा निरंकुश हो रही थी। उन अंकुशोंमें सुन्दर सद्गुरु गोल और चाँदलके फलके समान स्थूल मुक्ताफलोंके घने हुए अमृतधाराके समान हार लटक रहे थे। उन हारोंके प्रान्त भाग में निर्मल मणि मालिकाएँ बनघायी गयी थीं। वे मणियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानो तीनो लोककी मणियोंकी धानोंसे यतीर नमूनेके लायी गयी हो। मणिमालिकाओंके प्रान्त भागमें रहनेवाली निर्मल यज्ञमालिकाएँ ऐसी मालूम होती थीं, मानो सखियाँ अपनी कान्ति रूपिणी भुजाओंसे एक दूसरेको आलिङ्गन कर रही हों। उस चैत्यकी दीवारोंमें विचित्र मणिमय गवाक्ष (खिडकियाँ) बनघाये गये थे, जिनमें लगे हुए रत्नोंके प्रभा पटलसे ऐसा मालूम होता था मानो उनपर परदे पड़े हुए हो। उसके अन्दर जलते हुए अगुरुधूपके धुएँसे ऐसा प्रतीत होता था, मानो पर्वतके ऊपर नयी नील चूल्काएँ पैदा हो जायी हों।

अब पूर्वोक्त मध्यदेयच्छन्दके ऊपर शैलेशी ध्यानमें मग्न प्रत्येक प्रभुकी देहके बराबर मानवाली, उनकी देहके रंगकेही समान रंगवाली ऋषिमस्वामी आदि चौबीसों तीर्थङ्करोंकी निर्मल रत्नमय प्रतिमाएँ बनघाकर उहाँने रखवा दीं जो ठीक ऐसी मालूम होती थीं, मानो प्रत्येक प्रभु स्वयं ही वहाँ आकर विराज रहे हों। उनमें सोलह प्रतिमाएँ सुवर्णकी, दो राजवर्षा रत्नकी (श्याम) , दो स्फटिक रत्नकी (उज्ज्वल), दो घडूर्य मणिकी (नील) और दो शोणमणिकी (लाल) थीं। उन सब प्रतिमाओंके नख रोहिताक्ष

मणिके (लाल) रंगके समान अङ्क-रत्नमय (श्वेत) थे और नामि, केश मूल, जिह्वा, तालु, श्रीयत्स, स्तनभाग तथा हाथ-पैरोंके तलभाग सुवर्णके (लाल) थे । बरीनी, आँसुकी पुतली, रोंगटे मोहें और मस्तकके केश रिष्टरत्नमय (श्याम) थे । ओठ प्रवाल-मय (लाल), दात स्फटिक रत्नमय (श्वेत) । मस्तकका भाग चन्द्रमय और नासिका भीतरसे रोहिताक्ष-मणिके आभासको—सुवर्णकी-वनी हुई थी । प्रतिमाओंकी दृष्टियाँ लोहिताक्षमणिके प्रान्त भागवाली और अङ्कमणिकी धनवायी गयी थीं । ऐसी अनेक प्रकारकी मणियोंसे तैयार की हुई वे प्रतिमाएँ बहुत ही शोभायमान मालूम होती थीं ।

उन प्रतिमाओंमेंसे पत्येकके पीछे एक एक यथायोग्य मानवाली छत्रधारिणी रत्नमय प्रतिमा बनायी गयी थी । ये छत्रधारिणी प्रतिमाएँ कुरंटक पुष्पकी मालाओंसे युक्त मोतियों और लालोंसे गुथे हुए तथा स्फटिक मणिके डंडोंवाले श्वेत छत्र धारण किये हुए थीं । पत्येक प्रतिमाके दाहिने धरिये रत्नोंके चँवर धारण करने वाली दो प्रतिमाएँ और आगे नाग यक्ष, भूत और कुण्डधार की ही-दो प्रतिमाएँ थीं । हाथ जोड़े हुए, सर्वाङ्गमें उज्ज्वल शोभा धारण किये हुई, ये नागादिक देवोंकी रत्नमयी प्रतिमाएँ ऐसी शोभायमान मालूम होती थीं, मानों ये वहाँ साक्षात् बैठी हुई हों ।

देवच्छन्दके ऊपर उज्ज्वल रत्नोंके चौबीस घण्टे, संक्षिप्त किये हुए सूर्य चिम्बके समान प्राणिष्यके दर्पण, उनके पास उचित स्थानपर सुवर्णकी क्षीपिकाएँ, रत्नोंकी पिटारियाँ, नदीके

भँवरकी तरह गोल-गोल चँगेरियाँ, उत्तम रुमाल आभूषणोंके डब्बे, सोनेकी धूपदानी और भारती, रत्नोंके मङ्गलदीप, रत्नोंकी झारियाँ, मनोहर रत्नमय थाल, सुवर्णके पात्र, रत्नोंके चन्दन-कलश, रत्नोंके सिंहासन, रत्नमय अष्टमाङ्गलिक, सुवर्णका बना तेल भरनेका डब्बा, सोनेका बना धूप रखनेका पात्र, सोनेका कमल-हस्तक—ये सब चीजें प्रत्येक अर्हन्तकी प्रतिमाके पास रखी हुई थीं। इसलिये प्रत्येक वस्तुकी गिनती चौबीस थी।

इस प्रकार माना रत्नोंका बनाया हुआ वह तीनों लोकसे सुन्दर चैत्य, भरतचक्रीकी आशा होतेही, सब कलाओंके जाननेवाले कारीगरोंने तत्काल विधिके अनुसार बनाकर तैयार कर दिया। मानों मूर्तिमान् धर्म हो ऐसे चन्द्रकान्त मणिके परकोट्टेसे तथा चित्रमें लिखे हुए सिंह, घृषम मगर, अश्व, नर, किलर, पक्षी, यालक, हरिण, अष्टापद, चमरी-मृग हाथी, वन-लता और कमलोंके कारण अनेक वृक्षोंवाले उद्यानकी तरह मालूम होनेवाला वह विचित्र तथा अद्भुत रचनावाला चैत्य बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता था। उसके आस पास रत्नोंके खम्भे गड़े हुए थे। वह मन्दिर आकाश-गङ्गाकी तरङ्गोंकी तरह मालूम पडनेवाली भ्रजाओंसे बड़ा मनोहर दिग्बाई देता था ऊँचे किये हुए सुवर्णके भ्रजदण्डोंसे वह ऊँचा मालूम होता था और निरन्तर फहराती हुई भ्रजाओंमें लगे हुए घुँघरूकी आवाज़से वह त्रिधाधरोंकी स्त्रियोंकी कटि-मेखलाओंकी ध्वनिका अनुसरण करता हुआ मालूम होता था। उसके ऊपर विशाल कान्तिवाली पद्मरागमणिके कलशसे वह ऐसा मालूम होता

था । मानों माणिक्य जहो हुई मुद्रिका पहने हुए हो । वहीं तो पतु
जित होता हुआ, वहीं बचच धारण किये, वहीं रोमाञ्जित बना
हुआ और वहीं किरणोंसे लित मालूम पड़ता था । गोशोप-चन्दन
के रसके तिलकसे यह जगद-जगद चिह्नित किया गया था । उसकी
सन्धियाँ इम कारीगरीसे मिलायी गयी थीं, कि सारा मन्दिर एक
ही पत्थरका बना हुआ मालूम पड़ता था । उस चैत्यके नितम्ब
भागपर अपनी विचित्र चेष्टासे बड़ी मनोहर क्षीरमती हुई माणिक्यकी
पुतलियाँ बैठायी हुई थीं । इमसे यह ऐसा मालूम होता था, मानों
अप्सरामोंमे अभिष्टित मेख्यर्षत हो । उससे द्वाारके दोनों ओर
चन्दनसे लैपे हुए दो कुम्भ रखे हुए थे । उनसे यह ऐसा मालूम होता
था मानों द्वार स्वल्पर दो पुण्डरीक कमल उग भाये हों और उस
की शोभाको बढ़ा रहे हों । धूपित करके तिरछी बाँधी हुई लटकती
मालाओंसे यह रमणीय मालूम होता था । पंचरंगे फूलोंसे उसके
तलभागपर मण्डल भरे हुए थे । जैसे यमुना-नदीसे बलिन्द-
पथत सदा प्लावित होता रहता है वैसेही कपूर, अगर और
कस्तूरीसे बने हुए घूपके घूपसे यह भी सदैव घ्यात रहता था ।
आगे पीछे और दाहिने-बायें सुन्दर चैत्यवृक्ष और माणिक्यकी
पीठिकाएँ बनी हुई थीं । इनसे यह ऐसा मालूम होता था मानों
गहने पहने हुए हों और अपनी पवित्रताके कारण यह ऐसा
शोभायमान दाखता था, मानो अष्टापदपर्यंतके शिखरपर मस्तकके
मुकुटका माणिक्य-भूषण हो तथा नन्दीश्वरादि चैत्योंकी स्पर्दा
कर रहा हो ।

उसी चैत्यमें भरतराजाने अपने निम्नपानये भाइयोंको दिव्यरत्नों की बनी हुई प्रतिमाएँ स्थापित कीं और प्रभुकी सेवा करती हुई अपनी भी एक प्रतिमा वहाँ प्रनिष्ठित की। भक्तिकी अतृप्तिका यह भी एक लक्षण है। उन्होंने चत्यके याहर भगवान्का एक स्तूप और उसीके पास अपने भाइयोंके भी स्तूप धनवाये। वहाँ आनेवाले लोग आते जाते हुए उन प्रतिमाओंकी आशातना (अपमान) न करने पायें, इसके लिये उन्होंने लोहेके घने, बल पुर्जे लगे हुए पहरेदार भी पड़े कर दिये। इन लोहेके घने पहरेदारोंके कारण यह स्थान मनुष्योंके लिये ऐसा दुर्गम हो गया, मानों मर्त्यलोकके याहर हो। तब चक्रवर्त्तोंने अपने दण्डसे उस पर्वतके ऊबड़ खावड़ पत्थरोंको तोड़कर गिरा दिया। उससे यह पर्वत सीधे और ऊँचे स्तम्भके समान लोगोंके चढ़ने योग्य नहीं रह गया। तब महाराजने उस पर्वतकी टेढ़ी मेढ़ी मेखलायें समान और मनुष्योंसे नहीं लाघने योग्य आठ सीढ़ियाँ एक एक योजनके अन्तरपर धन-यार्थी। तभीसे उस पर्वतका नाम अष्टापद पडा और लोकमें यह हर्राद्रि, फैलास और स्फटिकाद्रि आदि नामोंसे भी प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार चैत्य निर्माण कर, उसमें प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाकर, श्वेतधत्तधारी चक्रवर्त्तोंने उसमें उसी तरह प्रवेश किया, जिस तरह चन्द्रमा बादलोंमें प्रवेश करता है। परिष्कार सहित उन प्रतिमाओंकी प्रदक्षिणा कर, महाराजने उन्हें सुगन्धित जलसे गह लाया और देवदूष्य धूलोंसे उनका मार्जन किया। इससे ये प्रतिमाएँ रत्नके आर्नेकी तरह अधिक उज्ज्वल हो गयीं। इसके

याद उ होने चन्द्रिकाके समूहकी तरह निमेल, गाढे भीर सुगन्धित गोशीप चन्दनके रससे उनका विलेपन किया तथा विविध रत्नोंके भाभूपणों, घमकती हुई दिव्य मालामों और देयदृष्य धत्तोंसे उनकी अर्चना की। धटा यज्ञाते हुए महाराजने उनको धूप दिखाया, जिससे उठने हुए धूपकी कुण्डलीसे उस धैत्यका अन्तर्भाग नील धत्तोसे अर्द्धित किया हुआ मालूम पड़ने लगा। इसके बाद मानों समार रूपी शीत-काठसे भय पाये हुए लोगोंके लिये जलता हुआ अग्नि-कुण्ड हो ऐसी कपूरको आरता उतानी।

इस प्रकार पूजनकर, श्रृपमन्वामाको नमस्कार कर शोकभीर भयसे आशान्त होकर, धनवर्षाणि इस प्रकार स्तुति की,—“हे जगत्सुधाकर ! हे त्रिजगत्पति ! पाँच कल्याणकोंस नारकायोंको भी सुख देनेवाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे स्वामिन् ! जैसे सूर्य संसारका उपकार करनेके लिये घ्रमण करते रहत हैं वैसेही आप भी जगत्के हितके लिये सद्यत्र विहार करते हुए चराचर-जीवोंको अनुगृहीत कर चुक हैं। आर्य भीर अनाथ हीनो पर आपकी प्रीति थी, इसीलिये आप विरकाल विहार करते फिरे। अतपत्र आपकी और पयनकी गति परोपकारके ही लिये हैं। हे प्रभु ! इस लोकमें तो आप मनुष्याके उपकारके लिये सदा विहार करते रहे ; पर मोक्षमें आप किसका उपकार करनेके लिये गये हैं ? आपने जिस लोकाग्र (मोक्ष) को अपनाया है, यह मात्र सच मुच लोकाग्र (सब लोकोंसे धटकर) ही गया और आपसे छोड़ दिया हुआ यह मर्त्यलोक सचमुच मर्त्यलोक (मृत्यु पाने योग्य)

हो गया है। हे नाथ! जो आपकी विभोपकारिणी देशनाको स्मरण करते हैं, उन भव्य प्राणियोंको आप आज भी प्रत्यक्ष ही दिखाइ पड़ते हैं। जो आपके रूपको ध्यान करते हैं, उन्हें भी आप प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। हे परमेश्वर! जैसे आपने ममता रहित होकर इस सारे संसारको त्याग दिया है, वैसेही कभी मेरे मनका भी त्याग न कर दें।”

इस प्रकार आदीश्वर भगवान्की स्तुति करनेके बाद अथ जिनेन्द्रोंको नमस्कार कर, उन्होंने प्रत्येक तीर्थङ्करकी इसप्रकार स्तुति की,—“हे विषय-वश्यायोंसे अजित, विजयामाताकी कोषके माणिक और जितशशुराजाके पुत्र, जगत्स्वामी अजीतनाथ! तुम्हारी जय हो।

“हे संसार रूपी आकाशको अतिक्रमण करनेमें सूर्यके समान, श्रीसेना देवीके उदरसे उत्पन्न, जितारि राजाके पुत्र सम्मघनाथ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

“हे सधर राजाके वंशके आभूषण स्वरूप, सिद्धाया देवी-रूपिणी पूष-दिशाके सूर्य और विश्वके आनन्ददायक अभिनन्दन स्वामी तुम मुझे पवित्र कर दो।

“हे मेघराजाके घररूपी घनमें मेघके समान और महल्लामाता रूपिणी मेघमालामें मोतीके समान सुमतिनाथजी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

“हे धर राजा रूपी समुद्रके लिये चन्द्रमाके समान और सुसीमा देवी रूपिणी गङ्गानदीमें उत्पन्न कमलके समान पद्मप्रभु! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

“ हे श्रीमतिष्ठ राजाके कुलरूपी गृहके प्रतिष्ठा-समम-स्वरूप
और पृथ्वी-माता-रूपी मलयाचलके चन्द्रतक-समान सुपार्श्वनाभ !
मेरी रक्षा करो ।

“ हे महासेन, राजाके वृशारूपी व्याकाशके, स्रन्दमा और लक्ष्मणा
देवीके कोल-रूपी सरोवरके हंस चन्द्रप्रभु ! तुम्हीं मेरी रक्षा करो

“ हे सुमीन राजाके पुत्र और श्रीरामादेवी-रूपिणी मृत्दन वन
के ऋष्यशृङ्गस्वरूप सुविधितापजी मेरा शीघ्र कल्याण कीजिये

“ हे इन्द्रराज राजाके पुत्र, मन्वादेवीके हृदयको आनन्द देनेवाले
और जरावृषो-आहादित-करनेमें स्रन्दमाके समान शीतलस्वामी ।
तुम मेरे लिये हर्षकारी हो ।

“ हे श्रीविष्णुदेवीके पुत्र, विष्णु-राजाके वंशमें स्रोत्रीके समान
और मोक्षरूपिणी लक्ष्मीके स्वामी श्रेयांस प्रभु ! तुम मेरे कल्याणके
निमित्त-हो ।

“ हे प्रसुपूज्यराजाके पुत्र, जयादेवी-रूपिणी विदूर-पर्यंतकी
सृष्टिमें उत्पन्न रत्नके समान और जरावृषमें पूजनीय धासुपूज्यस्वामीजी
तुम मुझे मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करो ।

“ हे वृतावर्म राजाके पुत्र और श्यामादेवी-रूपिणी शमीवृक्षसे
उत्पन्न अग्निके समान त्रिमलस्वामी ! तुम मेरा मन निर्मल बना दो ।

“ हे सिहसेन राजाके कुलमें मङ्गल दीपकके समान, सुयशा
देवीके पुत्र अनन्तमगवान् ! मुझे अनन्त सुख दो ।

“ हे सुयतादेवी रूपिणी, उदयाचल शिखीके सूर्यस्वरूप भानु-
राजाके पुत्र धम्मनाथ प्रभु ! तुम मेरी सुदिकी धर्ममें लगा दो ।

“हे शिवसेन राजाके कुलभूषण स्वरूप, आंचरादेवीके पुत्र शान्तिनाथ भगवान् । तुम मेरे कर्मोंकी शान्तिके निर्मास हीओ ।

हे शूरराजाके वशरूपी आकाशम सूर्यके समान, धीदेवीके खदेरसे उत्पन्न धीरे कामदेवका उन्मर्षण करनेवाले जगत्पति कुन्धु नाथजी । तुम्हारी जय हो ।

“सुदर्शन राजाके पुत्र, और देवी माता रुपिणी शरदुलस्मोमें कुमुदके समान अरनाथजी ! । तुम मुझे ससारसे पार, उतरनेका धैर्य प्रदान करो ।”

“ह कुम्भराजा-रूपी समुद्रमें अमृत कुम्भके समान और कम क्षय करनेमें महामल्लके समान प्रभावती देवीसे उत्पन्न महिनाथजी तुम मुझे मोक्षरूपी प्रदान करो ।”

“हे सुमित्र-राजा रूपा हिमाचलमें, पद्मग्रहके, समान और पद्मावतीके पुत्र मुनिसुव्रत प्रभु ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।”

“हे धर्मदेवी रुपिणी धर्मकी खानस निकले हुए धर्मके समान, विजय राजाके पुत्र और जगत्से धर्मनीय चरण धर्मले ‘धाले नमिप्रभु ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।”

“हे समुद्र (समुद्रविजय) का मानन्द दासाल चन्द्रमाके समान, शिवदेवाके पुत्र और परम-देवाले मांशुगामी अरिष्टनाम भगवान् ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।”

“हे अश्वसेन राजाके कुलमें चूडामणि स्वरूप धामादेवीके पुत्र पार्श्वनाथजी ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।”

१३ “हे सिद्धाथ राजाके पुत्र, त्रिशला मीताके हृदयका आश्वासन

देनेवाले और सिद्धि प्राप्तिके अर्थको 'सिद्ध करनेवाले' महावीर प्रभु ! मैं तुम्हारे वन्दना करता हूँ ।"

इस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकरकी स्तुति कर, प्रणाम करते हुए महाराज मरत उम सिंहनिग्रहा चैत्यसे बाहर निकले और प्यारे मित्रकी तरह पीछे मुड़ मुड़ कर तिरछी नज़रोंसे उसें देखते हुए अष्टापद-पर्वतसे नीचे उतरे । उनका मन उसी पर्वतमें अटका हुआ था, इसीलिए अयोध्याधिपति ऐसी मन्द-मन्द गतिसे अयोध्याकी ओर चले, माना उनके चलका छोर वहाँ अटक रहा हो। शोककी बाढकी तरह सैनिकोंकी उडायी हुई धूलसे दिशाओंको व्याकुल करते हुए शोकोत्त चक्रवर्त्तों अयोध्याके समीप आपहुँचे मानों चक्रवर्त्तोंके सहोदर हों । इस प्रकार उनके दुःखसे अत्यन्त दुःखित नगर निवासियों द्वारा आसू भरी आँखोंसे देखे जाते हुए महाराज अपनी विनीता नगरीमें आये । फिर भगवोंनेका स्मरणकर, वृष्टिके बाद वरें हुए मेघकी तरह अथ्रुजलसे घूँद कर सोते हुए वे अपने राजमहलके अन्दर आये । जिसका धन छिन जाता है वह जिन प्रकार द्रव्यका ही ध्यान किया करता है, वैसेही प्रभुरूपी धनेके छिन जानेसे वे भी उठते, बैठने चलते फिरते सोते जागते, बाहर भीतर, रात दिन प्रभुका ही ध्यान करने लगे । यदि कोई जिसी ओर ही मत्तलबसे उनके पास अष्टापद पर्वतकी ओरसे आ जाता ता वे यही समझते, मानों वह भी पहलहीकी भाँति प्रभुका ही कोई सदेश लेकर आया है ।

महाराजकी ऐसा शोकाकुल देखकर मन्त्रियोंन उनसे कहा—

“हे महाराज ! आपके पिता श्रीऋषभदेव प्रभुने, पहले गृहस्थाश्रम में रहकर भी पशुके समान अन्न, मनुष्योंको व्यवहार, नीतिमें प्रवृत्त किया था। इसके बाद दीक्षा लेकर थोड़े ही समयमें फेजलज्ञान प्राप्त कर, इस जगतके लोगोंको मयसागरसे उबारनेके लिए धर्ममें प्रवृत्त किया। अन्तमें स्वयं कृतार्थ हो औरोंको भी कृतार्थ कर उन्होंने परम-पद प्राप्त किया। फिर ऐसे परम प्रभुके लिये आप क्यों शोक करते हैं ?” इस प्रकार सम्झानेपर चक्रवर्ती धीरे धीरे राजकाजमें मन लगाने लगे।

राहुसे छुटकारा पाये हुए चन्द्रमाकी भाँति धीरे-धीरे शोकमुक्त होकर भरत चक्रवर्ती बाहर विहार भूमिमें-विचरण करने लगे। विन्ध्याचलकी याद करनेवाले गजेन्द्रकी तरह प्रभुके स्वरणोंका स्मरण करते हुए बिपादको प्राप्त होनेवाले महाराजके पास आकर बड़े-बूढ़े लोग उनका दिल बहलाने लगे। इसीसे वे कृमि कृमि अपने परिजनोंके आग्रहसे विनोद उत्पन्न करनेवाली उद्यान भूमिमें जाने लगे। और वहाँ मानो स्त्रियोंकाही राज्य हो गौरी सुन्दरी स्त्रियोंको टोलीके साथ लता मण्डपकी रमणोक शय्यापर क्रीडा करने लगे। वहाँ फूल चुननेवाले विधाधरोकी भाँति जवान पुरुषोंको उन्होंने फूल चुननेकी क्रीडा करते देखा। उन्होंने और भी देखा कि, धाराङ्गनापेँ फूलोंकी पोशाक बना-बनाकर उनको अर्पण कर रही हैं। मानो इसी प्रकार वे कामदेवकी पूजा कर रही हों मानों उनकी उपासना करनेके लिये असंख्य श्रुतियाँ आ इकट्ठी हुई हों, ऐसी नगर, नारियाँ, भृग-भृगमें फूलोंके गहने पहने उनसे

आंसपास ब्रीडा करने लगीं । फिर तो मानो शत्रुदेयताओंमें सेही कोइ देयता आ गया हो उसी प्रकार साराहुमें फूलोंके गहने पहने हुए उन छियोंके मध्यमें महाराज भरत शोभित होने लगें ।

किन्ती किन्ती दिन ये भी अपनी छियोंको साथ लेकर राज हंसकी तरह ब्रीडायापीमें स्वेच्छापूर्वक ब्रीडा करनेके लिये जाने लगे । जैसे गनेन्द्र अपनी कामिनियोंके साथ नर्मदा नदीमें ब्रीडा करता है, वैसेही ये भी उन सुन्दरियोंके साथ ब्रीडा करने लगे । मानों उन सुन्दरियोंकी ही सिखलेयी पदार्या हुए हो, ऐसी उस जलकी तरहे कभी महाराजके बलुकों वभी मुजाओंको और कभी हृदयको आलिंगन करत लगीं । उस समय कमलके बर्णानरण और मोतियोंके कुण्डल पहने हुए महाराज जलमें साक्षात् घरुणवैषके समाने शोभा पाने लगे, मानों लीलाधिलासके राज्य पर उनका अभिषेक कर रक्षो हो, इसी ढंगसे ये छियाँ, "मै पहले में पढे" कहती हुई उनके ऊपर पानीके छंटे छोट रही थीं । उन्हें चारो ओरसे घेरे हुए जलप्रीहामें तत्पर उन रमणियोंके साथ जो थप्सराप या जलदेरियाँसी मालूम पडती थीं । महाराजने बड़ी देरतक जलप्रीडा की । अपनी होठ करनेवाले कमलो को देखकर ही मानो उन मृगाक्षियोंकी बाँखें कोपसे लाल लाल हो आयीं और उन अङ्गनाओंके अंगोंसे गिरे हुए घने अङ्गनागके कारण यह सारा जल यक्ष-वर्द्धमसा मालूम पडने लगा । इसी प्रकार ये अक्सर ब्रीडा किया करते थे ।

किन्ती समय इसी प्रकार जलकीडाकर महाराज भरत, इन्द्र की तरह सङ्गीत करानेके लिये त्रिलोक मण्डपमें आये। वहाँ वंशी बजानेमें चतुर पुरुष जैसेही वंशीमें पहले मधुर स्वर भरने लगे, जैसे मन्त्रोंमें पहले ओङ्कारका उच्चारण किया जाता है। ये वंशी बजानेवाले कानोंको सुख देनेवाली और ध्यञ्जन धातुओंसे स्पष्ट, पुष्पादिक स्वरसे ग्यारह प्रकारकी वंशी बजाने लगे। सूत्रधार उनके कवित्वका अनुसरण करते हुए नृत्य तथा अभिनयकी माताके समान प्रस्तारसुन्दर नामका ताल देने लगे। सूदु और प्रणव नामके बाजे बजाने वाले प्रिय मित्रकी तरह जरा भी ताल सुरमें फर्क नहीं जाने देते हुए अपने-अपने बाजे बजाने लगे। हाहा और हूह नामके गन्धर्वोंके अट्टारको हरनेवाले गायक स्वर गीतसे सुन्दर और नयी नयी तरहके राग गाने लगे। नृत्य तथा ताण्डवमें चतुर नृतियाँ विचित्र प्रकारकी नाजो अदासे सबको आश्चर्यमें डालती हुई नाचने लगीं। महाराज भरत उस-देखते योग्य नाटककी निर्दिष्ट देखते रहे, क्योंकि उनकेसे समर्थ पुरुष चाहे जो करें, उसमें कौन रोक टोक कर सकता है ? इस प्रकार सुस्वार सुखको भोगते हुए भर्तेश्वरने प्रभुके मोक्ष दिवसके पश्चात् पाँच लाख पूर्वं बिता दिये।

एक दिन भर्तेश्वर, ज्ञान कर, पत्रि कर्म कर, देवदूष्य धरसे शरीरकी साफ कर, केशमें पुष्पमाला गूथ, गोशीर्षचन्दन का सब झड़ोंमें ले रकर, अमृत्य और दिव्यरत्नोंमें आभूषण सब अर्गोंमें धारण कर, अस्त पुरकी श्रेष्ठ सु दरियोंका समूह साथ लिये

छडीवरदारोंके दिखलाने हुए रास्सेसे, अन्न पुष्क मध्यमें, रत्नोंके आदर्शगृहमें आये। यहाँ आकाश और स्पष्टिकर्मणिकी भाति निर्मल तथा जिनमें अपने सब अङ्गोंकी परछाईं पूरी तरह दिग्यायी देती हो ऐसे शरीर प्रमाण (कद्दादम)-आर्तमें अपना, रूप देखने हुए महाराजकी एक अङ्गुलीमेंसे अंगूठी गिर पड़ी। जैसे मयूरके कलापमेंसे एक पङ्क गिर जाने पर उसे इसकी खबर नहीं होती, वैसेही उस अंगूठीका गिरना भी महाराजको नहीं मालूम हुआ। क्रमसे शरीरके सब भागोंको देखते-देखते उन्होंने दिामें चाँदनीके बिना फोकी पड़ी हुई चन्द्रकलाके समान अपनी मुद्रिका रहित अंगुलीको शान्ति-रहित देखा, "ओह ! यह अंगुली येसी शोभाहीन क्यों है ?" यह सोचते हुए भरत राजाने जमीन पर पड़ी हुई अंगूठी देखी तब उन्होंने सोचा,—“क्या और-और अङ्ग भी आभूषणके बिना शोभा हीन लगते होंगे।”

यह खयाल पैदा होत ही उन्होंने अन्य आभूषणोंको भी उतारना शुरू किया।

सबसे पहले उन्होंने मिर परसे माणिकका मुकुट उतारा। उतारते ही मिर भी अंगूठी बिना अंगुलीकी तरह मालूम पड़ने लगा। कानोंके माणिकवाले कुण्डल उतार दिये, तब ये भी चंद्र सूर्यके बिना धीहीन दिखायी देनेवाली पूव और पश्चिम दिशाओंके समान मालूम पड़ने लगे। कण्ठाभूषण अलग करते ही प्राया बिना जन्के नदीका भाँति शोभाहीन मालूम पड़ने लगी। यक्षस्थलमें हार उतरने पर यह तारा-रहित आकाशकी

भाँति शून्य प्रतीत होने लगा। याजूषद् निकालतेही दीनों हाथे अद्भुतापाशसे हीन दो शालके वृक्ष जैसे दिखने लगे। दीनों हाथोके फटे निकाल डाले, तब वे बिना कहीं कौठके प्रोसाद से दिखायी देने लगे। और और अँगुलियोंको भी अँगुठियों उतार दीं, तब वे मणि-रहित सर्पके कणके समान मान्य होने लगीं। पेटोमेंसे पाद कण्टक दूर कर देने पर वे गजिन्द्रके सुवर्ण कंकण विहीन क्षतिके समान दिखाई देगे। इस प्रकार सर्गाक्ष्ये आभूषणोंका त्याग करनेसे अपने शरीरको पत्र रहित वृक्षके समान शोभाहीन होते देख, महाराजने एक बार सोरे शरीरको देखकर कहा,—“आह! इस शरीरको धिक्कार है। जैसे दीवार पर चित्र आदि अंकित कराकर बनावटी शोभा लायी जाती है वैसेही इस शरीरकी भी गहनों आदिसे बनावटी शोभा की जाती है। अन्दर विषादिके मलसे और बाहर मूत्रादिके प्रवाहसे मलिन इस शरीरमें यदि विचार कर देखा जाय, तो कोई वस्तु शोभाकारी नहीं है। खारी जमीन जैसे बरसातके पानीकी भी बिगाड़ देती है, वैसेही यह शरीर अपने ऊपर विलेपन किये हुए कपूर और कस्तूरी आदिको भी दूषित कर देती है। जिन्होंने विषयोसे विरक्त होकर मोक्षफलकी देनेवाली तपस्या की है, उन्होंने ही इस शरीरका लाम उठाया है।” इसी प्रकार विचार करते हुए, सम्यक् प्रकार से अपूर्व-कारणके अनुक्रमणसे, क्षपक श्रेणीमें धाकट हो, शुद्ध ध्यानकी पाये हुए महाराजकी घाती कर्मोंके क्षय हो जानेके कारण वैसेही

केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया जैसे बादल हट जानेसे सूर्यका प्रकाश निकल आता है ।

ठीक उसी समय इन्द्रकी भासेन कांप गयी, क्योंकि भजेतन घस्तुप भी महत् पुण्यकी विशाल संसृद्धिकी बात कह देती है । अर्थात् ज्ञानसे असल हाल मालूम कर, इन्द्र भरत राजाके पास आये । मत्तर्जन स्वामीकी ही तरह स्वामीके पुत्रकी भी सेवा करनी स्वीकार करते हैं । फिर ये स्वामीके पुत्रकी केवल-ज्ञान उत्पन्न होनेपर भी उसकी सेवा क्यों नहीं करते ? इन्द्रने यहाँ आकर कहा — "हे केवलज्ञानी ! आप द्रव्यलिग स्वीकार कीजिये, जिसमें मैं आपको धन्दा कहूँ और आपका निष्कमण उत्सव कहूँ ।" भरतवेश्वरने उसी समय बाहुबलीकी भाँति पाँच मुठो केरा उखाड़ कर दीक्षाका लक्षण मजूकार किया अर्थात् पाँच मुठो केरा मोचकर देयताओके दिये हुए रजोहरण आदि उपकरणोंको स्वीकार किया । इसके बाद इन्द्रने उनकी धन्दा की, क्योंकि मले ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया हो तो भी अक्षित पुरुषको धन्दा नहीं की जाती—येमा ही आचार है । उस समय भरत राजाके आश्रित दम हज़ार राजाओंने भी दीक्षा ले ली, क्योंकि उनका समान स्वामीकी सेवा परलोकमें भी सुख देनेवाली होती है ।

इसके बाद इन्द्रने पृथ्वीका भार सहनेवाले भरतधर्मयतीके पुत्र आदित्यवंशका राज्याभिषेक उरुसव किया ।

श्रयमस्वामीकी तरह भरत मुनिन भी केवलज्ञान उत्पन्न

मौंति शून्य प्रतीत होने लगा । याज्ञवल्क्य निकालतेही दोनों हाथ
 बद्धलतापाशसे हीन दो शालके वृक्ष जैसे दिखने लगे । दोनों
 हाथोंके कटे निकाल डाले, तब वे बिना कहीं कोठके प्रोसीद्ध
 से दिखायी देने लगे । और और अँगुलियोंको भी अँगूठियों
 उतार दीं, तब वे भ्रमि रहित सपके फणके समान मोलूम होने
 लगीं । पैरोंसे पाद कंटक दूर कर देने पर वे गजेंद्रके सुविणे
 कंकण विहीन दांतके समान दिखाई देने लगे । इस प्रकार
 सर्वाङ्गके आभूषणोंका त्याग करनेसे अपने शरीरको पत्र रहित
 वृक्षके समान शोभाहीन होते देख, महाराजने एक बार सारे
 शरीरको देखकर कहा,—“भाई ! इस शरीरकी धिक्कार है ।
 जैसे दीवार पर चित्र आदि अंकित कराकर बनायेदी शोभा
 लयी जाती है, वैसेही इस शरीरकी भी गहनों आदिसे बना-
 यदी शोभा की जाती है । अन्दर विद्यादिक मल्लसे और बाहर
 मूत्रादिक प्रवाहसे मलिन इस शरीरमें यदि विचार कर देखा
 जाय, तो कोई वस्तु शोभाकारी नहीं है । पारी जमीन जैसे
 धरसातके पानीकी भी बिगाड देती है, वैसेही यह शरीर अपने
 ऊपर धिलेपन किये हुए कपूर और कस्तूरी आदिको भी दूषित
 कर देती है । जिन्होंने विषयोंसे विरक्त होकर मोक्षफलको
 देनेवाली तपस्या की है, उन्होंने ही इस शरीरका लाम उठाया
 है ।” इसी प्रकार विचार करते हुए, सम्यक् प्रकार से अपूर्व-
 कारणके अनुक्रमणसे, क्षपक श्रेणीमें आरूढ हो, शुद्ध ध्यानको
 पांचे हुए महाराजको घांती कर्मोंके क्षय हो जानेके कारण वैसेही

केवल ज्ञान प्राप्त हो गया जैसे बादल हट जानेसे सूर्यका प्रकाश निकल आता है।

ठीक उसी समय इन्द्रका आसन कांप गया, क्योंकि अचेतन वस्तुएं भी महत् पुण्योंकी विशाल समृद्धिको प्राप्त कह देती हैं।

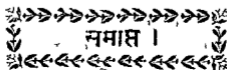
अधीक्षानसे असंल हाल मालूम कर, इन्द्र भरत राजाके पास आये। मत्स्यजने स्वामीकी हो तरह स्वामीके पुत्रकी भी सेवा करनी स्वीकार करते हैं। फिर ये स्वामीके पुत्रको केवल-ज्ञान उत्पन्न होनेपर भी उसकी सेवा क्यों नहीं करते? इन्द्रने यहाँ आकर कहा,—“हे केवलज्ञानी! आप इन्द्रियलिङ्ग स्वीकार बीजिये, जिसमें मैं आपको धन्दा करूँ और आपका निष्कमण उत्सव करूँ।” भरतेश्वरने उसी समय बाहुबलीकी भाँति पाँच मुठों केश उखाड़ कर दीक्षाका लक्षण अङ्गीकार किया अर्थात् पाँच मुठों केश नोचकर देवताओंके दिवे हुए रजोहरण आदि उपकरणोंकी स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रने उनकी धन्दा की, क्योंकि मले ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया हो तो भी अक्षिप्त पुण्यकी धन्दा नहीं को जाती—येना ही आचार है। उस समय भरत राजाके आश्रित दम हज़ार राजामोंने भी दीक्षा ले ली, क्योंकि उनके समान स्वामीकी सेवा परलोकमें भी सुख देनेवाली होती है।

इसके बाद इन्द्रने पृथ्वीका भार सहनेवाले भरतचक्रवर्तीके पुत्र आदित्यशशाका राज्याभिषेक उत्सव किया।

श्रयमस्वामीकी तरह भरत मुनिने भी केवलज्ञान उत्पन्न

होनेके बाद ग्राम, खान, नगर अरण्य, गिरि और द्रोणमुख आदि सभी स्थानोंमें जा जाकर धमदेशनासे भय प्रणियोंको प्रबोध देते हुए परिवार सहित लक्ष पूर्व पर्यंत विहार किया। अन्तमें उन्होंने भी अष्टापद पूर्वत पर जाकर विधिमहित चतुर्विध आहारका प्रत्याप्यान किया। एक मासके अन्तमें जब चन्द्रमा श्रवण-नक्षत्रमें आया, तब अनन्त चतुष्क (अनन्त ज्ञान, अनन्त दशन, अनन्त चरित्र और अनन्त धीर्य) सिद्ध हुआ है जिनका, ऐसे धे महपि सिद्धिक्षेत्रका प्राप्त हुए।

इस प्रकार भरतेश्वरने सतहत्तर पूर्वलक्ष कुमारावस्थामें बिताया। उस समय भगवान् ऋषभदेवजी पृथ्वीका प्रतिपालन कर रहे थे। भगवान् दीक्षा लेकर हजार वर्षतक उग्रस्थ अग्रस्थामें रहे। इन्होंने एक हजार वर्ष माहलिकतामें बिताये। हजार वर्ष कम छ लक्षण पूर्व तो इन्होंने सकवर्त्ती रहकर बिताये। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद विश्वके कल्याणके लिये धे दिवसमें प्रकाशित होने वाले सूर्यकी तरह एक पूर्वतक पृथ्वीपर विहार करते रहे। इस कार चौरासी पूर्वलक्षकी आयु भोगकर, महाराज भरतने मोक्ष पाया। तत्काल उसी समय हर्षसे भरे हुए देवताओंके साथ साथ स्वर्ग पति इन्द्रने भी उनकी मोक्षमहिमा गायी।



शान्ति के समय मनोरञ्जन करने योग्य

हिन्दी जैन साहित्य की

सर्वोत्तम पुस्तकें

आदिनाथ चरित्र

इस पुस्तकमें जैनोंके पहले तीर्थङ्कर भगवान् आदिनाथ स्वामीका सम्पूर्ण जीवन चरित्र दिया गया है इसको साघन्त पढ़ जानेसे जैनधर्मका पूर्ण तथ्य मालूम हो जाता है भाषा भी ऐसी सरल शैली से लिखी गई है कि साधारण हिन्दी जानने वाला बालक भी बड़ी आसानीके साथ पढ़ सकता है, सन्धि होनेके कारण पुस्तक खिल उठी है, जैन समाज में आजतक ऐसी मनोवही पुस्तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई। अगर आप ब्रह्म भद्वैय भगवान् का सम्पूर्ण चरित्र पढ़नेकी 'इच्छा रखते हैं, अगर आप जैन धर्म के प्राचीन रीति रिवाजों को जानना चाहते हैं, अगर आप अपने को उपदेशक बनाकर समाज का भला करना चाहते हैं अगर आप अपने सन्तानों को जैन धर्मकी शिक्षा प्रदान कराना चाहते हैं, अगर आप लोक-परलोक साधन करना चाहते हैं। अगर आप धर्म क्रिया के समय शान्ति का आश्रय लेना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को भगवान्

के लिए आज ही आखर दीजिये । मूल्य सजिन्द का ५) अजि
हल्द का ४) डाकखर्च अलग ।

शांतिनाथ चरित्र

इस पुस्तकमें जैनके सोलहवें तीर्थङ्कर भगवान शांतिनाथ
स्वामीका चरित्र (सपूर्ण चरित्रों का) मय चित्रोंके दिया
गया है । इस पुस्तक का संस्कृत पुस्तक से हिन्दी अनुवाद
किया गया है । अगर आप प्राचीन घटनाओं को नयी
औपन्यासिक ढङ्गपर, पढ़ने की इच्छा रखते हैं, अगर आपको
शांतिनाथ का अनुसरण करना है, अगर आप सामायिक पौषध
आदि धर्म क्रियाके समय ज्ञान ध्यान करना चाहते हैं, तो इस
पुस्तक को अवश्य मंगवाइये ।

बड़ी खूबी—

यह भी गई है, कि प्रत्येक कथापर एक एक हाफटोन चित्र
दिया गया है, जिनके अथलोकन मात्रसे मूलका आशय चित्तपर
अंकित हो जाता है । जैन संप्रदायमें यह एक नयी बात की
गई है ।

स्त्रियोंके लिये—

यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी एवं शिक्षाप्रद है, अगर आप
अपनी स्त्रियोंके हृदयमें उदारता, क्षमता, आदि गुणोंका समा-
वेश करना चाहते हैं, अगर आप अपनी पुत्रीको शिक्षिता

करना चाहते हैं, अगर आप अपनी पुत्री को अपने सम्प्रदायमें ही दूध रखना चाहते हैं अगर आप अपनी पुत्रियोंसे अपनी पुत्री माताओं को धर्मोपदेश प्रदान करवाता चाहते हैं, अगर आप अपनी पुत्रियों को सुलक्षणा करता चाहते हैं, तो इस पुस्तकको अवश्य मँगवाकर पढ़ाएँ। इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा भी ऐसी सरल शैलीसे लिखी गई है, कि साधारण हिन्दी लिखने पढ़नेवाली बालिका भी अतीव सरलता से पढ़ सकती है। एक समय हमारी बातपर विश्वासकर कम-से कम एक पुस्तक अवश्य मँगवाकर अपनी लियोंको दीजिये, अगर आप को हमारी बात प्रमाणित मालूम हो जाय तो दूसरी पुस्तक मँगवाएँ। मुख्य टैपमी, सुनहरी (जिल्द ५) अजिल्द सादा कवर ४) डाकतर्चे अलग।

अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश

इस पुस्तकमें योग सम्बन्धी सत्यविषयोंकी व्यक्तता की गई है, योगके विषयको समझानेवाली, हिन्दी साहित्यमें आज तक ऐसी सरल पुस्तक कहीं-कहीं प्रकाशित हुई। इस पुस्तकमें दृढयोग तथा राजयोगका साङ्गोपाङ्ग ध्यान, चित्तको स्थिर करने आदिके उपाय ऐसी सरल शैलीसे लिखे गये हैं, जिन्हें सामान्य बुद्धियाला बालक भी वही आसानोके साथ समझ सकता है, इस ग्रन्थ रचने कर्ता एक प्रखर विद्वान् जेनाचार्य हैं, जिन्होंने विषयरूपात दृष्टिसे प्रत्येक विषयोंको ध्रुव अच्छी

तरह खोल खोल कर समझा दिया है। पाठकोंसे हमारे विनीत प्रार्थना है, कि एक बार हमारी बात पर विश्वास कर एक प्रति अवश्य मगवायें। अगर आपको हमारी बात पर प्रतीति हो जाय तो फिर अपने ईष्ट मित्रोंसे भी मंगवानेके लिये प्रेरणा करें। मूय अजिन्द् ३॥ सजिन्दे ४॥^१

सती शिरोमणी—

चन्दनवाला

इस पुस्तकमें सुश्राविका सती शिरोमणी चन्दनवाला का चरित्र बड़ोही मनोहर भाषा में लिखा गया है, चन्दनवाला को संतौत्य की रक्षा करने के लिये जो जो विपत्तियें सहनी पड़ी हैं और सतीत्य के प्रभाव से उनके जीवन में जो-जो घटनायें हो गई हैं, सो इस पुस्तक में खूब अच्छी तरह खोल खोल कर समझा दिया गया है। जैनी व अजैनी सब को यह पुस्तक देखनी चाहिये। सती शिरोमणी चन्दनवाला की जीवनी - प्रत्येक कुल लक्ष्मियाँ को पढ़नी चाहिये। बालक ली, पुरुष सभी इस पुस्तकको पढ़ कर मनोरञ्जन और शिक्षा लाभ कर सकते हैं। सारी पुस्तक उपवास के दृष्ट पर लिखी गई है, जिससे पढ़ने में अधिवाधिक आनन्द जाता है। और पाठक को पढ़ने में ऐसा जी लगता है, कि पुस्तक छोड़ने नहीं बनती। आपने चन्दनवाला का चरित्र आर, कहीं पढ़ा सुना भी होगा, पर हम दावेके साथ कहते हैं

कि पैसा सरल और सर्वाङ्ग सुन्दर चित्र आपने बर्हा नहीं पढ़ा होगा। अत पाठकों से हमारा निवेदन है, कि हमारे यात पर विश्वास कर एक प्रति अवश्य मँगवाइये।

पुस्तक की छपाई सफाई यन्त्री ही नयनामिराम है। पण्टीक कागज पर सुन्दर सुधाच्य अक्षरों में छपी गई है। इस के अतिरिक्त स्थान-स्थानपर नयनाद्वार उत्तमोत्तम छ चित्र दिये गये हैं, जिनसे सारी पुस्तक सिल उठी है। जैनसम्प्रदाय में यह एक नवीन शैली निवाणी गई है अवश्य धखिये, यह पुस्तक अपने ढङ्ग की पहली है। (मूल्य ॥२॥) आने) डाक सर्वे अलग।

नलदमयती

इस पुस्तकमें नल और दमयन्तीकी जीवनी मय त्रिशोके की गई है, अधिकांश तो इस पुस्तक में एतिवृता धर्म सूक्त आनका भण्डार भर दिया गया है, इसको पढ़कर स्त्रियों को अपने आपका स्याल हो जाता है। इस पुस्तक को प्रत्येक बालक, युवा और वृद्ध नागियों को अवश्य देखना चाहिये, संसार में नल दमयन्ती की जीवनियाँ अनेकानेक प्रकाशित हो चुकी हैं, पर आजमेक जैनाचार्यकी कलमें से लिखी हुई पुस्तक बर्ही नर्हा प्रकाशित हुई, अतएव पाठक और पाठिकाओंसे हमारा सानुसोध निवेदन है, कि एक बार इस पुस्तक की मँगवाकर अवश्य देखें। (मूल्य ॥१॥) डाकसर्वे अलग।

सुदर्शन सेठ

इस पुस्तक में सुदर्शन सेठ का चरित्र दिया गया है, जैन समाज में मेसा कोई मुख्य न होगा जिसने सुदर्शन सेठकी जीवनी न सुनी हो। महाचर्यमत पर सुदर्शन सेठकी कथा सुप्रसिद्ध है, शील को बचानेके कारण सुदर्शन सेठ को असह्य विपत्ति का सामना करना पडा। पूर्व के महापुरुषों ने शील की रक्षा के लिये प्राणत्याग करना स्वीकार किया, पर शील को त्यागना नहीं स्वीकार किया, इसी विषय पर सुदर्शन सेठ के जीवन में अनेकानेक घटनायें हो गई हैं, जिनके पढने से प्रत्येक नर नारी को अपने शीलके विषय में खयाल हो जाता है। अगर आप अपनी समाज में लोगों को कुसङ्ग से बचाना चाहते हैं। अगर आप अपनी समाज में शीलका महत्त्व बतलाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य मंगवाइये मूल्य ॥२॥ डाकखर्च अलग।

कयवन्ना सेठ

इस पुस्तकमें कयवन्ना सेठ की जीवनी दी गई है। सचित्र होने के कारण कयवन्ना सेठ की अनोखी घटनाओं के सामने दिख जाती है। चारित्र सुधार के विषय में यह पुस्तक अतीव लाभदायक है। दुर्जन और सज्जन पुरुषों

के संसगसे मनुष्य को क्या क्या लाभ और क्या क्या हानियाँ उठानी पड़ती हैं। इस विषय पर कयप्रज्ञा के जीवन में अनेकानेक आश्चर्यजनक घटनाएँ हो गई हैं, जिसके पढ़ जाने से मनुष्य मात्र को अपने आपे का प्याल हो जाता है। अगर आप अपने पुत्र को चारित्र्य सुधार की शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं, अगर आप अपने पुत्र को सदाचारी बनाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य मँगवाइये। मूल्य ॥) डाक खर्च अलग।

रतिसार कुमार

इस पुस्तक में रतिसार कुमार का चरित्र अतीव सरल और सुन्दर भाषा में लिखा गया है। प्रत्येक नर नारी को इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिये। पुस्तक की छपाई सफाई बड़ी ही नयनाभिराम है चित्रों के कारण रतिसार कुमार का चरित्र अपनी आँखों के सामने दिख आता है। मूल्य ॥) डाक खर्च अलग।

लीजिये । लीजिये ॥ लीजिये ॥

हिंदी भाषामें छपा हुआ—

ज्योतिषसार

पुस्तक का विषय नाम से ही मालूम हो जाता है, जैसा नाम है, वैसा ही गुण है, प्रत्यक्त ने भी इस छोटीसी पुस्तक में सारे ज्योतिष शास्त्र का निचोड़ भर दिया है। अनुवादक ने भी

सुदर्शन सेठ

इस पुस्तक में सुदर्शन सेठ का चरित्र दिया गया है, जैसा समाज में ऐसा कोई सुख न होगा जिसने सुदर्शन सेठकी जीवनी न सुनी हो। प्रत्यक्ष पर सुदर्शन सेठकी कथा सुप्रसिद्ध है, शील को बचानेके कारण सुदर्शन सेठ को असह्य विपत्ति का सामना करना पड़ा। पूर्व के महापुरुषों ने शील की रक्षा के लिये प्राणत्याग करना स्वीकार किया, पर शील को त्यागना नहीं स्वीकार किया, इसी विषय पर सुदर्शन सेठ के जीवन में अनेकानेक घटनायें हो गई हैं, जिनके पढ़ने से प्रत्येक नर नारी को अपने शीलके विषय में ख्याल हो जाता है। अगर आप अपनी समाज में लोगों को कुसङ्ग से बचाना चाहते हैं। अगर आप अपनी समाज में शीलका महत्त्व बतलाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य मंगवाइये मूल्य ॥१॥ डाकखर्च अलग।

कयवन्ना सेठ

इस पुस्तकमें कयवन्ना सेठ की जीवनी दी गई है। सचित्र होने के कारण कयवन्ना सेठ की अनोखी घटनाओं के सामने दिख जाती है। चरित्र सुधार के विषय, यह पुस्तक अतीव लाभदायक है। दुर्जन और सज्जन पुरुषों

के मंसासे मनुष्य को क्या क्या लाभ और क्या क्या हानियाँ उठानी पड़नी हैं। इसी विषय पर कयश्चा केजीयन में अनेकानेक भाष्यजनक घटनायें हो गई हैं, जिसके पट जाने से मनुष्य मात्र को, अपने आपे का ख्याल हो आता है। अगर आप अपने पुत्र को चाहे सुधार की शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं, अगर आप अपने पुत्र को सदाचारी बनाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य मंगवाइये। मूल्य ॥) डाक खर्च अलग।

रतिसार कुमार

इस पुस्तक में रतिसार कुमार का चरित्र अतीव सरल और सुन्दर भाषा में लिखा गया है। प्रत्येक नर नारी को इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिये। पुस्तक की छपाई सफाई बड़ी ही नयनामिराम है चित्रों के कारण रतिसार कुमार का चरित्र अपनी आँवों के सामने दिख आता है। मूल्य ॥) डाक खर्च अलग।

लीजिये ! लीजिये !! लीजिये !!!

हिन्दी भाषामें छपा हुआ—

ज्योतिषसार

पुस्तक का विषय नाम से ही, मातूम हो जाता है जैसा नाम है, वैसा ही गुण है, ग्रन्थकर्त्ता ने भी इस छोटीसी पुस्तक में सारे ज्योतिषशास्त्र का निचोड़ भर दिया है। अनुवादक ने भी

एकदम नवीन शैली के अनुसार हिन्दी भाषा में खूब खुलासा कर दिया है, जिससे साधारण लिखा पढ़ा घाटक भी पढ़ी भासानी के साथ समझ सकता है।

अगर आप बिना गुरु के ज्योतिष का ज्ञान करना चाहते हैं, अगर आपको नये धारोबार, नये मकान बनवायेके, विदेश जानेके देव प्रतिष्ठा, नई दीक्षा, आदि प्रत्येक शुभ कार्याके मुहूर्त्त देखने हों तो आज ही "ज्योतिषसार" मगजानेको आर्डर दीजिये।

— बड़ी खची—

यह की गई है, कि इस पुस्तक में छाया लक्ष और शुभाशुभ योगोंका वर्णन यंत्रों के साथ दिया गया है, जिससे देखने वाला बड़ी भासानी के साथ देख सकता है।

— एक और बड़ी खची—

यह की गई है कि इस पुस्तकमें स्वरोद्दय ज्ञानका विवरण भी दिया गया है। वर्तमान समय में मनुष्यमात्र के लिये स्वरोद्दय ज्ञानकी पूर्ण आवश्यकता हुआ करती है अतएव अनुवादकने स्वरोद्दय ज्ञान का भी खूब खुलासा दे दिया है, इस पुस्तकको प्रत्येक नर नारी को अपने पास रखना चाहिये। मूल्य ॥१) डाक लार्च अलग।

पुस्तक मिलने का पता—

पंडित काशीनाथ जैन

प्रिंटर 'पब्लिशर' बुकसेलर नर्सिंह प्रस,

२०१, हरीसन रोड, (कलकत्ता)

